कलशामृत-७

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

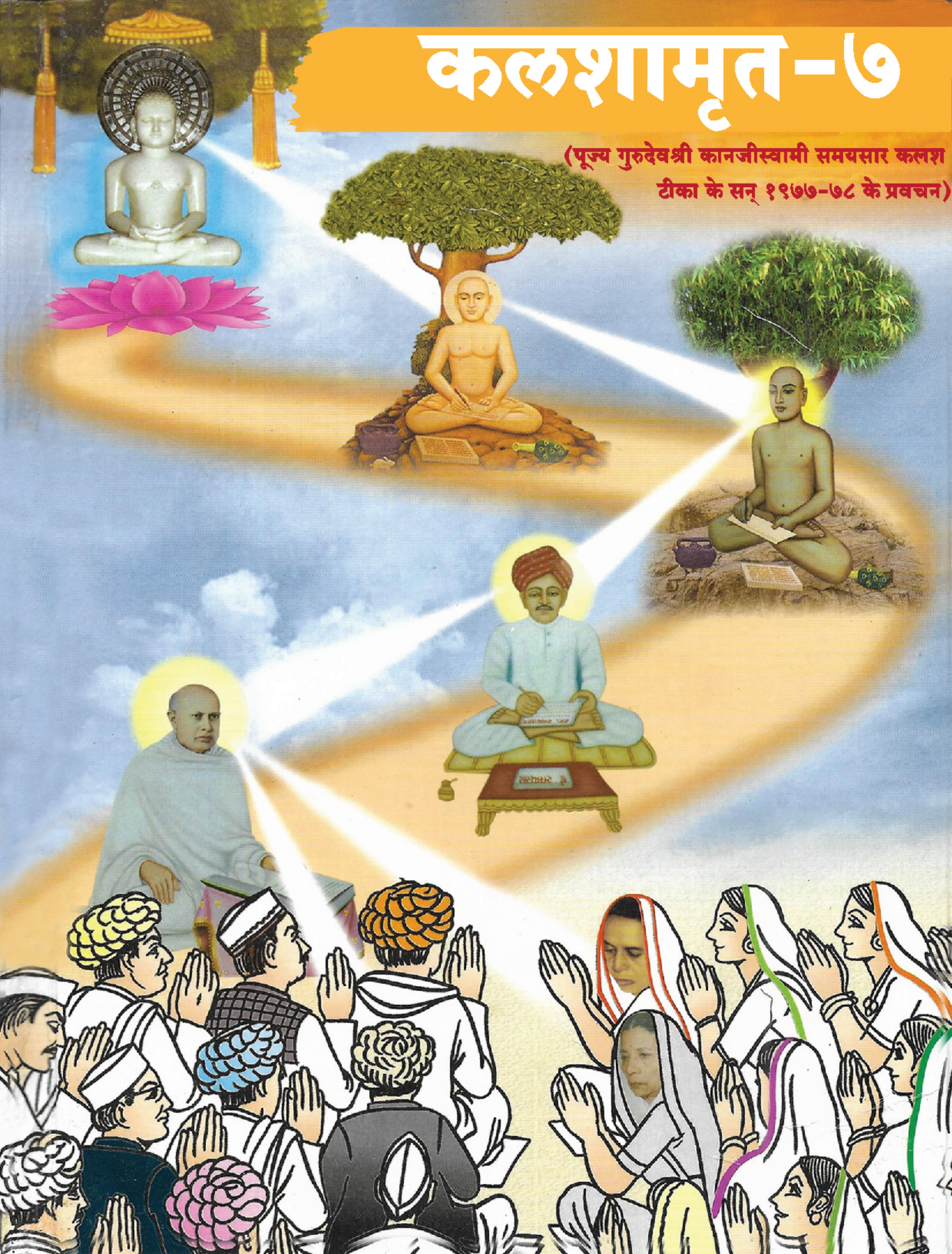

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-7

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभव मुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन

कलश 219 से 246 तक, प्रवचन नं. 244 से 258 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2080

वीर संवत
2550

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—
भगवान महावीरस्वामी जन्म जयन्ती
के अवसर पर दिनांक **21 अप्रैल 2024**

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

वर्तमान तीर्थ के नायक चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान से प्रगट हुई दिव्यध्वनि की परम्परा में द्वितीय श्रुतस्कन्ध की रचना हुई। लगभग २००० वर्ष पूर्व श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव हुए, जिनका स्थान जैन परम्परा में सर्वोत्कृष्ट है। उन्होंने सदेह विदेहक्षेत्र की यात्रा की, श्री सीमन्धर भगवान के साक्षात् दर्शन की, उनकी वाणी सुनी। वहाँ से वापस आकर वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रों में सर्वोत्कृष्ट शास्त्र श्री समयसारजी रचना की।

भगवान १००० वर्ष पूर्व श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य नामक प्रखर आचार्य हुए। उन्होंने श्री समयसारजी शास्त्र की टीका की तथा मन्दिर पर शोभित कलश की भाँति टीका पर कलशरूपी श्लोकों की रचना की।

कालक्रम से जैसे-जैसे जीवों का क्षयोपशम घटता गया, वैसे-वैसे आचार्य भगवन्तों के भाव जीवों को समझना कठिन लगने से, श्री पण्डित राजमलजी पाण्डेय ने अमृतचन्द्राचार्य के कलशों पर सादी-देशभाषा में टीका की। इस टीका में उन्होंने श्लोक के शब्दों के सीधे अर्थ करते हुए उनके अनुभवगर्भित साररूप भावार्थसहित टीका की रचना की।

श्री समयसारजी शास्त्र पर बहुत आचार्यों तथा ज्ञानी विद्वानों ने टीका लिखी है। परन्तु पण्डित श्री राजमलजी की टीका पूज्य गुरुदेवश्री को इतनी पसन्द आयी कि उन्होंने इसका अनुवाद करने की प्रेरणा की, उस पर सादी भाषा में भाववाही प्रवचन प्रदान किये।

इन प्रवचनों के क्रम में कलशामृत भाग ७ प्रकाशित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इस छठवें भाग में गुरुदेवश्री के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचन प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कलश नं. २१९ से २४६ तक के प्रवचन संग्रहीत हैं, इस अधिकार में उस-उस तत्त्व का स्वरूप भलीभाँति स्पष्ट करके, उस प्रत्येक श्वान से रहित अपना त्रिकाली शुद्धात्मा बतलाने का ही आचार्य भगवन्तों से लेकर पूज्य गुरुदेवश्री के तक के प्रत्येक धर्मात्मा का आशय है। उस आशय को समझकर हम भी शुद्धात्म द्रव्य की दृष्टि प्रगट करे, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की स्वानुभवमयी वाणी जीवों को पंचम काल के अन्त तक स्वानुभव में निमित्त होनेवाली है इस परम्परा में ही यह प्रकाशन एक कड़ी है। इन प्रवचनों के अर्थों का जीव जब इनका अध्ययन / श्रवण करेंगे तभी ख्याल में आयेगा। इसलिए इस सम्बन्धी विशेष विस्तार न करते हुए मुमुक्षु इसका गहराई से अभ्यास करें, ऐसी अपेक्षा रखते हैं।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग – ७ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में परिपूर्ण परमात्मा का स्वरूप समझकर, संवररूप धर्म प्रगट करके आत्मिक आनन्द को आस्वादकर सभी जीव तृप्त बनें ऐसी भावनापूर्वक....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com पर उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	कलश	दिनांक	पृष्ठ सं.
२४४-A	२१९	०७-११-१९६५	००१
२४४-B	२१९, २२०	०८-११-१९६५	०२१
२४४-C	२२०	०९-११-१९६५	०४२
२४४-D	२२०, २२१	१०-११-१९६५	०५९
२४४-E	२२१, २२२	११-११-१९६५	०७७
२४४-F	२२२	१२-११-१९६५	०९८
२४४-G	२२२	१३-११-१९६५	११५
२४४-H	२२३	१४-११-१९६५	१३२
२४४-I	२२३, २२४	१५-११-१९६५	१४९
२४४-J	२२४, २२५	१६-११-१९६५	१६७
२४४-K	२२५, २२६	१७-११-१९६५	१८५
२४४-L	२२६	१८-११-१९६५	२०१
२४४-M	२२७	१९-११-१९६५	२१७
२४५	२२७, २२८	२०-११-१९६५	२३५
२४६	२२९	२१-११-१९६५	२५४
२४७	२३०	२२-११-१९६५	२७२
२४८	२३१, २३२	२३-११-१९६५	२८९
२४९	२३२, २३३	२४-११-१९६५	३०९
२५०	२३३, २३४	२५-११-१९६५	३२७
२५१	२३४, २३५	२६-११-१९६५	३४६
२५२	२३५-२३७	२७-११-१९६५	३६५
२५३	२३७-२३९	२८-११-१९६५	३८२
२५४	२३९, २४०	२९-११-१९६५	४०३
२५५	२४०, २४१	३०-११-१९६५	४२२
२५६	२४१-२४३	०१-१२-१९६५	४४२
२५७	२४३, २४४	०२-१२-१९६५	४६३
२५८	२४४-२४६	०३-१२-१९६५	४८१

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
श्री समयसार कलश पर प्रवचन)
(भाग - ७)

— १० —

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

कलश - २१९

(शालिनी)

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रवयं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्।।२७-२१९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानता है कि जीव का स्वभाव, राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है; पर द्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर, भोगसामग्री, बलात्कार जीव को राग-द्वेषरूप परिणमते हैं सो ऐसा तो नहीं; जीव की विभावपरिणामशक्ति जीव में है; इसलिए मिथ्यात्व के भ्रमरूप परिणमता हुआ, राग-द्वेषरूप जीवद्रव्य, आप परिणमता है; परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। ऐसा कहते हैं— 'किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते' [किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं] आठ कर्मरूप अथवा शरीर-मन-वचन नोकर्मरूप अथवा बाह्यभोगसामग्री इत्यादिरूप

है जितना परद्रव्य, वह [तत्त्वदृष्ट्या] द्रव्य के स्वरूप को देखते हुए, सांचीदृष्टि से [रागद्वेषोत्पादकं] अशुद्धचेतनारूप हैं जो राग-द्वेषपरिणाम, उनको उत्पन्न करने में समर्थ [न वीक्ष्यते] नहीं दिखलाई देता। कहे हुए अर्थ को गाढ़ा-दृढ़ करते हैं— 'यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्ति:स्वस्वभावेन अन्त: चकास्ति' [यस्मात्] जिस कारण से [सर्वद्रव्य] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश का [उत्पत्ति] अखण्डधारारूप परिणाम, [स्वस्वभावेन] अपने-अपने स्वरूप से है; [अन्त: चकास्ति] ऐसा ही अनुभव में निश्चित होता है और ऐसे ही वस्तु सधती है; अन्यथा विपरीत है। कैसी है परिणति? 'अत्यन्तं व्यक्ता' अति (ही) प्रगट है।।२७-२१९।।

कार्तिक शुक्ल १३, रविवार, दिनांक-०७-११-१९६५, कलश-२१९, प्रवचन-२४४-A

२७वाँ कलश है।

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रवयं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्।।२७-२१९।।

देखो! क्या कहते हैं? **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानता है कि जीव का स्वभाव राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है,...** यह आत्मा है, आत्मा। यह शरीर अन्दर जड़, कर्म जड़, उनसे चैतन्यस्वरूपी आनन्द, ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा भिन्न चीज़ है। वह चीज़ अनादि से अकृत्रिम है। है, उसे कौन करे? है, उसे कौन करे? ऐसा जो आत्मा कोई ऐसा मानता है कि उसमें जो यह विकार होता है न? भष्टकनेक भाव— राग-द्वेष और मोह, पर में सुख है इष्ट पदार्थ में प्रेम, अनिष्ट में द्वेष अथवा राग-द्वेष मोह है। यदि न हो तो वस्तुस्वभाव कुछ दु:ख और आकुलता न हो। न हो तो अतीन्द्रिय आत्मा का आनन्द है, उसका प्रगट—व्यक्त अनुभव होना चाहिए। देखो! आगे कहेंगे, विकार व्यक्त - प्रगट है। समझ में आया?

वस्तु स्वयं आत्मा सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का रूप

है, उसकी वर्तमान दशा में यदि विकार न हो तो उसे दु:ख नहीं हो, दु:ख न हो तो उसे आनन्द का अनुभव होना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आनन्द नहीं। कब आनन्द था? यह पैसा देखे, तो आनन्द और पैसा न हो तो दु:ख ऐसा (नहीं है)। मूर्ख है। बल्लभदासभाई! कहाँ आनन्द था। आनन्द तो अतीन्द्रिय आनन्द जिसे परपदार्थ की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं, ऐसा आत्मा का निरपेक्ष आनन्द, उसे आनन्द कहते हैं। समझ में आया? यह स्त्री, पुत्र, धूलधमाका बाहर है, उसमें ठीक है, वह तो दु:ख दशा है। वह तो पर की अपेक्षावाला भाव है, वह निरपेक्ष आनन्दभाव नहीं, पर की अपेक्षावाला (भाव), वह दु:खदायक और आकुलता है। अपेक्षावाला, हों! पर से उत्पन्न किया हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया?

वस्तु है चैतन्य शाश्वत् तत्त्व भगवान आत्मा, उस आत्मा के—वस्तु के स्वभाव को छोड़कर अनादि से उसमें मोह और राग-द्वेष के विकारी आकुलता के परिणाम होते हैं। न हो तो यह परवस्तु को खोजता है कि यह हो तो ठीक पड़े और यह न हो तो ठीक पड़े, ऐसी आकुलता (हो) कहाँ से? और वह आकुलता है तो कोई ऐसा माने कि उस आकुलता को उत्पन्न करनेवाला परद्रव्य है। यह उसकी खोटी मान्यता है। समझ में आया? वह आकुलता अर्थात् राग-द्वेष और मोह के भाव होते हैं, वह कोई परचीज़ कराती है, ऐसा कोई माने तो वह वस्तु अत्यन्त भ्रम और अज्ञान है। वह बात यहाँ कहना चाहते हैं। बात समझ में आती है?

वस्तु जो आत्मा है, वह तो अकृत्रिम अनादि-अनन्त स्वभावी चीज़-वस्तु है। उसकी शक्तियों का पिण्ड भी अकृत्रिम अनादि-अनन्त है। अब उसके अन्दर जो यह विकार होता है, राग-द्वेष और मोह; मोह अर्थात् मिथ्या परिणाम, मिथ्या परिणाम अर्थात् यह पर में मुझे आनन्द होता है, अनुकूल हो तो ठीक पड़े, प्रतिकूल हो तो ठीक नहीं पड़ता—ऐसा जो मिथ्यात्वसहित के राग-द्वेष का भाव, वह जीव की पर्याय का, परिणमन शक्ति का सत्त्व है, या किसी ने कराया हुआ है? कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है... देखो! पहले से ही भावार्थ डाला। उपोद्घात ही ऐसा बाँधा कि यहाँ हमारे यह कहना है कि, ऐसा। भावार्थ अर्थात् इसमें भाव यह है कि **कोई ऐसा मानता है कि (यह) जीव का स्वभाव...** स्वभाव अर्थात् पर्याय—अवस्था में **राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है,...** यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, वह विकारी अवस्था होने का पर्याय का, विभाव में (होने का) पर्याय का स्वभाव नहीं। शशीभाई!

मुमुक्षु : आवरण-फावरण नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। आवरण-फावरण उसके घर में रहा। आवरण कौन कराता था? 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया' स्वयं कौन है, इसके भान बिना हैरान की दशा इसने उत्पन्न की है। बहुत सरस है, पूरा श्लोक ही ऐसा सरस है।

जीव का स्वभाव। स्वभाव शब्द से पर्याय में—वर्तमान अवस्था का धर्म **राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है,...** उसमें राग-द्वेष, वासना, भ्रमणा, ऐसा होने की वर्तमान विभावशक्ति ही उसमें नहीं अर्थात् उसमें वह योग्यता ही नहीं, परद्रव्य उसे विकार कराता है। समझ में आया? **ज्ञानावरणादि कर्म...** देखो! आठ कर्म जो जड़-मिट्टी है, वह इसके ज्ञान की हीनता और राग-द्वेषादि भाव कराते हैं, ऐसा कोई कहता हो तो वह मूढ़ है। उसे वर्तमान विकार की अवस्था की स्वतन्त्रता की हुई अवस्था की भी उसे खबर नहीं। तो भी त्रिकाल आनन्दकन्द सच्चिदानन्द अनन्त आनन्द का कन्द, ऐसा द्रव्य, उसकी तो श्रद्धा इसे हो सकती नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। सत्य बात क्या? देखो! सुनो, लो, पढ़ो अन्दर।

ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर... यह शरीर राग-द्वेष कराता है। मूढ़ है, कहते हैं। किसके ऊपर डाला तूने यह? उसमें लिखा है या नहीं? कहते हैं कि भूल की दशा करे स्वयं और भूल को टाले स्वयं। उसमें पर के कारण भूल होती है और पर हो तो भूल टलती है, ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसी विपरीतता (घुसायी है)। विचार कब किया है वहा? ऐसे के ऐसे गहलरूप से, पागलरूप से जिन्दगी व्यतीत करता है। ये कमाना, खाना और पीना, धूल-धाणी, सेठाई। मर गया उसमें अनन्त काल से। उसमें खो गया, यह बात सच्ची है।

पूरी चिदानन्द चैतन्य वस्तु, अरूपी कन्द आत्मतत्त्व अनादि-अनन्त है, परन्तु जहाँ वस्तु है, उसकी तो नजर नहीं होती। नजर पर में डालकर राग-द्वेष और मोह स्वयं खड़े करता है और कहता है कि मुझे यह अवरोधक है, भाई! हमको कर्म अवरोधक है, बापू! कठोर कर्म है। कहते हैं, परवस्तु जो ज्ञानावरणीय, वह आत्मा को ज्ञान की हीन दशा करे। दर्शनावरणीय दर्शन की (पर्याय) हीन करे, मोहनीय मिथ्यात्व और राग-द्वेष करावे, आयुष्य इसकी स्थिति कम करावे या अमूर्तपना, नामकर्म आदि, वे कोई परकर्म आत्मा की दशा को करे, यह बात एकदम मिथ्या और झूठी है।

अब, दूसरा शरीर। यह शरीर हमको राग-द्वेष कराता है। भाई! शरीर में रोग हो। ... अन्दर द्वेष हुए बिना रहता नहीं। यह तो मिट्टी-जड़ है। जड़ को भान है कि मैं इसे (आत्मा को) द्वेष कराऊँ? स्वयं मूढ़ होकर प्रतिकूलता को मानता है, इसे प्रतिकूल माने, मानकर द्वेष स्वयं अपने में अपने कारण से खड़ा करता है। शरीर के कारण से द्वेष नहीं, शरीर के कारण से राग नहीं, इस शरीर के कारण से मिथ्या-विपरीत भाव नहीं। समझ में आया? कहो!

तीसरी बात। **भोगसामग्री...** अन्दर लिया जड़ द्रव्यकर्म, बाह्य लिया नोकर्म शरीर, यहाँ और बाहर की सब निमित्त सामग्री। भोगसामग्री। ऐसे अलमारी, पैसा, धूलधाणी, यह सब दस-दस लाख के बँगले, बीस-बीस लाख के बँगले। ऐसे... ओहोहो! यह सब भोगसामग्री, भाई! आत्मा को राग-द्वेष कराती है। समझ में आया? भोग की सामग्री...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का मन हो जाता है, लो! मुझे आम की सुगन्ध आवे यहाँ तो साधारण, वह आम आता था आम... बीस-बीस, पच्चीस मण पड़े हों तो ऐसी सुगन्ध (आवे), दस दुकान तक सौरभ आवे सौरभ। कहो, वह आम राग को उत्पन्न कराता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। उसके घर में आम पड़ा है, वह तो वहाँ है।

स्वयं प्रेम करके राग करता है। वह राग परवस्तु नहीं कराती। कहो, भोगसामग्री में पाँचों (ले लेना), हों! इज्जत के शब्द कान में पड़े। बहुत भाई! यह तो चतुर व्यक्ति। इसे हुआ राग, उन शब्दों से राग हुआ है? मुझे किसी ने ठीक से गाली दी। ठीक से अर्थात् ऊँचा हो ऐसी। वह गाली है, वह तो जड़-मिट्टी की आवाज है। उस आवाज ने इसे द्वेष कराया है? समझ में आया या नहीं?

भगवान चैतन्यप्रभु अपने को भूलकर पर में राग-द्वेष और प्रेम-मोह स्वयं करता है। पर के कारण से राग-द्वेष, मोह तीन काल में है नहीं। बड़े पण्डित अभी गोते खाते हैं। पढ़े, गुने... समझ में आया? गुने नहीं। पढ़े क्या, शब्द सीखे। यहाँ देखो! अभी तो आयेगा।

कहते हैं, **बलात्कार जीव को...** देखो! भाषा। भाई! जोर करके, (जोर) न हो तो पैर न चले तो ऐसे द्वेष ऊं...हुं... (होता है)। ऐसी रूपवान स्त्री देखे (तो) बलजोरी से राग होता है। झूठ है, हों! झूठमूठ खड़ा किया हुआ तेरा द्वेष है, राग है। परवस्तु कहीं तुझे राग कराती नहीं। आँख में रूप, शब्द। बराबर प्यास लगी हो और शीतल मौसम्बी का पानी (मिले) और मौसम्बी में वापस थोड़ा बर्फ डाला (हो)। हा..श..! वह चीज़ भोगसामग्री राग कराती है। मूलचन्दभाई! क्या होगा? एक व्यक्ति कहता था कि यह बहुत भूख लगी हो (तो खाने के बाद) शान्ति होती है, हा...श... ऐसा होता है। परन्तु तुझे भान कहाँ होता है? हाश अर्थात् क्या? शान्ति अर्थात् क्या? वह चीज़ अर्थात् क्या? तुझे कुछ खबर है? वह तो जड़ है। जड़ तो अन्दर चैतन्य को स्पर्शा भी नहीं। इस कण्ठ को जड़ स्पर्शा नहीं तो कण्ठ कहाँ आत्मा को स्पर्शता था? यह तो मिट्टी है, अन्दर अरूपी ज्ञान भगवान चैतन्य है। आहाहा! कहते हैं कि वह रस इसे राग उत्पन्न नहीं करता। और उसमें रस के अन्दर में कोई लड्डू खाता हो और यदि उसमें कंकड़ आया हो ठीक सा, चिरोंजी की शक्कर के बदले बीच में (कंकड़ आया हो) वहाँ द्वेष होता है। उसके कारण द्वेष है? भोगसामग्री से द्वेष है? समझ में आया या नहीं?

इसी प्रकार स्पर्श। सुगन्ध, दुर्गन्ध। यह सौरभ—ऐसी सुगन्ध आवे। बाग-बगीचा, ... ओहोहो! मस्तिष्क तर-तर हो जाये। मस्तिष्क तर अर्थात् क्या परन्तु? क्या चीज़

है ? यह मस्तिष्क तो मिट्टी-धूल है। इसे तो खबर भी नहीं कि इसमें तर क्या और फर क्या ? परन्तु सुगन्ध के कारण ऐसे... फूलझाड़ होते हैं न ? फूलझाड़। जोड़े से निकले, बाड़ में से निकले तो आहा! (हो जाता है)। भोगसामग्री यह गन्ध मुझे राग उपजाता है। झूठ बात है। उसमें कोई सड़ी हुई बिल्ली पड़ी हो, खाई में गन्ध मारती हुई... ऐसे... वह चीज़ द्वेष कराती है। तेरी बात खोटी है। परवस्तु राग-द्वेष करावे, ऐसी सामर्थ्य नहीं। उसमें वह शक्ति नहीं। आहाहा! तू उल्टा पड़कर करता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या (कहा) ? कहते हैं कि भाई! तू उल्टा पड़कर राग-द्वेष स्वयं करता है, ऐसा कहते हैं।

बलात्कार जीव को... क्या कहते हैं बलात्कार ? तीन बलात्कार लेना। एक तो ज्ञानावरणादि आठ कर्म का उदय। बलात्कार—बलात्कार आत्मा को राग-द्वेष, मोह करावे। मूढ़ है। शरीर में रोगादि (होते हैं)। हैं ? बलात्कार—उदय आवे, इसलिए करना ही पड़े, उसके प्रमाण में डिग्री-टू-डिग्री करना पड़े। शरीर में बुखार आवे (और थर्मामीटर) डाले तो थर्मामीटर में उसके प्रमाण में उसका माप बराबर आता है। इसी प्रकार कोई मूढ़ ऐसा कहता है कि, कर्म का जितना उदय आवे, उतने प्रमाण में विकार करना ही पड़े। वह कर्म का बलात्कार माननेवाले मूढ़ जीव अज्ञानी हैं। उन्हें विकार कैसे होता है, इसकी भी खबर नहीं। आहाहा! भीखाभाई! यह सब मूढ़ होंगे बहुत ?

कहते हैं, यह कर्म बलात्कार से (बलजोरी से) राग-द्वेश करावे। शरीर बलात्कार से राग-द्वेष करावे। शरीर सुन्दर ऐसा... ऐसा... आहाहा! नाक-बाक ऐसे... समझे न ? गरुड़ जैसे कान, कुण्डल जैसे... हिरण की आँखें जैसी आँखें, मुख ऐसा चन्द्रमा जैसा गोल चक्कर ऐसे फर्स्टक्लास। अब वह राग हुए बिना रहे ? सवेरे ऐसे दर्पण में देखे। सवेरे नहाकर देखे न ? बन्दर जैसा। देखा है ? परन्तु क्या है ? यह तो मिट्टी-धूल है, जड़ है। यह तो दाल, भात, रोटी यहाँ जमायी है और उसकी फिर राख होनेवाली है। यह तो जड़ है। अन्दर चैतन्य जाननहार भगवान उस जड़ को देखकर राग-द्वेष स्वयं अपने से करता है। वह जड़ नहीं कराता। आहाहा! कैसे होगा यह ?

भोग की सामग्री। अर्थात् स्पर्श आवे ऐसे स्पर्श। कोमल मक्खन जैसे रेशमी गद्दे, उसमें जहाँ घूमता हो, गर्मी लगी हो तो ऐसे-ऐसे घूमे। ओहो! वह राग कौन कराता है ?

रेशमी गद्दे कराते होंगे ? और उसमें यदि ठीक से काँटे डाले हों, क्या कहलाता है वह यह ? गोखरूँ। ऊपर पतला मलमल बिछाया हो उसमें डाले हों गोखरू और उसमें उसे ठीक से सुलाया हो। गोखरू के कारण अन्दर द्वेष होता है ? दु:ख होता है ? आहाहा! अरे! यह क्या कहते हैं ? क्या होग यह वह सब ? समझ में आया ? गोखरू तो जड़ चीज़ है। उसका यहाँ स्पर्श भी नहीं छूता और तू चिल्लाहट (मचाता है), इससे दु:ख होता है। किसके कारण ? परद्रव्य के कारण है ? दु:ख कहो या विकार कहो, वह परद्रव्य के कारण है ? पोपटभाई! अभी उसे दु:ख का विकार होता है, वह कहाँ होता है ? कौन कराता है, इसकी खबर नहीं होती। वह दु:ख बिना का अन्दर आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति आनन्द कौन है, उसकी तो खबर कहाँ से होगी ? ऐसा कहते हैं।

जीव को राग-द्वेषरूप परिणमाते हैं... बलात्कार कर्म राग-द्वेष को परिणमावे, बलात्कार शरीर राग-द्वेष करावे, भोगसामग्री, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श यह बलात्कार (बलजोरी से) जीव को रागरूप परिणमाते हैं, **सो ऐसा तो नहीं,...** भाई! ऐसा स्वरूप नहीं है। वस्तु में ऐसी स्थिति की शक्ति नहीं है। पर में शक्ति नहीं कि तुझे राग-द्वेष और विकार करावे।

तब, **जीव की विभाव परिणामशक्ति जीव में है,...** जीव में पर्याय में विकाररूप से परिणमना, ऐसी उसकी शक्ति उसके स्वयं में है। समझ में आया ? यह बहुत अधिक जगह आया है। ९२ पृष्ठ पर आया है, १५५, १५६, १८१ बहुत जगह आया है। कहो, समझ में आया इसमें ? ओहोहो! अभी तो यहाँ चैतन्यवस्तु जो है, शुद्ध आनन्दमूर्ति ज्ञान का सूर्य अनादि-अनन्त है, वह तो एकओर रही, परन्तु उसमें यहाँ दु:ख, राग-द्वेष और कल्पना होती है, वह विकार कौन कराता है, इतना अस्तित्व सिद्ध करते हैं। उसकी पर्याय का—अवस्था का विकार का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। प्रवीणभाई! क्या (कहा) ? निर्विकारी वस्तु तो त्रिकाल है। निर्विकारी सत् निर्दोष स्वभाव आनन्दमूर्ति त्रिकाल, वह आत्मा तो त्रिकाल है, परन्तु उसमें विकार की अस्ति का अस्तित्व किसके कारण है, इतना यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? उस विकारपने की त्रिकाल स्वभाव में शक्ति

नहीं। परन्तु पर के कारण विकार होता है, ऐसा नहीं। भाई! यहाँ पर्याय की बात करते हैं, देखो! ध्यान रखना।

भगवान आत्मा वस्तु का स्वभाव, अन्तर स्वभाव विकार करावे, ऐसा उसका कोई स्वभाव नहीं है। तथा परवस्तु विकार करावे, ऐसी परद्रव्य में शक्ति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! उसकी वर्तमान दशा में विकार होने की, परिणमने की उसकी योग्यता उसके अंश में स्वयं खड़ी करता है। ऐसी उसकी योग्यता शक्ति है। आहाहा! क्या कहा? सवेरे तो यह नहीं आया था? कि जीव—शुद्ध जीव है विकार करता नहीं, कर्म बाँधता नहीं। यह सब ऐसा आया था। वह वस्तु की बात है, वह वस्तु की बात है। चैतन्य शुद्ध चैतन्यवस्तु जो आत्मा है, पदार्थ जो है, आत्मा जो है, उसकी बात थी। यहाँ तो अन्दर वह जो विकार खड़ा होता है, उसकी बात है। उस विकार का अस्तित्व किसके कारण से है? त्रिकाल स्वभाव के कारण से है? या कर्म सामग्री, शरीर, भोग के कारण से है? अस्तित्व कैसे है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि कोई ऐसा माने कि यह विकार (करने की) हमारी शक्ति नहीं, विकार तो सब यह कराता है। यह प्रश्न आते हैं न बहुत? वस्तु तो शुद्ध है, गुण शुद्ध है, तो विकार कहाँ से आया? बस! निश्चित हो गया (कि) विकार कर्म से आया। परन्तु कर्म में विकार कराने की शक्ति नहीं, वह तो जड़ है। शरीर में शक्ति नहीं, वह तो मिट्टी-धूल है। भोगसामग्री वह मिट्टी, अजीव, बाहर के तत्त्व हैं। उसमें तुझे दोष कराने की शक्ति उनमें नहीं है। तथा वस्तु का स्वभाव दोष उत्पन्न करे, विभाव उत्पन्न करे और कर्म उत्पन्न करे, ऐसा वस्तु के स्वभाव में नहीं। आहाहा! यहाँ तो उसकी पर्याय का अस्तित्व विपरीतपना भ्रम से उत्पन्न करे, वह उसकी योग्यता से शक्ति है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : समय-समय की पर्याय शक्ति भिन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी शक्ति भिन्न स्वतन्त्र है। वह अस्तित्व है। है या नहीं परन्तु? दुःख है या नहीं? यह ठीक नहीं पड़ता, यह ठीक पड़ता है, यह ठीक नहीं पड़ता, यह ठीक पड़ता है—यह विकल्प उठते हैं या नहीं? यह वृत्तियाँ उठे, विकार है,

दु:ख है। वह राग-द्वेष के परिणाम किसने उत्पन्न किये? किस पर्याय में किसमें वह अस्तित्व है? वह विकारी अवस्था कर्म ने करायी? शरीर ने करायी? पाँच इन्द्रिय के भोग की अनुकूलता-प्रतिकूलता ने करायी? नहीं। किसने कहा तुझे ऐसा? कहाँ से लाया ऐसा? तू उठाईगीर पर्याय में विकार, राग-द्वेष तुझसे (स्वयं से) करे और डालता है पर के ऊपर! शशीभाई!

मुमुक्षु : पर्याय द्रव्य को अनुसरती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को अनुसरती नहीं, वह उसका स्वयं का दोष है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव को अनुसरती नहीं और निमित्त को अनुसरती है। निमित्त प्रमाण नहीं, परन्तु निमित्त की ओर अनुसरती है, ऐसी विभाव होने की उसमें योग्यता पर्यायधर्म में है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? यदि वह विकार करने की योग्यता न हो शक्ति तो परद्रव्य जिसमें शक्ति नहीं, वह उत्पन्न करा सकता नहीं और शक्ति जिसकी योग्यता है, तो परद्रव्य की उसमें अपेक्षा रहती नहीं। आहाहा! गजब बात!

घड़े को कुम्हार उत्पन्न नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। यह मिट्टी है, वह घट की पर्यायरूप से परिणमकर होती है। कुम्हार परद्रव्य के परिणाम को—घड़े को करे, ऐसा उसके पर्याय धर्म में नहीं है और कुम्हार का हाथ और उसकी पर्याय में सामर्थ्य नहीं कि घट की पर्याय करे। आहाहा! ऐई! क्या होगा यह? समझ में आया?

कहते हैं कि **जीव की विभावपरिणामशक्ति जीव में है,...** उसके अस्तित्व में उस पर्याय का अस्तित्व विकाररूप से परिणमने की योग्यता उसकी है। आहाहा! वह खो जाए तो कहे, भगवान ने कराया, भाई! भगवान भटकावे। हो गया, जाओ! भटको। भगवान ने हमको ऐसी बुद्धि दी, भगवान ने भटकने की बुद्धि दी! कहो, ऐसे भगवान तेरे? हमको भटकने की बुद्धि दी। मर गये भटक-भटककर। अब भगवान भटकाना बन्द करे, तब हो। तो भगवान का दोष, तेरा तो कोई दोष है नहीं। तू तो धोया हुआ मूला जैसा है।

कौन माँगता था सद्बुद्धि? सत् स्वभाव जिसमें पड़ा है, उस सत् स्वभाव की ओर बुद्धि करे तो सद्बुद्धि हो। आहाहा! समझ में आया?

जीव की विभाव परिणाम शक्ति... योग्यता अस्तित्व उसकी पर्याय में विकार होने की योग्यता है। आहाहा! तत्त्व, वह तत्त्व को करता है न सिद्ध! उसमें यदि विकार होने की योग्यता न हो तो परद्रव्य क्या करे? और योग्यता है तो परद्रव्य की अपेक्षा को तुझे क्या काम है? आहाहा! वह चिल्लाहट करते थे। निरपेक्ष विकार होता है? नहीं। वे चिल्लाहट मचाते थे। प्रश्न उठा न (संवत्) २०१३ के वर्ष में? कहाँ? सम्मेदशिखर। अरे! सम्मेदशिखर जैसे में भी भूल टालने का मिला नहीं। अरे! ऐसा करके वे दया खाते थे। भगवान! सुन तो सही, तुझे खबर नहीं होती। यदि यह इतना थोड़ा समझ जाते तो बहुत लाभ होता। समझ में आया? बड़े पढ़े-गुने और बड़े पण्डित कहलाते हैं वे।

यहाँ तो कहते हैं, कि जो वस्तुस्वरूप है, वस्तु—द्रव्य और गुण स्वभावस्वरूप त्रिकाल, वह तो अकृत्रिम अकृत चीज़ है, ऐसे जगत के पदार्थ द्रव्यादि हैं, वे तो अकृत चीज़ है। अब उसका परिणमन जो है, उसकी पर्याय है, वह किससे हुई है? कि जो द्रव्य का प्रवाह उत्पाद का चले, उससे हुई है। और तुझमें विकार है, वह किससे हुआ है? वह पर्याय की योग्यता विभावरूप होने के कारण उत्पाद हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

जीव की विभावपरिणामशक्ति... परिणमने की योग्यता जीव में है। पलटा, विकाररूप होने की योग्यता जीव में-पर्याय में है। **इसलिए मिथ्यात्व के भ्रमरूप परिणमता हुआ...** देखो! भगवान अपने आनन्द और ज्ञान को भूलकर, रागादि में अपनेपने मानकर भ्रम से, मिथ्यात्व से परिणमकर असत्यरूप परिणमकर, मिथ्यात्वरूपी भ्रमणा (रूप से) परिणमते हुए उस अवस्थारूप होता हुआ, पर्याय के अंश में विपरीत मिथ्यात्वरूप से होता हुआ, **राग-द्वेषरूप जीवद्रव्य आप परिणमता है,...** यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष, शुभाशुभभावरूप से **जीवद्रव्य आप परिणमता है,...** जीवद्रव्य विकारी पर्यायरूप से स्वयं होता है। शशीभाई! ओहोहो!

परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। अनेकान्त किया। परद्रव्य की बिल्कुल सहायता नहीं। बिल्कुल उसकी सहायता से विकार होता है, ऐसा नहीं। परद्रव्य का सहारा—आधार बिल्कुल नहीं। आहाहा! छोटाभाई! यह सब चिल्लाहट मचाते हैं। लो! तब

ईडर में कहे, सिद्ध को कर्म नहीं, इसलिए विकार नहीं होता। ईडर में... है। कर्म हो तो विकार होता है। वह था न? विकास... विकास क्या नाम? वह कहे, ऐई कर्म हो तो नहीं होता। ठीक, भाई, चलो हाँको। अरे! भाई! यह वस्तु का स्वभाव—द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चिदानन्द है, उसमें विकार होने का कोई गुण नहीं है। तथा वह परद्रव्य उसे विकार करावे, ऐसा उसका पर्यायधर्म भी पर में नहीं है। पर्यायधर्म नहीं, द्रव्य-गुण में तो नहीं परन्तु उसकी पर्याय में ऐसी योग्यता नहीं। मात्र वर्तमान तेरी पर्याय में भ्रमरूप से परिणमने की योग्यता की शक्ति तुझसे है। शशीभाई! आहाहा! अरे! यह भी बात। परन्तु ऐ... शुद्ध, वह अशुद्धरूप से कैसे परिणमे? परन्तु सुन न! शुद्ध तो उसका त्रिकाली चिद्घन स्वभाव है। परन्तु उसकी वर्तमान दशा में भूल करे, वह तो स्वयं अपनी शक्ति से करता है। उल्टा पड़ने से भ्रम करता है और सुल्टा पड़ने से भगवान होता है। बाकी उसमें कोई परद्रव्य की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! क्या करे? जगत को सत्य क्या है, यह समझने को मिलता नहीं, सुनने को मिलता नहीं। वह विचार कब करे? ऐसी की ऐसी अनन्त काल से जिन्दगी जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह कि, विकार तू करता है, इसलिए स्वभाव पर दृष्टि दे और विकार को टाल। ऐसा करना। इस पर्याय की दृष्टि में अंश के स्वीकार में, राग-द्वेष के स्वीकार में कर्म के निमित्त से हुआ विकार, तेरे नैमित्तिकभाव में, उसका तू कर्ता, उसकी शक्ति तेरी, पर्याय में ऐसा निर्णय कर कि वस्तु स्वभाव पर दृष्टि देने से उस शक्ति में पर्याय की है, उसका नाश हो जायेगा। ऐसे पर्याय में नहीं और उसके कारण से है तो वस्तु के स्वभाव पर दृष्टि देकर... वह तो करायेगा, परद्रव्य तो करायेगा अब तू ऐसे कैसे देगा? परन्तु तू स्वयं पर्याय में स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर कर्ता हो तो स्वतन्त्ररूप से होकर स्वभाव पर दृष्टि करके मिटा सकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : भूल करनेवाला स्वयं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भूल जिसने जोड़ी, वह तोड़े। यह तो दोष डालता है या तो ईश्वर का, या कर्म का, यह स्त्री, पुत्र हैरान कर डाले, मार डाला। हैरान... हैरान...

हो गये। उनका दोष क्या है ? तेरा दोष है और डालता है किसी पर ? हें ? नहीं कहते ? अधिक लड़के, अधिक थोरडा, अधिक खोरडा। क्या कुछ कहते हैं ? अधिक दोरड़ा। दोरड़ा अर्थात् देना (कर्ज)। अधिक दोरड़ा, अधिक थोरड़ा और अधिक खोरडा। अधिक मकान, अधिक पुत्र, अधिक कर्ज मार डालता है। मारता नहीं, सुन न अब! ऐसा कहाँ से लाया ? कहते हैं। हैं ? अधिक लक्ष्मी। भाई! जितनी अधिक लक्ष्मी, उतनी ममता। ऐसा तुझे किसने कहा ? लक्ष्मी के कारण ममता है ? उसने ममता करायी है ? वह तो मिट्टी-धूल है, जड़ है।

इसलिए यहाँ तो तीनों बोल लिये। कोई ऐसा कहे कि नहीं, नहीं, यह नोकर्म की बात है। कर्म, शरीर और भोगसामग्री। तेरी बात बिल्कुल खोटी है कि दूसरे कराते हैं। तेरा मिथ्यात्वभाव, यहाँ तो मिथ्यात्व से ही राग-द्वेष है और सम्यग्दर्शन से आत्मा की शान्ति है, बस! एक ही बात है। मिथ्यात्व से भ्रम है और सम्यक्त्व से भगवान है। समझ में आया ?

परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। कोई मदद नहीं, परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। परवस्तु का सहारा... सहारा... थोड़ा सहारा जरा अंगीकार करूँ। नहीं। ऐसा नहीं है। कहो, भीखाभाई! हीराभाई ऐसा बोले, भाई... भाई... भाई! (तब) अन्दर कुछ हो जाता है या नहीं ? उसके कारण राग होता होगा या नहीं ? नहीं ? परन्तु आज्ञाकारी पुत्र हो, आज्ञाकारी स्त्री हो, आज्ञाकारी भैंसे हों। भैंसे—आज्ञाकारी पशु हो। न्यालभाई! उनके कारण राग होता है या नहीं ? उनके घर में रहे वे। वे कहाँ तब हुए हैं, उन्होंने कहाँ कराया है ? लड़के अकमाऊ हो और घर में स्त्री पागल हो, अकमाऊ पुत्र और पशु आवे वे विकृतिवाले... विकृतिवाले, मकान खोजे वह जीर्ण हो, वे सब दुःखदायक हैं या नहीं ? यह तुमको खबर। वह उसके अन्दर पूछते हैं। इसके लिये तो यह बात चलती है।

भगवान! तू ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप ऐसा जाननेवाला-देखनेवाला अकेला चैतन्य सूर्य है। उसे भूलकर यह पर में मुझे ठीक-अठीक यह तूने खड़ा किया हुआ विकार तेरा है। पर का नहीं और (वह) स्वभाव द्रव्य में नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। यहाँ

तो पर्याय में इतनी योग्यता सिद्ध करनी है। उसकी तरह नहीं कि नहीं, नहीं। यह तो भ्रम है, कुछ नहीं, कुछ नहीं। नहीं, भ्रम का अस्तित्व है। समझ में आया?

परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। इतना करना पड़े, क्या करें? भाई! लड़के छोटे, स्त्री मर गयी। हाथ से रोटिया बनाना, गरीब व्यक्ति। हमको पर के कारण रुकना पड़ता है। तू तेरी दशा में विकार तू खड़ा करे और ऐसे संयोग के कारण तू माने? यह कहाँ से लाया तू? संयोग कहो या सामग्री कहो। समझ में आया? रेला आवे, तब खबर पड़े। यह सिर पर आवे तो खबर पड़े। परन्तु सिर पर अर्थात् क्या? सिर पर अर्थात् क्या? बाहर सामग्री हो, उसमें तुझे सिर पर कहाँ से आ गयी?

ऐसा कहते हैं—'किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते' 'किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं' आठ कर्मरूप अथवा शरीर, मन, वचन—नोकर्मरूप... देखो! अब स्पष्टीकरण अधिक किया। शरीर, मन, और वचन, यह नोकर्म। यह शरीर, यह वाणी उठती है, वह जड़ वाणी, और यहाँ जड़ मन है, हृदय में जड़ मन है। जैसे यह कोडो है न? ऐसा एक मन यहाँ जड़ है। आत्मा विचार करे तब जड़ मन निमित्त है। आत्मा जाने, तब यह काला-सफेद जड़ कोडा निमित्त है। ऐसा एक अन्दर मन है, यहाँ हृदय में है। सूक्ष्म जड़ मिट्टी का है। यह वाणी—ध्वनि उठे, वह जड़ है। यह शरीर जड़ है।

शरीर, मन, वचन—नोकर्मरूप अथवा बाह्य भोग-सामग्री इत्यादिरूप है... लो! बाह्य के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। अनुकूल और प्रतिकूल। समझ में आया? अरे! भाई! अभी तो तंगी में हैं। पाँच-पचास लाख की पूँजी हो और व्यापार-धन्धा और दुकान पर-पेढ़ी पर बैठा हो। ऐसे चारों ओर के ग्राहक, फुरसत न हो। मोसम्बी का... क्या कहलाता है? मौसम... मौसम का बराबर काल हो। बल्लभदासभाई! कमाने में सोने का पूर चलता हो। एक-एक दिन के दो सौ-दौ सौ, पाँच सौ-पाँच सौ, हजार-हजार रुपये, दो-दो हजार, पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार की आमदनी, बापू! इस मुश्किल समय में लोभ हुए बिना नहीं रहता। हें? कहते हैं कि हरामी है! ऐसा तूने कहाँ से निकाला? वह मुश्किली तो पर में है, तुझे कहाँ अन्दर से घुस गया है? उसने कब

तुझे राग-द्वेष कराया है? समझ में आया? फँसता है तू और कहता है कि यह मुझे फँसाता है।

आठ कर्म, शरीर, मन, वचन, को नोकर्म कहना अथवा **बाह्य भोग-सामग्री इत्यादिरूप है...** आदि जितनी सामग्री दुकान, सब स्त्री, पुत्र, कुँवारी कन्यायें घर में पाँच-पाँच, छह-छह बड़ी हुई हो और अन्दर से कलेजा खाता हो। समझ में आया? एक हो बाईस की, एक हो बीस की, एक हो अठारह की और एक हो सोलह की। भान नहीं तुझे चैन और नींद कैसे आती है? हरा डंठल... घर में यह एक-एक बाईस, बीस, सोलह बड़ी (हुई) वापस अपने घर का खाना-पीना, साँड़ जैसी हुई, क्या करते हो तुम? नींद कैसे आती है तुमको? हें? परन्तु वह सामग्री तो जड़ भाषा है। उस सामग्री के कारण यहाँ कहाँ तुझे दुःख होता है? आहाहा!

मुमुक्षु : बाप को चिन्ता न हो, परन्तु माँ को हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माँ-बाप था कब? किसका (था)? आहाहा! कहो, रतिभाई! यह सब जगत की बीती हुई है या नहीं सबको? यह मानो कि इसके कारण मुझे यह है। बापू! ऐसी पीड़ा... पीड़ा... (खाता है)। यह घर में स्त्री कहे, वह तो सुना जाता नहीं। क्या कहे? बापू! बहुत दुःख है। किसके कारण? उसके कारण होगा? मूर्खाई से खड़ा किया हुआ विकार तू सामग्री के ऊपर डालता है, उसे टालने का अवसर तुझे नहीं रहता। समझ में आया? जयन्तीभाई! यह सब व्यापार-ब्यापार में सब चलता होगा या नहीं? आहाहा!

जितना परद्रव्य... जितना परद्रव्य। अब क्या बाकी रहा? रजकणमात्र से परद्रव्य, एक आत्मा दूसरा कोई भी। '**तत्त्वदृष्टया**' देखो! क्या कहते हैं? तत्त्वदृष्टि से देखें तो **द्रव्य के स्वरूप को देखते हुए...** अर्थात् कि **सांची दृष्टि से...** देखें (तो)। ऐसा। तत्त्वदृष्टि से देखे, वस्तुदृष्टि से देखे अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो '**रागद्वेषोत्पादकं' अशुद्ध चेतनारूप है जो राग-द्वेषपरिणाम...** पुण्य-पाप के मलिन परिणाम, **उनको उत्पन्न करने में समर्थ नहीं दिखलाई देता।** कोई परवस्तु आत्मा को राग-द्वेष करावे, विकार करावे, यह तीन काल में तत्त्वदृष्टि से देखने में नहीं आता। लो, यहाँ तो यह कहते हैं। वह कहे, नहीं,

नहीं। यह कर्म दिखावे, बापू! वह निद्धत और निकाचित कर्म ऐसे अन्दर से मार डाले। आहाहा! यह उल्टा पड़ता है या नहीं? टूट बहुत करे वापस। एक निद्धत था और एक निकाचितकर्म कहलाता है न, कठोर कर्म। भाई! कठोर कर्म तो भोगना ही पड़े। तीर्थंकरों को भोगना पड़े। तीन ज्ञान लेकर माता के गर्भ में आये थे। उन्हें भी विवाह करना पड़ा। भोगावली कर्म के कारण (भोगा)। जयन्तीभाई! ऐसे गोले (गप्प) मारते हैं या नहीं? धूल में भी नहीं। किसने कहा तुझे ऐसा? भोगावली कर्म अर्थात् क्या? कौन सा कर्म ऐसा है कि तुझे भोग में राग-द्वेष करावे, ऐसा कर्म कौन सा है? समझ में आया?

मुमुक्षु : नौवां थोपा....

पूज्य गुरुदेवश्री : नौवां थोपा? आठ है, एक नौवां। यहाँ कहते हैं कि भोग का राग, द्वेष का भाव। प्रतिकूलता हो उस समय हाय..! निर्धन। निर्धन... कुछ नहीं, बापू! कहीं नजर डालने से पड़ती नहीं। यह तुमको खबर पड़े, बापू! ऐसे आये हों तब। अब तो जीवन खारा, खट्टा लगता है। अब जीना खारा लगता है। तो क्या करना है? हें? आहाहा! कहो, रतिभाई! आहाहा!

इसे समझने का रहा कि मेरी भूल करनेवाला मैं क्षण-क्षण में मेरे स्वभाव को भूलकर, चिदानन्द को भूलकर मैंने भूल की है, ऐसा करना। बस! ऐसा करनेवाला निर्णय करे तो चिदानन्दस्वभाव मेरा है, उसकी दृष्टि करे तो वह भूल टल जाये। एक ही बात है, दूसरी बात है नहीं। समझ में आया?

यह किसकी बात चलती है यह? विकार करता है तो दुःखी होता है। निर्विकारी स्वभाव की दृष्टि करे तो दुःख टल जाता है। इसके लिये तो बात चलती है। किसके लिये चलती है? यह सामग्री अनुकूल हो तो दुःख टल जाये, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसे काम के समय तुमको खबर पड़े। निवृत्ति मिले नहीं। तब उसके पास पचास-साठ लाख रुपये थे, फिर आठ-दस करोड़ हो गये। ... क्या तुमको कुछ समय मिले? समय कहाँ से मिले? ऐसा हमारा देखना हो तो समय किसी को मिले। ओहोहो! क्या अभिमान फटा है! कहा, क्या फटा है अभिमान यह? फिर

पुस्तक बराबरी की, हों! पचास-साठ लाख रुपये होंगे। परन्तु वह (संवत्) १९९२ के वर्ष की बात है। फिर उसके लड़के के पास आठ-दस करोड़ हैं। इतने लाख रुपये हों तो निवृत्ति कैसे मिले, यह खबर पड़े। कहा, क्या कहते हो यह। किसका अभिमान फटा ऐसा? सामग्री तुमको रोकती है? तुम्हारा राग, प्रेम में फँस गया है, इसलिए रुका है और कहते हो (कि) सामग्री हमको रोकती है। भीखाभाई!

तू किस दुकान में आकर बात करता है? ... इस दुकान में ऐसी बात करता है? दुकान की तुझे खबर पड़ती नहीं। हें? यह तो और दूसरे को कहा था, उस सेठ को। वे यहाँ आये थे। जन्मभूमिवाले। कुछ बोले नहीं। (वे कहे), मैं किसी धर्म को मानता नहीं। ... किस दुकान में आये हो? हम तुमको धर्म का पूछते हैं? पूछा हो और तुम बोलो तो (ठीक है)। यहाँ आकर तुम यह बोलते हो? तुमको ये क्या हो गया है? कहा। किसका उल्टा अभिमान फटा? हम तुमको पूछते हों कि कुछ धर्म करते हो? तब बोलो तो ठीक। अभी तो यहाँ आये और सीधे हम किसी धर्म को मानते नहीं। ओहोहो! क्या अभिमान है यह उल्टा? दुनिया होशियार करके मार डालेगी, यहाँ नहीं चलेगा यह, कहा। पोपटभाई! विपरीतता करके (कहे), हम धर्म मानते नहीं। तब क्या तू अधर्म मानता है? अधर्म मानता है तो यहाँ आया किसलिए? और वह भी हम पूछते नहीं और सीधे बोलता है कि हम धर्म को मानते नहीं। क्या इसका अर्थ? इतना सब (अभिमान फटा)? किस दुकान में आया? तू क्या बोलता है यह? बल्लभदासभाई!

यहाँ कहते हैं कि .... अधर्म की विपरीतता तू करता है और (कहता है) हमारे धर्म समझना नहीं। हमारे धर्म कुछ है नहीं। नहीं, नहीं, तू तेरे घर रह। तुझे कौन कहता है (कि) तू यहाँ सुनने आ। समझ में आया? ऐसे आत्मा को उलटा पावर चढ़ जाता है न! यहाँ कहते हैं कि चढ़ानेवाला तू स्वयं है। कोई संयोग-फंयोग और सामग्री बढ़ गयी, प्रतिकूलता हो गयी, इसलिए है नहीं।

द्रव्य के स्वरूप को देखते हुए... ओहोहो! यह देखो न! वस्तु की स्थिति की मर्यादा देखने पर। सच्ची दृष्टि से देखने पर भगवान आत्मा में अशुद्धचेतना पुण्य और पाप विकारभाव, उसमें मुझे मजा आता है, ऐसा दु:ख मिथ्यात्वभाव **उनको उत्पन्न करने**

में समर्थ नहीं दिखलाई देता। आचार्य भगवान कहते हैं कि विकार करने में दूसरा द्रव्य हमको दिखाई नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्थिति में ऐसे देखें तो उस दोष का करनेवाला हमको दूसरा दिखाई नहीं देता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कर्म कर्ता... आता है न? 'अप्प कत्ताय, विकत्ताय, देहाणि, सोहाणि' यहाँ तो ऐसा कहा, आत्मा राग-द्वेष का कर्ता है। समझ में आया? यह तो पर्याय की अपेक्षा सिद्ध करना है।

यहाँ तो कहते हैं, पर्याय की अपेक्षा में विकार का करना, दोष का खड़ा करना, दुःख की दशा का खड़ा करना, यह घालमेल, विकल्प का जाल खड़ा करना, वह तुझसे तूने किया है। हम तत्त्वदृष्टि से वस्तु को देखने पर, वस्तु को देखने से दूसरी चीज़ के कारण दोष होता है, ऐसा वस्तु को देखने से हम देखते नहीं। आहाहा! जैन में आकर यह कर्म के ऊपर डाले। वहाँ और जड़ भगवान हो गया। हें?

मुमुक्षु : कर्मवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मवाद का धर्म है या यह आत्मवाद है? जड़वाद का धर्म होगा यह? वीतरागस्वभाव चिदानन्द ज्ञानस्वरूप प्रभु का यह धर्म है। उस धर्म को समझे नहीं और विपरीतता करे तो भी तू तुझसे करता है। ऐसा सिद्ध करते हैं। स्वतन्त्रता है। ऐसा है, भाई! हम तत्त्व से देखें, वस्तु की स्थिति की मर्यादा से देखें तो मिथ्याभ्रम और राग-द्वेष कोई दूसरे द्रव्य से हों, ऐसा वस्तु में देखते नहीं। आहाहा! इसके लिये तो पण्डितों के साथ बड़ा विवाद है। है? आहाहा! इनके साथ विवाद। नहीं, कर्म के कारण होता है, इसके कारण होता है। लेख जहाँ-तहाँ यह आवे, तब सब अन्दर डालते हैं। समझ में आया?

(संवत्) २००६ के वर्ष में पालीताणा में ऐसा हुआ था न? तीन लोक के नाथ परम उपकारी जिनेश्वर ऐसा कहते हैं कि कर्म के कारण भटका और तुम कहते हो कि अपनी भूल के (कारण), विकार के-भावकर्म के कारण भटका है। बड़े सिरवाले, हों! खोटे। अरे! भगवान! तूने सुना नहीं। वीतरागमार्ग क्या है, आत्मस्वभाव क्या है, यह तो सुना नहीं। परन्तु उसमें पर्याय का धर्म, अस्तित्व स्वतन्त्र है, उसे सुना नहीं। आहाहा!

एक समय में अखण्डानन्द भगवान सच्चिदानन्दमूर्ति, वह कौन है? उसे तो तूने सुना नहीं परन्तु उसके एक समय के अस्तित्व की भूल कैसे होती है, उस अस्तित्व को तूने जाना नहीं। आहाहा! हैं? समझ में आया? देखो!

'**तत्त्वदृष्ट्या**' के दो अर्थ किये। '**द्रव्य के स्वरूप को देखते हुए...** अर्थात् पर्याय से और **सांची दृष्टि से...** अर्थात् सत्यार्थरूप से देखने से, '**रागद्वेषोत्पादकं**' यह विकार का भाव राग-द्वेष, पुण्य-पाप, काम, क्रोध इत्यादि उस भाव को दूसरा करावे, ऐसा हम देखते नहीं। उत्पन्न करने में समर्थ देखते नहीं। **उत्पन्न करने में समर्थ नहीं दिखलाई देता।** दूसरे में सामर्थ्य हम तो देखते नहीं। आहाहा! कर्म के कारण सामर्थ्य है या नहीं? बल्लभदासभाई! यह सब तुम्हारे कहते हैं। छपा हुआ पढ़ते नहीं। छपे हुए में क्या कहा? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करे तो द्रव्य स्वतन्त्र कहाँ रहा परन्तु? छपे हुए में ऐसा नहीं कहते। समझ में आया? कर्म के कारण हुआ, वह तो निमित्तपना बतलाया है। दोष तू करे, तब चीज कौन थी, उसका ज्ञान कराने के लिये यह बात की है। उसने कराया है, यह कहने के लिये यह बात है नहीं। समझ में आया?

अरे...! दोष की स्वतन्त्रता के अंश के अस्तित्व की भी जिसे खबर नहीं, उसे निर्दोष भगवान जो अव्यक्त तत्त्व पर्याय में पूरा आता नहीं, ऐसा अव्यक्त चिदानन्द भगवान, उसकी श्रद्धा और ज्ञान, उसे कैसे हो? समझ में आया? हम तो देखते नहीं (कि) तेरे दोष को दूसरा कोई करावे, ऐसा हम तो कहीं देखते नहीं। तू यह क्या लेकर बैठा है? समझ में आया?

कहे हुए अर्थ को गाढ़ा—दृढ़ करते हैं— भाषा देखो इसकी! कहे हुए भाव को, कहे हुए भाव को गाढ़ा—दृढ़ करते हैं। कहे हुए भाव को पक्का दृढ़ करते हैं। '**यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिः स्वस्वभावेन अन्तः चकास्ति**' देखो! यह सब शब्द। अलौकिक बात! यह शब्द हैं वे। '**यस्मात्' जिस कारण...** ऐसा अब जब निश्चित हुआ (तो) इस कारण से '**सर्वद्रव्योत्पत्तिः**' देखो! पर्याय की उत्पत्ति। सर्व द्रव्य की, विकार या अविकार की। '**स्वस्वभावेन**' अपनी योग्यता के कारण से, उसके भाव के कारण से '**अन्त**' उसकी पर्याय से '**श्चकास्ति**' अर्थात् हमको दिखता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा 'चकास्ते' अनुभव में तो ऐसा आता है।

कारण कि... 'सर्वद्रव्य' सर्व द्रव्य आये न? तो कौन सा बाकी रहा? देखो! उसमें सब आये। घड़े की पर्याय को कुम्हार करे, ऐसी उसकी उत्पत्ति (हम नहीं देखते)। क्योंकि मिट्टी का पर्याय का प्रवाह ऐसा और ऐसा चलता है, उस चलने में दूसरा करे, ऐसा हम तीन काल में नहीं देखते। आहाहा! आत्मा में जो पर्याय प्रवाह चलता है, उत्पत्ति पर्याय (होती है) उसमें परद्रव्य उसे करता है, ऐसा हम नहीं देखते। पुद्‌गल में इस शरीर की पर्याय इसके परमाणु की धारा प्रमाण, परमाणु में प्रवाहरूप से पर्याय होती है। एक के बाद एक, उस पर्याय में दूसरा द्रव्य करता है, ऐसा हम नहीं देखते। यह कर्म के कारण शरीर में रोग होता है, ऐसा हम नहीं देखते, ऐसा कहते हैं। सर्व द्रव्य आया या नहीं? हें? आहाहा! सर्व द्रव्य है न?

कोई द्रव्य उसकी अखण्ड धारा की पर्याय की उत्पत्ति... अखण्ड धारा चलती है न? द्रव्य-गुण कायम रहे। उसकी पर्याय ऐसे अखण्ड धारा, धारावाही पर्याय अखण्ड चलती है। उस पर्याय—अवस्था को दूसरा द्रव्य करे, ऐसा हमारे अनुभव में आता नहीं। यह अनुभव में है नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक-०८-११-१९६५, कलश-२१९,२२०, प्रवचन-२४४-B

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका। (इस अधिकार का) २७वाँ कलश है। क्या कहते हैं, देखो! **कहे हुए अर्थ को गाढ़ा—दृढ़ करते हैं—** ऐसा कहा कि यह आत्मा है, उसमें मोह और मिथ्यात्वभाव या राग-द्वेषभाव उत्पन्न होते हैं, उसमें परपदार्थ का कोई दोष नहीं है। क्योंकि उसकी पर्याय में परिणमन होना, वह तो स्वयं के स्वतन्त्र कारण से (होता) है। इसलिए कोई ऐसा कहे कि आत्मा में मोह का मिथ्यात्वभाव का या राग-द्वेष का विकार होता है, वह कर्म का या भोगसामग्री का... समझ में आया? या शरीर का कोई कारण है, इसलिए होता है, यह बात सत्य नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? कैसे?

'यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिः स्वस्वभावेन अन्तः चकास्ति' देखो! यह महासिद्धान्त। जिस कारण से सभी द्रव्य। देखो! अनन्त आत्मायें—निगोद से लेकर सब, सिद्ध आदि सब। यह तो एक सिद्धान्त सिद्ध करते हैं, हों! पुद्गल—एक-एक परमाणु या अनन्त परमाणु का पिण्ड—स्कन्ध। धर्मास्तिकाय—चौदह ब्रह्माण्ड में रहा हुआ एक तत्त्व। अधर्मास्तिकाय—वह भी एक रहा हुआ तत्त्व। असंख्य कालाणु और एक आकाश। यह छह वस्तुएँ हैं। उनकी **'उत्पत्तिः'** देखो! उत्पत्ति की व्याख्या। **अखण्ड धारारूप परिणाम...** प्रत्येक वस्तु की पर्याय अखण्ड धाराप्रवाह उसमें चलती जाती है। किसी परवस्तु के कारण उसका परिणाम—पर्याय हो, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है।

मुमुक्षु : तो किसमें है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ की मान्यता में है। उसने उल्टी मान्यता की है। अरे! हमको यह विकार, यह दोष कर्म है तो होता है। यह कर्म है तो उसकी विकार की पर्याय होती है, ऐसा जरा भी नहीं है। समझ में आया? कहते हैं...

मुमुक्षु : डिग्री टू डिग्री का क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डिग्री टू डिग्री का क्या हुआ? यह डिग्री उसके घर में रही। परमाणु और आत्मा अनन्त जितने हैं, उतने आत्मायें, निगोद का आत्मा, हों! यहाँ

सब लेना है न ? यहाँ तो सिद्ध भी (लेना है)। यहाँ भले राग-द्वेष की बात सिद्ध करने के लिये एक सिद्धान्त पूरा सिद्ध करते हैं। राग-द्वेष और पुण्य-पाप का भाव या भ्रमणा, पर में सुख है, राग में सुख है, पुण्य में मजा है, पाप में ठीक है—ऐसा जो मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव और इष्ट में राग तथा अनिष्ट में द्वेष, वह जीव की पर्याय धारा में चलता है। उसकी पर्याय का काल है, उसमें चलता है। यहाँ अखण्ड प्रवाह लेते हैं। अखण्ड प्रवाह का अर्थ अखण्ड धारारूप परिणाम, ऐसा। जिस वस्तु में परिणमन अर्थात् पर्याय है, अवस्था होती है, ऐसी धारावाही अवस्था चलती ही है। एक के बाद एक, एक के बाद एक धारा (चलती ही है)। विकार होता है, वह बात पहले सिद्ध की है कि पर से नहीं। अब यहाँ तो महासिद्धान्त सिद्ध करते हैं।

एक-एक परमाणु जो है, उसकी भी पर्याय अखण्ड धारा—पहली, दूसरी, तीसरी ऐसे धारावाही परिणाम चलते हैं। उनमें एक रजकण की पर्याय में खण्ड-खण्ड न पड़े, प्रवाह में क्या खण्ड पड़े ? प्रवाह... प्रवाह... प्रवाह... एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक, देखो ! एक के बाद एक का अर्थ यह हो गया कि जो होनेवाला हो, वह होता है। समझ में आया ? यह परमाणु एक-एक रजकण, ऐसे अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अखण्ड—खण्ड न पड़े, ऐसा धाराप्रवाह। गंगा की धारा पड़ती है न, जैसे एक कुँए में ? (उसमें) कहीं खण्ड पड़ता है ? हें ? वह अपने नहीं देखा था ? 'जोगफोल', ८०० फीट से ऐसी बड़ी धारा पड़ती है। हैं ? बीच में पानी का प्रवाह कहीं टूटता होगा या नहीं ? चलता जाता है। समझे न ? और उसका धारावाही यहाँ देखो तो पालेज में नदी है। वह भी ऊपर ५० फीट से लगभग गिरती है। वह तो नदी में ही वह। धारावाही पानी चलता है, धारावाही, धारावाही। यहाँ देखो !

पर्याय की उत्पत्ति की बात की है। वस्तु है, उसमें जो पर्याय—परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक धारा अखण्ड—खण्ड न पड़े कि यह पर्याय उत्पन्न हुई, पश्चात् विरह पड़ा, दूसरी अवस्था उत्पन्न होने में विरह पड़ा, विश्राम लिया, ऐसा होगा ? आहाहा ! हें ?

मुमुक्षु : उसे धारावाही नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धारावाही नहीं कहलाती। धारावाही। इन परमाणु में भी धारावाही परिणाम चलते हैं। वे आत्मा के कारण नहीं, आत्मा की इच्छा के कारण नहीं, आत्मा के ज्ञान के कारण नहीं। वह पर्याय धारावाही क्रम से... क्रम से... क्रम से जो होनेवाली है, वह धारावाही हुआ करती है। वह आत्मा के कारण हो तो उस द्रव्य का द्रव्यत्व—द्रवना... द्रवना जो उत्पन्न होना पर्याय का धारावाही रहता नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में परिणाम अर्थात् पर्याय—अवस्था का अखण्डपना—खण्ड न पड़े, धारावाही ऐसा का ऐसा प्रवाह चलता जाता है। अब अपने परिणाम के काल में ही वे परिणाम धारावाही होते हैं, उसमें पर के कारण हुआ, (ऐसा) कहा आया? आहाहा! समझ में आया? वे दृष्टान्त दे कि, हम शान्त बैठे थे। उसमें एक व्यक्ति ने आकर गाली दी। देखो! एकदम... परिणाम बदले या नहीं? परन्तु बदले, वह तो उस परिणाम की धारा में वह पर्याय होनेवाली है। (अज्ञानी) ऐसा कहे, देखो! कोई कहे कि निमित्त से नहीं होता, धारा पलटती नहीं (तो यह बात खोटी है)। सुन न अब! समझ में आया?

हम बैठे थे, हमें कहाँ क्रोध करना था? उसमें एक व्यक्ति ने आकर गाली दी न! सभी धर्म के पूंछड़े बैठे हैं और बातें करते हैं। हमको क्रोध आ गया। लो, वह क्रोध करना था? परन्तु उस परिणाम के बाद वही परिणाम, वही परिणाम धारावाही होनेवाले थे, वे हुए हैं। समझ में आया? उसके कारण यहाँ प्रवाह बदला है (ऐसा नहीं)। ऐसा कहते हैं, देखो! यह पानी चलता है। ऐसे पानी का प्रवाह चलता है। वह ऐसे कर दिया, देखो! बदला या नहीं? परन्तु क्या बदला? वह प्रवाह ऐसा ही चलने का धारावाही प्रवाह है। आहाहा! निमित्त द्वारा होता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। इसके लिये तो यह बात सिद्ध करते हैं। निमित्त उसके घर में प्रवाही परिणाम करता है। वह तो यहाँ सिद्ध करना है। निमित्त क्या करता है उसे? प्रत्येक द्रव्य अपने परिणाम से पर्यायरूप परिणमकर धारावाही होता है, उसमें करे क्या दूसरा उसमें? आहाहा! समझ में आया? यह क्या लिया?

'सर्वद्रव्य' जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश... छह नाम हैं? तो छह

द्रव्य में कौन सा बाकी रह गया? '**उत्पत्तिः**' उसकी वर्तमान दशा की उत्पत्ति, परिणाम की उत्पत्ति, अवस्था की उत्पत्ति, **अखण्ड...** अर्थात् खण्ड न पड़े, इस प्रकार से **धारारूप परिणाम...** धारारूप परिणाम किसे कहते हैं? एक के बाद एक, एक के बाद एक, उसका परिणाम है, उसरूप परिणम जाता है। समझ में आया? निमित्त भी एक पदार्थ है या नहीं? उसका परिणाम भी धारावाही परिणमता है, उसका परिणाम भी धारावाही परिणमता है। उसमें इसने क्या किया? और उसने इसे क्या किया? हाय... हाय..! परन्तु भारी गजब! उल्टी वह दृष्टि। समझ में आया?

शरीर में भी परमाणु की जो अवस्था अखण्ड—खण्ड न पड़े, इस प्रकार से, धारावाही—धाराप्रवाह, धाराप्रवाह पर्याय हुआ ही करती है, उसके कारण से; आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस दवा के कारण से यहाँ बदलता नहीं, ऐसा कहते हैं। उसमें आया या नहीं? चन्दुभाई!

अपनी पर्याय अपने से धाराप्रवाह (रूप से परिणमती है)। परिणमन बिना का द्रव्य है? पर्याय बिना का द्रव्य है? वह तो ऐसी की ऐसी पर्याय धारा चलती ही है। अनादि-अनन्त जो द्रव्य वस्तु टिकती, उसमें परिणाम की धारा चलती है। उस परिणाम को दूसरा करे किस प्रकार? परिणाम बिना का वह द्रव्य रहता है? पर्याय का धारावाही कार्य बिना द्रव्य रहता है कि जो कार्य दूसरा आवे तो हो?

मुमुक्षु : निमित्त का प्रभाव पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका प्रभाव परन्तु? प्रभाव की व्याख्या क्या? प्रभाव की व्याख्या क्या?

मुमुक्षु : भला-बुरा करे वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भले-बुरे की व्याख्या क्या? जो पदार्थ अपनी धारावाही परिणति के कारण से ऐसे प्रवाह बहा करे, बहता है, एक के बाद एक अवस्था बहती है। धारा प्रमाण बहती है। अखण्डित धारा प्रमाण धारावाही उसकी व्याख्या क्या? अखण्ड धारावाही प्रमाण धारा प्रमाण अखण्ड बहती ही है, पर्याय चलती ही है। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा या एक-एक परमाणु, वे अनन्त रजकण और अनन्त आत्मायें, निगोद का आत्मा भी ऐसा (परिणमता है)। अनन्त आत्मायें एक शरीर में निगोद में पड़े हैं, उनकी पर्याय धारावाही हुआ करती है। एक के बाद एक धारावाही, धार-धार पड़े ऐसे प्रवाह की भाँति, वैसे परिणाम बहा करते हैं। उसमें दूसरा करे क्या? यहाँ अटके तो करे न? परन्तु अटके कहाँ से? परिणाम तो अखण्ड धारा से चलते ही हैं। भीखाभाई!

यहाँ तो कहते हैं, यहाँ तो छहों द्रव्य की बात है। यहाँ तो राग-द्वेष के लिये तो यह दृष्टान्त अभी दिया। राग-द्वेष होते हैं, उसके लिये तो यह सिद्धान्त कहते हैं। यह छहों की बात का सिद्धान्त है। जैसे सिद्ध भगवान परमात्मा हुए, उनकी भी पर्याय धारावाही चलती जाती है। निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निगोद के जीव की पर्याय भी धारावाही मिथ्यात्व, राग-द्वेष, मिथ्यात्व, राग-द्वेष परिणाम क्रमसर धारावाही चलते ही जाते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार साधकजीव में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, वह भी धारावाही ऐसे-ऐसे चलती जाती है। साथ में थोड़ा राग बाकी है, वह भी धारावाही चलता जाता है।

इसलिए तो कहा न? ज्ञानधारा और कर्मधारा। समझ में आया? कर्म अर्थात् उस राग के परिणाम होते हैं, वह कर्मधारा और यहाँ जितनी ज्ञान की निर्मलता हुई (वह)। दोनों धारायें चलती जाती हैं। सिद्ध को पूर्ण धारा चलती जाती है, साधक को दो (धारायें चलती हैं), इस अज्ञानी को अकेली विकारधारा चलती जाती है। अरे... अरे..! निमित्त ने क्या किय? परन्तु निमित्त बिना क्या हुआ? निमित्त बिना हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निमित्त तो एक पदार्थ है या नहीं? निमित्त दूसरा पदार्थ है या नहीं? तो उस पदार्थ में भी अखण्ड धारावाही परिणाम होते हैं या नहीं? वे परिणाम उसके करे या दूसरे के करने जाये? समझ में आया? दुनिया को वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए तत्त्व का क्या स्वरूप है, वास्तविक व्यवस्था की उसे खबर नहीं, (इसलिए) गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़... (खड़ी करता है)। कहो, समझ में आया?

आत्मा में सम्यग्दर्शन होने में रोकनेवाला दर्शनमोह का उदय है। भगवान के पास गये थे, निमित्त तो अच्छा था, परन्तु क्यों नहीं हुआ? यदि निमित्त से होता हो तो।

तब कहे, वहाँ उसे दर्शनमोह का उदय निमित्त था। परन्तु यहाँ परिणाम की धारा स्वयं से बहती है, इसी प्रकार दर्शनमोह की धारा का उसका परिणाम बहता है। आहाहा! दर्शनमोह के वे तो रजकण, परमाणु हैं। उनकी भी समय-समय में पर्याय बहती है। उसमें इसने इसका किया और इसने उसका किया है कहाँ? आहाहा!

यह तो सिद्ध तो ऐसा करना है कि अज्ञानी को स्वभाव में नहीं और भ्रान्ति और राग-द्वेष होते हैं, इसलिए पर से होते हैं या नहीं? कि, नहीं। वह भी स्वयं से, किंचित् (भी) पर के कारण नहीं। उसके लिये पूरा सिद्धान्त सिद्ध किया है। **'सर्वद्रव्य उत्पत्तिः स्वस्वभावेन अन्तः' 'अन्तः'** इसकी पर्याय में **ऐसा ही अनुभव में निश्चित होता है और ऐसे ही वस्तु सधती है,... 'अन्तः चकास्ति'।** उसके परिणाम में अन्तर दो प्रकार से धारा बहती है, इस प्रकार से वस्तु साधी जा सकती है। वरना वस्तु साधी नहीं जा सकती। आहाहा! उसमें लिखा है न? देखो! यहाँ की कोई अध्यात्म की बात के लिये पैसे दिये। लिखा है। वे भाई... प्रकाशचन्दजी। यहाँ धर्म में फूटनीति ऐसी कहाँ से आयी? किसी को यहाँ की सत्य बात बैठे, इसलिए (कहे) यहाँ से पैसे दिये हैं। यहाँ रामजीभाई के पास लाख, करोड़ पैसे पड़े होंगे। कहो, हें? मलूकचन्दभाई पास में है तो उनके लड़के, पैसे पड़े हैं। ममता। कहो, समझ में आया? अरे... अरे..!

भगवान आत्मा, अनन्त आत्मायें, देखो! इस निगोद के जीव को भी कहते हैं, हों! कोई ऐसा कहे कि निगोद के जीव तो असंज्ञी हैं, उन्हें मन नहीं, पाँच इन्द्रियाँ नहीं, क्या करे? एक ही इन्द्रिय है। इसलिए कर्म के कारण उसके विकार की पर्यायें होती हैं।—कि नहीं। समझ में आया? वह भी जीव का पर्याय का प्रवाह अवस्था धारावाही हुआ ही करती है, अखण्ड धारा स्वयं के कारण से (होती है), दूसरे के कारण से नहीं। आहाहा! यह बात सुनी न हो, इसलिए (चिल्लाहट मचाये), ऐ... कर्म को उड़ाया। परन्तु यह कह भगवान के पास जाकर। भगवान तो कहते हैं कि इसकी पर्याय इसके कारण से चलती है। भगवान कहते हैं, हम तो ऐसा (देखते हैं)। देखो! यहाँ तो कहेंगे कि **अनुभव में निश्चित होता है...** ज्ञान ऐसा निर्णय कर सकता है। उसमें ऐसा अस्तित्व है, ऐसा ज्ञान निर्णय कर सकता है। ज्ञान में इस प्रकार से आता है, दूसरे प्रकार से आता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सभी द्रव्य—अनन्त आत्मायें निगोद से (लेकर) एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सभी आत्मायें अपनी पर्याय में; परमाणु अपनी पर्याय में; आकाश उसकी पर्याय में; धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, उसकी वर्तमान पर्याय और भूत की धारावाही... धारावाही... आयत लम्बी दौड़ती एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक परिणमन की पर्याय द्रव्य में बहती है। उसमें दूसरा करे क्या उसे? कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह पैसा साथ में है तो निवृत्ति लेकर यहाँ बैठा जाता है, यह बात सच्ची है? सुमनभाई!

बहुत से ऐसा कहते हैं, वहाँ तो सब पैसेवाले बैठते हैं। अभी कोई कहता था। निवृत्त और पैसेवाले दो वहाँ जाते हैं। कोई आया था। सच्ची बात है। प्रफुल्लभाई पर पत्र (आया था)। नहीं? प्रफुल्लभाई पर। तुम कहाँ वहाँ फँस गये? वहाँ तो निवृत्त लोग हों और कोई पैसेवाले हों तो वहाँ जाये फुरसत से। यह सब कामवाले! दुनिया तो पागल है न! पागल के गाँव कोई अलग होते हैं? कोरे पागल..! निवृत्त ही है, परद्रव्य को और तुझे कोई सम्बन्ध है ही नहीं न! तेरे द्रव्य-गुण तो कायम रहनेवाले हैं, पर्याय अखण्ड धारा से बहती है। अब तुझे क्या है? पर से निवृत्त ही है। आहाहा! समझ में आया? दुकान वहाँ बैठे बिना, गद्दी पर बैठे बिना चलती होगी? ऐई...! दुकान के रजकण है या नहीं? पैसे के रजकण है या नहीं? माल के रजकण हैं या नहीं? उसकी पर्याय प्रवाह धारावाही चलती है या नहीं? कि तुझसे वहाँ चलती होगी? वहाँ कहाँ स्वामित्व हो गया तुझे? समझ में आया?

यह जड़, मिट्टी शरीर मिट्टी के रजकण हैं। उनकी पर्याय धारावाही चलती है। उसमें आत्मा इच्छा और ज्ञान भी उसकी धारावाही पर्याय में आते हैं। इसकी धारावाही पर्याय में यह आते हैं। उसमें इससे यह और इससे यह (होता है), ऐसा है कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

'उत्पत्तिः सर्वद्रव्य उत्पत्तिः' शब्द में इन्होंने पूरा अर्थ किया। उत्पत्ति का अर्थ उत्पन्न हो, उत्पन्न हो ऐसे धारावाही। उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... द्रव्य उत्पाद बिना का नहीं। अर्थात् कोई भी पदार्थ उत्पाद अर्थात् पर्याय बिना का नहीं

है। अर्थात् पर्याय बिना का नहीं, वह पर्याय अखण्ड धारारूप से उत्पन्न होती है, ऐसा अर्थ किया। बात तो .... क्या करे? यह तो उत्पत्ति में अखण्ड धारारूप परिणाम की व्याख्या की, ऐसा। द्रव्यउत्पत्ति, द्रव्यउत्पत्ति अर्थात् कि पर्याय। धारावाही चलती है, बस! वह किस प्रकार?

अपने-अपने स्वरूप से... उस प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपनी जाति की, जाति के स्वरूप से उत्पन्न होती है। विकार या अविकार, उसके स्वरूप से उत्पन्न हुआ है। पर के स्वरूप से उत्पन्न हुआ नहीं। कहो, इसमें इनकार करते हैं कि कर्म के उदय से यहाँ हम भ्रमणा होती है, हमको भान नहीं रहता, ऐसा इनकार करते हैं। हें? भाई! हमारे बहुत अच्छा करना है, भाई! परन्तु कर्म ऐसे निकाचित बाँधे हुए हैं न! कहाँ देखे तूने कर्म?

मुमुक्षु : शास्त्र में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में लिखा है। कर्म की पर्याय कर्म में है, ऐसा यहाँ लिखा है। शास्त्र में तो यहाँ ऐसा लिखा है कि कर्म की पर्याय कर्म में बहती है, ऐसा लिखा है। उसकी पर्याय तुझमें आ जाती है और तेरी (पर्याय) उसके कारण से होती है, यह शास्त्र में कहाँ लिखा है? समझ में आया? परन्तु वहाँ लिखा है न कि ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका। ज्ञानावरणीय किसे कहना? ज्ञानावरणीय नाम है, देखो! और चार कर्म का घातिकर्म नाम है। घाति अर्थात् है, वह किसे घातता है? स्वयं को? पर को घातता है। वह तो कर्म की पर्याय का नाम ऐसा है। उन रजकणों की पर्यायों का ऐसा एक नाम है। उस नाम के कारण यहाँ आत्मा की पर्याय घाते, ऐसा किसने कहा? आहाहा! समझ में आया? चार घातिकर्म, वे नाम किसके? द्रव्य के, गुण के हैं? आत्मा की पर्याय के हैं? वह तो पुद्गल की कर्मरूप से पर्याय हुई, उसका नाम घातिकर्म है। उसकी पर्याय का नाम घातिकर्म है। यहाँ पर्याय का घात किया, ऐसा उसमें कहाँ से आया? भारी विवाद, भाई! न्यालभाई! क्या करना इसमें?

चार घातिकर्म नहीं आता? घातिकर्म। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को घाता, दर्शनावरणीय ने दर्शन को घाता। तो कहते हैं, दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय परमाणु की पर्याय है या नहीं? उस परमाणु की पर्याय उसमें समय-समय में बहती है या नहीं? और यहाँ

आत्मा साथ में है, तो उसकी पर्याय स्वयं से बहती है या नहीं? उसने घात किया, ऐसा आया कहाँ से? आहाहा! परन्तु भारी विवाद उठा। वह कहे, कर्म ईश्वर। और यह कहे, कर्म... कर्म... कर्म... नहीं तो कर्म सिद्ध नहीं होंगे। कर्म तो उसके द्रव्य, गुण और पर्याय से सिद्ध होंगे या कर्म कोई विकार करे तो सिद्ध होंगे? समझ में आया? आहाहा! वस्तु को सिद्ध करना हो तो कायम रहनेवाला शक्तिवान, उसकी शक्तियाँ और उसकी वर्तमान धारा, बस! उससे वस्तु सिद्ध होती है। पर को कुछ करे तो वस्तु सिद्ध हो, ऐसा यह कहाँ से लाया? समझ में आया? परन्तु कठिन, भाई!

परमाणु में भाषा की पर्याय आती है या भाषा की पर्याय में प्रवाह है, तत्प्रमाण चलती है, आत्मा के कारण नहीं। वह द्रव्य है या नहीं? वह अस्ति है या नहीं? सत्तावान पदार्थ है या नहीं? सत्तावान है तो पर्याय है या नहीं? पर्याय का काल अखण्ड है या नहीं? पर्याय कहीं खण्ड होती है? बस! उसकी पर्याय उसके कारण से चलती जाती है।

'स्वस्वभावेन' यह स्व अर्थात् **अपने-अपने स्वरूप से...** ऐसा। फिर विकार हो या अविकार हो, अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति (होती है)। अपने स्व-रूप से अर्थात् अपने रूप से अपने भाव से वह उत्पत्ति होती है। **ऐसा ही...** देखो! **'अन्तः'** इसका अर्थ कि **ऐसे ही वस्तु सधती है,....** ऐसा ही **'चकास्ति'** ऐसा। **ऐसा ही अनुभव में निश्चित होता है...** ज्ञान में भी इस प्रकार से सिद्ध होता है। जड़ को तो कुछ खबर नहीं, इसलिए अनुभवसिद्ध, ऐसा किया। तेरी ज्ञानपर्याय भी ऐसा निर्णय करती है कि पर्याय समय-समय में होती है। उसकी पर्याय उसमें होती है। **ऐसे ही वस्तु सधती है,....** परमाणु और आत्मा इस प्रकार से वस्तु सिद्ध होती है। **ऐसे ही वस्तु सधती है,....** (उसमें) क्या कहा? उसकी पर्याय उससे धाराप्रवाह होती है, ऐसी वह वस्तु सधती है। तेरी पर्याय तुझसे होती है, ऐसी वह वस्तु सधती है, ऐसा कहा। किसी के कारण से हो तो वस्तु सधे तो खबर पड़े, ऐसा कहा है?

अन्यथा विपरीत है। देखो! **अन्यथा विपरीत है।** प्रत्येक आत्मा और परमाणु की पर्याय पर से होती है, धारा टूटे, पर से हो और धारा टूटे, यह विपरीत है। ओहोहो!

गजब विवाद उठा। लकड़ी अपने आप चलेगी ? (ऐसा कहते हैं)। लकड़ी की पर्याय का धारा का प्रवाह नहीं ? उसके कारण से उसकी पर्याय ऊँची-नीची उसकी पर्याय से धारावाही उत्पत्ति होती है।

मुमुक्षु : हाथ लगाया है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ किसने लगाया है ? कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : कठिन पड़ता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े, परन्तु यह तो कहते हैं, आँखें तो उघाड़। **अनुभव में निश्चित होता है...** ऐसा तो कहते हैं। तेरे ज्ञान से देख कि यह वस्तु है या नहीं ? यह है या नहीं ? ले, चलो। अन्ध, फिर यह है या नहीं ? यह है तो द्रव्य-गुणरूप से तो कायम है। तो उसकी पर्याय उसमें है या नहीं ? या पर्याय बिना का है ? तो पर्याय की धारा उसमें ऐसी क्रमसर चलती जाती है। ऐसे ज्ञान में आता है। उसमें इसने पर्याय की, यह आया कहाँ से ? ओहोहो! कहो, समझ में आया इसमें ?

अन्यथा विपरीत है। अर्थात् ? इस कर्म की पर्याय से आत्मा में विकार होता है, यह विपरीत है। यह कर्म का अभाव हो तो यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय होती है, यह विपरीत है। आत्मा ने इच्छा की, इसलिए यह हाथ ऊँचा हुआ, वह पर्याय उसमें इस काल में हुई, वह विपरीत है। ऐई! क्या हुआ यह ? सच्ची बात होगी यह ? लौकिक में आता है तुझे ? वहाँ क्या गप्प में आवे ? हें ? कहो, सेठ! समझ में आता है यह ? आहाहा!

है या नहीं ? वस्तु है या नहीं ? ऐसा कहते हैं। है, है तो वह परिणमनवाली है ? परिणमनवाली है, बदलनेवाली है ? या बदले बिना की है ? तो बदलना होता है, वह उसकी धारा से हुआ करता है। है, वह पलटती है। है वह बदलकर धारावाही प्रवाहित होती है। अब उसमें तुझे करना है क्या, उसमें यहाँ का वहाँ ? वह **अन्यथा विपरीत है।** आदमी रेल में चलता हो, डिब्बे में, ऐसे रेल चलती जाती है। उसमें से धक्का मारे, इसलिए डिब्बे में पीछे मुड़े तो पर्याय बदल गयी या नहीं। हें ? अरे! परन्तु तू क्या कहता है यह ? हें ? उसकी पर्याय के काल की धारा चलती है या नहीं ? आड़ी हुई या यह हुई,

ऐसे हुई और ऐसे हुई, यह कहाँ से आया ? कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! गजब बात, भाई!

इसे यह निर्णय हो तो इसकी पर्याय का कार्य द्रव्य करे। तो द्रव्य क्या है ? ज्ञायक चिदानन्दमूर्ति हूँ, ऐसी दृष्टि करने का अधिकार भी तेरा है। उसमें वहाँ किसी का काम नहीं है, ऐसा कहना है। वह निर्मल पर्याय करने में भी धारावाही का कार्य तो तेरा है। विकारी पर्याय करने का भी परिणमन तेरा है। समझ में आया इसमें ?

हाँ, हाँ। वह पर्याय प्रगट हुई। पर्याय प्रगटी, धारावाही प्रगटी। उसमें क्या कहा ? पर्याय अपनी वर्तमान में अज्ञानभाव से (थी), उसका अभाव किया था। वह पर्याय दूसरी थी, यह पर्याय दूसरी हुई, इसके प्रवाह प्रमाण। पर से उत्पन्न हुई, ऐसा वहाँ नहीं कहा। ऐसा कि वहाँ इन सबकी पर्याय यह चार गति के दुःख, विभाव, इन्द्रिय और मन, कर्म से उत्पन्न हुए। अर्थात् क्या परन्तु ? कि द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव से उत्पन्न हुए नहीं। और पर्याय के खण्ड में मिथ्या राग और द्वेष की धारा से उत्पन्न हुए। उससे हुए अर्थात् कर्म हुआ, उससे हुआ अर्थात् हुआ तो वह तुझसे। यहाँ वस्तु-द्रव्य को सिद्ध करना है और यहाँ कर्म सिद्ध (करना है), इसलिए इससे हुए, तेरे द्रव्य से नहीं। पर्याय से हुए भाव तुझसे नहीं, ऐसा बताकर कर्म से हुए, ऐसा कहा है, बाकी हुई तो है वह पर्याय तुझसे। आहाहा!

अशुद्धनिश्चय से तेरे परिणाम खण्ड-खण्ड तूने खड़े किये हैं। वह आत्मद्रव्य ने नहीं, वस्तु का स्वभाव नहीं, ऐसा वहाँ बताना है। समझ में आया ? आहाहा! पर्यायस्वभाव। अशुद्धि, उस प्रकार का स्वरूप ही कहाँ है ? इस अपेक्षा से वहाँ बताना है। यहाँ तो उसकी धारा जो चलती है, वह स्वयं से चलती है, बस! वह पर से नहीं है, पर की धारा तुझसे नहीं है। समझ में आया ?

कैसी है परिणति ? देखो! '**अत्यन्तं व्यक्ता**' वह पर्यायधारा प्रगट है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहा ? आत्मा में जो क्रमसर पर्याय चले, परमाणु में पर्याय क्रमसर (चले), वह अत्यन्त प्रगट है। वह कहीं द्रव्य और गुणरूप नहीं है। '**अत्यन्तं व्यक्ता**' **अति ही प्रगट है।** वस्तु की पर्याय राग-द्वेषरूप होना, मिथ्यात्वरूप होना, सम्यक्रूप

होना, वह अत्यन्त धारावाही में अत्यन्त प्रगट ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह २७ श्लोक (पूरा) हुआ।

यह अन्तिम शब्द बहुत सरस है। समझ में आया? '**सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्**' इतने का अर्थ हुआ, लो! दो पद। समझ में आया? '**यस्मात्**' यहाँ से लिया था। '**यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिः स्वस्वभावेन अन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन**' लो! समझ में आया? आहाहा! वहाँ बाँधे बिना के यह पुस्तकें होती होंगी? बाईंडिंग, क्या कहलाता है यह? बाईंडिंग और यह सब होते होंगे?

मुमुक्षु : वह स्कन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्कन्ध द्रव्य है नहीं? वह द्रव्य है सत्तावाला है या अभाव है? अभाव हो, वह द्रव्य ही नहीं कहलाता। तो है, उसकी धारावाही पर्याय है या नहीं? बस! उसके धारावाही पर्याय से यह हुआ है। साथवाला जीव कहता है कि मैंने किया है, तो वह मूर्खता के भाव को सेवन करता है। वह भी उसकी पर्याय में आया है। समझ में आया? ऐई! क्या करना इसमें? किसने यह सब पुस्तकें की हैं? नोवेल-फोवेल। आहाहा! ये परमाणु द्रव्य है या नहीं? उसके कारण से प्रवाह, उसकी पर्याय चलती जाती है। आहाहा! यह वह किस जगत की बात! '**अत्यन्तं व्यक्ता**' है न? प्रगट ही है न! अत्यन्त अर्थात् अतिशय प्रगट ही है न! इसकी पर्याय धारावाही उससे है, वह तो प्रगट ही है न! आहाहा!

कलश - २२०

(मालिनी)

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः।।२८-२२०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार कि जीवद्रव्य, संसार अवस्था में राग-द्वेष-मोह अशुद्धचेतनारूप परिणमता है, सो वस्तु के स्वरूप का विचार करनेपर, जीव का दोष है; पुद्‌गलद्रव्य का दोष कुछ नहीं है, कारण कि जीवद्रव्य, अपने विभावमिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, अपने अज्ञानपना को लिए हुए, राग-द्वेष-मोहरूप आप परिणमता है; जो कभी शुद्धपरिणतिरूप होकर, शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणवे, राग-द्वेष-मोहरूप न परिणवे, तो पुद्‌गलद्रव्य का क्या चारा (इलाज/वश) है। वही कहते हैं—'इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् अपि परेषां दूषणं नास्ति' [इह] अशुद्ध अवस्था में [यत्] जो कुछ [रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति] रागादि अशुद्धपरिणति होती है, [तत्र] उस अशुद्धपरिणति के होने में [कतरत् अपि] अति ही थोड़ा भी, [परेषां दूषणं नास्ति] जितना ज्ञानावरणादि कर्म का उदय अथवा शरीर-मन-वचन अथवा पंचेन्द्रिय भोगसामग्री, इत्यादि बहुत सामग्री है, उसमें किसी का दूषण तो नहीं है। तो क्या है? 'अयं स्वयं अपराधी तत्र अबोधः सर्पति' [अयं] संसारी जीव, [स्वयं अपराधी] आप मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, शुद्धस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है। कर्म के उदय से हुआ है अशुद्धभाव, उसको आपरूप जानता है; [तत्र] इस प्रकार अज्ञान का अधिकार होनेपर, [अबोधः सर्पति] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव, आप मिथ्यादृष्टि होता हुआ, परद्रव्य को आप जानकर अनुभवे, वहाँ राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति का होना कौन रोके? इसलिए पुद्‌गलकर्म का कौन दोष? [विदितं भवतु] ऐसा ही विदित होओ कि रागादि अशुद्धपरिणतिरूप, जीव परिणमता है, सो जीव का दोष है; पुद्‌गलद्रव्य का दोष नहीं। अब अगला विचार कुछ है कि नहीं? उत्तर इस प्रकार है—अगला विचार यह है कि 'अबोधः अस्तं यातु' मोह-

राग-द्वेषरूप है जो अशुद्धपरिणति, उसका विनाश होओ। इसका विनाश होने से, 'बोधः अस्मि' मैं शुद्धचिद्रूप अविनश्वर अनादिनिधन जैसा हूँ, वैसा विद्यमान ही हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य, शुद्धस्वरूप है। उसमें, मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध-परिणति होती है। उस अशुद्धपरिणति के मेटने का उपाय यह कि सहज ही द्रव्य, शुद्धत्वरूप परिणवे तो अशुद्धपरिणति मिटे; और तो कोई करतूति-उपाय नहीं है। उस अशुद्धपरिणति के मिटनेपर, जीवद्रव्य जैसा है, वैसा है; कुछ घट-बढ़ तो नहीं।।२८-२२०।।

कलश - २२० पर प्रवचन

अब २८ (कलश)

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः।।२८-२२०।।

भावार्थ... कहने से पहले सीधा भावार्थ। ऐसा कि अब यह कहना है कि ऐसा। भाव-अर्थ अर्थात् इसमें भाव, भाव भरा हुआ ऐसा कहना है। **इस प्रकार है कि जीवद्रव्य संसार अवस्था में...** अब यहाँ यह लेना है। संसारदशा में निगोद से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक जहाँ-जहाँ जो पर्याय मलिन हो उतनी। जहाँ-जहाँ राग-द्वेष, मोह हो वहाँ। राग-द्वेष मोह। कम्पन मलिन हो वहाँ कम्पन। समझ में आया? यहाँ तो वास्तव में तो राग-द्वेष की उत्पत्ति मिथ्यात्व में से होती है, ऐसा यहाँ बताना है। फिर होता है, वह तो उसका ज्ञाता है।

संसार अवस्था में राग-द्वेष-मोह... यह प्रीति-अप्रीति का राग-द्वेष और मोह अर्थात् पर में एकत्वबुद्धि। समझ में आया? मेरा आनन्द राग में है, पुण्य के भाव में है, पुण्य की सामग्री में है—ऐसा मिथ्यात्वभाव और उस पदार्थ के लक्ष्य से प्रीति-अप्रीति का भाव। वह **अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है...** समझ में आया? कौन? जीव। जीवद्रव्य—जीववस्तु जीव नाम का पदार्थ संसारदशा में, संसाररूपी अवस्था में स्वरूप

में से हटी हुई ऐसी अवस्था में **राग-द्वेष-मोह अशुद्ध चेतनारूप...** भाषा देखो! वे चेतना के अशुद्ध परिणाम हैं। **अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है...** राग-द्वेष-मोहरूप से अशुद्ध चेतना—मलिनभाव—मैलभाव। ओहो! ऐसी सीधी-सादी बात में बड़ा विवाद करे। बड़ा विवाद। वापस और कहे, राग से धर्म होता है। यह और बड़ा विवाद। इसमें इन तीनों का हल है। निमित्त से यहाँ होता है, व्यवहार से यहाँ होता है, कर्म बदल जाये, सब बात खोटी है। समझ में आया? संसारदशा में अशुद्धरूप से परिणमता है। **सो वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर...** पदार्थ की हालत और स्वभाव के स्वरूप का विचार करने से **जीव का दोष है...** जीव का दोष है। समझ में आया?

अरे! किसी ने अवसर में मुझे कहा नहीं, हों! मुझे निमित्त हो नहीं कोई। है न...! पर के ऊपर सब डालता है न? कोई सलाहकार मिला नहीं। टांगा-बांगा रह गया न? मुझे कोई सलाहकार मिला नहीं। ... तब। ऐई! एक हमारे है। वह कहे, पैसा है, पति-पत्नी दो ही है। अरे रे! अवसर में मुझे कोई सलाहकार मिला नहीं, हों! परन्तु तुमको सलाह तो कहते थे। परन्तु यह अब व्यर्थ का हैरान होकर मर जाता है, व्यर्थ का किसी के लिये राग द्वेष और मोह (करते हो)। अरे! हमको सलाहकार मिले नहीं। अब तुम छोड़ दो। कौन कहता था गधे जैसे को। उठा न गधे जैसा भार, कौन तुझे इनकार करता है? पोपटभाई! लड़का कहे। अरे! अवसर में लड़के ने कहा नहीं। अरे! बापू! अब छोड़ दो, छोड़ दो। लड़के ने कहा नहीं, भागीदार ने कहा नहीं। उसने कहा नहीं। अब बापू! तुम्हारे पचास-पचास वर्ष हो गये, साठ-साठ हो गये। अब रहने दो। बहुत किया।

मुमुक्षु : बापू तो कहे न मेरे अनुभव का लाभ दूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ दूँ, ऐसा कहे। उसके अनुभव का लाभ दे। वापस भटकने का।

मुमुक्षु : .... पिता को सुहाता न हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी ही बात है। उसे किये बिना चैन नहीं आता। यह कुछ बजायेगा तो? धन्धा नहीं आयेगा तो? अमुक नहीं आयेगा तो? ऐ... तू ऐसा करना, हों! ऐ... तू ऐसा करना, हों! आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मुफ्त की अडी है ? वहाँ उसे कहाँ भान था ? ऐसा करना, हों ! यह ऐसा करना, हों ! माँ ऐसा करना। बहुत प्रेम से बुलावे तो माँ कहे। नहीं तो ऐई... ! ऐसा कहे। क्या है परन्तु तुझे ? तेरे परिणाम तेरे और उसके परिणाम उसके। उसके कारण तुझमें कहाँ ? और तेरे कारण उसमें कहाँ ? गजब परन्तु अन्दर लेकर बैठी है न ! आत्मा की शक्ति, उल्टी पर्याय। आहाहा !

वह **जीव का दोष है...** समझ में आया ? वह **पुद्गलद्रव्य का दोष कुछ नहीं है,...** वह कर्म का जरा भी दोष नहीं है। ऐसी बात ! निमित्त कहना, उसका अर्थ कि दूसरी चीज़ कौन है, उसका ज्ञान करने के लिये है। हें ? एक दूसरी चीज़ है। उपस्थित, उपस्थित है। और वे कहे, हाजिर है। हाजिर अर्थात् है एक दूसरी चीज़। हाजिर का अर्थ क्या ? एक दूसरी चीज़ है, वह तो ज्ञान करने के लिये है, परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं है। जरा भी पुद्गल का दोष नहीं, कर्म का जरा भी दोष नहीं।

कारण कि जीवद्रव्य अपने विभाव-मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ... यहाँ तो यह स्पष्टीकरण इसलिए लिया है। जीव-आत्मा स्वयं अपनी पर्याय में विकाररूप, मिथ्यात्वरूप, भ्रमरूप (परिणमता है)। यह मैं करूँ, यह करूँ तो ठीक हो, यह करूँ तो ठिकाने चढ़े, ऐसा न करूँ तो न हो, ऐसी मिथ्यात्व की, अज्ञानी परिणति स्वयं से खड़ी करता है। समझ में आया ? **मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ... अपने विभाव-मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ...** ऐसा। यह यहाँ लेना है। विकारी मिथ्याश्रद्धारूप पर्याय में परिणमता हुआ **अपने अज्ञानपना को लिये हुए...** अपने स्वरूप के अभान में। स्वरूप शुद्ध चिदानन्द भगवान ज्ञानानन्द के अज्ञानपने के कारण। समझ में आया ? **अज्ञानपना को लिये हुए अज्ञानपने के कारण से, राग-द्वेष-मोहरूप आप परिणमता है...** स्वयं अपने अज्ञान के कारण से। **विभाव-मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ अपने अज्ञानपना को लिये हुए राग-द्वेष-मोहरूप आप परिणमता है...** क्यों ? क्यों कहते हैं यहाँ। क्यों ?

जो कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर... परिणमे तो कौन उसे रोकता है ? ऐसा कहते हैं। पुद्गल का दोष नहीं, ऐसा बताना किसलिए है ? परन्तु तू स्वयं ही

मिथ्याभ्रान्तिरूप से यह राग और यह और... परवस्तु को देखकर राग, द्वेष, मिथ्याभ्रम उसरूप तू ही जीव मिथ्या विभावरूप परिणाम अज्ञानपने के कारण से होते हैं। क्यों? कि स्वयं **कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर...** देखो! तू स्वभाव पर दृष्टि करके शुद्ध परिणतिरूप परिणमे तो तुझे कौन रोकता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। विकार में भी तुझे कोई कराता नहीं और शुद्ध परिणति करने में तुझे रोकता कौन है? आहाहा! समझ में आया?

जो कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर... परिणति अर्थात् शुद्ध स्वभाव का परिणमन। मैं निर्मल ज्ञानानन्द हूँ, ऐसा परिणमन करने में परिणति करने में तुझे कौन रोकता है? अशुद्ध परिणति तू करता है और शुद्ध परिणति करे तो तू कर सकता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या न्याय नहीं मिला? तेरा दोष है, यह न्याय मिला इसे। आहाहा! भाई! तू ही राग और द्वेष और भ्रमणारूप से हो और कभी तू गुलांट खा। वह परिणमन तू कर, उसे रोकता कौन है? दोष तू करता था, ऐसी परिणति तू कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? अरे! मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मेरी चीज़ तो निर्मलानन्द सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप है। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन कर, वह भी तेरा कर्तव्य है, इसलिए दोष भी तेरा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? तुझे कौन रोकता है। कर्म रोकता है। किसने कहा तुझे? दोष में कर्म नहीं तो शुद्ध परिणति में कर्म का अभाव हो, (तो शुद्धपरिणति हो ऐसा) कौन तुझे कहता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

एक व्यक्ति कहता था, हम मर गये और मेरी नहीं, हों! आठ-आठ, दस-दस पुत्रियाँ, उनका विवाह किया। हम मर गये हैं। ठीक! सात-सात पुत्रियाँ, एक पुत्र साधारण छोटा, अभी तो दो वर्ष का है। सात-सात लड़कियाँ। लोहे जैसी, एक बाईस और एक बीस और अठारह और सोलह, करना क्या इसमें? चार बड़ी हैं और तीन अभी छोटी है। हम मर गये हैं, भाई! ए... मलूकचन्दभाई! यह सब शब्द हमारे कान में आये हुए हैं न! हमारे काम में जरा सस्ता-महँगा सब करना नहीं, हों! हम मर गये हैं।

ले... गजब भाई! हें? यह तो कहे, हमारे सिर पर बाल जितना कर्ज है, भाई! ले! बाल... क्या कहते हैं? सिर के बाल जितना... क्या कहते हैं? इतना कर्ज है। ....परन्तु कठिन भाई! सिर के बाल जितना कर्ज। दस-दस लड़कियाँ इसलिए...! हमारे हिम्मत को नौ थीं, कितनी थीं? नौ। हिम्मतभाई की सालियाँ। परन्तु क्या है परन्तु? वह तो परद्रव्य है, उसकी पर्याय है। (तुझमें) घुस कहाँ गयी है? कहाँ से मानी मुझे सात और मुझे दस? हें! जमुभाई! तुमको भी सात और तीन = दस हैं न? आहाहा! लगा भी कहाँ का कहाँ!

कहते हैं कि यह दोष तू करता क्यों है? कि दोष बदलकर स्वभाव में दृष्टि कर तो तेरी परिणति को रोकता कौन है? मैं दोष करता हूँ और मैंने दोष टाले। कहो, बराबर है? हैं? एकपक्षी ही बात बात है इसमें। एक ही आत्मा का न्याय उतारा। थोड़ा-बहुत न्याय तो दूसरे को दो। यह न्यालभाई बैठे साथ में, न्याय तो एक जगह उतरता है या कहाँ उतरे?

कैसे? तेरा पूरा दोष। यह लोग ऐसा कहते हैं, इसके बिना (दोष नहीं होता)। तेरा दोष और तेरा भी दोष, ऐसा यहाँ नहीं है। दो के बिना ताली नहीं बजती। दो के बिना दोष नहीं होता—झगड़ा। यह खोटी बात है। हैं? बापू! तेरा विकार का क्लेश तूने खड़ा किया है। आहाहा! अरे! भगवान चिदानन्द सत्ता स्वभाव को सुने, समझे बिना, सम्हाले बिना वह नहीं सम्हाला भी तूने, और सम्हाले तो भी तू। दोनों में तू स्वतन्त्र है, भाई! आहाहा! ओहोहो!

रोके स्वयं अज्ञान। कौन रोके? धूल। यह तो कहा वह। तू करता है, वह रोकता है। रोके कौन? अरे! पहले तो दो बोल लिये। **विभाव मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ...** ऐसा। उल्टी श्रद्धारूप होता हुआ **अपने अज्ञानपना को लिये हुए राग-द्वेष-मोहरूप आप परिणमता है...** श्रद्धा उल्टी और भान नहीं होता। राग-द्वेष हुए। तीनों दोष इकट्ठे हो गये। मिथ्यात्वरूप परिणमता, अज्ञानपने के कारण से मोह और राग-द्वेष परिणमता है। भाई! तीनों ले लिये। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। तीनों इसमें समाहित कर दिये। आहाहा! समझ में आया? 'वह दिव्य अन्त:तत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त

हो।' बापू! जंजीर में तू कैद में बँधा है। विकार के भाव से (बँधा है)। छोड़! तू छोड़ सकता है। तेरी सामर्थ्य है। चैतन्यद्रव्य में नजर कर, भगवान पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु है। तेरी परिणति बदल जाये, कहो, समझ में आया?

जो कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणवे,... यदि तू ऐसा कर, ऐसा। **शुद्ध परिणतिरूप होकर...** ज्ञानानन्द चैतन्यद्रव्य। अनाकुल आनन्द, अनाकुल आनन्द, शान्त, वह मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा, ऐसा ज्ञान, ऐसी ही परिणति अवस्था। **शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणवे,...** लो! शुद्ध परिणतिरूप होकर, ऐसा। शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप परिणमे। समझ में आया? शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा के अनुभवरूप उस शुद्धस्वरूप के सत्काररूप, शुद्धस्वरूप के अन्तर आदररूप परिणमे तो राग-द्वेष-मोहरूप न परिणमे, तो राग-द्वेष-मोह हो नहीं। ऐसा हो तो यह हो नहीं। इसलिए **पुद्‌गलद्रव्य का क्या चारा (इलाज) है।** इसलिए कर्म का उसमें इलाज क्या है? कहो, उसमें कर्म का इलाज क्या करना है तुझे? भाई! कर्म कुछ मन्द पड़े तो मुझे शुभभाव हो। शुभभाव हो तो शुद्ध करने का अवसर आवे। ऐसा है कहाँ? ऐसा यहाँ कहते हैं। शास्त्र में तो ऐसा कथन आता है, हों! ... सुन न! तेरा पुरुषार्थ तेरा है। गुलांट खा तो तू और उलटा पड़े तो भी तू। ओहोहो! कितने ही तो कहते हैं, डालने से नजर पड़ती नहीं, भाई! समझ में आया? संसार दुःखरूप और संसार को टालना, वह कहीं अवकाश दिखता नहीं। ले! टालने का भाव हो और अवकाश दिखता नहीं, इसका अर्थ क्या हुआ? समझ में आया?

पुद्‌गलद्रव्य का क्या चारा (इलाज) है। पुद्‌गलद्रव्य का तुझमें इलाज-उपाय क्या? उसके कारण से कुछ है नहीं। **'इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् अपि परेषां दूषणं नास्ति'** देखो! **'कतरत्'** शब्द पड़ा है। थोड़ा रखो, थोड़ा। कहे। कर्म के प्रतिशत रखो ४९ और आत्मा के पुरुषार्थ के ५१। अथवा ५० प्रतिशत स्वयं पुरुषार्थ की विपरीतता से करे और ५० प्रतिशत निमित्त के कारण होता है, ऐसा रखो, दो भाग करो। हें? कहो, समझ में आया इसमें?

यह हमारे बहुत वर्ष पहले बहुत विवाद उठते थे। कितने? १८ और ४० वर्ष

पहले। थोड़ा रखो, थोड़ा। (संवत्) १९७६ के वर्ष, १९७१ के वर्ष से। २९ और २२=५१ वर्ष हुए। अर्ध सैकड़ा। ऐसा नहीं, ऐसा रहने दो। एकान्त रहने दो, कुछ न्याय दो, तुम कहते हो ऐसा। तुम्हारे ही कहते थे। बहुत करो तो तुम ऐसा करो, तुमको आत्मा का बहुत जोर हो तो ५१ प्रतिशत पुरुषार्थ के, ४९ प्रतिशत कर्म के —ऐसे दोनों रखो। परन्तु कर्म ही कुछ नहीं कराता? शास्त्र में आता है कि द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म। लो, यह प्रश्न बड़ा चला था। '...' धीरुभाई है न? धीरुभाई कैसे? तुरखीया। वे बीस लड़के लेकर १९८३ में आये थे। यह तो १९७६ के वर्ष में... भाईयों! कैसे है? द्रव्यकर्म के कारण भावकर्म न? तो कहे, हाँ। भावकर्म के कारण द्रव्यकर्म न? तो कहे। ऐ... क्या हाँ करते हो? यह उल्टा पढ़ाते हैं, कहा। हें?

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है अवश्य परन्तु क्या आता है? यह तो कहते हैं कि तू दोष कर तो द्रव्यकर्म वहाँ निमित्त है। समझ में आया? और तू दोष कर तो नये कर्म का परिणमन वहाँ उसके कारण से होता है। ऐसा सिद्ध करते हैं। यहाँ यह होता है और यहाँ से यह होता है, ऐसा कहाँ कहते हैं? आहाहा! समझ में आया? उसमें भी आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म। यह तो कहते हैं कि तेरा सम्बन्ध निमित्त पर गया है, इसलिए तुझे दोष तुझसे हुआ है। उस दोष में निमित्त वह पूर्व का कर्म हुआ। और वह दोष नये कर्म को निमित्त हुआ, बस! इस प्रकार द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म कहा। समझ में आया? जड़कर्म का उदय, तू दोष की पर्याय में जुड़ा तो उसे निमित्त कहा। द्रव्यकर्म से भावकर्म, ऐसा कहने में आया। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहा। और भावकर्म विकार तूने किया तो कर्म की नये रजकणों की पर्याय हुई। उसे यह निमित्त पड़ा। इसलिए द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म, इस प्रकार से कहा है। यह है, इसलिए यह है और यह है, इसलिए नया होता है—ऐसा कहाँ है? कहो! भीखाभाई! तुम वहाँ क्या सीखे थे?

यहाँ भी चलता नहीं था? (संवत्) २००१ के वर्ष में जीवणधर (पण्डित) आये नहीं? तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दे सके नहीं। अभी लिखते हैं। जीवणधर है न वे तो! यहाँ

कहे, नहीं। ५० प्रतिशत उपादान के और ५० प्रतिशत निमित्त के। लो! यहाँ कहते हैं, १०० प्रतिशत आत्मा में आत्मा के परिणाम के और १०० प्रतिशत निमित्त में निमित्त के परिणाम में। आहाहा! अरे! ए... धर्मास्तिकाय के अभाव में सिद्ध नीचे नहीं आये, लाओ जवाब। आहाहा! अरे...! भगवान! क्या करना है तुझे? सिद्ध के परिणाम की पर्याय निमित्त के कारण अटकी है? धर्मास्तिकाय नहीं है इसलिए? उनके परिणाम धारावाही चले, उन्हें रोके कौन? यहाँ तो बात ऐसी है। आहाहा! परन्तु भारी गजब हुआ है न! समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटे आश्वासन? झूठे। मर गया, आश्वासन दो। जीवित है तो जीविता ही रखो। समझ में आया? यह तो समझ जाये वह कि जीवता नहीं। रामजीभाई का एक लड़का मर गया था न? ... डॉक्टर आये। पानी में खींच गया था। दस कोस में निकला। हीरालाल। रामजीभाई आये तो वे कहे, गोपालजीभाई और सब सामने गये। खोज करते हैं। वे समझ गये कि नहीं आये। ऐसा कि वह बह गया है उसे खोजते हैं। खोजते हैं। बत्ती निकाले, बत्ती। मुर्दा खोजने को। मुर्दा निकला। गढडा, देह छूट गया निकला '...' वहाँ ... अरे! किसका आश्वासन? समझ गये कि यह यों ही बोलते हैं। समझ में आया? इसमें कुछ नहीं होता। किसका आश्वासन? खोटा। यहाँ कहते हैं, तू तेरे दोष का करनेवाला '**कतरत् अपि**' कोई परद्रव्य जरा भी करे, यह बात तीन काल में होती नहीं। इसका विस्तार करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १५, मंगलवार, दिनांक-०९-११-१९६५, कलश-२२०, प्रवचन-२४४-C

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलश २८वाँ चलता है। देखो! क्या चलता है? बहुत बात इन गाथाओं में आ गयी। क्योंकि अनादि से यह दोष करता है स्वयं और दोष डालता है पर में। ऐसी इसे अनादि की आदत है। कर्म की बात शास्त्र में आती है (कि) ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका, दर्शनावरणीय ने दर्शन को रोका, मोहनीय ने आत्मा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष कराया—ऐसा जहाँ आवे वहाँ मान ले कि यह बात बराबर है। इससे करणसिद्धान्त में ऐसे कथन बहुत आते हैं। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उसने इसे रोका और कर्म ने इसे दोष उत्पन्न कराया ऐसा नहीं है। इसलिए इस बात को आचार्य बहुत कलशों द्वारा बहुत सच्ची दृढ़ बात करते हैं।

वही कहते हैं—'इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् अपि परेषां दूषणं नास्ति' यह **अशुद्ध अवस्था में...** (दशा में) आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अन्तर में होने पर भी अनादि से उसकी वर्तमान दशा मलिन, अशुद्ध, भ्रान्ति और राग-द्वेषरूप है। ऐसी दशा में **जो कुछ...** 'जो कुछ' ऐसा शब्द है न? **'यत्'** अर्थात् **जो कुछ...** जो कुछ। **'रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति'** देखा? राग-द्वेष का प्रसव होता है। समझ में आया? आत्मा में राग, प्रीति, द्वेष, अप्रीति और मिथ्याश्रद्धा, ऐसा जो आत्मा के अन्दर उसकी पर्याय में परिणति—**रागादि अशुद्ध परिणति होती है...** यह भाषा इतनी हुई।

'रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति' आत्मा की दशा में जितने राग और द्वेष जिस प्रकार से... **'यत्'** है न? (अर्थात्) **जो कुछ...** जिस प्रकार से जो कुछ भी मिथ्यात्वभाव या राग-द्वेषभाव जो कुछ होते हैं, **उस अशुद्ध परिणति के होने में...** उस आत्मा की विकारीदशा में ज्ञान का हीनपना होना, दर्शन का हीनपना होना, मिथ्यात्व का—विपरीत मान्यतापने होना, राग-द्वेष की वासना की उत्पत्ति होना, वीर्य का निर्बलपना होना इत्यादि जो आत्मा की दशा में होता है, उसमें **अशुद्ध परिणति के होने में...** मलिन दशा में होने में **'कतरत् अपि' अति ही थोड़ा भी...** कोई भी, ऐसा कहते हैं। **'यत्'** और **'कतरत् अपि'**। जो कोई राग-द्वेश, विकार होता है, उसमें कोई भी, जरा भी कर्म का

दोष नहीं है। कहो, समझ में आया?

'कतरत् अपि' अति ही थोड़ा भी... थोड़ा, थोड़ा। कर्म है तो कर्म कुछ कराता है या नहीं? जैन में तो कर्म के कारण सब है, ऐसा जगत कहता है। कोई कर्म है तो कर्म का कार्य तो करता है या नहीं? तो कहते हैं कि भाई! अपने तो जैन में कर्म सब कराता है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, अज्ञान, ज्ञान, सुलाना-जगाना सब कर्म कराता है, हम क्या करें? कहते हैं कि जरा भी तेरे दोष में परकर्म का अवकाश थोड़ा भी नहीं है। जरा भी करता हो, जरा भी करता हो, यह बात नहीं है। लो, अब इतना... कहो, समझ में आया? है या नहीं पुस्तक? ऐई! वहाँ क्या चलता होगा? कुचामन में सब...

जो कुछ राग-द्वेष, पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान, व्रत और मिथ्याश्रद्धा, रागादि मलिन अवस्था होती है, उस अवस्था में... यहाँ अवस्था की बात है न? इसलिए तो पहली अशुद्ध अवस्था ली है। उसमें कुछ भी थोड़ा भी **ज्ञानावरणादि कर्म का उदय...** देखो! ज्ञानावरणीय कर्म मतिज्ञानावरणीय कर्म है, उसका उदय आत्मा को जरा भी ज्ञान की हीनदशा करे, ऐसा जरा भी नहीं है। कहो, अब इसका क्या कहना है? ऐई! यह कहते हैं कि नहीं। ज्ञानावरणीय कर्म जितने प्रकार से उदय में आवे, उतने प्रकार से ज्ञान की हीन दशा होती है। ज्ञान का क्षयोपशम हो तत्प्रमाण आत्मा में उघाड़ होता है। यहाँ भगवान कहते हैं कि यह तेरी बात सोलह-सोलह आने खोटी है। सोलह आने अर्थात् रुपया अथवा सोलह टका अर्थात् पूरा।

थोड़ा भी ज्ञानावरणीय का उदय ज्ञान की हीन दशा को करे, वह कुछ भी ज्ञानावरणीय का जरा भी दोष नहीं है। बराबर है? तो सबकी बुद्धि क्यों समान नहीं है? कहो। किसी की थोड़ी बुद्धि और किसी की बहुत है। अपने को भी हीन करने का भाव किसी को होगा? परन्तु समय-समय में है न? समय-समय जो अपनी पर्याय जिस प्रकार से उत्पन्न (होने की हो) वह उत्पन्न ही होती है अपने से। यहाँ प्रसूति कहा है न? प्रसूति अर्थात् उत्पन्न होना। जिस प्रकार से मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव हो, उस प्रकार से अपने में स्वयं करे, उसमें ज्ञानावरणीय आदि, दर्शनावरणीय का जरा भी दोष नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहा। देखो! है न आठों कर्म?

ज्ञानावरणादि कर्म का उदय... ज्ञानावरणीय कर्म ने... भाई! अपने को यहाँ अवधिज्ञान क्यों नहीं होता? अवधिज्ञानावरणीय कर्म के कारण से। ऐसा है ही नहीं। ज्ञानावरणीय कर्म जरा भी तुझे दोष करे, हीन दशा करे या उग्र दशा उत्पन्न होने न दे, उसमें जरा भी कर्म का दोष नहीं है। यह बात इतनी स्पष्ट रखी है, लो! चिल्लाहट करते हैं... ऐई! सोनगढ़वाले एकान्त कहते हैं, कर्म से कुछ होता नहीं, कर्म से कुछ होता नहीं। सिद्धान्त में कहते हैं कि कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है। लो, वे ... ऐसी पुकार करते हैं। यहाँ सिद्धान्त इनकार करता है। छोटाभाई!

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, लो! यह वेदनीयकर्म आत्मा के अव्याबाध गुण को जरा भी रोकता है, ऐसा नहीं है। परद्रव्य क्या करे? मोहनीयकर्म आत्मा को हास्य करावे, शोक करावे, रति उपजावे, अरति उपजावे, गहलता—यह पागलपन जीव को होता है, पागल होता है, वह कर्म के उदय बिना होता है? एक व्यक्ति ने एक दृष्टान्त दिया, देखो! यह मदिरा पीवे, तब क्यों मति घात होता है? इसी प्रकार कर्म के उदय से घात होता है। घात नहीं होती मदिरा के कारण, सुन न! मदिरा तो नोकर्म है। यहाँ तो कर्म नहीं करता तो फिर नोकर्म (करे कैसे)? समझ में आया? मोहनीय कर्म ऐसा कराता है। गहलता उपजाता है। मोह का ऐसा जोर है। आदमी पागल हो जाये, ऐसे बुद्धि में भ्रष्ट हो जाये। यहाँ तो इनकार करते हैं। हराम है तेरी बात एक भी प्रतिशत सच्ची हो तो। मोहकर्म के कारण पागल (हो)। यह समझ में आया या नहीं, जेचन्दभाई? ...किसलिए होता है? उसके अपने दोष के कारण से होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शरीर के कारण दोष होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। शरीर तो मिट्टी है, उसकी तो बात भी नहीं। वह तो नोकर्म है। यह तो जिसके साथ निमित्त-निमित्त वास्तविक सम्बन्ध है, वह भी उसे कुछ करता नहीं, ऐसी बात लेनी है। उसके (-नोकर्म के) साथ तो कहाँ इसे वास्तविक सम्बन्ध है? समझ में आया? आयुष्य के कारण यहाँ आत्मा रुकता है, आत्मा की पर्याय रुकती है, ऐसा जरा भी करता नहीं।

मुमुक्षु : ....शास्त्र पढ़ने के बाद निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र पढ़ने के बाद निकाला। पहले तो निकाला था। शास्त्र पढ़े तो शास्त्रों में तुझे यह बताया? शास्त्र पढ़कर सीखा स्वच्छन्द। कर्म के उदय के कारण होता है, अंक के कारण होता है, समझे न? वासना। वह तो कर्म का उदय हो तो वासना होती है। श्रीमद् में नहीं लिखा? कर्म कैसे है? वेद का करने का भाव नहीं और एकदम पाँच सेकेण्ड में हो। परन्तु वह तो कर्म सिद्ध करते हैं कि तू दूसरे समय में विकार करता है, तो दूसरे पर तेरा लक्ष्य है, ऐसा सिद्ध करते हैं। परन्तु उसके कारण आत्मा में कुछ होता है, (ऐसा नहीं है)। कहो, समझ में आया? परन्तु लोग कहते हैं न, बुद्धि कर्मानुसारिणी। ऐसा सुना है या नहीं? कहो, बुद्धि कर्मानुसारिणी सुना है या नहीं? सुजानमलजी! तुम्हारे हिन्दुस्तान में चलता है? यहाँ इनकार करते हैं। पोपटभाई! सब उल्टा होगा यह?

ज्ञानावरणादि कर्म का उदय... अर्थात् आठों कर्म हो गये न? नाम, गोत्र, अन्तराय इत्यादि। यह अन्तराय कर्म का उदय। क्या करें, हमारे दान देने का भाव होता नहीं। दानान्तराय कर्म का उदय दान देने से रोकता है, भाव में क्षयोपशम होने को (रोकता है)। लो! यहाँ कहते हैं कि हराम, यह बात है नहीं। हमारी वीर्य की स्फुरणा बहुत करनी है। चारित्र लेना हो परन्तु अन्दर चारित्रमोह का उदय रोकता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं आता? मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा आता है। वह तो निमित्त बतलाते हैं। क्या उसके कारण होता है? समझ में आया? कठिन परन्तु शास्त्रों के अर्थ ऐसी अपनी दृष्टि से करे। ऐसे कथन... ऐसे कथन... (करे)। ढिंढ़ोरा पीटे। ओहो! ऐ... ऐसा हुआ, ऐ... ऐसा हुआ। कर्म को मानते नहीं। निमित्त एक मानो न, निमित्त अर्थात् क्या? निमित्त मानो अर्थात् यह, तुम्हें उससे दोष होता है, ऐसा मानो। बस! हो गया, निपट गया। समझ में आया? आठों ही कर्म का उदय जीव को कुछ नुकसान करे, थोड़ा भी करे, जरा भी करे, ऐसा भगवान नहीं कहते और वस्तु में ऐसा नहीं होता।

शरीर-मन-वचन... यह बोल पहले श्लोक में आ गये हैं। शरीर, मन और वचन। पहले शरीर आया था, फिर शरीर-मन और वचन आया था। (ऐसे) तीन बार आया। समझ में आया? पहले तीसरी लाईन में शरीर आया था और आगे में आया था,

शरीर, मन, वचन—ऐसे तीन (बार) आया था। १९७ पृष्ठ पर आया था। समझ में आया? पहला शरीर, फिर मन, वचन (आया था)। दूसरा शरीर फिर आगे की लाईन में शरीर, मन और वचन। आठवीं लाईन। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, यह शरीर। यह शरीर जरा भी आत्मा को खेद करावे, यह खोटी बात है, शरीर जरा भी खेद कराता नहीं। जेचन्दभाई! ऐसा कहते हैं। यह शरीर जरा भी आत्मा को दु:ख उपजावे, खेद उपजावे, उकताहट उपजावे, (ऐसा) तीन काल में थोड़ी भी शरीर में सामर्थ्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। (यह) करता है स्वयं और डालता है पर में। समझ में आया? ऐसे मन... मन। मन समरूप नहीं रहता। मन में कुछ न कुछ घोड़े दौड़ते हैं। नहीं (कहते)? नारकी का आयुष्य बँध गया होगा? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। यह मेरे परिणाम क्यों सुधरते नहीं? ... और फिर समान हुआ तो कहे, अब परिणाम अच्छे हो गये। कहो, समझ में आया? अपने मोहनभाई, वे पहले कहते थे, नरक का आयुष्य बँध गया होगा? फिर जब महीने भर साथ रहे, सब परिणाम (समान हो गये)। अब छोड़ न। परिणाम कर्म कौन कराता था? लड़का उसके घर में रहा।

आत्मा अपने परिणाम बिगाड़े, तब दूसरी चीज़ को निमित्त कहा जाता है। तब ही निमित्त कहा जाता है। बिगाड़े तो निमित्त कहाँ रहा? तब तो उपादान हो गया। उसने यहाँ कार्य किया। निमित्त ही तब कहलाता है। स्वयं कार्य करे, वहाँ सामने चीज़ हो, उसे निमित्त कहा जाता है। मन और वाणी। कहो, वाणी। कठोर शब्द कहे, लोहे के बाण जैसी गालियाँ दे और क्षमा रहे? क्रोध हुए बिना रहे? ऐई! लड़के लड़के ऐसी गालियाँ दे, स्त्री स्त्री में ऐसे ताने मारे, ताने। बिच्छू के डंक जैसे। वह थोड़ा बोले तो उससे अधिक बोले, एक-दूसरे कहीं कोई क्लेश में हीन न पड़ जाये। तो उसके कारण होता होगा या नहीं? बिल्कुल नहीं। वाणी द्वारा, वाणी के कारण आत्मा में कुछ भी दोष हो, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया? इस वाणी के कारण ज्ञान हीन होता है या वाणी के कारण ज्ञान का उघाड़ होता है, ऐसा कुछ भी पर में नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं।

यह मुफ्त का... मुफ्त का। वाणी क्या (करे)? वाणी तो जड़ है। वाणी कहाँ कहा था कि तू ऐसा कर। वचन-बचन से कुछ होता नहीं। अवसर पर वचन कहे थे न,

सगे दो भाई, उनमें यदि ताना मारा हो जरा। वह तू मूढ़ है, इसलिए तुझे गाली लगी। गाली वहाँ कहाँ चिपट गयी थी? वह तो वाणी जड़ है। उसके कारण कुछ दोष हुआ नहीं।

पंचेन्द्रिय भोगसामग्री... लो! यहाँ ऐसा कहा। पाँचों इन्द्रिय के भोग की सामग्री कहीं दोष उत्पन्न नहीं कराती। सुन्दर रूप के ढ़ेर सामने दिखाई दे तो वे तुझे खींचते हैं या राग कराते हैं, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। इसी प्रकार गन्ध के ढ़ेर सामने पड़े हों। फूल-झाड़ का बगीचा (हो) ऐसी सुवास (आती हो)... राग हुए बिना रहे? उसके कारण से होता होगा? हें? बाग में बैठा हो और उसमें कुर्सी हो और उसमें स्त्री सामने बैठी हो और पुत्र ऐसे बराबर बैठे हों और उस समय ऐसे श्रीखण्ड और पूड़ी खाता हो। कहो, उसके कारण राग होता है या नहीं? उसके कारण अनुकूल न हो तो द्वेष होता है या नहीं? उस समय वास्तव में ऐसे पाँच-पच्चीस लोग बैठे हों, उसमें समधी हो और समधी जरा कड़क हो। और वह अरबी के (भजिया) सेककर ऐसे लाल आकरा कर दिये हों, श्रीखण्ड बिगाड़ दिया हो अब उसे द्वेष होता है या नहीं? भोगसामग्री से होता है या नहीं? ऐसा कहते हैं।

घर का दामाद ऐसा कठोर आया हो, बराबर, उसमें बर्तन व्यवस्थित न हो तो उसके कारण उसे द्वेष होगा या नहीं? उठ जाये, चला जाये, एक व्यक्ति ने सगाई तोड़ दी। ऐ..! पहले-पहले ही अभी सगाई की और मैं पहली बार आया और रुपये रखे नहीं। पच्चीस या जो कुछ रखे जाते होंगे न? क्या कहलाता है वह? कुछ रखते होंगे। क्या कहलाता है? ऐई! जगजीवनभाई! यह ... संस्थान के बहुत चतुर (कहलाते हैं)।

कहते हैं कि भोगसामग्री उसे अनुकूल नहीं मिली, इसलिए द्वेष हुआ या अनुकूल मिला तो समाधान हो गया। फिर मूँग रखे, लापसी परोसकर घी व्यवस्थित डाला। पोपटभाई! मूढ़! तू राग-द्वेष करे और डाले सामग्री के ऊपर। शब्द, रूप, शब्द हो, रूप हो। गन्ध, रस और स्पर्श ऐसे कोमल... कोमल। वह **भोगसामग्री इत्यादि बहुत सामग्री है...** लो, उसमें बहुत-बहुत है न? कहते हैं। राजा, बाजा अनेक प्रकार से गधा आवाज करता हो, कोई कौआ करता हो, कोई फोनोग्राम चलता हो। एक में सुनकर द्वेष करे

और एक को सुनकर (राग) आहाहा! गजब... (ऐसे राग करे)। वह राग-द्वेष तुझे होते हैं। उसमें जरा भी पर का दोष नहीं है। अर्थात् कर्म और नोकर्म दोनों ले लिये।

उसमें किसी का दूषण तो नहीं है। किसी का कुछ भी अत्यन्त थोड़ा भी। ऐसा है न? दूषण तो नहीं। तो क्या है? तो क्या है? **अयं स्वयं अपराधी तत्र अबोधः सर्पति'** संसारी जीव अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर, मेरा आनन्द मेरे पास है, मैं अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द हूँ, ज्ञान का समुद्र हूँ, ऐसे स्वभाव को—आनन्द की अधिकता को भूलकर पर के लक्ष्य से '**अयम् स्वयम्**' देखो! '**अयम् स्वयम्**' यह **संसारी जीव... स्वयं आप मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ...** स्वयं अपराधी है, जरा भी पर का दोष नहीं। ऐसा?

पहले एक पण्डित आया था। (संवत्) २००१ के वर्ष में। यह अपराध किया। एक गाथा आयी थी। (वह कहे), नहीं। यह कहाँ ऐसा चला है। (मैंने कहा), देखो पाठ। अब वह कहे, उत्तर देना आया नहीं। ...परन्तु जबरदस्त लगते हैं न! कहते हैं कि आत्मा में कुछ भी राग-द्वेष, वासना, मिथ्याभ्रम, अज्ञान होता है, वह यह स्वयं अपराधी, स्वयं अपराधी होकर। अर्थात्? **मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ...** यहाँ तो मिथ्यात्व की बात है। आनन्द को भूलकर ज्ञानस्वरूप चैतन्यसूर्य प्रभु को भूलकर स्वयं ही भूला पड़ा, भूल को खड़ी करता है।

शुद्ध स्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है। लो! शुद्ध भगवान आत्मा ज्ञान और शान्त अनाकुल आनन्दस्वरूप आत्मा है। उससे भ्रष्ट है। **कर्म के उदय से हुआ है अशुद्धभाव,...** क्या कहते हैं? अब जरा कहते हैं। यहाँ दूसरी बात कहनी है। शुद्धभाव है न? यह उसका स्वरूप है। अशुद्ध है, वह निमित्त के आधीन तूने किये हुए हैं। वह **उदय से हुआ है अशुद्धभाव,...** यहाँ डाले, देखो! यहाँ आया या नहीं? यहाँ दूसरी बात कहते हैं। जो शुद्धता चिदानन्द ज्ञानमूर्ति है, उसे तू तेरा न मानकर जो अशुद्ध परिणाम तुझसे निमित्ताधीन होकर हुए हैं, उन्हें 'मेरा' माने, वह मिथ्यात्वभाव तूने खड़ा किया है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

कर्म के उदय से हुआ है अशुद्ध भाव,... यहाँ उदय से आया, वह दूसरी बात कहते हैं। उससे तो इनकार करते हैं, जरा भी नहीं। यहाँ तो कहते हैं, शुद्धस्वरूप है,

प्रभु! तू तो ज्ञान और आनन्दवाला तत्त्व है न! अनादि-अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कन्द, चैतन्य तीन काल-तीन लोक के भावों को स्व में जानते हुए जाननहार तेरा तत्त्व, ऐसे स्वभाव से भ्रष्ट हुआ, वह कर्म के निमित्त से अशुद्धता को अपने में मानता है। वह अपने में मानता है, वह मिथ्यात्व का दोष तेरा है। आहाहा! समझ में आया? हें?

स्वयं अपराधी होता हुआ अर्थात् **मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ...** ऐसा। **शुद्ध स्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है। परिणमता हुआ...** एक बात की। अर्थात् कि शुद्धस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान से भ्रष्ट है। यह मैं ज्ञायक चैतन्यमूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा से भ्रष्ट परिणमित उस अनुभव से भ्रष्ट है। वह कर्म के उदय से हुए पुण्य-पाप के (भाव)। देखो! अशुद्ध अर्थात् पुण्य-पाप भाव दोनों। दया, दान, व्रत, भक्ति शुभ भी अशुद्ध है। हिंसा, झूठ, चोरी, वह भी अशुभ अशुद्ध है। दोनों अशुद्ध हैं। शुभ और अशुभ दोनों अशुद्ध हैं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द सिद्ध समान शुद्ध है। उस शुद्धस्वरूप के भान को भूला, अनुभव से भ्रष्ट (हुआ) और मिथ्यात्वरूप से—उल्टी मान्यता से हुआ।

इस अशुद्ध परिणमन को... समझ में आया? **उसको आपरूप जानता है...** यहाँ वहाँ तक बात ली है। देखा? दूसरी बात तो कहाँ गई, कहते हैं। यहाँ तो मान्यता की ही बात लेनी है। ओहोहो! वापस उसका अर्थ यह नहीं, हों! कितने ही ऐसा (अर्थ) करते हैं, कर्म के उदय से विकार तो होनेवाला होगा ही, परन्तु उसे अपना मानना, वह दोष है। ऐसा नहीं है। वह तो पहले से कहा। पत्र भी ऐसे हैं, हों! कर्म के उदय से होता है, वह तो होगा ही। परन्तु वह हो, उससे बात नहीं ली। स्वभाव से शुद्ध होना चाहिए, ऐसा न होकर उससे अशुद्ध तूने किया और तू स्वभाव में खतौनी करता है, यह तेरा दोष है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

इसे खबर ही नहीं, खबर ही नहीं। क्या होता है? और क्या करता हूँ, ऐसा इसने मन्थन से निर्णय किया ही नहीं। वह तो ऐसे बिना भान के चला जाता है। शास्त्र में कहा कि कर्म से होता है। कर्म से होता है। देखो! भाई! कर्म, कर्म का कार्य तो करे न? परन्तु

उस कार्य के समय अपना मानना नहीं। परन्तु उसने कराया, फिर अपना मानने का प्रश्न कहाँ रहा? समझ में आया? कर्म के संग में तूने विकार स्वयं किया और तू कहता है कि उसने कराया। उसने कराया तो दो द्रव्य तो एक हो गये।

यहाँ तो उसे कहते हैं कि, भाई! तेरा स्वरूप तो चैतन्य ज्ञान, आनन्द, शान्त स्वरूप है न, प्रभु! उस शुद्ध में से अशुद्धता कैसे पैदा हो? परन्तु तूने विकार की दशा उत्पन्न की है, वह स्वभाव के आधीन की नहीं। वह कर्म के आधीन की तूने की हुई दशा है, तेरा दोष है, पर का कोई (दोष) नहीं। ऐसे दोष को तू स्वभाव के साथ मिलाता है (कि) यह मेरे, यह तेरी मिथ्यात्व की बड़ी भूल है, वह बतलानी है। आहाहा! कहो, समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा समझ में आता है न? भाई! गुजराती भाषा है। पुस्तक है न?

यह आत्मा... देखो! अभी बहुत उल्टा चलता है। कर्म के कारण ऐसा होता है, कर्म के कारण ऐसा होता है। यह लिखा, कि देखो! परन्तु पहले इनकार किया कि कुछ भी पर का दोष नहीं है। परन्तु अब यहाँ जो कहना है, वह दूसरी बात कहनी है कि शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्दस्वभाव तेरा, उसे भूलकर भ्रष्ट होकर जो निमित्त के आधीन तेरे परिणाम हुए, उसे त्रिकाली स्वभाव में मेरे हैं, ऐसा माना, वह तेरी भूल है। समझ में आया? सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न? आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान का तेज प्रभु, शुद्धता के प्रकाश की मूर्ति प्रभु आत्मा, ऐसे शुद्धता के चैतन्य के शान्तरस के अनुभव से भ्रष्ट हुआ, निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न किये हुए तेरे तुझसे (हुए) भाव को त्रिकाल के साथ एकपना मानता है, वह तेरी मिथ्यात्व की बड़ी भूल है। समझ में आया? इसमें है या नहीं? बाहर से क्या सुनाई देता है?

देखो! **कर्म के उदय से हुआ है...** आया या नहीं? कथंचित् ऐसा कहो, कथंचित् ऐसा कहो। ऐसा नहीं है। यह तो पहले। **'कतरत् अपि'** इनकार किया है। पर के कारण थोड़ा भी दोष नहीं है। परन्तु तेरे कारण से हुआ दोष वह त्रिकाल शुद्धस्वभाव के साथ तू खतौनी करता है कि यह मेरे हैं, यह तेरा मिथ्यात्व का दोष है। सर्व शुद्ध ज्ञानानन्द में भूलकर हुए भाव को त्रिकाल स्वभाव में उसे मानता है, वह तेरी मिथ्यात्व की भूल है,

यह सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! अशुद्ध, शुद्ध, शुभ-अशुभभाव। वे कहें, शुभभाव से यह होता है। आहाहा!

कर्म के उदय से हुए भाव को तू अपने जानता है। **इस प्रकार अज्ञान का अधिकार होने पर...** देखो! इस प्रकार से अज्ञान का अधिकार हुआ, चिदानन्द अधिकार नहीं रहा। स्वरूप के भान बिना उत्पन्न किये हुए अनुभव से भ्रष्ट की ही यहाँ बात है। सम्यग्दृष्टि को जो होता है, वह तो निर्बलता का ज्ञाता-दृष्टा में ज्ञान करता है। समझ में आया? आहाहा! चैतन्य महाप्रभु अनाकुल आनन्द के रस का धाम, ऐसा आत्मा। उसे आत्मा कहते हैं न? ऐसा यहाँ कहते हैं न? सर्वविशुद्धज्ञान, वह आत्मा। वह आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को भूलकर अवस्था के अंश में... यहाँ से उठाया है न? संसार अवस्था में वह जितना दोष करता है, उसमें पर का कोई दोष नहीं है। एक बात। और वह दोष करता है, उसे तू मानता है, उसमें भी पर का कोई दोष नहीं है। उस दोष को त्रिकाली ज्ञायकभाव में तू 'मेरा है'—ऐसा मानता है, वह भी तेरा दोष है। वह दर्शनमोह का जरा भी दोष नहीं, यह तो पहले कहते आये हैं। हें? आहाहा! समझ में आया?

अज्ञान का अधिकार होने पर... यह सर्वविशुद्धज्ञान का अधिकार न रहा। **'अबोधः सर्पति'** लो! यह **राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति... 'सर्पति'** प्रगट होती है। बस! राग-द्वेष-मोहरूप **'सर्पति'** उत्पन्न होती है। लो! आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... उसे भूलकर किये हुए भाव—पुण्य-पाप, काम, क्रोध, विकार को त्रिकाली शुद्ध चैतन्य के साथ यह मेरे हैं, ऐसा माना, वह तेरा अज्ञान का अधिकार है। समझ में आया? ओहोहो! **'अबोधः सर्पति'** वह अबोध अज्ञान ही उत्पन्न हुई परिणति है। अज्ञान की उत्पन्न हुई परिणति है, वह स्वभाव की है नहीं।

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव आप मिथ्यादृष्टि होता हुआ... देखो! आत्मा स्वयं अपने स्वरूप को भूलकर मिथ्या—असत्य दृष्टि करता हुआ **आप मिथ्यादृष्टि करता होता हुआ...** दर्शनमोह के कारण से नहीं, मोह के कारण से नहीं। **परद्रव्य को आप जानकर अनुभवे...** यह शरीर मेरा, शरीर मुझे दुःखदायक, शरीर मुझे सुखदायक, पैसे मेरे, पैसे मुझे सुखदायक, यह निर्धनता मुझे दुःखदायक, ऐसे पर को अपना मानकर

मिथ्यादृष्टिपना उत्पन्न करता है। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि होता हुआ, परद्रव्य को आप जानकर अनुभवे, वहाँ राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति का होना कौन रोके? एक-एक चीज़ तुझसे भिन्न है। यह मेरी स्त्री। कब थी तीन काल में? यह मेरा पुत्र। लो! मेरा अर्थात् क्या? वह परद्रव्य मेरा हो जाये? यह मेरे पैसे, यह मेरा मकान, यह मेरे नोट। यह मेरे ऐसे नोट, कहे। वह आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप अपना है, उसे मिथ्यात्वरूपी परिणमन करके जो चीज़ उसकी उसमें नहीं, उसे (अपनी) मानकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न करता है। समझ में आया? आहाहा! रतिभाई! क्या होगा यह? शरीर तो अपना है या नहीं थोड़ा? रहे तब तक है या नहीं? नहीं? यहाँ रहे तब तक आत्मा का नहीं? यहाँ रहे तब तक। आहाहा! और उसमें साबुन से साफ किया हो, ऐसे मखमल की टोपी और मखमल का... क्या नाम? लविंगिया लटकते हों। ऐसे और ऐसे। मुर्दे को श्रृंगार करे ऐसा... गहने। काँच में देखे। मेरा शरीर बहुत अच्छा। भगवान! तेरा कहाँ है?

जो इसके अस्तित्व में उसकी पर्याय से उसका परिणमन क्षण-क्षण में उसमें उससे हुआ, उसे तू ऐसा माने कि यह परिणमन—यह अवस्था मुझे अच्छी लगी, उसे मेरी माना। भाई! यह शरीर कहाँ तेरा है? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, यह तेरी मिथ्या मान्यता... आहाहा! **परद्रव्य को आप जानकर अनुभवे...** अनुभव करता है अर्थात्? परद्रव्य को अनुभव नहीं करता। परद्रव्य मेरे हैं, ऐसा मिथ्यात्व में तू जान रहा है। आहाहा! यह जितना काल माँ-बाप रहे, उतना काल माँ-बाप इसके हैं या नहीं? जितने काल इसके घर में रहे, उतना घर इसका (है या नहीं)? फिर याद आवे कि आहाहा! हम जिस घर में रहे, वह घर बिक गया। किसी भी प्रकार से वह घर लो। पच्चीस, पचास हजार, लाख देकर (लो)। जिस घर में रहते थे, बापू! उसमें ऐसी वृत्ति बँध गयी। यह खिड़की, यह... यह... यह... हें? .... परन्तु। यह तेरी उल्टी मान्यता के कारण यह मेरे हैं, ऐसा माना है। वे तेरे तीन काल में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, वस्तु के शुद्ध चैतन्यस्वरूप को मेरा जानना भूलकर... समझ में आया? चैतन्य बादशाह परमात्मा सच्चिदानन्द मूर्ति प्रभु आत्मा वह मैं हूँ, ऐसा भूलकर और

मिथ्या असत्य मान्यता की श्रद्धा में चढ़ा। कोई भी चीज़ मेरी है, यह माने बिना रहा नहीं। आहाहा! सोने में करवट ऐसी व्यवस्थित बदलती हो तो मेरे शरीर ने मुझे ठीक काम दिया। किसे काम दे? परन्तु क्या है? और ऐसे करवट बदले और यहाँ पसीना हुआ हो, पसीने से भींगा हुआ... क्या कहलाता है? पछेड़ी भींगी हो। उसमें बुखार आया हो तो वह पानी गर्म हो जाये, और घूमने की शक्ति रही न हो। ऊंहकारा करे। कितनी बार? उं...हूं... उं...हूं... बहुत माना निर्मलता पड़ गयी हो। क्या है? यह बदलने पर पर्याय नहीं बदली, वह तूने मेरी है, ऐसा माना, और तत्प्रमाण-इच्छाप्रमाण नहीं होता तो उं...हूं... मिथ्यात्व का भाव खड़ा करता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। हैं? कहो, यह किसके लिये कहते हैं? किसके लिये यह बात करते हैं? यह खोटा है इसलिए समझकर सच्चा हो, इसके लिये तो बात चलती है। न्यालभाई!

कहते हैं, अरे! **आप मिथ्यादृष्टि होता हुआ,...** स्वयं स्वत् सत् को चूकता हुआ। भगवान ज्ञानमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा ऐसे भाव को भूलकर **परद्रव्य को आप जानकर...** जहाँ-जहाँ दिखे, संग में आवे (तो) यह मेरे, यह मेरे, यह मेरे—ऐसा अनुभव करता है अर्थात् ऐसा मानता और जानता है। **वहाँ राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति का होना कौन रोके?** वहाँ तो मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष हुए बिना रहते ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य का मैं करूँ, इसका अर्थ ही हुआ कि उसे अपना माना। परद्रव्य को सुधारूँ, इसका अर्थ यह कि उस पर को अपना माना। पर बिगड़ता देखकर (ऐसा होता है कि) अरे रे! इसे सुधारना मुझे नहीं आया, वह भी पर को अपना माना। व्यवस्थित जहाँ पथ्य, आहारादि से रहा तो मैंने बहुत ध्यान रखा, इसलिए रोगादि आते नहीं। वह भी पर को अपना ही माना है उसने। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : लौकिक विद्या वह सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक विद्या ही सब अज्ञान है। आहाहा! भाई! तेरा तत्त्व वह भी मलिन परिणाम से भी भिन्न। यहाँ तो ऐसा कहना है न? ऐसा सर्वविशुद्ध चैतन्यज्योति तेरी चीज़। उस तेरी चीज़ में यह नहीं और इसमें तू नहीं। तो भी मेरे कर्म,

मेरे कर्म, मेरे कर्म (मानता है)। मैंने कर्म बाँधे, ऐसी मुझे भोगने रहे। अरे! कर्म भी चीज़ तेरी नहीं और उसके फलरूप से अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री भी तेरी नहीं। आहाहा! उसे मेरेरूप से मानकर राग-द्वेष को अनुभव करना, वह तेरी अपनी भूल है। कहो, अधिक पैसा हो तो प्रयोग करने के लिये हूंफ रहे या नहीं? न्यालभाई! इनके लड़के की बात की। पाँच-पाँच लाख की, दस-दस लाख की आमदनी हो। ऐ...ई..! प्राणभाई! आहाहा!

जब जरूरत पड़े न, (तो) हो पैसा तो काम आवे, ऐसा नहीं कहते? भाई! होवे तो काम आवे, न होवे तो क्या? जेब में थोड़ा डालना चाहिए, हों! होवें तो काम आवे। समझ में आया? परन्तु क्या काम आवे? तेरे हैं तो काम आवे? अरे... अरे...! परन्तु भ्रमणा। हें? अन्त में कोई न हो तो एक कन्दोरा पहनते जाना, हों! और जेब में भी रखना। कदाचित् कुछ खो जाये तो इसके तो पैसे रहेंगे। इतने तो रहेंगे। इसलिए कहा। ... दो तो रहे। कदाचित् सब जाये तो किसी की दुकान में (जाकर कहे), मेरा सब खो गया है। हें?

यहाँ कहते हैं कि भाई! वह चीज़ तूने तेरी मानी। मैंने रखी न? तो मुझे अब सुविधा हुई। मैंने नहीं रखी होती तो मुझे सुविधा नहीं रहती। यह कहते हैं कि तूने मानी, पर को मेरी (मेरी), यह तेरी भूल है। ... किसकी सुविधा तू कहता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! भाई! जेब में पच्चीस पड़े थे तो सही समय पर काम आये, लो! समझ में आया? यह चाहिए हो, तब पैसे मेरे थे, वे निकाले। स्त्री उसमें रखती थी? खबर है? वह... होता है न? अभी कहाँ है अब? .... वे हों न दोना सब पुराने हो गये? एक... होता है, उसके ऊपर जमावे वह गुप्त पूँजी वहाँ रखे। वहाँ कौन लेने जाये? हें? यह सब खबर है। सब देखा हुआ, सब नजर से किया हुआ। उसमें कहीं यह बात उसकी नहीं है। सुनी हुई भी नहीं है, देखी हुई हू-ब-हू सब। समझ में आया? जेचन्दभाई! यह ऐसा है कि इसके कारण यह मुझे ठीक पड़ता नहीं। अर्थात् उसे अपना माना, उसकी भ्रमणा खड़ी की। मोहनभाई! आहाहा! तीन काल में स्वप्न में भी तेरे नहीं। भाई!

वस्तु जगत की चीज़ें वे स्वप्न में एक या अनन्त कब तेरी होती है? तेरी हो, वह

पृथक् होगी? और पृथक् हो, वह तेरी होगी? आहाहा! किसका अरमान? अरे! पुत्र को पालन-पोषण किया और सही समय पर वह खिसक गया। ऐसा कहते हैं न? सही समय पर हटा। साठ वर्ष की उम्र... किसे कहता है तू? किसे पालन किया? तेरे थे? तूने पालन किये? हट कौन गया? तेरे थे वे हट गये? किसमें लगा है मुफ्त का? समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : अनन्त काल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने नहीं ली। यह चिदानन्द ज्ञानस्वरूप हूँ। आहाहा! किसका कौन? और किसका कहाँ करे? क्या करे? चौदह ब्रह्माण्ड की पाटनी अन्दर अकेला चैतन्यब्रह्म आत्मा खेल रहा है। उसके बदले तू दूसरे खेल में मेरा मानता है। छोटभाई! यह मूल दोष बताते हैं। बाद के राग-द्वेष अस्थिर हो, वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो गाँठ गल गयी, हो गया। हें?

मूल दोष मिथ्यात्व है, वह यहाँ कहते हैं। संसार को दृढ़ करने का तेरा मूल पक्का है। आहाहा! अब उसे दृढ़ कर और कहे कि हमको राग-द्वेष क्यों घटते नहीं? समझ में आया? और हमारे भव क्यों घटते नहीं? परन्तु भव के भाव में संयोगी चीज़ को तू (अपनी) माने, उसमें भव घटे कहाँ। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, क्या कहते हैं? भाषा देखो! **परद्रव्य को आप जानकर अनुभवे वहाँ...** उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष अशुद्ध अवस्था होती **कौन रोके?** परन्तु स्वयं करता है, उसमें रोके कौन? ऐसा कहते हैं। पर का मानकर करे, उसमें रोके कौन? करनेवाला स्वयं है, उसे रोके कौन? आहाहा! समझ में आया? कोई रोकता नहीं, वह रोके, ऐसा कहते हैं। करते हुए कौन रोके? ऐसा कहते हैं। करता है स्वयं, उसमें रोके कौन? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसलिए पुद्गलकर्म का कौन दोष? कर्म का क्या दोष इसमें जरा भी? कि पर हमको अपना मनाता है। उसमें कर्म का क्या दोष? तू ही तेरी चीज़ को भूलकर पर को अपनी मानता है, वह तेरी भूल स्वयं भ्रमणा कौन रोके? भ्रमणा करे और रोके कौन? समझ में आया? उसमें पुद्गल का जरा भी दोष नहीं है। कर्म का जरा भी दोष नहीं है।

ओहोहो! **'विदितं भवतु'** पुकार करते हैं। **ऐसा ही विदित होओ...** परद्रव्य कर्म आदि बिल्कुल मुझे दोष नहीं करते। अपने स्वरूप का अज्ञानभाव उस दोष की उत्पत्ति करता है। (ऐसा) विदित होओ, यह ज्ञान इस प्रकार से प्रसिद्ध होओ। **रागादि अशुद्ध परिणतिरूप जीव परिणमता है, सो जीव का दोष है,...** क्या (कहा) ? विदित हो कि पुण्य-पाप, काम, क्रोध को मेरे मानकर अशुद्ध अवस्थारूप जीव होता है, वह जीव का दोष है, पुद्गलद्रव्य का दोष जरा भी नहीं, जरा भी नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

अब अगला विचार कुछ है कि नहीं? यह बात करते हैं। अब अगला विचार कुछ है या नहीं? **उत्तर इस प्रकार है—अगला यह विचार है कि...** क्या? इतना हुआ, इतना ही बस अब? विदित होओ कि अज्ञान से पसरकर विकार होता है। अब इतना रखना है या फिर कुछ है? यह समझाने जितना इतना नहीं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह ऐसा कहते हैं। यह समझाने में तेरा दोष तुझसे होता है, तेरा दोष तुझसे होता है, इतनी बात नहीं। तेरा तुझसे होता है, ऐसा जानकर अब अज्ञान बन्द कर। क्योंकि तूने तेरे स्वभाव को भूलकर तूने किया, उसे कौन रोके? और अब विदित होओ कि यह दोष मिथ्यात्व का—पर को मेरा (मानने का) मैंने किया है, अज्ञान है। वह अज्ञान नाश हो जाओ, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

'अबोधः अस्तं यातु' मोह-राग-द्वेषरूप है जो अशुद्ध परिणति उसका विनाश होओ। यहाँ तो दो बातें सिद्ध की है कि एक तो वह पर को अपना मानना, वह तेरी भ्रमणा के कारण से तूने खड़ा किया है। अब वह नाश होओ। स्वभाव प्रगट होओ। वापस कर्म का अभाव हो तो नाश होता है, यह प्रश्न ही यहाँ नहीं। क्योंकि तूने किया, अब प्रश्न क्या है? आत्मा भगवान ज्ञानानन्द प्रभु, शुद्धस्वभाव भूलकर भ्रष्ट होकर, पर को अपना मानकर भाव खड़ा किया, वह विदित होओ, वह उत्पत्ति का भाव तेरा है, यह विदित—ज्ञान में आओ। इतने से भी अब नहीं अटकना। **'अबोधः अस्तं यातु'** (अर्थात्) वह अज्ञान अस्त हो जाओ। मेरे शुद्धस्वरूप में वह नहीं है, ऐसा भान करके अस्त हो जाओ, अस्त हो जाओ, अस्त हो जाओ। समझ में आया? आहाहा! एक में दोनों बात की है, देखा? हैं?

'अबोधः' मोह-राग-द्वेषरूप है जो अशुद्ध परिणति... यह अबोध भाव, अबोध

भाव। अबोध भाव—अज्ञान भाव। चिदानन्द शुद्ध ज्ञानघन से उल्टा राग-द्वेष-मिथ्यात्वभाव, वह सब अबोध भाव, अज्ञान भाव, मिथ्या भाव है। सत् चिदानन्दमूर्ति में वह वस्तु नहीं। ऐसा जो अज्ञान **'अस्तं यातु' अशुद्ध परिणति उसका विनाश होओ।** विनाश हो। **उसका विनाश होओ। 'बोधः अस्मि'** देखो! मैं तो **'बोधः अस्मि'** मैं अबोध नहीं, अज्ञान—राग-द्वेष-मोंह नहीं। मैं मोह-राग-द्वेष नहीं। मैं **'बोधः अस्मि'**। चैतन्य के तेज ज्ञानमूर्ति भगवान, वह मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा! सर्वविशुद्धज्ञान है न? इसलिए यहाँ बोध कहा है।

'बोधः अस्मि' मैं शुद्ध चिद्रूप अविनश्वर, अनादिनिधन, जैसा हूँ वैसा विद्यमान ही हूँ। मैं तो **'बोधः अस्मि'** ज्ञानघन... ज्ञानघन, विज्ञानघन चैतन्यरस, वह मैं हूँ। वह अनादि का ऐसा ही हूँ। समझ में आया? आहाहा! इतनी बात स्पष्ट दो और दो=चार जैसी है। उसमें भी विवाद उठाते हैं। ऐ... ऐसा होता है, यह ऐसा होता है। मोह के क्षय से चारित्र यथाख्यात होता है। ज्ञानावरण के क्षय से केवलज्ञान होता है। यह उमास्वामी लिखते हैं।.... पुरुषार्थ स्वयं ने किया और हुआ तो वह उसके अपने से नाश हो जाता है। उसकी अभी यहाँ तो बात भी नहीं है। कर्म के कारण हुआ नहीं, स्वभाव के भान के अभाव में हुआ है। मैं भान हूँ, (ऐसा होने पर) नाश हो जाता है। समा जाओ। उसकी बात। कर्म का समाना, वह बात भी यहाँ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मैं चैतन्य के तेज बोध, चिद्रूपो अहं। मैं तो ज्ञान का रूप मेरा है, ज्ञानस्वरूप हूँ। उस ज्ञानस्वरूप में यह अबोध कहाँ से आया? इस अंश का भाव जो अज्ञान का था, स्वभाव मैं हूँ (ऐसा होने पर) नाश हो जाओ। अज्ञान नाश हो जाओ, ऐसी शैली से आचार्य ने जगत को समझाया है। आहाहा! समझ में आया? **'बोधः अस्मि'** मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यशक्ति रस, वह चैतन्यशक्ति सत्त्व, चेतन सत्त्व, वह मैं हूँ। मैं हूँ, ऐसा तो एक विकल्प से कथन करते हैं। इस स्वरूप का स्व का बोध... प्रभु को भूलकर जो परद्रव्य मेरे एक समय में भी नहीं, उसे मानकर एक समय का अज्ञानभाव खड़ा किया, विदित होओ दोष मेरा है। विदित होकर मैं बोध हूँ, ज्ञान चिदानन्दस्वरूप हूँ। अस्त हो जाओ। उत्पन्न होना, अस्त हो जाओ, ऐसा कहते हैं। यह जगा। मैं तो आत्मा, मैं चिद्घन, आनन्दकन्द ऐसी चीज़ वह मैं हूँ। ऐसा जानने से जो वस्तु है... कैसी?

मैं तो **शुद्ध चिद्रूप...** ज्ञानरूप, ज्ञानरूप, ज्ञानरूप। अबोध ऐसा जो अज्ञान और मोह-राग-द्वेष, वह मेरा स्वरूप ही नहीं। **अविनश्वर...**—मैं तो नाश न होऊँ, ऐसा अनादि-अनन्त हूँ। **अनादिनिधन...** आदि नहीं, अन्त नहीं। निधन अर्थात् अनय। अनआदि और अनिधन। आदि नहीं और अनिधन। निधन अर्थात् मृत्यु नहीं, अन्त नहीं। मैं आदि और अन्त बिना की चीज़ हूँ। **जैसा हूँ, वैसा विद्यमान ही हूँ।** लो! आहाहा! **जैसा हूँ, वैसा विद्यमान ही हूँ।** कभी कोई उसमें हुआ ही नहीं था। आहाहा! ऐसा सच्चिदाननद प्रभु मैं हूँ। जैसा था, वैसा ही विद्यमान ऐसा का ऐसा हूँ। समझ में आया? अन्तर में ऐसी अनुभवदृष्टि होना, इसका नाम शुद्ध चिद्रूप को अपना माना कहलाये। समझ में आया? ऐसा माना, ऐसा नहीं। वस्तु शुद्ध ज्ञायक राग की उत्पत्ति के अंश के भाव से रहित हूँ, अबोध से रहित बोध हैं। वह मैं अनादि अविनश्वर ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा हूँ। उसमें मेरी विद्यमानता में कोई न्यूनता आयी नहीं। हुई नहीं। विपरीतता होती नहीं। ऐसा मैं हूँ। यह ऐसे चैतन्य के अन्तर दृष्टि में आत्मा को लेना, इसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन कहलाता है। इसका भावार्थ लेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १, बुधवार, दिनांक-१०-११-१९६५, कलश-२२०,२२१, प्रवचन-२४४-D

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका। यहाँ २८ वाँ कलश है। भावार्थ। भावार्थ अर्थात् कि इसमें भाव का प्रयोजन यह है कि **जीवद्रव्य शुद्धस्वरूप है।** वस्तु, वस्तु द्रव्य वस्तु, वह शुद्धस्वरूप है। चैतन्य ज्ञायकभाव अत्यन्त शुद्ध वस्तु है। उसमें मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति होती है। उसमें (अर्थात्) पर्याय में, पर्याय में। यह शुद्ध द्रव्य, द्रव्य जीव शुद्धस्वरूप है, वस्तु द्रव्य शुद्धस्वरूप है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, परन्तु उसमें— पर्याय में मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध अवस्था होती है। कहो, समझ में आया? द्रव्य शुद्ध है। उसकी पर्याय में **मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध...** मलिन-अशुद्ध **परिणति होती है।** अशुद्ध पर्याय होती है।

उस अशुद्ध परिणति के मेटने का उपाय यह कि... अब यहाँ कहते हैं। वह अस्त होओ, ऐसा कहा था न? वस्तु शुद्ध चैतन्य होने पर भी पर्याय में उसका अशुद्धपने का उसका अपराध है, दूसरे के नहीं—ऐसा यहाँ सिद्ध किया। मिथ्यात्वभाव या राग-द्वेषभाव (हो, उसमें) दूसरे कोई परद्रव्य का कारण नहीं है। उसकी अपनी ही उस पर्याय का दोष द्रव्य में नहीं है। ऐसी दो बातें सिद्ध की हैं। पर्याय में उसका अशुद्ध परिणमन (होता है वह) उसका अपना दोष है। कोई परद्रव्य, कर्म, शरीर, वाणी किसी का दोष नहीं है। तब कहे, ऐसा ज्ञान हो कि मेरी ही पर्याय का अपराध है, ऐसा ख्याल होकर अब करना क्या? वह अज्ञान अस्त होओ। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, उसमें वह अज्ञान पर्याय की उत्पत्ति की मेरे द्रव्यस्वभाव में योग्यता नहीं, मैं बोधस्वरूप हूँ, चैतन्यमूर्ति हूँ। इस प्रकार उसे मिटाने का यह उपाय है। कोई बाहर की चीज़ दूर करने का उपाय नहीं है, ऐसा कहते हैं।

वह मलिनता मिटाने का उपाय क्या? स्वयं ने दशा की, स्वयं के कारण से, पर नहीं, द्रव्य में नहीं। पर्याय में भ्रम उत्पन्न करके अशुद्ध परिणति की, वह द्रव्य में नहीं, पर के कारण से नहीं, तब अब उसे मिटाने का उपाय क्या? पर कारण नहीं; इसलिए पर दूर हटे तो वह हट जाये, ऐसा नहीं है। कहो, बराबर है यह? भ्रम करके दुःख उत्पन्न किया है, उस शरीर को छोड़ दे तो वह भ्रम मिटे या नहीं? दुःख मिटे या नहीं? हें?

शरीर को दु:ख कहाँ है? शरीर के कारण से नहीं। शरीर को नहीं, शरीर में नहीं। जेचन्दभाई! दु:ख शरीर के कारण से नहीं। दु:ख शरीर में नहीं, इसलिए शरीर छूटने से दु:ख मिट जाये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मोह-राग-द्वेष परिणाम मिटने का उपाय यह है कि **सहज ही द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमे...** देखो! पर्याय अर्थात् अवस्था में वर्तमान हालत के अंश में जो स्वभाव चिदानन्द ज्ञायक को भूलकर वर्तमान में भ्रम उत्पन्न करके दु:खपना इसने उत्पन्न किया, वह वस्तु से नहीं, इसलिए वस्तु को दूर करने से वह दूर हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **उस अशुद्ध परिणति के...** विशिष्टता क्या है? कि वस्तु ही पूरी जहाँ (शुद्ध है)। पहले से क्या उठाया? कि जीवद्रव्य शुद्धस्वरूप है, वस्तु शुद्धस्वरूप है। पर्याय में मलिनता खड़ी की है, उसरूप से परिणमा है पर्याय में। पर के कारण से नहीं, द्रव्य के कारण से नहीं। वर्तमान में भ्रम से खड़ा किया हुआ दु:ख, वह स्वभाव के आश्रय से उस दु:ख की परिणति टलती है। एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया?

अशुद्ध परिणति के मेटने का उपाय... अर्थात् दु:खदशा के भाव, भ्रमणा के और राग-द्वेष के भाव मिटाने का उपाय **यह है कि सहज ही द्रव्य...** वस्तु जो है, वह पर के लक्ष्य से विकार के परिणाम को स्वयं परिणमती थी, वह सहज ही द्रव्य शुद्धस्वरूप परिणमे। चिदानन्द ज्ञायक मैं हूँ, इस प्रकार उसकी परिणति खड़ी करे तो **अशुद्ध परिणति मिटे...** लो! यह तो बहुत बोल इसमें आ गये हैं। कहो, समझ में आया इसमें? कोई उपाय नहीं? कि वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? वस्तु त्रिकाल रहनेवाली चीज़ है या नहीं? कि द्रव्य वस्तु वह तो शुद्ध अनन्त गुण का वह पिण्ड (स्वरूप है)। अब उसकी अवस्था में भूल है या नहीं? भूल है या नहीं? वह भूल वह भ्रम और राग-द्वेष के परिणाम किसने किये? अवस्था ने खड़े किये। पर ने नहीं, द्रव्य में नहीं। आहाहा! उसकी वर्तमान स्वरूप के अज्ञान से, स्वरूप के भान से भ्रष्ट हुआ, स्वरूप के अज्ञान से खड़ा किया हुआ है। स्वयं ऐसी चीज़ है, शुद्ध वस्तु है, परमानन्द की मूर्ति है, उसके अज्ञान से उत्पन्न किया हुआ पर्याय में विकार, वह उसके भान द्वारा टलता है, दूसरा

कोई उपाय नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया अब? अब यह उपाय न ले और दूसरे उपाय लेता है।

सर्वत्र, बात सच्ची है। बिलकुल दु:ख के संयोग बढ़े और दु:ख का भाव (बढ़े)। कर्म को हटाऊँ। कर्म तो परद्रव्य है। उससे कुछ दोष हुआ नहीं, वह उसे हटाओ। संयोगों को हटाऊँ। प्रतिकूल संयोगों को दूर करूँ तो मेरा भ्रमणा का दु:ख मिटे। मिथ्यात्व और राग-द्वेष मिटे। वह कुछ उससे उत्पन्न हुए नहीं। तूने तेरे स्वभाव के अभान से खड़े किये, उन्हें स्वभाव के भान द्वार टाल, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा!

अशुद्ध परिणति को मेटने का उपाय... परिणति अर्थात् जो मलिन पर्याय, उसे मिटाने का उपाय **यह कि सहज ही द्रव्य...** वह कृत्रिम विकार था। अब सहज ही द्रव्य, स्वभाविक द्रव्य, वस्तु स्वभाव **शुद्धत्वरूप परिणवे...** शुद्धपनेरूप से, शुद्धस्वरूपपने परिणमे, शुद्धत्वरूप परिणमे। देखो! शुद्धत्वरूप परिणमे। वह अशुद्ध परिणति थी। वह स्वयं अन्तर शुद्ध चैतन्य वस्तु हूँ, द्रव्य शुद्ध है—ऐसी अन्तर दृष्टि करने से उसका शुद्धत्व परिणमन होता है तो अशुद्ध परिणमन मिटता है। अशुद्ध परिणमन का व्यय हो, शुद्ध परिणमन का उत्पाद हो, ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहे। कहो, समझ में आया इसमें? वह की वह बात उसी में और उसी में करके उसी में समाहित किया है।

वस्तु जो ध्रुव शुद्ध द्रव्य है, उसे भूला वह वर्तमान में भ्रमणा, राग और द्वेष की पर्याय उत्पन्न की। वह पर्याय, वह दु:खरूप दशा है, विकृत है, क्षणिक उपाधि मलिन है। वह मलिन, द्रव्य में से नहीं आयी, वस्तु कोई कर्म और परद्रव्य ने नहीं की। तेरे वर्तमान भाव में अंश में बुद्धि रखने से, अंशी त्रिकाली को छोड़कर, अंश में रुककर राग-द्वेष, भ्रमणा की थी, वह परिणति शुद्ध सहज द्रव्यस्वभाव का परिणमन करने से अर्थात् शुद्ध चैतन्य द्रव्य की अन्तर दृष्टि देने से वह द्रव्य शुद्धपने पर्याय उत्पन्न होती है अर्थात् अशुद्ध पर्याय का व्यय होता है। यह वापस अन्दर पुण्य परिणाम करने से अशुद्ध परिणति मिटे, ऐसा भी नहीं, ऐसा कहा है। पर (के) कारण से तो मिटे नहीं।

जो मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के भाव जो अशुद्ध परिणति है, वह कैसे मिटे? वह द्रव्य शुद्ध चैतन्यमूर्ति की अन्तर में एकाकार होने से शुद्धत्वरूप परिणमन होता है,

शुद्धत्वरूप परिणमन हो, वह शुद्धत्वरूप परिणमन के उत्पाद में उस शुद्ध परिणाम का उदय होता है। पुण्य परिणाम को उत्पन्न करने से वह अशुद्धपरिणाम मन्द पड़े या घटे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहो, न्यालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक कहते हैं। यह पैसा-बैसा मिला और अनुकूलता हो तो कुछ सरल पड़े ऐसा है नहीं। कहो, बापू! जाओ तुम तुम्हारे (सोनगढ़) रहो अब। जाओ, लड़के कहें, बापू! तुमको चाहिए उतना देंगे। हम तो तुम्हारे पुत्र हैं। भतीजा के पुत्र हैं। समझे न? उसके कारण कुछ अनुकूलता है या नहीं? नहीं? आहाहा! इस प्रतिकूलता के कारण कुछ अटके, ऐसा (है) या नहीं? नहीं? भाई! सातवें नारक की प्रतिकूलता रौव... रौव.. नरक में पड़ा (हो)। उस प्रतिकूलता के कारण कुछ अटकना पड़े, ऐसा है? भाई ने कहा ऐसा, न्यालभाई ने, पैसे मिले, पचास लाख (मिले)। बापू! तुमको २००-२०० रुपये चाहिए, वैसे माँगना। कोई संकोच करना नहीं। जितना खर्च होओ, हम तो तुम्हारे ही हैं। हम तुम्हारे पुत्र, यह तुम्हारी चीज़ है। अब उसे धर्म प्राप्त करने की अनुकूलता है या नहीं? यह न्यालभाई ने प्रश्न किया। ऐ... मलूकचन्दभाई!

मुमुक्षु : सुना तो सही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना, यह प्रश्न क्या है? यह तो विकल्प है। सुनना, यह विकल्प अशुद्ध परिणति खड़ी हुई। कहो, अरे! कठिन बात यह तो। इतने अधिक पैसे। (लड़के) ऐसा कहे, बापू! जाओ तुम करना। भले दुकान में से थोड़ा हिस्सा मिलता हो, परन्तु तुम मुझसे माँग लेना। इतनी सुविधा है या नहीं? अब उसमें डाला, वापस उठाया। इतनी सुविधा नहीं? ... मैं सबको देता हूँ। तुम्हें चाहिए हो तो माँग लेना! हजार-दो हजार चाहिए हो तो माँग लेना। तुम्हें खाना कितना? इतनी तो सुविधा धर्म के लिये होगी या नहीं?

मुमुक्षु : हजार, दो हजार न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हजार, दो हजार इतने सब कहाँ से दे दे। अलग किया हो न... ऐ... जेचन्दभाई!

कहते हैं कि शरीर में रोग (हो), मुँह में कीड़े (पड़े हों), पैसे की निर्धनता, पुत्र का अभाव, स्त्री का अभाव, नारकी में अवतार (हुआ हो)। अब वह कुछ आत्मा को अशुद्धपना करावे? और यह इतनी प्रतिकूलता है, इसलिए अशुद्धता न टले, ऐसा होगा? पोपटभाई!

अब दूसरा बोल (लेते हैं)। लड़के खम्मा... खम्मा (करते हों)। बापू! क्या है? कहो! यह पैसा तुम्हारे चाहिए उतने (माँग लेना)। चिट्ठी लिखो तो तुम्हारा प्रमाद। तुम वहाँ निश्चिन्तता से धर्म करना। तुम चिट्ठी लिखो, लिखने में देरी लगाओ इतना तुम्हारा प्रमाद। बाकी लिखो तो हम तैयार हैं, स्वीकार है। तुम कहो तो एक व्यक्ति कर दें। दो व्यक्ति, एक पकानेवाली बाई, एक व्यक्ति चाकरी करनेवाला। अब तुम कहो तो महीने के पाँच सौ रुपये, हजार रुपये तुम कहो उतने (दे देवें)। कहो, इतनी सुविधा से कुछ अशुद्धता घटती है?

मुमुक्षु : उससे बढ़े नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बढ़े नहीं उससे। कहो, समझ में आया? यह तो स्वयं फँसे तो भाव करे, यह चीज़ नहीं। ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में क्षायिक समकिती हो, उसे अन्दर के कारण से अशुद्धता नहीं और उसके संयोग के कारण से वहाँ अशुद्धता आयी है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो मिथ्यात्व की अशुद्धता लेनी है। ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा, उसे मिथ्यात्व की अशुद्धता इस कारण से हुई है, ऐसा नहीं है और टली है, वह सुविधा है, इसलिए टली है, ऐसा नहीं है। वस्तु सहज, वस्तु सहज, वस्तु ध्रुव पिण्ड स्तम्भ अनादि ध्रुव पड़ी है, उस पर (दृष्टि की), ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... पर्याय भी नहीं। पर्याय नहीं, राग नहीं, जिसमें पर्याय भी नहीं, जिसमें पर्याय नहीं। वही स्वयं जो आश्रय करनेयोग्य नहीं, वही पर्याय द्रव्य का आश्रय ले (तो) शुद्धरूप परिणमे। आहाहा! समझ में आया? कहो!

अशुद्ध परिणति मिटे। यह सहज ही द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमे। ९६ हजार (स्त्रियों के) वृन्द में समकिती ज्ञानी पड़ा (हो)। स्वयं शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूँ, ऐसी अन्दर में नजर लगाकर परिणमन किया है। वे चीज़ें ऐसी हो या घटे या बढ़े या कम हो, उसके

साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? कितनी ही निवृत्ति लेकर बैठे, निवृत्त हो तो इसे अनुकूलता पड़े। ऐसा होगा या नहीं? लोग ऐसा बोलते अवश्य हैं, हों! हें? कोई बाह्य से त्याग करे, स्त्री, पुत्र, परिवार न हो, घर न हो, अमुक न हो अकेला बैठा है (इसलिए) उसे अनुकूल पड़े। ऐसा जरा भी होगा? ऐसा कहते हैं। नहीं। यह अन्दर के अशुद्ध परिणमन में से निवृत्त हो और शुद्ध में जा तो शुद्ध का परिणमन होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

एक के लड़के के पास पैसे हुए होंगे, इसलिए उसका बाप बारम्बार बोला करे। ओहो! सुविधा बहुत है, हों! उपयोग हो सकता नहीं, उपयोग हो सकता नहीं, ऐसा किया करे। ऐसा करके मीठे बोल (बोले)। पैसा बहुत, सुविधा तो बहुत है, अनुकूलता तो बहुत है। बारम्बार कहा करे। परन्तु सदुपयोग हो सकता नहीं। परन्तु किसका सदुपयोग? बात करके यह बतलाना हो कि हमारे लड़के के पास पैसा है, यह है, सदुपयोग नहीं हो सकता। बारम्बार कहे, हों! कहा, क्या यह पागल निकालता है। क्या कहना है इसे? शरीर ठीक है, लड़के ठीक हैं, पैसा भी इच्छा से अधिक हुए। लड़के भी कहे, बापू! ऐसा करना। सुविधा प्रमाण सुविधा बहुत, परन्तु सदुपयोग हो सकता नहीं। पोपटभाई! कितने प्रतिशत सच्चा होगा इसमें? तब तो दसेक लाख रुपये थे। परन्तु उस समय ऐसे बोलते। सदुपयोग हो सकता नहीं। क्या है इसे? ढ़िंढ़ोरा क्या पीटना है? लड़के के पास पैसे बहुत... पैसे बहुत... पैसे बहुत। बड़े मकान, पचास-साठ हजार के मकान, पैसे बहुत इसलिए बहुत अनुकूलता, सब सुविधा। लड़के कहें, ऐसा करो, ऐसा करो। बापू! चाहिए वह माँगना, हों! सदुपयोग हो सकता नहीं। ऐई!

कहते हैं कि तेरी मूर्खाई से तूने अशुद्धपने के भाव उत्पन्न किये हैं। वह अशुद्धपना मिटने का उपाय एक ही है, वहाँ से रुचि बदलकर द्रव्य का शुद्धरूप से परिणमन कर। दूसरी तृणमात्र किंचित्मात्र किसी चीज़ का सहारा अशुद्ध परिणमन में भी नहीं और शुद्ध परिणमन में भी दूसरे का सहारा तो नहीं परन्तु कषाय की मन्दता के कारण से शुद्ध का परिणमन हो, वह भी सहारा नहीं। कहो, समझ में आया?

तुमको थोड़ा-थोड़ा लागू पड़ता है या नहीं? नहीं लागू पड़ता। तुम तो कहाँ हाथ

छूने देते हो? लड़के को हाथ छूने देते नहीं, नहीं, मैं तो मेरा करूँगा। यह तो सब हीराभाई के लड़के माँगे, अनुकूल कहे। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, शिवलालभाई! कैसे होगा इसमें अब? उसे भी ऐसा कहे, बापू! भाई! तुमने हमारा किया, अब तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करना, वहाँ रहो अब। कहो, इतनी निवृत्ति हो तो आत्मा को शुद्ध परिणमन के लिये अवकाश मिले या नहीं? हें? शैलेश! तेरे पिता ने तेरे भाई को बहुत अनुकूलता कर दी। तुम्हारे कुछ चिन्ता नहीं करना। माता-पिता ने सब किया, अब यहाँ रहो, बस! ऐ..ई..! किसकी शोर-गुल करते थे सवेरे? सवेरे (कहे), ऐसी उकताहट, ऐसी उकताहट (आ गयी है)। आँख में से आँसू आने की तैयारी हो गयी। क्या है परन्तु अब? दुनिया देखे। दुनिया तो सब देखे, परन्तु उसमें क्या है? ऐसा कि, ऐसे गिर जाये, ऐसा हो जाये, ऐसा हो जाये। पैर चढ़े नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है तो सब होता है। तू देखे ऐसा वह दुनिया देखे। परन्तु उसमें दिक्कत क्या आयी? हें? आहाहा! अरे! जिस मुँह से नागरवेल के पान चबाये हों, उसमें शिथिलता दिखाना। हडकमदार देखेगा। परन्तु किसका सत्ताधीश? जड़ के कारण। आहाहा! कहते हैं कि भगवान! तू मूल में से भूला है। वह भूला तेरे स्वभाव को, इसलिए भूल में से भगवान को भूला और भूल तूने खड़ी की है। किंचित्मात्र किसी परतत्त्व का अन्दर लेशमात्र... वह तो ऊपर कहा था, **'कतर् अपि' अत्यन्त थोड़ा भी... जितनी सामग्री है—ज्ञानावरणादि कर्म का उदय अथवा शरीर-मन-वचन अथवा पंचेन्द्रिय भोगसामग्री इत्यादि...** सब आया था। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? आहाहा!

शुद्धत्वरूप परिणमे तो अशुद्ध परिणति मिटे और तो कोई करतूति-उपाय नहीं है। देखो! यह भाषा। क्या कहा? **और तो कोई करतूति-उपाय नहीं है।** शरीर अच्छा हो, शरीर निर्बल हो, संयोग अनुकूल हों, प्रतिकूल हो। ओहोहो! एक माँगे और पच्चीस आवे, लो, बापू! क्या मुख माँगता है? खीर, पूड़ी, मुँह हल्का दाढ बिना का। और राग की मन्दता बहुत की हो, लो न! राग की मन्दता अन्दर में की हो। **और तो कोई करतूति-उपाय नहीं है।** वह कोई कर्तव्य उसके शुद्धत्व परिणमन के लिये कोई उपाय है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? कोई करतूत अर्थात् पुण्य परिणाम, राग की मन्दता, वह भी शुद्धत्व परिणमन में कोई उपाय नहीं है। दूसरा तो कोई कर्तव्य अर्थात्

पर से निवृत्ति मिली या राग की मन्दता की, वह कोई शुद्धत्व परिणमन में उपाय है ही नहीं। आहाहा! वह भगवान के सामने देखने से शुद्ध परिणमन हो, वह एक ही उपाय है। समझ में आया?

और तो कोई करतूति.... अर्थात् कार्य। किसी कार्य में सब आये। अब निवृत्त होकर बैठ गये, अब कोई मिलता नहीं, कोई बुलावे ऐसा नहीं। घर के सब काम लाईन चढ़ गये हैं। हें? ऐई! महिलाओं को ऐसा हो, अब बहुएँ काम करती हैं। हमारे बिना कुछ चले, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। वह तो कहते हैं, जाओ, बापू, जाओ। इतने कर्तव्य हुए इसलिए आत्मा का शुद्ध परिणमन और धर्म हो, (ऐसा नहीं है)। इस किसी करतूति से धर्म का परिणमन है ही नहीं। आहाहा! यह भगवान शुद्ध ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... चैतन्यधातु आनन्दधातु को धरकर पूरा अखण्ड प्रभु पड़ा है, बस! उस शुद्धत्व का परिणमन ही अशुद्धता के परिणमन को मिटाने का उपाय है। समझ में आया? टीका भी कैसी की है न, देखो!

उस अशुद्ध परिणति के मिटने पर जीवद्रव्य जैसा है... अब देखो! मिटने पर। वह **अशुद्ध परिणति के मिटने पर जीवद्रव्य जैसा है वैसा है,...** वस्तु तो जैसी है, वैसी है। उसमें **कुछ घट-बढ़ तो नहीं।** कम-ज्यादा कुछ हुआ ही नहीं। पर्याय में तूने चाहे जो किया, वस्तु में कुछ है नहीं। भई! राग था तो वस्तु अल्प थी, यह घटा और गया तो वस्तु में कुछ बहुत पुष्टि हुई, ऐसा है कहीं? हें? जैसी है, वैसी है।

पहले पहिचान करे तो इस ध्रुव वस्तु के उत्पाद-व्यय पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, राग-पर का लक्ष्य (छोड़कर), इस परिणमन का लक्ष्य छोड़कर उसमें जाना। वह परिणमती है पर्याय, उसे वहाँ ले जाना, ऐसे। ध्रुव के साथ एकाकार हो तो शुद्धत्व परिणमन हो, दूसरी कोई पद्धति तीन काल में नहीं है।

परन्तु दूसरा क्या हो? इसके द्रव्य में उल्टा डुगडुगी या ऐसे बजावे और या ऐसे बजावे। समझ में आया या नहीं? यह क्या कहलाता है? नोरता में नहीं आता वह? उसे एक ही डोरी होती है, हों! दो डोरी नहीं होती। गाँठ लगायी हो। ऐसे बजावे तो ऐसे बजे और ऐसे बजावे तो ऐसे बजावे। यह उल्टा पड़े तो अज्ञानभाव से स्वभाव के भान बिना

मिथ्या और अशुद्धरूप से परिणमे। इस द्रव्य की दृष्टि करे तो शुद्धरूप से परिणमे। यह एक ही बात है, दूसरी कोई बात है नहीं। आहाहा!

देखो न! वे कहें, जहर पीकर मर जाये। वे कहे, ऐसा हो जाये। परन्तु कहाँ जाओगे? तुम्हारी परिणति तो वहाँ मिथ्यात्वरूप से पड़ी है। अब तुम्हारे जाना कहाँ है? वह दशा तो साथ की साथ है। तूने क्या छोड़ा? और वह छूटने से तुझे वहाँ क्या ठीक रहा? वह छूटने से यह सब देखे उसमें से हट जाये। कोई अनजान हो तो दिक्कत नहीं। फिर यह ढोर में जाकर फिर भले दुःखी हो। अरे... अरे...! परन्तु जो दशा है, वह तो तेरे पास है ही। वस्तु के भान बिना की भ्रमणा और राग-द्वेष तो तेरे पास ही है। तू कहाँ जायेगा? क्षेत्र बदला, इसलिए भाव बदल जायेंगे? यहाँ से चला गया, भाव बदले? भाव तो तेरे पास है। आहाहा! ऐसी खबर नहीं होती। और उसे टालने का क्या उपाय है, इसकी भी खबर नहीं होती। ऐसे का ऐसा दुःखी चौरासी में होता है।

आज सवेरे एक कुत्ता... कुत्ता। हमेशा जाता था। कौन जाने क्या भटका हुआ होगा कुत्ता ऐसे मर गया था। रात में गन्ध मारता था। सड़क पर। कहाँ अन्दर... शरीर अच्छा था। कोई वृत्ति होगी? ऐसे जाना या ऐसे जाना? वासना बहुत न! दौड़ादौड़ करता होगा? उसमें मर (गया)। कुछ लगा होगा। मोटर का धक्का (लगा होगा), कचूमर नहीं, धड़ उड़ गया था, साथ में पड़ा था। मर गया। गन्ध मारे। देखो! यह दशा। देखो! यह आत्म भगवान! आहाहा! उसे सड़े हुए शरीर और ताजा (के साथ) आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं। है? वे तो रजकण किसी के-जड़ के थे। आहाहा! उसे अन्दर में वासना में दौड़ादोड़ करता था। 'कुत्ता काटिक मांसका...' आता है न? ओहोहो! अरे! इसे खबर नहीं कि मैं आत्मा, यह शरीर, शरीर। यह दुःख की परिणति खड़ी करे और उसमें शरीर छूटे तब दुःख की परिणति तो साथ में खड़ी है। समझ में आया?

यह मिटने पर **कुछ घट-बढ़ तो नहीं।** भगवान वस्तु है। ऐसी की ऐसी वस्तु है। ऐसी वस्तु पर्याय में शुद्धरूप परिणमी। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। समझ में आया? यह २२० हुआ। अब २९ वाँ, धारावाही २२१ (कलश है)।

कलश - २२१

(रथोद्धता)

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं
शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः।।२९-२२१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — कहे हुए अर्थ को गाढ़ा-दृढ़ करते हैं — 'ते मोहवाहिनीं न हि उत्तरन्ति' [ते] ऐसी मिथ्यादृष्टि जीवराशि, [मोहवाहिनीं] मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति-ऐसी जो शत्रु की सेना, उसको [न हि उत्तरन्ति] नहीं मेट सकता है। कैसे हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव? 'शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः' [शुद्ध] सकल उपाधि से रहित, जीववस्तु के [बोध] प्रत्यक्ष का अनुभव से [विधुर] रहित होने से, [अन्ध] सम्यक्त्व से शून्य है [बुद्धयः] ज्ञान सर्वस्व जिनका, ऐसे हैं। उनका अपराध कौनसा? उत्तर — ऐसा अपराध है, वही कहते हैं — 'ये रागजन्मनि परद्रव्यं निमित्ततां एव कलयन्ति' [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसे हैं — [रागजन्मनि] राग-द्वेष-मोह अशुद्धपरिणतिरूप परिणमनेवाले जीवद्रव्य के विषय में, [परद्रव्यं] आठ कर्म, शरीर आदि नोकर्म, तथा बाह्य भोगसामग्रीरूप [निमित्ततां कलयन्ति] पुद्गलद्रव्य का निमित्त पाकर जीव, रागादि अशुद्धरूप परिणमता है — ऐसी श्रद्धा करती है जो कोई जीवराशि, वे मिथ्यादृष्टि हैं- अनन्त संसारी हैं, जिससे ऐसा विचार है कि संसारी जीव के, रागादि अशुद्धरूप परिणमनशक्ति नहीं है; पुद्गलकर्म, बलात्कार ही परिणमाता है। जो ऐसा है तो, पुद्गलकर्म तो सर्व काल विद्यमान ही है। जीव को शुद्धपरिणाम का अवसर कौन? अपितु कोई अवसर नहीं।।२९-२२१।।

कलश - २२१ पर प्रवचन

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।

उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं
शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः।।२९-२२१।।

हे शुद्धबोध से विधुर! ऐसा कहते हैं। विधुर हुआ, विधुर। **कहे हुए अर्थ को गाढ़ा-दृढ़ करते हैं—** देखो! और कहे हुए अर्थ को गाढ़-दृढ़ करते हैं। कहे हुए विशेष दृढ़ करते हैं। समझे न? आहाहा! **'ते मोहवाहिनीं न हि उत्तरन्ति'** कौन? ऐसी मिथ्यादृष्टि जीवराशि। जिसकी मिथ्यादृष्टि है ऐसी जीव की राशि—जीव का ढ़ेर। निगोद से लेकर सब जहाँ मिथ्यादृष्टि हैं वे। **'मोहवाहिनीं' मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति...** वाहिनी। यह मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति। **ऐसी जो शत्रु की सेना...** वह सब सेना है। आहाहा! मिथ्या भ्रमणा, राग-द्वेष के भाव, वह शत्रु की सेना है। सज्जन प्रभु परमात्मा की वह सेना नहीं। समझ में आया? भगवान की सेना, शुद्ध वस्तु की सेना,... कहो, समझ में आया इसमें?

वस्तु,... वह वस्तु शुद्ध द्रव्य। ऐसे शुद्ध द्रव्य में... यहाँ शुद्ध द्रव्य पहले कहना है। परिणति तो सेना कहेंगे। शुद्ध द्रव्य की सेना तो अनन्त ज्ञान, आनन्द की सज्जन की सेना तो वह है। वस्तु भगवान आत्मा, वस्तु जो है एक समय की विकृत अवस्था बिना की जो चीज़ है, वह तो अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द... समझ में आया? ऐसा समाज, ऐसी सेना से भरपूर यह भगवान है। इसका विरोध होकर जो कुछ पर में सुख, पर में दुःख, पर के कारण यह मुझे होता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव और उस मिथ्याभ्वभाव के साथ रहा हुआ राग-द्वेषभाव वह अशुद्ध शत्रु की सेना है, वह शत्रु की सेना है, भगवान आत्मा से विरुद्ध भावरूप सेना है। आहाहा!

उसको... 'न हि उत्तरन्ति' नहीं मेट सकती है। मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी सेना को पार नहीं कर सकता। क्यों? वह विकार पर से होता है, ऐसे माननेवाले है। समझ में आया? आहाहा! **कैसे हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव? 'शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः' 'शुद्ध' सकल उपाधि से रहित जीववस्तु...** भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की समाज का—सेना का पूरा तत्त्व ऐसा भगवान सकल उपाधि से रहित **जीववस्तु के... 'बोध' प्रत्यक्ष का अनुभव से... 'विधुर' रहित...** यह ज्ञानस्वरूप चैतन्य हूँ, ज्ञान का ज्ञान करके यह वस्तु

प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति है, ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान से रंडुआ—विधुर हो गये हैं। कौन? जो पर के कारण से मुझे विकार होता है, ऐसा माननेवाले, उनके ज्ञान के स्वभाव से भ्रष्ट हुए हैं, इसलिए मिथ्यादृष्टिपना इस प्रकार से सेवन कर रहे हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : विधुर अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहित। विधुर अर्थात् रहित। यह पत्नी रहित वह विधुर। उसी प्रकार यह शुद्ध बोधरहित। पत्नी हो तो विधवा कहलाये, यह (पुरुष) कहलाये विधुर। शुद्ध परिणति से विधुर है। आहाहा! समझ में आया?

सकल उपाधि से रहित जीववस्तु... भगवान आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव। बोध की व्याख्या ही यह है। वस्तु का बोध अर्थात् वस्तु अखण्ड ज्ञानमूर्ति का बोध अर्थात्? उसका बोध, वस्तु का बोध। अर्थात् कि वस्तु प्रत्यक्ष रागरहित का ज्ञान, अन्तर प्रत्यक्ष हूँ, इसका नाम बोध। समझ में आया? क्योंकि राग और विकार को पर कारण मानता है, तब उसे विकाररहित वस्तु प्रत्यक्ष की खबर नहीं, इसलिए विकार पर के कारण से मानता है, ऐसा अज्ञानी मान रहे हैं। समझ में आया?

वस्तु एक समय में चिदानन्द वस्तु, ज्ञानवस्तु, चैतन्यबोध वस्तु, उस चैतन्य का बोध। अर्थात् कि उसका ज्ञान में यह आत्मा ऐसे प्रत्यक्ष होना। ऐसे प्रत्यक्ष के अनुभव से रहित होने से। कहो, समझ में आया? पोपटभाई! विधुर का अर्थ रहित। यों भी दुनिया में नहीं कहते, यह विधुर है। स्त्री मर जाये तो विधुर कहते हैं। पति मर जाये तो विधवा कहते हैं। ऐसा कहते हैं न? घर में यह विधुर है। घर में छह आदमियों में तीन तो विधुर हैं, तीन को स्त्रियाँ हैं, ऐसा कहते हैं न? समझ में आया इसमें? इसी प्रकार भगवान आत्मा, कहते हैं कि, पर के कारण से दुःख होता है, विकार होता है (ऐसा) कैसे मानता है? स्वरूप की खबर नहीं कि स्वतन्त्र प्रत्यक्ष यह वस्तु है। ऐसा यदि भान हो तो विकार पर के कारण होता है, यह माने नहीं। मैं ही स्वयं मेरे प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में मैं यह कर रहा हूँ। समझ में आया?

प्रत्यक्ष का अनुभव से रहित... हुए। **'अन्ध'**। **'अन्ध'** की व्याख्या की। बोध की व्याख्या प्रत्यक्ष अनुभव। अन्ध की व्याख्या **सम्यक्त्व से शून्य...** यह वस्तुस्वरूप यह

स्वतन्त्र है, ऐसा जो ज्ञान से प्रत्यक्ष होना चाहिए और उसे प्रतीति में यही आत्मा है, वह स्वतन्त्र शुद्ध है, ऐसी प्रतीति है, वह बोध से रहित और समकित से अन्ध, समकित से शून्य। **'बुद्धयः' ज्ञान सर्वस्व जिनका,...** देखो! उसका ज्ञान सब ऐसा हो गया है। **जिनका, ऐसे हैं।** वे सर्व मिथ्यादृष्टि ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं। अब **उनका अपराध कौनसा?** समझ में आया? ओहो! यह तो मुद्दे की रकम की बात है न, इसलिए जरा (स्पष्ट करते हैं)। यह देहादि तो पर है। अब उसमें कहाँ इसके कारण से आये, इसके कारण से रहे और इसके कारण से जाते हैं। आत्मा को कुछ लेना-देना है नहीं। कर्म की बात नहीं की सवेरे? कि कर्म है, वह असद्भूत झूठे नय से इसे सम्बन्ध है। यह शरीर तो साथ में रहता नहीं, आत्मा जाता है तो कर्म साथ में जाते हैं। साथ के साथ (जाते हैं)। इसलिए एकक्षेत्रावगाह गिनकर उसे अनुपचार झूठे नय से सम्बन्ध कहा। यह तो कहीं इसके साथ (नहीं जाते)। यह तो (आत्मा) निकला तो ठप्प हो (जाये)। वे कर्म तो साथ के साथ (रहे)। वे अपने कारण से, हों! कर्म कर्म के कारण से। परन्तु दोनों का ऐसा सम्बन्ध कहना, वह ऐसे नजदीक क्षेत्रावगाह से अनुपचार कहा। बाकी है निमित्त। झूठे नय से असद्भूत। निमित्त सम्बन्ध से उसे सम्बन्ध कहने में आता है। उसके साथ तो कुछ नहीं होता। यह तो कुछ लेना देना नहीं। उसका स्वामी हो गया।

कहते हैं, पर से भिन्न ऐसे अपने ज्ञान से विधुर और समकित से अन्ध अर्थात् समकित से शून्य। वस्तु स्वतन्त्र चैतन्यमूर्ति है। वह स्वतन्त्र शुद्ध है, ऐसा यदि भान हो तो उसे पर से विकार होता है, यह बात उसे रह नहीं सकती। क्योंकि मैं स्वतन्त्र विकार करनेवाला ऐसा था, ऐसा हुआ अर्थात् मुझसे मुझे भान हुआ है। इसलिए विकार पर से होता है, यह बात उसे रहती नहीं। समझ में आया? समकित से शून्य, प्रत्यक्ष ज्ञान के अनुभव से रहित ऐसा जिसका ज्ञान है। अर्थात् कि ऐसा जिसका सर्वस्व है। बस! सर्वस्व ऐसा माना है। हम यह राग, विकार है। जहाँ तक कर्म, वहाँ तक विकार। समझ में आया?

उनका अपराध कौनसा? उत्तर—ऐसा अपराध है... अपराध ऐसा है। **वही कहते हैं—'ये रागजन्मनि परद्रव्यं निमित्ततां एव कलयन्ति' जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसे हैं—राग-द्वेष-मोह (मिथ्यात्व) अशुद्ध परिणतिरूप परिणमनेवाले जीवद्रव्य के**

विषय में... क्या कहते हैं ? **'रागजन्मनि'** अर्थात् मिथ्यात्व, राग की उत्पत्ति। **'जन्मनि'** अर्थात् उत्पत्ति। आत्मा की वर्तमान दशा में मिथ्यात्व, राग-द्वेष का जन्म होना। वस्तु में नहीं है। पर्याय का उत्पन्न होना, वह अशुद्ध परिणतिरूप। देखो! अशुद्ध—मलिन। **परिणमनेवाले जीवद्रव्य के विषय में...** परिणमता जीवद्रव्य। यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष की पर्याय में परिणमनेवाला जीवद्रव्य। उसका अपराध क्या ? वह क्या मानता है ? **जीवद्रव्य के विषय में आठ कर्म, शरीर आदि नोकर्म तथा बाह्य भोगसामग्रीरूप पुद्गलद्रव्य का निमित्त पाकर...** देखो ! उसका **निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है ऐसी श्रद्धा करती है....** कौन करती है ? जीवराशि। हें ? भाई, निमित्त को पाकर विकार होता है, निमित्त पाकर विकार होता है अर्थात् मानो निमित्त है, इसलिए विकार होता है। छोटाभाई !

स्वरूप के भान से तो भ्रष्ट है, समकित से शून्य है, सर्वस्व जिसका ज्ञान उल्टा परिणमित हुआ है। उसका क्या अपराध है ? कैसा अपराध है ? कि जीवद्रव्य अशुद्ध मिथ्यात्व, राग-द्वेष और भ्रमणारूप से परिणमता है, यह विषय सम्बन्धी में, ऐसी परिणति के सम्बन्ध में ऐसा वह अज्ञानी मानता है कि **आठ कर्म....** भाई ! आठ कर्म हैं तो अपने को अशुद्ध परिणति है। यह ज्ञानावरणीय है तो ज्ञान की हीनता है। ऐसे अन्ध समकित से शून्य सर्वस्व जिसका ज्ञान उल्टा है, वे (ऐसी श्रद्धा करते हैं कि), ज्ञानावरणीय है तो ज्ञान की हीनता है। दर्शनावरणीय है तो दर्शन की हीनता है, मोहनीय है तो राग-द्वेष है, मिथ्यात्व है। यह देखो निमित्त। आहाहा ! भाषा भी कैसी है ! **निमित्त पाकर...** ऐसा शब्द है न ? जैसी भाषा लोग कहते हैं, वैसी भाषा है। आहाहा ! 'निमित्त पाकर' ऐसा शब्द है। बोलते हैं, वहाँ भी ऐसा बोलते थे, निमित्त पाकर होता है, निमित्त पाकर होता है। आहाहा ! तब उसने निमित्त माना कहलाये, ऐसा कहते हैं। विकार होता है, वह हो तो होता है तो उसने निमित्त माना कहलाता है। परन्तु तू करे तो होता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। आहाहा ! पूरी दृष्टि में अन्तर। वे यहाँ से लेते हैं।

यह अपराध ऐसा है कि यह मिथ्यादृष्टि जीव की राशि। राशि अर्थात् सब ढ़ेर, हों ! एकेन्द्रिय से लेकर सब। नौवें ग्रैवेयक में जैन दिगम्बर साधु होकर भी गया। उसे

तो इतनी बड़ी विपरीतता नहीं होती। गहरे-गहरे उसे राग का वेदन होता है, उसे मानता है। इतना होता है। अभी तो बहुत स्थूल विपरीत दृष्टि। अभी तो धड़ाके से (चलता है)। निमित्त पाकर होता है, निमित्त पाकर होता है। निमित्त पाकर न माने तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसी पुकार करते हैं। आहाहा! मानो कि परद्रव्य प्राप्त हो तो स्वद्रव्य में विकार होता है। परद्रव्य हो, स्व-पर द्रव्य हो तो विकार होता है अर्थात् परद्रव्य हो तो विकार होता है। परन्तु यह बात कहाँ है? भावबन्ध जो करता है, वह स्वयं अपने कारण से खड़ा करता है। आहाहा! समझ में आया?

आठ कर्म। कहो! आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं और सर्वस्व जिसका ज्ञान खोटा हो गया है, ऐसे खोटे ज्ञानवाले का क्या अपराध? कि यह जो दोष होता है, वह आठ कर्म हैं तो दोष होता है। हैं तो होता है, है तो होता है। परन्तु है तो उसके अस्तित्व में है। यहाँ होता है, वह तेरे अस्तित्व में होता है। वह है तो होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात! सूक्ष्म नहीं। इसे कहे कि बापू! तू भी तेरे अस्तित्व में अशुद्ध परिणति खड़ी हुई, वह सत् है या नहीं? वह सत् का अंश है या नहीं? इसीलिए तो सवेरे कहा था—अशुद्धनिश्चय। निश्चय अर्थात् उस सत् का अंश है, सत् है। परन्तु अशुद्ध है, इसलिए अशुद्धनिश्चयनय कहा। है न यह? यह है या नहीं? यह खरगोश के सींग हैं? और यह है तो कर्म है तो यह है? आहाहा! समझ में आया? बड़ा विवाद। एक निमित्त मान लो तो कुछ नहीं। अर्थात् क्या? कि निमित्त है तो यहाँ होता है, इतना मान लो तो सब छूट जायें। आहाहा! बड़ी भ्रमणा। समझ में आया?

यह गुण की उल्टी अवस्था का उत्पाद, यह उत्पाद है, वह उस कर्म का उत्पाद पर्याय है तो यहाँ उत्पाद है, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? वह आठ कर्म का उदय पका। पका, हों! सत्ता में से। पाक है। वह पाक है तो यहाँ अशुद्धता है। यह मिथ्यादृष्टि जीवराशि का बड़ा अपराध है, वह मोह की सेना को पार नहीं कर सकेगा। मिथ्यात्वरूपी नदी को वह (पार) नहीं उतर सकेगा। आहाहा! ऐ... सोमलचन्दजी! क्या है वहाँ?

अर्थ कैसा किया है? '**रागजन्मनि**' अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष की परिणति

के सम्बन्ध में। ऐसा। समझ में आया? राग-द्वेष अर्थात् राग-द्वेष, मोह की परिणति (रूप) परिणमनेवाले जीव के विषय के सम्बन्ध में। इस सम्बन्ध में मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि आठ कर्म की सामग्री है, सामग्री है, पुद्‌गलद्रव्य का निमित्त है, है; है, इसलिए यहाँ (विकार) होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो उसमें है न? उसमें बहुत डाला है, यही डाला है न? **'रागजन्मनि'** लो, यह श्लोक निकला। कहा, किस पृष्ठ पर होगा? खोजने पर यह आया। **'रागजन्मनि'** है न? **'इहिविधि जो विपरीत पख,...'** (समयसार नाटक)। उसमें आया था न? **'यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः'**

कोऊ मूरख यौं कहै, राग दोष परिनाम,
पुद्‌गल की जोरावरी, वरतै आतमराम॥६२॥

निमित्त है तो यहाँ होते ऐसा।

ज्यौं ज्यौं पुद्‌गल बल करै, धरिधरि कर्मज भेष,
रागदोषकौ परिनमन, यौं त्यौं होई विशेष॥६३॥

इहिविधि जो विपरीत पख, गहै सद्दहै कोई,
रो नर राग विरोधसौं, कबहूं भिन्न न होई॥६४॥

सुगुरु कहै जगमैं रहै, पुद्‌गल संग सदीव,
सहज सुद्ध परिणमनिकौ, औसर लहै न जीव॥६५॥

संग तो है निमित्त।

तातैं चिदभावनि विषै, समरथ चेतन राउ,
राग विरोध मिथ्यातमैं, समकितमैं सिव भाउ॥६६॥

उल्टी मान्यता में राग-द्वेष की उत्पत्ति तुझसे; सुल्टी मान्यता में भगवान चैतन्य की जागृति। आहाहा! समझ में आया? इसके पहले आया था न?

कोऊ सिष्य कहै स्वामी राग दोष परिनाम,
ताकौ मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है।
पुग्गल करम जोग किधौं इंद्रिनिकौ भोग,
किधौं घन किधौं परिजन किधौं भौन है।

गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप,
सबनिकौ सदा असहाई परिनौन है।
कोउ दरब काहूकौ न प्रेरक कदाचि तातैं,
राग दोष मोह मृषा मदिरा अचौन है॥६१॥

यह मिथ्यामदिरा का पीना, उसके कारण राग-द्वेष अज्ञान खड़ा करता है। दूसरा कोई कारण-फारण नहीं है, कहते हैं। आहाहा! इस निमित्तकारण का अर्थ ही कारण नहीं, भाई ऐसा। वह यह है तो करता है, इसका अर्थ क्या हुआ? वह तो उपचारिक कारण हुआ, सच्चा कारण नहीं हुआ। समझ में आया? एक ही कारण है। दूसरा तो उपचारिक निमित्त कहने में आता है। देखो न! कितनी बात लिखी, लो! (तो कहे) यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। यह पण्डित (कृत है)। पण्डित, परन्तु पाठ में है तत्प्रमाण तो कहते हैं। यह कलश किसका है? अपना जहाँ पोषण मिले, ऐसा अर्थ करे। आहाहा! 'जन्मअन्ध का दोष नहीं कठिन, वह नहीं जाने अर्थ परन्तु मिथ्यादृष्टि इससे कठोर, करे अर्थ के अनर्थ।' आहाहा! क्या हो? इसकी सजाई हुई तलवार किस ओर फिराना... ऐसे फिरावे या ऐसे फिरावे, इसके हाथ में है। भगवान आत्मा! आहाहा! क्या श्लोक स्पष्ट है! इतनी इतनी स्पष्टता होने पर हठ छोड़े नहीं। नहीं, नहीं, नहीं।

मुमुक्षु : हठ तो छोड़े नहीं परन्तु दूसरे को छुड़ावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा ही कहे न! तुम ऐसा मानो। और ऐसा मानते हों कि कर्म से विकार नहीं होता, उसे मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानो। आहाहा! क्या ज्ञानावरणीय के बिना ज्ञान की हीनाधिकता होती है? होती है कभी भी? जगत को डूबो देंगे। आहाहा! अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! मिथ्यात्व और राग-द्वेष निमित्त की अपेक्षा रखे बिना स्वतन्त्र करता है। निमित्त की अपेक्षा तो व्यवहार से आती है। यहाँ तो व्यवहार से बात है। निश्चय से तो निरपेक्ष तेरी पर्याय तुझसे परिणमती है। आहाहा! अरे! इतने दोष का भी यथार्थरूप से स्वीकार नहीं। उसे निर्दोष द्रव्य पर दृष्टि कैसे जाये? अंश की वर्तमान परिणति की स्वतन्त्रता के दोष के अंश का भी ख्याल स्वतन्त्रता का न आवे, उसका त्रिकाली अनन्त गुण का समुद्र भगवान आत्मा, वह दृष्टि में कैसे

आवे? आहाहा! समझ में आया? आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। परन्तु आत्मा ज्ञाता कहाँ से आया? कर्म के कारण, निमित्त के कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे, उसमें ज्ञाता-दृष्टा रहा कहाँ? ऐसा माने कि, आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **आठ कर्म, शरीर,...** शरीर... शरीर। वह यह शरीर। यह शरीर उकताहट उपजाता है। कहते हैं कि ऐसे मूढ़ जीव मिथ्यात्व के, राग-द्वेष के पार को नहीं पा सकते। समझ में आया? शरीर। **आदि नोकर्म...** लो! वाणी। भाई! कठिन शब्द पड़े न, ऐसे बाण जैसे पड़ें न, (तो) द्वेष हुए बिना रहे नहीं। मूढ़ है, किसने कहा तुझसे? ऐसा वस्तु के स्वरूप में तो नहीं है। **तथा बाह्य भोगसामग्री...** लो! यह बाह्य भोगसामग्री। पाँच इन्द्रिय के अनुकूल और प्रतिकूल के ढ़ेर। यह '**निमित्ततां कलयन्ति**' क्या कहते हैं? **पुद्‌गलद्रव्य का निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है...** '**कलयन्ति**' अर्थात् परिणमता है। यह **निमित्त पाकर...** '**निमित्ततां कलयन्ति**' निमित्तता। निमित्त है तो यहाँ राग-द्वेष का मिथ्यात्व का परिणमन होता है। '**निमित्ततां कलयन्ति**' इसका अर्थ है। भाई! यह कर्म, शरीर, सामग्री निमित्त है तो '**कलयन्ति**' तो मिथ्यात्वरूप से परिणमता है, द्वेषरूप से परिणमता है—ऐसा जो मानता है... **पुद्‌गलद्रव्य का निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है, ऐसी श्रद्धा करती है,...** कौन मिथ्यादृष्टि जीवराशि। **जो कोई जीवराशि...** जो कोई जीवराशि, **वे मिथ्यादृष्टि हैं—अनन्त संसारी हैं,...** समझ में आया? अब इसका क्या है, इसकी व्याख्या करेंगे। यह क्यों हुआ? पर्याय की शक्ति.... (विशेष कहेंगे......)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक-११-११-१९६५, कलश-२२१,२२२, प्रवचन-२४४-E

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका २९ वाँ (श्लोक) चलता है। क्या कहते हैं? देखो! आचार्य महाराज यहाँ यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जो यह आत्मा है, उस आत्मा का स्वभाव ज्ञान, आनन्दादि शुद्ध है, अनादि से शुद्ध है। वस्तु स्वभाव जो है, वह ज्ञान, आनन्द, दर्शन, वीर्य, शान्ति, चारित्र इत्यादि शुद्ध तत्त्व से भरपूर ही वह आत्मा है। तत्त्व अर्थात् भाव। शुद्धभावस्वरूप भगवान आत्मा है। यह जो विकार करता है, वह कौन कराता है? यह प्रश्न है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि हमको यह विकार होता है, वह आठ कर्म हैं, उनके कारण होता है। समझ में आया?

आत्मा में मलिनता—पुण्य-पाप के भाव या मिथ्यात्वभाव (होता है), पैसे में—धूल में सुख है, स्त्री-परिवार में सुख है, शरीर में सुख है, प्रतिकूलता में दुःख है, मिथ्यात्व की ऐसी मान्यता—मिथ्यात्व कौन उत्पन्न करता है? अज्ञानी कहता है कि वह तो कर्म के कारण से हमको ऐसी भ्रमणा होती है। या शरीर में रोग और निरोगता आवे, उसके कारण हमको ऐसा भाव शरीर के कारण से होता है और या पाँच इन्द्रिय के भोग की सामग्रियाँ जो हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, उनके कारण हमको मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव होता है। कहो, समझ में आया? ऐसा अज्ञानी का कहना और मान्यता है।

यह कहते हैं, **जो कोई जीवराशि...** अर्थात् अनन्त जीव। अनादि काल के इस प्रकार से मानते हैं जो मिथ्यादृष्टि जीवराशि। **आठ कर्म, शरीर आदि नोकर्म तथा बाह्य भोगसामग्रीरूप पुद्‌गलद्रव्य का निमित्त पाकर...** इस पुद्‌गल का निमित्त अर्थात् संयोग को प्राप्त होकर जीव राग-द्वेष अशुद्धरूप से होता है। आत्मा मलिन पुण्य-पाप के भाव बाह्य पदार्थ—सामग्री को पाकर होते हैं। अन्तर सामग्री कर्म और बाह्य सामग्री शरीर और भोग आदि। ऐसी श्रद्धा जो जीवराशि करती है, **जो कोई जीवराशि, वे मिथ्यादृष्टि हैं-अनन्त संसारी हैं,...** समझ में आया इसमें?

आत्मा सिद्ध समान शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। उसके अन्दर में यह विकार कौन

कराता है ? कि अन्तर में कर्म पड़े हैं, उनके कारण हमको विकार होता है और या शरीर के कारण हमको विकार होता है और या शब्द, रूप, रस, गन्ध को सुनने से, अनुकूलता को सुनने से हमको यह राग कराता है और प्रतिकूलता के कारण हमको द्वेष होता है। ऐसा जो जीवराशि—अनन्त जीव के ढ़ेर पड़े हैं, ऐसा जो यह माने, वह मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी जीव है। समझ में आया ? राग-द्वेष और मिथ्याभाव करे स्वयं और डाले कि पर के कारण मुझे होते हैं। इसलिए उसकी भ्रमणा-श्रद्धा तो उल्टी अनादि की है, परन्तु उसमें वापस विकार पर कराता है, ऐसी मान्यता (रखे), इसलिए वह तो मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी है। समझ में आया ? क्या होगा इसमें ? पोपटभाई !

परन्तु अनुकूल सामग्री हो तो राग होगा या नहीं ? यह धूल पाँच-पच्चीस लाख मिली हो, लो न ! यह राग कराती है या नहीं ? पैसा राग कराता है या नहीं ? भगवान कहते हैं कि जो ऐसा मानता है कि यह पैसा राग कराता है, वह मूढ़ अनन्त संसारी जीव है। वह जड़ मिट्टी-धूल है, वह मिट्टी कहीं तुझे राग नहीं कराती। आहाहा ! कैसे होगा ? इस शरीर में रोग आवे, वह जीव को द्वेष करावे या नहीं ?

मुमुक्षु : द्वेष न करावे, दुःख करावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दुःख का अर्थ क्या हुआ ? जेचन्दभाई !

मुमुक्षु : रोग हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। शरीर में रोग हो और शरीर के कारण दुःख हो, भगवान कहते हैं कि मूढ़ मिथ्यादृष्टि अनन्त संसार में भटकनेवाला वह जीव है। मिथ्यादृष्टि में भी उसका अनन्त संसार है, ऐसा (कहते हैं)। बहुत संसार है। क्योंकि स्वभाव में विभाव करता है। वह विभाव पर से होता है, ऐसा मानता है, उसका ठिकाना (कब पड़े) ? स्वभाव में विभाव नहीं, वह तो कहाँ रहा उसके पास ? क्या कहा, समझ में आया ?

ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है, सर्वज्ञ परमात्मा जैसे हुए, ऐसा ही इसका आत्मा का स्वभाव है। अनादि-अनन्त चिदानन्द ज्ञानानन्द निर्दोष वीतराग आत्मतत्त्व है। ऐसे तत्त्व को तो वह जानता नहीं, मानता नहीं, परन्तु विपरीत मान्यता

करता है, अपने आप और कहता है कि कर्म के कारण मुझे मिथ्यात्व होता है। लोग नहीं कहते कि बुद्धि कर्मानुसारिणी? ऐसा मूढ़ लोग बोलते हैं। समझ में आया? कर्म का जैसा उदय आवे, वैसी बुद्धि होती है। आचार्यदेव भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का कहा हुआ कहते हैं कि जो विकार स्वयं करता है और डालता है (कि) कर्म के कारण होता है, वह स्वभाव को तो भूले हैं, परन्तु विकार पर से होता है, इतनी अधिक दुगनी भूल करते हैं। क्या कहा?

मुमुक्षु : इसमें सच्चा क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा जाता है न? यह क्या कहा जाता है यह? जेचन्दभाई! यह क्या कहा जाता है? बापू! यह कहते हैं कि, यह चिल्लाहट मचाते हैं। अरे! यह उकताहट हुई शरीर के कारण, दुःख होता है। कहते हैं कि मूढ़ है, अनन्त संसार में तुझे भटकना है? ऐसे के ऐसे दुःख में। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मर जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ मर जाये? वहाँ मौसीबा बैठी है? यहाँ दुःख का भाव स्वयं करता है और शरीर में प्रतिकूलता के कारण से होता है, ऐसा माननेवाले शरीर को छोड़कर जायेंगे कहाँ? लाओ अब मर जायें। वहाँ कहीं मौसीबा बैठी है? आत्मा तो ऐसा का ऐसा अनादि है। दुःख से यहाँ उत्पन्न किया हुआ भाव लेकर तो वहाँ जाता है। तू कहाँ जायेगा? समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाल जाना, वे फरमाते हैं, ऐसा सन्तों ने फरमाया है और इस प्रकार से है कि भगवान आत्मा ज्ञानानन्द और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द और केवल ज्ञान और वीर्य ही भरा है। उसका भान भूलता है और मिथ्याश्रद्धा (करता है)। यह पुण्य के भाव हों तो मुझे मजा आये, यह पुण्य के फल अनुकूल मिले तो मुझे ठीक पड़े, भाव में यह पाप होता है, यह मुझे ठीक होता है, पाप के फल मुझे मिलें, यह अठीक होता है। ऐसी जो मान्यता मूढ़ जीव अपने स्वभाव को भूलकर करता है और डालता है कि कर्म और शरीर के कारण यह विकार होता है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह जीवराशि मिथ्यादृष्टि है। उसकी व्याख्या की। मिथ्यादृष्टि अर्थात् कि अनन्त संसारी, ऐसा। लाईन (लम्बा डेश) की है न? समझ में आया? आहाहा! तुझे भूल की खबर नहीं। तेरी भूल तू करता है कोई शरीर नहीं, कर्म नहीं, देह नहीं, पैसा, स्त्री, पुत्र, तीन काल में कोई तेरे दोष को करते नहीं। उसमें तुझे दोष करे ऐसी शक्ति नहीं और तुझमें उससे दोष हो, ऐसी तुझमें शक्ति नहीं। समझ में आया? पर्याय में—अवस्था में शुद्ध ज्ञानघन ज्ञाता चिदानन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसके ओर के लक्ष्य को भूलकर स्वयं पर के लक्ष्य से मिथ्याभ्रम और राग-द्वेष करे और माने कि हमको तो यह कराता है, भाई! समझ में आया? वह अनन्त संसारी है। वह अनन्त दु:ख में भटकनेवाला और तड़पनेवाला है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : किस प्रकार से रुके?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, इस (प्रकार से) मिटे। मेरी भूल मुझसे है। ये भगवान आत्मा की दृष्टि करने से भूल नहीं है। यह तो पहले आ गया है। विदित होओ कि मेरी भूल—दोष मुझसे मुझमें है और उस भूल का भान होने पर और मुझे स्वरूप में वह भूल नहीं, ऐसा स्वभाव का भान कर तो दु:ख मिटने का उपाय है, बाकी कोई उपाय नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु कभी कहाँ दरकार (की है)? होली (सुलगती है), पूरे दिन और रात यह कमाया और यह खाया और यह पीया और यह किया, धूल की और धाणी की। हराम, पर का कुछ करता (हो तो)। अन्दर विकल्प के ढ़ेर किया करे। राग और द्वेष, राग और द्वेष, राग और द्वेष। और कहे कि, क्या कहें? हमको करना पड़ता है, परवस्तु के कारण हमें करना पड़ता है या नहीं? स्त्री, पुत्र गले पड़े हैं तो करना पड़ेगा या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे लिये तो यह बात करते हैं। बड़ी दुकान लगायी, अब उसका निभाव करना पड़ेगा या नहीं? कहाँ जाना हमें? दीवाला निकालना? परन्तु किसकी (दुकान)? दुकान-बुकान जड़ की परवस्तु है। तूने कहाँ लगायी थी? वह तो जड़ है, पर है। तू तो आत्मा है। तेरी दशा में राग-द्वेष कर, पर का कर सकता है? और

पर का करने का मानता है, वह भी ऐसा कहते हैं कि पर के कारण यह मेरी मान्यता होती है। समझ में आया? आहाहा! खोटा होकर और खोटा होकर खड़ा रहे और कहे कि खोटा क्या कहते हैं? भाई! संयोग ऐसे आवें तो अपने को खोटा खड़ा हो ही। बहुत अच्छा, दोष करने में तू धोये हुए मूले जैसा होगा। दोष पर के कारण होते होंगे? जेचन्दभाई! देखो! यह चिल्लाहट मचाने जैसा है। हों! इसमें अनन्त पाप बाँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शरीर मिट्टी है, धूल है; भगवान आत्मा चैतन्य भिन्न है। कर्म जड़ मिट्टी, सूक्ष्म रजकण अन्दर सूक्ष्म धूलकर्म है। वह कर्म जड़ है, भगवान आत्मा चैतन्य भिन्न है, वह कर्म जीव को विकार-दु:ख करावे या कर्म आत्मा को सुख की कल्पना करावे और शरीर दु:ख का कारण हो और शरीर आत्मा को सुख-अनुकूल (रहे); इसलिए सुखी। मूढ़ है, सुख तो तेरी कल्पना से किया है। वहाँ धूल में कहाँ था? वह तो मिट्टी है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे जहाँ अच्छे-अच्छे शब्द ऊपर पड़े, खम्मा अन्नदाता! तुमने तो ऐसे काम किये, ऐसे काम किये। फूलकर अन्दर डेढ़ा हो जाता है। अच्छा मूढ़ है। अच्छा तो अन्दर स्वभाव है, उसका भान कर तो अच्छा होगा। दुनिया महिमा करे फिर इसे (ऐसा हो जाता है कि) हमारे जैसा कोई नहीं, हमारे जैसा कोई नहीं। ऐसी भ्रमणा के अज्ञानभाव को सेवन करे और (कहे कि), भाई! ऐसे संयोग में ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते। वे उसके कारण से आते हैं, (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी जीव है। ऐसे के ऐसे दु:ख की खदबदाहट में इसे अनन्त काल रहना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जिससे ऐसा विचार है कि संसारी जीव के रागादि अशुद्धरूप परिणमनशक्ति नहीं है,... देखो! अज्ञानी ऐसा मानता है, अब यहाँ जरा विशिष्टता इसमें है कि आत्मा वस्तुरूप से स्वभाव तो शुद्ध आनन्द है, परन्तु पर्याय में विकार होने की शक्ति ही नहीं, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया इसमें? वस्तु तो वस्तु शुद्ध चिदानन्द द्रव्य वस्तु है, परन्तु पर्याय में-अंश में उसे विकार होने की योग्यता और शक्ति स्वयं की नहीं। वह सब विकार पर 'पुद्गल की जोरावरी से वर्ते आतमराम'—ऐसा अज्ञानी मूढ़ जीव वस्तु

के स्वभाव के तो अनजान हैं, परन्तु विकार के भी अनजान हैं, विकार कैसे होता है, इसके अनजान हैं। समझ में आया इसमें? वस्तु ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त चैतन्य है। ऐसी वस्तु के तो अनजान, परन्तु विकार करने की पर्याय की उसके अंश में शक्ति है, उसके भी अनजान, ऐसा कहते हैं। कहो, बराबर होगा?

हूंफ चढ़ जाये, हों! दो-पाँच करोड़ रुपये हो जायें तो हूंफ चढ़ या नहीं उसके कारण? और उसमें जहाँ इसे धक्का लगे (तो) हाय... हाय...! हमारा जीवन खारा हो गया। क्या करना? पीवो सोमल (जहर)। कहाँ जाओगे? परन्तु मरकर जाओगे कहाँ? तुम्हारा तत्त्व शाश्वत् है। अखण्डानन्द तत्त्व तो ध्रुव आत्मा है, कभी नाश हो, ऐसा नहीं है। कहाँ जाना है तुझे? आहाहा! भाई! ऐसी उलझन आवे तब जीवन खारा लगे, तुमको ऐसा आया नहीं। और ऐसा बोले। ऐसी प्रतिकूलता के संकट में आवें और ऐसा भाव उसके कारण से हुए बिना रहता नहीं। मूढ़ है। कहते हैं कि तेरे स्वभाव का तो तुझे भान नहीं, परन्तु तेरे अंश की शक्ति में विकार करने की तेरी ही लायकता और योग्यता है। ऐसे अंश में मिथ्यात्व की शक्ति से परिणमने की योग्यता तेरी है, उसकी भी तुझे खबर नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। क्या कहा इसमें? जमुभाई!

वस्तु भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञानानन्द वस्तु स्वभाव है। उसकी तो तुझे खबर नहीं, परन्तु तेरी वर्तमान दशा में दोष की उत्पत्ति होना, वह तेरी योग्यता के परिणमन के कारण से है, उसकी तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो भाषा रही, बैठता है कहाँ इसे? दोष से बन्धन नहीं, वह दोष है, उसे तू करता है, ऐसा। वह दोष तू करता है, वह दोष करने की तेरी पर्याय में—अवस्था में शक्ति की योग्यता है, ऐसा कहते हैं। वह दुःख की योग्यता कर्म के कारण से नहीं, शरीर के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। द्रव्य के स्वभाव के कारण से तो नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द मूर्ति ज्ञानानन्द सत् शाश्वत्, ऐसे स्वभाव में तो विकार करने की उसकी एक समय में भी योग्यता नहीं और परपदार्थ में भी योग्यता नहीं कि जीव को विकार करावे एक समय में। तेरी एक समय

की पर्याय में अंश में विकृत करने की, परिणमने की, होने की, दोषरूप होने की एक समय की योग्यता तेरी, तुझमें, तेरे कारण से है।

ऐसा न मानकर **पुद्गलकर्म बलात्कार ही परिणमाता है।** इस शरीर का रोग ही हमको दुःख उपजाता है, चारित्रमोह का उदय हमको दुःख उपजाता है, दर्शनमोह का उदय हमको भ्रमणा कराता है, ऐसा जो मानता है, वह मूढ़ है। (उसे) नहीं स्वभाव का भान, नहीं उसकी एक समय की विकृत करने की मिथ्यात्व की योग्यता का भान। समझ में आया?

मुमुक्षु : भान तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या भान है? मुफ्त का पागलरूप से बोलता है। क्या (कहा)? पागल की भाँति बोलता है कि यह... यह... यह... यह लो, भाई! दोष तो आत्मा का होगा न? आत्मा का होगा अभी, आत्मा का है, ऐसा कहाँ है? न भी हो। वह न्याय आवे, इसलिए न हो, वह हाँ करना पड़े। सामने उत्तर मिले नहीं। ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा अपने अखण्डानन्द प्रभु को देखता नहीं, अन्तर (में) जानता नहीं, मानता नहीं, वह तेरी पर्याय का दोष है। समझ में आया? देखना, जानना, अनुभव करना, वह तो स्वभाव की शक्ति है। आहाहा! समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी श्रद्धा, उसका—आनन्द का अनुभव और उसका—स्व का ज्ञान, वह तो इसके स्वभाव की योग्यता की शक्ति ऐसी है। परन्तु इसकी पर्याय में इसने यह देखूँ, यह देखूँ और यह रमना, ऐसा नहीं। आहाहा! अपने सामान्य को न देखकर, स्वभाव को न देखकर विकार के क्षणिक विकृत की दशा के अंश को ही अपना मानकर, अपनी योग्यता से वह विकार करता है, उसे भी वह अज्ञानी स्वीकार नहीं करता। समझ में आया? यह बड़ी भूल है। अनादि से मानता है।

जैन में रहे हैं न! कितने ही नहीं कहते? भाई! कर्म का उदय है। सीधा जवाब दे देवे। क्रोध आया। कर्म का उदय है। बहुत अच्छी बात है। गोम्मटसार में लिखा है, चारित्रमोह का उदय हो तो क्रोध होता है। क्या उदय हो तो होता है? वह तो तू करे, तब उदय कौन था, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? ऐसे प्रसंग आ पड़े, न हो तो भी

विकार करना पड़े। यह प्रसंग कराते हैं, प्रसंग बलजोरी से कराता है। ऐसा जो मानता है, उसे भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव कहते हैं कि वह जीवराशि अनन्त संसारी है। उसे अनन्त दु:ख में भटकना है, इसलिए ऐसा मानते हैं। कहो, पोपटभाई! आहाहा! उल्टा भाव होना, वह भी तेरे कारण से है। समझ में आया? किसी दूसरे के कारण से नहीं। सुल्टा स्वरूप तो तेरा स्वरूप है। वह तो शुद्ध चिदानन्दमूर्ति अखण्डानन्द है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छूटा न! उसे कहाँ करना था? पर करावे, इतनी बात है। छूटना क्या उसे था? यही कहते हैं। पर करावे, तो पर होगा तब तक हुआ करेगा। इसलिए तेरे स्वभाव की शुद्धि करने का अवसर नहीं रहेगा, धर्म करने का (अवसर नहीं रहेगा)। मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ, ज्ञाता-दृष्टा—ऐसी श्रद्धा और अनुभव करने का उसे अवसर नहीं रहता। कहो, समझ में आया?

जिससे ऐसा विचार है कि संसारी जीव... अनादि निगोद से लेकर जो अनन्त जीव हैं। वे राग और द्वेष और मिथ्यात्वरूप **अशुद्ध (रूप) परिणमनशक्ति नहीं है,...** उसकी दशा में विकार होने की शक्ति नहीं, ऐसा मानता है। ऐसा कहना है। विकार करने की भी उसकी दशा में शक्ति स्वयं के कारण से है, कर्म के कारण से, शरीर के कारण से, भोगसामग्री के कारण से नहीं। **जो ऐसा है तो पुद्‌गलकर्म तो सर्व काल विद्यमान ही है।** देखो! कर्म, शरीर और भोगसामग्री सदा है तो सदा ही तुझे विकार करने की योग्यता रहा ही करेगी, कभी टालने का (अवसर) रहेगा नहीं।

जीव को शुद्ध परिणाम का अवसर कौन? भगवान आत्मा तो शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है, ऐसा सम्यग्दर्शन करने का तुझे अवसर तो रहता नहीं। क्योंकि कर्म विकार करावे, कर्म विकार करावे, शरीर विकार करावे, भोगसामग्री विकार करावे। समाप्त हो गया, वह सामग्री सदा ही है। सदा ही है तो सदा तुझे विकार रहा करेगा। सदा ही है, सदा ही संग में है। सदा ही किया करेगा। शुद्धस्वभाव स्वयं अपने से विकार मिथ्यात्व, अज्ञान करता है, ऐसा माने तो पुरुषार्थ से स्वभाव से टाल सके, परन्तु विकार पुरुषार्थ से होता है, ऐसा न माने, उसे पुरुषार्थ से विकार टालने का रहता नहीं। समझ में आया? अपने में मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान और राग-द्वेष परिणाम स्वयं से पुरुषार्थ से होते हैं,

उल्टे पुरुषार्थ से होते हैं, ऐसी मेरी शक्ति से होते हैं, ऐसा जो मानता है, वह सुल्टे पुरुषार्थ से आत्मा की दृष्टि करे। समझ में आया?

जो ऐसा है तो पुद्गलकर्म तो सर्व काल विद्यमान ही है। वह सामग्री तो सदा ही है। जगत के रजकण कब नाश हों ऐसे हैं? **जीव को शुद्ध परिणाम का अवसर कौन?** भगवान आत्मा यदि परपदार्थ के कारण ही विकार हो (तो) परपदार्थ की अस्ति तो त्रिकाल रहेगी। वस्तु कब नाश होगी? ज्ञानमूर्ति आत्मा हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन करने का शुद्ध चैतन्य की प्रतीति करने का अवसर रहेगा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! एक भी विचार किया है कभी? अन्ध के अन्ध चले जाते हैं। क्या होगी भूल? और क्या होगा अन्दर भगवान आत्मा का स्वभाव? कौन होगा कर्म? ऐसे का ऐसे अन्ध का अन्ध (चलता जाता है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पात्रता न हो तो बापू! ऐसे नहीं मिलता, भाई! समझ में आया? पात्र हो तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ उपस्थित हैं। आहाहा! भगवान नहीं विराजते? महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं। तीर्थंकरदेव सीमन्धर प्रभु साक्षात् विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। इसकी पात्रता हो तो यह वहाँ अवतरित हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया? और जहाँ-जहाँ धर्मात्मा हो, वहाँ-वहाँ भी यदि इसकी योग्यता हो तो आये बिना रहे नहीं। और योग्यता न हो तो आवे तो भी उलटा लेकर लजाये। उसमें इसकी स्वयं की योग्यता न हो, वहाँ क्या करे? लो, यह तो कहता है कि दोष कर्म के कारण होता है। अपने तो जैन में अभी तक ऐसा सुना है। ज्ञानावरणीय कर्म के कारण ज्ञान रुकता है। ऐसा स्पष्ट सुना है। ज्ञानावरणीय कर्म नाम किसलिए रखा? ऐसा तो हमने सुना है और यह कहते हैं कि नहीं, नहीं; ज्ञानावरणीय से ज्ञान नहीं रुकता। यह क्या हुआ? क्यों, छोटाभाई! आहाहा!

हमने तो ऐसा सुना था कि ज्ञानावरणीय कर्म है, वह जैसा उदय आवे तो ज्ञान को रोके। यह स्पष्ट बात है। ज्ञानावरणीय का अर्थ करो। ज्ञानावरणीय कर्म अर्थात् क्या? आत्मा के ज्ञान को ढाँके, उसका नाम ज्ञानावरणीय। अब ऐसा स्पष्ट अर्थ है और यह कहता है, भगवान कहते हैं कि नहीं, नहीं। ज्ञानावरणीय से तेरा ज्ञान नहीं ढँकता। यह

तेरे ज्ञान की उल्टी दशा तू करे, तब निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिये बात की है। घातिकर्म नाम रखा, लो! घाति, घनघाति शास्त्र में आवे। चार घनघाति कर्म आते हैं या नहीं? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय चार घनघाति और चार अघाति। घनघाति कर्म तब आत्मा में घन मारता होगा या नहीं? अरे! भगवान! सुन तो सही! परद्रव्य वह आत्मा को क्या करे? धूल में भी नहीं आता।

यह तो कहते हैं कि तू जब उल्टी श्रद्धा, उल्टा ज्ञान तुझसे करे, तब वह सामने निमित्त चीज़ है, उसे घाति कहा जाता है। तू करे तो उसे घाति नाम पड़े; न करे तो उदय आकर चला जाता है। ऐसी उल्टी विपरीतता पकड़ी होती है न! भूल करे तो भी कर्म के ऊपर डाले। गुण तो कहाँ है, इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? परन्तु यह कहाँ विचार करना है वहाँ? वह तो यह करो, धर्म करो। किसमें धर्म होता होगा? धर्म किसे कहना? समझ में आया?

जीव को शुद्ध परिणाम का अवसर कौन? अपितु कोई अवसर नहीं। यदि परपदार्थ ही आत्मा को दोष करावे तो परपदार्थ की अस्ति तो त्रिकाल है। इसलिए त्रिकाल तुझे आत्मा का धर्म शुद्ध चिदानन्द ज्ञान है, ऐसी श्रद्धा करने का, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का अवसर तुझे है नहीं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि रहकर हमेशा भटकना पड़ेगा। समझ में आया? यह २९ श्लोक पूरा हुआ।

कलश - २२२

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ।।३०-२२२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीवद्रव्य, ज्ञायक है, समस्त ज्ञेय को जानता है; इसलिए परद्रव्य को जानते हुए, कुछ थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्धपरिणति का विकार होगा? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्य को जानते हुए तो (विकार) एक निरंशमात्र भी नहीं है; अपनी विभावपरिणति करने से विकार है; अपनी शुद्धपरिणति होनेपर, निर्विकार है। ऐसा कहते हैं— 'एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां उदासीनतां किं मुञ्चन्ति' [एते अज्ञानिनः] विद्यमान हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव, वे [किं रागद्वेषमयीभवन्ति] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति में मग्न, ऐसे क्यों होते हैं? तथा [सहजां उदासीनतां किं मुञ्चन्ति] सहज ही है सकल परद्रव्य से भिन्नपना, ऐसी प्रतीति को क्यों छोड़ते हैं? भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है; (लोग; जीव) विचलित होते हैं, सो पूरा अचम्भा है। कैसे हैं अज्ञानी जीव? 'तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणाः' [तद्वस्तु] शुद्धजीवद्रव्य की [स्थिति] स्वभाव की मर्यादा के [बोध] अनुभव से [वन्ध्य] शून्य है [धिषणाः] बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। जिस कारण से 'अयं बोधा' विद्यमान है जो चेतनामात्र जीवद्रव्य, वह 'बोध्यात्' समस्त ज्ञेय को जानता है, इस कारण 'कामपि विक्रियां न यायात्' राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप नहीं परिणमता है। कैसा है जीवद्रव्य? 'पूर्णैकाच्युतशुद्ध-बोधमहिमा' [पूर्ण] नहीं है खण्ड जिसका, [एक] समस्त विकल्प से रहित, [अच्युत] अनन्त कालपर्यन्त स्वरूप से नहीं चलायमान, [शुद्ध] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित—ऐसा जो [बोध] ज्ञानगुण, वही है [महिमा] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। दृष्टान्त कहते हैं— 'ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव' [ततः इतः] बाएँ-दाहिने ऊपर-तले आगे-पीछे [प्रकाश्यात्] दीपक के प्रकाश से देखते हैं घड़ा, कपड़ा इत्यादि, उस कारण [दीपः इव] जिस प्रकार दीपक में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। भावार्थ इस प्रकार है

कि जिस प्रकार दीपक, प्रकाशस्वरूप है, घट–पट आदि अनेक वस्तुओं को प्रकाशता है। प्रकाशते हुए जो अपना प्रकाशमात्र स्वरूप था, वैसा ही है; विकार तो कुछ देखा नहीं जाता। उसी प्रकार जीवद्रव्य, ज्ञानस्वरूप है; समस्त ज्ञेय को जानता है। जानते हुए जो अपना ज्ञानमात्र स्वरूप था, वैसा ही है। ज्ञेय को जानते हुए, विकार कुछ नहीं है— ऐसा वस्तु का स्वरूप, जिनको नहीं भासित होता, वे मिथ्यादृष्टि हैं।।३०–२२२।।

कलश - २२२ पर प्रवचन

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ।।३०–२२२।।

भावार्थ—जरा बात इसने समझण में सच्ची बात कभी ली नहीं और लेने की दरकार की नहीं। साधु नाम धरावे और ऐसा माने। समझ में आया ? यह राग–द्वेष होते हैं, कर्म हो तब तक राग–द्वेष होते हैं। तुमको खबर नहीं। सामनेवाले को ऐसा कहे। राग–द्वेष होते हैं, बापू ! साधु हुए परन्तु कहीं वीतराग हो गये हैं ? सराग है। इसलिए राग कर्म हो तब तक होता है। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। तेरा दृष्टि में ठिकाना नहीं है। तुझे किसका त्याग और साधुपना किसे कहना ? समझ में आया ? भगवान आत्मा प्रभु सर्वज्ञ ने पूर्ण देखा, ऐसा कहते हैं।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीवद्रव्य ज्ञायक है,... देखो ! और ऐसा कहते हैं। यह आत्मा तो जाननेवाला है, जाननेवाला चैतन्य है। **समस्त ज्ञेय को जानता है,...** पर को जाने। **इसलिए परद्रव्य को जानते हुए कुछ थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणति का विकार होता होगा ?** क्या कहते हैं ? आत्मा तो जाननेवाला है। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... जानना–देखना। और वह परद्रव्य को जानने से उसे थोड़ा–बहुत तो राग–द्वेष होता होगा, हों ! अब यह जानने की बात में लेते हैं। समझ में आया ?

जीव भगवान आत्मा तो चैतन्य जानन तत्त्व है। उसे ज्ञेय को जानते हुए, कहते हैं, सब ज्ञेय को जाने। परद्रव्य को जानते हुए कुछ थोड़ा बहुत, भले थोड़ा बहुत भी राग-द्वेष अशुद्ध परिणति का विकार होता होगा। समझ में आया? ऐसा मिथ्यादृष्टि समझने के लिये आशंका करता है। यहाँ तो आशंका ली है न!

उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्य को जानते हुए तो एक निरंशमात्र भी नहीं है, अपनी विभाव परिणति करने से विकार है। ऐसा साथ में लिखा है। क्या कहा? आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला है। यह जाननेवाला-देखनेवाला पर को जानते हुए देखे कि शरीर में रोग है। यह कर्म का उदय आया, उसे ज्ञान में जाने। यह सामग्री आयी है, ऐसा जाने। ज्ञान उसे जानते हुए कुछ थोड़ा बहुत विकार होता होगा या नहीं? बिल्कुल नहीं। ज्ञान में पर के कारण विकार हो, ऐसी आत्मा में शक्ति नहीं और पर उसे विकार उपजावे, ऐसी उसमें (पर में) शक्ति नहीं।

दूसरे प्रकार से (लें) कि ज्ञान आत्मा है, वह शरीरादि को जाने तो परद्रव्य द्वारा पर्याय में विकार हो, ऐसी पर में सामर्थ्य नहीं और आत्मा पर को विकार उपजा सके, अथवा पर को फेरफार कर सके और परद्रव्य आत्मा को फेरफार करा सके, (ऐसी उसमें सामर्थ्य नहीं)। समझ में आया? परवस्तु द्वारा उपजना या पर को उपजाना, ऐसा आत्मा में है नहीं। कर्म के कारण और शरीर के कारण विकार उपजना, ऐसा आत्मा में नहीं है और आत्मा पर को जानते हुए या पर को जाने, इसलिए उसमें पर में विक्रिया हो जाये, ऐसा नहीं है और उसके कारण यहाँ विक्रिया हो जाये, ऐसा दोनों में नहीं है। जानने का स्वभाव है। जाननेवाला जाने, ज्ञेय में ज्ञेयपना रहे। समझ में आया?

भाई! यह बकरा कटता हो और नजर करे तो अन्दर कषायभाव आये बिना रहे? नहीं, नहीं। ऐसा यहाँ कहते हैं। जानने का ज्ञान का स्वभाव, ज्ञेय का जनवाने (प्रमेय होने) का स्वभाव। जनवाने के स्वभाव में जानने के स्वभाववाले को विकार करा दे और जीव में विकार पर के कारण हो, ऐसी आत्मा में शक्ति नहीं। विकार पर के कारण हो, ऐसी शक्ति नहीं और उसे विकार उपजावे, ऐसी पर में शक्ति नहीं। समझ में आया? कितनी बात दृढ़ है यह बात। अब ऐसी बात है तो भी (विरोध करे)। त्रिकाल सत्य। वस्तु सत्य हो तो कहे कि दूसरी असत्य होगी? जहाँ हो वहाँ यह।

उनको ईश्वर करावे, कर्ता ईश्वर। ईश्वर करावे। ईश्वर बिना कुछ पत्ता हिले? तुझे पाप भी ईश्वर कराता होगा? भोग-वासना, युद्ध, क्रोध, मान, माया ईश्वर कराता होगा? यह जैन नाम धरावे और कहे, कर्म कराता है। उनको और ईश्वर-चैतन्य कराता है और इसको जड़ करावे। यह अधिक आगे बढ़ा। समझ में आया? आता है या नहीं? तुम्हारे आता है कि ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता। मैंने सुना है न, कानोंकान एक बार। गढडा में सीखावे न। एक बार स्वामीनारायण के मन्दिर में (संवत्) १९६८ में गये थे। नरसिंहभाई के काका और मैं, दोनों (गये थे)। उन्हें खबर, गाँव में खबर (थी) कि यह दीक्षा लेनेवाले हैं। वे नाटा-नाटा साधु थे। हम दोनों देखने गये कि क्या है। वे ऐसा बोलते थे, ईश्वर (के बिना) पत्ता (हिलता नहीं)। वहाँ वृक्ष था। उस ओर आगे वाड है। ईश्वर के बिना कोई पत्ता हिलता है? अर्थात् यह सब पाप ईश्वर करावे। युद्ध, खूनखच्चर करावे ईश्वर, अभी पाकिस्तान और भारत को युद्ध करावे ईश्वर। इसका अर्थ क्या? ऐसे यह जैन में जन्मे हुए कहे, अपने को कर्म करावे, बापू! अपने तो कर्म प्रधान है न? किसने कहा तुझे ऐसा परन्तु यहाँ? अपने कर्मप्रधान, उन्हें ईश्वरप्रधान।

यहाँ कहते हैं कि तू ऐसा मूढ होकर जाननेयोग्य वस्तु को विकार का कारण बनाता है, उस विकार का कारण वह नहीं, विकार का कारण तेरी पर्याय है। समझ में आया? जमुभाई! क्या होगा यह? ओहो! इतना भी इसे समझण में नहीं आया होगा? बोलता है या नहीं यह? बोलता है। आत्मा में तो केवलज्ञान भरा है। क्यों पर्याय में नहीं होता? अवस्था क्यों नहीं प्रगट होती? इतनी खबर नहीं पड़ती कि कर्म अवरोध है इसलिए नहीं होती। मूढ़ है। किसने कहा तुझे ऐसा? कर्म तो ज्ञेय है, वे तो ज्ञेय हैं। वे ज्ञान को हीन कर दे? समझ में आया? (स्वयं) उल्टा करे और डाले कर्म के ऊपर। अब इसका कब अन्त आयेगा? आहाहा!

दृष्टान्त दे, शास्त्र में यह लिखा, देखो! ज्ञानावरणीय का उदय हो तो उघाड़ हो, तो भी नाश हो जाये, उघाड़ होने दे नहीं। परन्तु किस अपेक्षा से कथन है? सुन न! लिखा है, क्या लिखा है? किस अपेक्षा से लिखा है, उसके भान बिना। घी का घड़ा लिखा है। कहो, घी का घड़ा लिखा है। घी का घड़ा होता होगा? चद्दर का डिब्बा होता है। पाँच सौ डिब्बे घी के दिये, लो! पाँच सौ डिब्बे घी के। घी के डिब्बे होते होंगे?

उसमें घी पड़ा है, उसे डिब्बे से बतलाया है। इसी प्रकार जब विकार करता है, जीव अपनी हीन दशा करता है, तब कर्म कौन था, उसे बतलाया है। वहाँ यह चिन्ता की शास्त्र में ऐसा कहा है। किया तूने, शास्त्र की क्या खबर पड़े? कहो, समझ में आया? और एक व्यक्ति शास्त्र के दृष्टान्त दे, देखो! यह शास्त्र में कहा। देखो! हम नहीं जानते थे कि तुम उसे मिथ्या करोगे। ऐसे के ऐसे पके हैं न! परन्तु वह व्यवहार के कथन अर्थात् निमित्त का ज्ञान कराने के कथन हैं। खोटा करने की बात ही कहाँ थी? समझ में आया?

वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर जीव का दोष है, यह आया न? क्या कहा? **जीवद्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेय को जानता है,...** देखो! भाषा। यह तो भगवान चैतन्यस्वरूप, उसका सब जानने का स्वभाव है। कान में 'कर्म' शब्द पड़ा तो भी वह जानने का उसका स्वभाव है। शरीर जानने का स्वभाव है, रोग जानने का स्वभाव है, निरोग जानने का स्वभाव है, स्त्री, सुन्दर वह सुन्दर-फुन्दर नहीं कुछ। जानने का स्वभाव है, कुरूप जानने का स्वभाव है, निन्दा जानने का स्वभाव है, प्रशंसा जानने का स्वभाव है, दुर्गन्ध जानने का स्वभाव है, सुगन्ध जानने का स्वभाव है, कोमल चीज़ जानने का स्वभाव है, कर्कश जानने का स्वभाव है। आहाहा! जानने के स्वभाव उपरान्त यह तू कहाँ से लाया? कहते हैं। क्या कहा? जानने के स्वभाव उपरान्त यह घुसाया कहाँ से कि जानने पर यह मुझे विकार करावे? अरे रे! आहाहा!

वह तो उसके कारण से उस क्षण में दोष स्वयं के कारण से होता है, कागज के कारण से होता है? कागज में ऐसा आया कि तुम्हारा पुत्र मर गया। वह तो जड़ है। वह तो ज्ञान ने जाना, ज्ञान ने जाना कि ऐसा है। जानने में उसने कहाँ विकार कराया है? तेरे भुंडप के काल बिना विकार जरा भी होता नहीं, ऐसा कहते हैं। तेरी विपरीतता की योग्यता बिना कुछ दोष होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कौन पक्का करे? करनेवाला करे तब होगा या कोई करा देता होगा? भगवान के पास अनन्त बार गया था, समवसरण में अनन्त बार गया, ऐसा का ऐसा रहा। ऐसा का ऐसा धुले हुए मूला जैसा। सर्वज्ञ के समवसरण में गया, परन्तु क्या कहते हैं, इस बात को अन्दर बैठने नहीं दिया। कुछ... कुछ... कुछ... अन्दर में गड़बड़ की। समझ

में आया ? वह गड़बड़ क्यों की ? तो कहे, दर्शनमोह के कारण से। ऐसा कहे। ऐसा निमित्त था और क्यों नहीं प्राप्त हुए ? इसलिए तुम निमित्त के कारण से नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। नहीं, अन्दर दर्शनमोह है, उसके कारण से नहीं हुआ। दर्शनमोह तो जड़ की पर्याय है। उस जड़ की पर्याय के कारण तुझमें भूल हुई ? उस जड़ की पर्याय के कारण तुझमें भूल की पर्याय आयी ? वह पर्याय है, एक कर्म के रजकण का उदयभाव, जड़ की विकृत अवस्था। उसके कारण विकृत अवस्था तुझमें आयी ? समझ में आया ? जाननेवाला जानता है, वह ज्ञात होनेयोग्य ज्ञात होता है, तदुपरान्त ऐसा कहे कि यह जानने से मुझे इसके कारण विकार हुआ, यह मिथ्याभ्रम से विपरीतता घुसाई है। समझ में आया ?

निन्दा के शब्द, प्रशंसा के शब्द। ये शब्द आत्मा को राग-द्वेष उपजाते हैं ? और यह शब्द कहते हैं कि देखने खड़ा रह और राग करके, द्वेष करके ? यह तो गाथायें हैं। उनकी तो यह वस्तु है। निन्दा के, प्रशंसा के शब्द तुझे ऐसा नहीं कहते। यह आयेगा न ? यज्ञदत्त, देवदत्त को पकड़कर कहे कि देख खड़ा रह। देख... देख...! इसी प्रकार दीपक को वे पदार्थ कहते नहीं कि खड़ा रहे और मुझे प्रकाशित कर। दीपक भी वहाँ प्रकाशित करने नहीं जाता। दीपक दीपक में प्रकाशरूप है। प्रकाशित होने योग्य वस्तु उसकी उसमें रही है। उसी प्रकार चैतन्य दीपक प्रकाशनेयोग्य वह स्वयं अपने में है। प्रकाशित योग्य, ज्ञात होनेयोग्य वस्तु वस्तु में है। वह चीज़ कहती नहीं कि मुझे जानने के लिये रुक। और जाननेवाला ज्ञान वहाँ जाकर, उसे छूकर जाता है, समीप में जाता है, ऐसा है ? जाननेवाला जाननेवाले में रहकर पर को जानता है, यह तो जानने का स्वभाव और पर का जनवाने का स्वभाव है। तदुपरान्त बीच में डाला, वह तेरी घर की विपरीतता है। समझ में आया ?

दोष का कारण कोई ज्ञेय नहीं है, ऐसा कहते हैं। तेरा स्वभाव जानने का है। ज्ञेय का प्रमेय होने का स्वभाव है। प्रमेय का विकार कराने का स्वभाव है ? और ज्ञान का प्रमेय के कारण से विकार हो, ऐसा उसका स्वभाव है ? समझ में आया ? ओहो !

इसी प्रकार शरीर में पीड़ा होती है। पीड़ा की व्याख्या क्या ? रोग। पीड़ा कब थी जड़ को ? क्या आता है ? लोहे का चढ़ा हो फिर चढ़े, क्या कहते हैं न ? यह लोहे के

काट से कुछ होता है न? धनुर... धनुर..। ऐसे त्रस कोथला जैसा हो गया। परन्तु वह तो शरीर की पर्याय है, वह तो जानने की योग्यता है। वह शरीर की पर्याय तुझे ज्ञान में ज्ञात होती है। वह ज्ञान उपरान्त तुझे वहाँ विकार कराती है? समझ में आया? और ज्ञान उसे जानता है। ज्ञान जानते हुए उसके ऊपर यह ठीक है या यह अठीक है, ऐसा तेरा ज्ञान कराता है? पर्याय में तूने खड़ा किया है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

परद्रव्य को जानते हुए,... जिसका संग किया हो न? यह स्त्री का, पुत्रों का, बहुत वर्ष रहे हों उस मकान का, वह मकान देखकर यह मकान राग करावे ही, ऐसा होगा या नहीं? यह घर इसमें ५० वर्ष रहे न? यह नया पक्का मकान बनाया, वहाँ जाये तो उसके कारण एकदम राग होगा या नहीं? आहाहा! हवा आवे, पानी आवे। उसमें दस लाख का मकान हो। हवा, पानी, खिड़की, दरवाजे ऐसे चारों ओर व्यवस्थित। इस प्रकार जहाँ प्रवेश करे... कहते हैं कि, तू जाननेवाला है न, वह तो ज्ञेय है। उसमें उसने राग कराया (ऐसा) कहाँ से आया?

मुमुक्षु : सुविधा के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा की व्याख्या क्या? सुविधा की व्याख्या क्या? ज्ञात होनेयोग्य इतनी वह चीज़ है। ज्ञात होनेयोग्य के उपरान्त सुविधा, आया कहाँ से? क्या कहा? वह चीज़ ज्ञात होनेयोग्य प्रमेय है। प्रमेय वह सुविधा है, ऐसा प्रमेय में आया कहाँ से? जहाँ ज्ञान में वह चीज़ ज्ञात होनेयोग्य है, तदुपरान्त अनुकूलता, यह आयी कहाँ से? उसमें कहीं छाप लगी है? कहाँ से मेरी? कहो, समझ में आया? वह तो ज्ञान में नहीं, ज्ञेय में नहीं। पर्याय में खड़ा करके यह मुझे अनुकूलता (ऐसी) भ्रमणा तूने खड़ी की है। कहो, जमुभाई! पुराने मकान के डेला में रहता हो, स्मरण तो करे न? बाप-दादा सौ-सौ वर्ष से रहते हों। वह तो ज्ञेय है, जाननेयोग्य वस्तु है।

मुमुक्षु : बहुत वर्ष से रहता हो तो स्मरण तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद करे। ज्ञान का स्वभाव नहीं? याद करना वह कहीं ज्ञान का स्वभाव नहीं? वह तो जानने का स्वभाव है। याद उपरान्त यह ठीक है, यह किसने घुसाया? कहते हैं।

हाँ, यह अनुकूलता मानता है न। मानता है और बात है। मानता है, है नहीं। अनुकूलता–प्रतिकूलता कहना किसे? जगत के पदार्थ ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य और आत्मा जाननेवाला। इसके अतिरिक्त अनुकूलता–प्रतिकूलता कहाँ घुसायी अन्दर में? समझ में आया? कहो, जमुभाई! संसार है ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में संसार है ही नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। स्वभाव में से हटना, वह स्वरूप में है ही नहीं। वह तो जानने–देखनेवाला है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। भगवान जानने–देखनेवाला, जानने–देखनेवाला, जानने–देखनेवाला। सब चीज़ें ज्ञात हो... ज्ञात हो... प्रमेय... प्रमेय... प्रमेय.. प्रमेय... प्रमेय। प्रमेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य। ज्ञात होनेयोग्य के उपरान्त उनसे राग हुआ, यह तूने अन्दर मिथ्याभ्रम घुसाया है। और आत्मा जाने... जाने... जाने... जाने... जानने के उपरान्त यह ठीक, अठीक, अनुकूलता–प्रतिकूलता कल्पना की है, वह तूने खड़ी की है। समझ में आया? ऐ... जेचन्दभाई! यह समझने जैसी बात है। हर समय यह शोर मचाते हैं। कल तो उकता (गये थे), कल न? हाँ, कल। कल उकता गये थे। जरा पड़ गये। पड़े क्या? ... ऐसा हो और ऐसा हो। जड़ की अवस्था है। उस समय उस अवस्था को उस रीति से अपने में रहकर जानने का स्वभाव था, उसके बदले यह शरीर ऐसा पड़ा और ऐसे दूसरे देख गये। परन्तु दूसरे चाहे जैसा देखे, तुझे क्या है?

मुमुक्षु : दूसरे आक्रन्द करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन आक्रन्द करता था? वह भी ज्ञेय हुआ। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। यह काम होता है, ऐसा जानता है। उसमें जानने के उपरान्त यह मुझे ठीक नहीं पड़ता, यह बराबर देखे, यह कहाँ से लाये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्यों, धरमचन्दभाई! बराबर होगा यह? तुम्हारे तो बहुत आवे उन रोगी के। आहाहा! वे रोवे। अन्त में फिर कहे, हाय... हाय...! परन्तु क्या है? उस समय का ज्ञेय को–ज्ञात होनेयोग्य की पर्याय हुई। तुझे जानने के योग्य की पर्याय हुई। उसमें दो के बीच तीसरा कहाँ से घुसाया? यह मेरा पुत्र मर गया। परन्तु मेरा कब? जगत की सब चीज़ है, जाननेयोग्य है, उसमें मेरा कहाँ से आया? क्या कहा? गली में सौ घर हैं। सौ घर। अब आत्मा तो जाननेवाला है कि, यह सौ है, इतना जाना। जानने के उपरान्त यह तीसवाँ घर उसका आया तो (कहे), यह मेरा, यह कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : साहेब! जाता है तो इसके घर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु घर कब था इसका? यहाँ तो कहा न? सौ घर की पूरी गली। उसमें गया। अब स्वयं जाननेवाला और वे ज्ञात होनेयोग्य। इसके अतिरिक्त कोई तीसरी चीज़ है? परन्तु जहाँ इसका बँगला आया (तो कहे), यह मेरा। यह मेरा लाया कहाँ से? (ऐसा) यहाँ कहते हैं।

इसी प्रकार दस लड़के ऐसे खड़े हों। आत्मा जाननेवाला, वे ज्ञात हों। बस! इतना। उसमें यह मेरा, यह लाया कहाँ से? तीसरी विपरीतता कहाँ से घुसायी? कहो, हीराभाई तो मेरा पुत्र होगा या नहीं अन्दर? यहाँ यह कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से अर्थात् क्या? असद्भूत झूठे नय से बोलने का कथन है। मेरा अर्थात् क्या? मेरा तो ज्ञान, मेरा तो ज्ञान। वह ज्ञान जो चीजें हैं, उन्हें जानता है। उसमें किसी भी चीज़ को जानने के उपरान्त 'यह मेरी', ऐसा ज्ञेय में नहीं, ऐसा ज्ञान में नहीं है।

मुमुक्षु : भाषा से बोलने में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा वह तो ज्ञेय हो गयी, वह तो ज्ञान की ज्ञेय है। भाषा भी ज्ञान की ज्ञेय है, वह आत्मा भी ज्ञान का ज्ञेय है, शरीर भी ज्ञान का ज्ञेय है। जनवानेयोग्य के उपरान्त उनमें दूसरा कुछ हो, है उसमें दूसरा कुछ? वे ज्ञात होनेयोग्य उपरान्त ज्ञेय में दूसरा है? और जाननेयोग्य आत्मा में तीसरा कुछ है? बस! यह जाननेवाला... जाननेवाला... जानते हुए यह मेरा, ऐसा मिथ्यात्वभाव अन्दर से खड़ा करता है। वह ज्ञेय नहीं कराता, ज्ञान जानने का स्वभाव नहीं, जानने का स्वभाव कराता नहीं, परन्तु पर्याय के अंश में खड़ा करके भ्रमणा खड़ी करता है। वह उठाईगीर हुआ। देखो न! आहाहा! समझ में आया?

यही कहते हैं, कहाँ था सुख? आत्मा में आनन्द है, ऐसा ज्ञान जाने और वह ज्ञान आनन्द है, ऐसा जानते हुए, पर की चीज़ों का प्रसंग बने तो जाने। जानने उपरान्त उसमें सुख है, यह मान्यता तो मिथ्याभ्रम की, अज्ञानी की है। सुख तो यहाँ है, सुख तो

यहाँ है। यहाँ सुख न मानकर परवस्तु को जानने उपरान्त मानने से उसमें सुख है, यह तो मिथ्यादृष्टि का मिथ्याभाव है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि छियानवें हजार स्त्रियों में पड़ा, ज्ञाता होकर ज्ञेय को जानता है। आहाहा! समझ में आया? उन रजकण का भी ज्ञेय करके ज्ञाता है। उन स्त्रियों का ज्ञेय करके ज्ञाता है। तदुपरान्त यह मेरी हैं, (ऐसा) वस्तु की दृष्टि में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! यह दुकान बड़ी हो, लो! पचास हजार, लाख का कपड़ा भरा हो और ऐसे दो-तीन व्यक्ति (बैठे हों), एकदम पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार की बिक्री होती हो और वहाँ जाकर अन्दर बैठे तो अन्दर अन्तर पड़ता है या नहीं? परन्तु तेरा जानना, ऐसे स्वभाव उपरान्त और ज्ञेय का जनवाना तदुपरान्त दूसरा, तीसरा आया कहाँ से? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह तो मिथ्याभ्रम उत्पन्न किया।

ज्ञान में पर को अपना मानना, ऐसा स्वभाव नहीं है। ज्ञेय में दूसरे को मनावे तू मेरा है, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं। उसमें प्रमेय होने का स्वभाव है, तेरा प्रमाणज्ञान होने का स्वभाव है। तदुपरान्त जानना सब। इसलिए लिया है न? **समस्त ज्ञेय को जानता है।** ऐसी है न दूसरी लाईन? सबको जाने और जाननेवाला ज्ञेयरूप से सबको पहिचाने। ज्ञेयरूप से पहिचाने। वे ज्ञेयरूप से पहिचानने उपरान्त यह मेरी स्त्री, यह मेरा शरीर, यह मेरा राग, यह मेरा, यह आया कहाँ से? कहते हैं। आहाहा! जमुभाई!

भाई! तू चैतन्य है न! प्रभु! तू तो ज्ञान की मूर्ति है। तो ज्ञान तो जानने का कार्य करे या ज्ञान उपरान्त दूसरा यह मेरा है, ऐसा काम करे? और अनन्त ज्ञेय हैं, वे जनवाने का काम करे या जनवाने उपरान्त यह मैं तेरा हूँ—ऐसा वे काम करे?

मुमुक्षु : उनके ऊपर नाम लिखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखा हो तो ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! यह तो अजर प्याला चैतन्य की जागृति का है, भाई! आहाहा! यह जगा, दूसरे को जाने, यह जगा दूसरे को (अपना) माने नहीं। आहाहा! क्या कहा? देखो न!

मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीवद्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेय को जानता है, इसलिए परद्रव्य को जानते हुए कुछ थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणति

का विकार होता होगा? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्य को जानते हुए तो एक निरंशमात्र... एक अंशमात्र, जानता हुआ, अंशमात्र भी विकार हो, ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं। **अपनी विभाव परिणति करने से विकार है,...** वह तो स्वयं विकार करे तो होता है। समझ में आया? बीच में कृत्रिम खड़ा करे तो होता है। अरे! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान में ऐसा स्वभाव (है कि) भगवान (को) जाना कि यह है। तदुपरान्त मुझे तारेंगे, ऐसा तू कहाँ से लाया? ठेठ तक बात आनी चाहिए न? समझ में आया? और कुदेव-कुगुरु को जाना कि यह है। परन्तु यह मुझे डुबोयेंगे, ऐसा लाया कहाँ से? कहते हैं। समझ में आया? **अपनी विभाव परिणति करने से विकार है,...** पर से तो निरंशमात्र भी है नहीं। भ्रमणा उत्पन्न की और मिथ्याभ्रम से अज्ञान उत्पन्न करता है। ऐसी उसकी पर्याय में स्वयं के कारण से योग्यता है। स्वभावदृष्टि करने पर वह योग्यता टल जाती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक-१२-११-१९६५, कलश-२२२, प्रवचन-२४४-F

'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' 'कलश टीका', पहले से देखो! **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव...** क्या कहते हैं? जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है, ऐसी जिसे खबर नहीं—ऐसे अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि यह आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव है, वह परवस्तु को जानने से आत्मा में विकार हो जाता है। परवस्तु को देखने से राग-द्वेष होते हैं, ऐसा मानता है, वह अज्ञानी वस्तु के स्वरूप को नहीं जानता। क्योंकि आत्मा तो चैतन्य ज्ञानमूर्ति आत्मा है। चैतन्य के प्रकाशस्वरूप आत्मा है, वह जाननेवाला, सब वस्तु है, उसे जाने... जाने... यह जाने और वे ज्ञात हों, यह तो आत्मा का स्वभाव है और जो ज्ञात हो, वह उनका स्वभाव है। उसमें वह जीव जानने से राग-द्वेष होता है, यह कहीं इसमें—चीज़ में नहीं है, नहीं इसमें नहीं इसमें। समझ में आया?

आत्मा सत् चित् ज्ञानस्वरूप है। आत्मा अर्थात् ज्ञान का सूर्य और उसमें ज्ञात होनेयोग्य यह चीज़ें। शरीर, वाणी, कर्म यह बाह्य (चीज़ें)। यह तो आत्मा ज्ञानस्वरूप, उसे जानने से जानने का काम करे, उसमें राग-द्वेष का, पुण्य-पाप का कारण आत्मा नहीं है। तथा जाननेयोग्य पदार्थ जानने से वह कारण हो और राग-द्वेष हों, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से चैतन्यस्वरूप आत्मा ज्ञानज्योति प्रज्ञाब्रह्म आत्मा है। वह जानने का काम करे, यह तो उसका स्वभाव है, जानना ऐसा कार्य, वह तो उसका स्वभाव है और दूसरी चीज़ें शरीर, कर्म, यह स्त्री, कुटुम्ब आदि ज्ञान में ज्ञात हों, वह तो परपदार्थ में उनका प्रमेय गुण है, इसलिए वे ज्ञान में ज्ञात होते हैं और यह ज्ञान जानता है। इसलिए कहते हैं कि यह राग-द्वेष हो जाते हैं, वे कहाँ से (होते हैं)? अज्ञानी कहता है कि वह चीज़ ज्ञात हो जाती है न, इसलिए राग-द्वेष होते हैं। यह मान्यता अज्ञान है। उसे आत्मा का स्वरूप क्या है, इसकी खबर नहीं, राग-द्वेष क्यों उत्पन्न होते हैं, इसकी खबर नहीं, परचीज़ें अकेली ज्ञात होनेयोग्य है, उसकी भी उसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म अधिकार 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' है।

कहते हैं कि **ऐसी आशंका करेगा कि जीवद्रव्य ज्ञायक है,...** आत्मा तो जाननेवाला

है, जाननेवाला है, जानता है। किसी भी चीज़ को जानने में जाननेवाला मुख्य न हो तो जाने किसे? जाननेवाला ज्ञान में जानता है कि यह है, यह है, यह शरीर है, कर्म है, यह वस्तु है। **समस्त ज्ञेय को जानता है...** ये सब चीज़ें ज्ञात होनेयोग्य को जाने। **इसलिए परद्रव्य को जानते हुए...** इस ज्ञान में परवस्तु ज्ञात हो, इससे **कुछ थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणति का विकार होता होगा?** समझ में आया? सूर्य का प्रकाश है, वह कोयले को प्रकाशित करे, विष्टा को प्रकाशित करे, सबको प्रकाशित करे। इससे कहीं उसके प्रकाश में कुछ विष्टा की और कालिमा की मलिनता उसमें आ जाती है? इसी प्रकार भगवान आत्मा जाननेवाला प्रज्ञा—ज्ञानब्रह्म आत्मा है, सर्वज्ञस्वभावी है, वह तो सर्व को जानना, ऐसा उसका स्वभाव है। कहा न? **समस्त ज्ञेय को जानता है...** तथापि कहते हैं कि जानते हुए उसके कारण से विकार होता है—यह अज्ञानी की मिथ्या भ्रम दशा है। समझ में आया?

थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणति का विकार होता होगा? थोड़ा-बहुत तो विकार होगा या नहीं? समझ में आया? **उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्य को जानते हुए तो एक निरंशमात्र भी नहीं है,...** चैतन्य प्रभु ज्ञान में ज्ञानभूमि में ज्ञानस्वभाव में यह चीज़ है, ऐसा जाने। जानते हुए अंशमात्र भी विकार होने का वहाँ अवकाश है ही नहीं। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, हों! 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' है न? इसलिए अस्थिरता के जो राग-द्वेष होते हैं, वे भी यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो मात्र मिथ्यादृष्टिरूप से जो होता है, नहीं ज्ञानस्वरूप आत्मा की खबर, नहीं ज्ञेयस्वरूप परवस्तु की खबर। उसे जानने से मुझे विकार हो जाता है, ऐसा जो मानता है, वह तो मिथ्या अज्ञान के कारण मानता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म तत्त्व है।

यह चैतन्य वस्तु क्या, इसने कभी नजर ही नहीं की है। इसने तो यह वर्तमान प्रकाश का अंश जो बाह्य है, वह बाह्य है, उसके द्वारा ऐसे देखने का सब किया, यह शरीर और यह और यह और यह... इससे उसे ऐसा लगता है कि यह जाननेवाला इस पर (को) जाने तो इसमें विकार हुए बिना नहीं रहेगा। आचार्य कहते हैं कि भाई! जानना तो तेरा स्वभाव है और ज्ञात होना, वह पर का स्वभाव है। उसमें पर को जानने

से थोड़ा-बहुत भी पुण्य-पाप का भाव हो, यह वस्तु के स्वरूप में, आत्मा के जानने के कार्य में नहीं है और जनवाने के—ज्ञेय में भी यह नहीं है। समझ में आया?

अपनी विभाव परिणति करने से विकार है। यह तो स्वभाव भूलकर, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, उसे भूलकर विकार की पर्याय खड़ी करे, यह तो उसकी दशा की योग्यता से विकाररूप परिणमता है। समझ में आया? जानने के स्वभाव में विकार का होना नहीं है, ज्ञात होनेयोग्य चीज़ भी विकार कराती नहीं है। मात्र उसकी वर्तमान दशा में स्वभाव जानने-देखनेवाला चैतन्य आत्मा है, उसे भूलता है; इसलिए यह इसकी दशा में राग-द्वेष और मिथ्याभाव अज्ञान उत्पन्न करता है। समझ में आया इसमें? आहाहा!

अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है। देखो! स्वयं स्वभाव चैतन्यमूर्ति है, जाननेवाला-आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने तो ऐसा देखा कि तू तो ज्ञान और आनन्द है। ऐसा नहीं देखा कि तू रागवाला और परवाला है। ऐसा देखा है भगवान न? इस आत्मा को भगवान केवलज्ञानी ने ऐसा देखा है कि यह तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है और परवस्तु वह ज्ञेयस्वरूप है, ऐसा भगवान ने देखा। ऐसा तू तुझे न देखकर, मैं जानने-देखनेवाला और आनन्द हूँ, ऐसा न देखकर पर को देखने से, तुझे तेरी पर्याय में विकार की दशा उत्पन्न होती है, वह तो स्वरूप के अज्ञान के अभान से उत्पन्न होती है। समझ में आया?

जो तत्त्व में नहीं है, ऐसा खड़ा हो, वह तत्त्व के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा ने तो यह आत्मा (ऐसा देखा है)। उनका आत्मा तो पूर्ण दशावन्त हो गया, परन्तु उन्होंने इस आत्मा को ऐसा देखा कि यह तो ज्ञान की मूर्ति, आनन्दस्वरूप, वह आत्मा है और वे उसे जानने-देखने और आनन्द के स्वभाव का परिणमन करे, ऐसा उसका स्वभाव है। वह विकाररूप परिणमे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। तब इस जानने-देखने के स्वभाव में दूसरा जानना होता है, इसलिए विकार होता है, ऐसा रहा नहीं। क्योंकि जानने-देखने का स्वभाव है। परन्तु जानने-देखने के उपरान्त परचीज़ को ज्ञेयरूप से जानने के उपरान्त यह मुझे ठीक

पड़ती है और यह मुझे ठीक नहीं पड़ती, ऐसी मिथ्या भ्रान्ति करके राग-द्वेष को उत्पन्न करता है। समझ में आया? कैसे हुआ? शुकनचन्दजी! 'हाह' क्यों खाया अन्दर? हाह खाये अन्दर मानो क्या है यह? यह बात क्या है?

भाई! यह तो देह है, मिट्टी है, यह तो जड़ है, रजकण है, धूल है और अन्दर आत्मा जो कहें वह तो ज्ञान की मूर्ति, चैतन्यसूर्य है और कर्म को करें अन्दर तो कर्म तो जड़ है, अन्दर सूक्ष्म धूल है, यह (शरीर) स्थूल है। ये सब ज्ञान में अर्थात् आत्मा के स्वभाव में ज्ञात हो ऐसा इनका ज्ञात होनेयोग्य (और) यह जानने, ऐसा स्वभाव है। तदुपरान्त तीसरी चीज़ दोनों में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! यह तो मूल की पूँजी से बात उठायी है।

भाई! सर्वज्ञ प्रभु तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं कि आत्मा है। तो आत्मा है, वह तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द के स्वभाववाला तत्त्व है। अतः जानने-देखने का काम करे और साथ में आनन्दरूप हो, यह तो उसका स्वरूप है। आहाहा! इस स्वरूप में ऐसा न रहकर दूसरी चीज़ को देखकर, यह (चीज़) तो ज्ञात होनेयोग्य है, समझ में आया? यह दृष्टान्त नहीं दिया था? पैसा लो, यह नोट ऐसे पड़े हों, लो! पाँच लाख, दस लाख, उनके ऊपर अंक लिखा हो। यह अमुक भाई के और यह अमुक भाई के। अब देखने में, जानने में आत्मा तो जानता है कि यह है, यह है, यह है; परन्तु उसमें जहाँ चिट्ठी लिखकर उसके शरीर का नाम पड़े, (इसलिए) यह पैसे मेरे—(ऐसा हो जाता है)।

मुमुक्षु : दूसरे के नहीं हों ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसके दूसरे के? वे तो ज्ञेय हैं। समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह तो जानता है। जानने के उपरान्त यह चीज़, यह लक्ष्मी मेरी (—ऐसा करता है), वह तो ज्ञेय है, यह ज्ञान है। वे ज्ञात होते हैं और यह जानता है। तदुपरान्त वे मेरे, यह कहाँ से आया? कहते हैं। यह तेरी वर्तमान मान्यता की असत्य बुद्धि में से उत्पन्न हुआ है। बराबर होगा यह? क्या करना?

पुस्तकें हो, ऐसे पच्चीस पड़ी हो, लो न! उसका नाम लिखा हो... सब पुस्तकें पड़ी हों, वह देखे। देखना-जानना यह तो ज्ञान का स्वभाव है। यह पुस्तक मेरी, यह

कहाँ से आया ? जाननेवाला जाने। जानने का स्वभाव है, वे ज्ञात हों ऐसा उनका स्वभाव है। वह मेरा, उसमें नहीं और इसमें भी नहीं। है ?

मुमुक्षु : नहीं तो आया कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने पर्याय में भ्रमणा खड़ी की, उसमें से आया है। क्या करना अब इसमें ? इस घर में दस लड़के हैं। उनमें पचास-सौ लड़के पाठशाला में पंक्तिबद्ध लाइन से खड़े हों। अब आत्मा जाने, कहते हैं। यहाँ तो जाने, वे ज्ञात हों, बस ! इसके अतिरिक्त दूसरी बात है ? उसमें पाँच सौ लड़कों में यह दो लड़के मेरे, यह कहाँ से आया, कहते हैं। था कब ?

मुमुक्षु : मास्टर पढ़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मास्टर भी मूढ़ है। वे तो ज्ञात होनेयोग्य चीज़ है, यह जाननेवाला है। यह जाननेवाला है, उसमें यह ज्ञात हुआ उसमें यह मेरा-उसमें कहाँ है ? और इसमें कहाँ है ? न्यालभाई ! आहाहा ! इसी प्रकार यह शरीर जो जड़ है, वह तो मिट्टी है; आत्मा चैतन्य वस्तु है, ज्ञानस्वरूप है, भगवान सर्वज्ञ पर्याय में जैसे थे, वैसा ही यह सर्वज्ञस्वभावी सर्व को जानने के स्वभाववाला तत्त्व है। ऐसा आत्मा शरीर को जाने, जाने यह बराबर है, तदुपरान्त—जानने के उपरान्त यह मेरा, यह उसमें कहाँ है ? शरीर में है ? शरीर तो ज्ञेय है। ज्ञान में है वह मेरा ? वह तो जानने का काम करता है। जैचन्दभाई !

मुमुक्षु : इलैक्ट्रिक करण्ट लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इलैक्ट्रिक करण्ट लगता है, यही कहते हैं कि भ्रमणा का करण्ट लगता है। यह तो भ्रमणा खड़ी करता है मूर्ख होकर, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इलैक्ट्रिक करण्ट भ्रमणा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इलैक्ट्रिक करण्ट भ्रमणा है। हाँ, ऐसा है। आहाहा ! ऐसे पक्षघात हो। क्या है ? सुन तो सही। वह तो जड़ की अवस्था हुई, वह तो अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व है, जड़ मिट्टी की दशा हुई। ज्ञान उसे जाने। जाने, वह ज्ञात हो। दो के अतिरिक्त इसमें तीसरा कहाँ है ? जहाँ इसने माना कि यह मुझे हुआ, बस ! यह

इसकी मिथ्यादृष्टि का भाव सत्यस्वभाव को चूक जाता है। मेरा स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा, उसे चूककर यह मेरा, ऐसा मिथ्यात्वभाव खड़ा करता है। यहाँ अभी यह बात है। समझ में आया? आहाहा!

कल कहा नहीं? गली में सौ मकान एक साथ हों। उसमें लाल रंग, हरा रंग डला हो। जहाँ अन्दर घुस, यह मेरा मकान। मकान में है मेरा ऐसा?

मुमुक्षु : नाम तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ लिखा है? नाम भी ज्ञेय है। वह तो परमाणु की पर्याय है। नाम कहाँ, इसका नाम है वहाँ? वह तो परमाणु की पर्याय है। 'साकरचन्द हीराचन्द' का मकान, लो! रजकण की जड़ की पर्याय है। उसमें यह मेरा—ऐसा आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। ऐई! 'भीखालाल मगनलाल'। 'भीखालाल मगनलाल'—यह तो शब्द है, यह तो जड़ है। जड़ है या आत्मा है वहाँ? वहाँ आत्मा है? यहाँ आत्मा है, वह यहाँ जानने का काम करे या आत्मा वहाँ प्रवेश कर जाता है? वह यहाँ आ जाता है? इसने कभी मिथ्याश्रद्धा क्या है और सम्यक् स्वभाव की प्रतीति क्या है, इसकी कभी दरकार नहीं की। समझ में आया?

सामने एक जीव मरा। ऐसी अवस्था (हुई), शरीर का वियोग हुआ। शरीर छुआ न। यह शरीर छुआ न तो हुआ। अब वह तो एक ज्ञान में जाननेयोग्य बात हुई, ज्ञान ने जाना। आत्मा चैतन्यसूर्य है। प्रकाश का बिम्ब है। जानना। यह (आँख) तो कोडा है, यह कहाँ आत्मा है? अन्दर जाननेवाला वह आत्मा है। जानना। जिसकी सत्ता में जानना होता है, वह आत्मा है। इस सत्ता में-आँख में (जानना) होता है? होनेवाला चैतन्य। ज्ञान होनेवाली सत्ता, उसमें यह है, ऐसा ज्ञात होता है। अब उसमें यह है, ऐसा ज्ञात होने पर इस देह का वियोग हुआ, आत्मा को देह का (वियोग हुआ), ऐसा ज्ञान ने जाना। तदुपरान्त, वह ज्ञेय होकर ज्ञात हुआ, तदुपरान्त मैंने इसे मारा—ऐसा कहाँ से आया? यहाँ ऐसा कहते हैं, लो! भाई! आहाहा! हें?

गाँव के लड़के बहुत थे और सात लड़के मेरे, ऐसा कहाँ से लाया? ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो! सबके जगत के आत्माएँ हैं, और इस जगत के शरीर के रजकण भी

जगत के अजीवतत्त्व हैं। ऐसा जाननेवाला जाने, यह बराबर है। उसे जाने, उसे जाने, सबको जाने। जानने के उपरान्त वे मेरे हैं—ऐसा उसमें होता है? वह चीज़ यहाँ आ जाती है? मुझरूप से तन्मय होती है? ज्ञान वहाँ तन्मय एकरूप होता है? तथापि मेरे हैं, ऐसा माना कहाँ से, कहते हैं। यह तो महा सर्वज्ञ (का सिद्धान्त है)।

कहते हैं कि आत्मा जाने-देखे, उसमें तो शान्ति का कार्य और ज्ञान, दर्शन का कार्य होता है। तदुपरान्त ज्ञेय है, वह ज्ञात हो, बस! इतना। उसमें दोनों के बीच तूने यह बन्धतत्त्व, आस्रवतत्त्व कहाँ से खड़ा किया? और उसे खड़ा करके उसके कारण से हुआ, उसके कारण से हुआ—ऐसा वापस कहता है। वह ज्ञात हुआ (तो) उसके कारण से हुआ। नहीं ज्ञात होता (तो नहीं होता)। आँखें बन्द करो। समझ में आया?

'बीलो मंगल' में आता है न? अन्यमति में। आँख को फोड़ डाला। आँख का क्या दोष है? उसमें यह चीज़ ज्ञात होती है। यह चीज़ ज्ञात होती है, वह तो ज्ञेय है, आत्मा जानता है। उसमें वह ज्ञात हो गयी। यहाँ दोष कहाँ लग गया? समझ में आया? आहाहा! स्त्री के शरीर के अवयव, स्त्री आदि जड़ ज्ञेय शरीर मिट्टी है। वे ज्ञान में ज्ञात हों, बस! इतनी हद है। वे ज्ञात हों, यह जाने। तदुपरान्त यह खराब है, यह ठीक है... आहाहा! आकार अच्छा है, यह सुन्दर है—ऐसा कहाँ से आया? यह अज्ञानतत्त्व ने खड़ा किया हुआ भाव है। आहाहा! कहो, बराबर है या नहीं इसमें? गुलाबचन्दभाई! यह तो निवृत्त कर डाला। कोई नहीं इसका? कहा न, तेरा तो चैतन्यस्वरूप है न! ऐसे जानने-देखनेवाला भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्ध समान है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा तेरा स्वभाव है। जानना-देखना ऐसा स्वरूप और उसके साथ आनन्दादि सब है। जानने-देखनेवाला, जानने-देखने के कार्य में रुके तो आनन्द भी साथ में हो। समझ में आया?

जानने-देखनेवाला, जानने-देखने के कार्य में रहे तो आनन्द भी साथ में हो। ज्ञेय, ज्ञेयरूप से ज्ञात होते हैं तो उसमें आनन्द भी अपने में साथ में होता है। यह तो जानने के कार्य की बात है। इसमें वह ज्ञात होने से यह ज्ञान रुक गया और यह ज्ञान उसके कारण से दोषवाला हुआ, ऐसी दुःखदशा मिथ्याभ्रम से उत्पन्न की हुई है। समझ

में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! इतनी सब बात सम्यग्दर्शन में जँच जाती होगी। हैं? सम्यक् आत्मा शुद्ध ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा भान जहाँ सम्यक् में हुआ (कि) कोई चीज़ जानने में आवे, वह उसे नुकसान करती है, यह बात अन्दर में रहती नहीं। समझ में आया?

पूरी दुनिया पागल हो तो, घर-घर में राख हो, इसलिए कहीं चूल्हा कस्तूरी का कहलायेगा? घर-घर में राख चूल्हे में, किसी चूल्हे में कस्तूरी है? घर-घर में है, इसलिए कस्तूरी हो गयी? सब राख ही है। इसी प्रकार यह जाननेवाला, जाननेवाला जो भूला, वह सब राखवाले हैं, अज्ञानवाले हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा जानन-देखनेवाला जिसका स्व-भाव, भाव, स्वभावभाव जानना-देखना जिसका स्वभावभाव है, इतने को ऐसा न मानकर, ऐसे भाव को इस प्रकार से न मानकर, उसे ऐसा मानना कि यह जाननेवाला जानता है, इसलिए मुझे राग-द्वेष होते हैं, वह तो आत्मा को भी माना नहीं और पर को भी माना नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

कहते हैं कि **अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है।** देखो! यह स्वयं अपना जानने-देखनेवाला स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ऐसा भान करने से तो उसकी निर्मल पर्याय होती है। समझ में आया? और यह यह जानने से मुझे दु:ख होता है। अरे! दु:ख होता है या मैं तुझे देखता हूँ? वाह! यह कहाँ से आया? तुझे देखने से मुझे सुख होता है। किसका?—राग का। तुझे देखने से मुझे दु:ख होता है। किसका? द्वेष का। यह कहाँ से आया? आहाहा! ऐई!

दिवाली के दिन हों और उस समय तो ऐसे जानने की बात तो जाननेवाला तो जानता है। यह वस्त्र, लड्डू और यह और उसमें पाँच-पच्चीस लाख योगफल हुआ हो, पच्चीस हजार, पचास हजार, लाख, दो लाख पैदा हुए हों, लो न! अंक गिनना है न! सुना कि एक लाख पैदा किये। ये शब्द कान में पड़ा, बहियों में नजर पड़ी कि यह लाख (कमाये)। यह तो जाननेवाला तो आत्मा है, ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञात होता है। तदुपरान्त यह लक्ष्मी मुझे पैदा हुई, ऐसा भाव तूने कहाँ से खड़ा किया? ऐसा कहते हैं। दोनों में नहीं और तीसरे में अन्तर से खड़ा किया हुआ है।

मुमुक्षु : पुण्य का उदय होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे पुण्य का उदय? यह तो वस्तु है, उसे जानता है। यह तो पुण्य के रजकण का निमित्त (कहलाता है बाकी तो) वास्तव में तो वे रजकण उनके ही कारण से आते हैं। पुण्य का तो निमित्त कहने में (आता है क्योंकि) उसके पास वहाँ नजदीक में कैसे दिखाई देगा? उसके पास पूर्व के रजकण थे। वे रजकण ज्ञान का ज्ञेय है। उनका फल भी ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! यह वीतराग तत्त्व सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्व समझना, यह बहुत पुरुषार्थ माँगता है। सूक्ष्म तत्त्व है, सूक्ष्म तत्त्व है। यह कहीं स्थूल बात नहीं कि ऐसा का ऐसा पकड़कर चल निकले। आहाहा! आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह में नहीं आया? अध्यात्म, आगम और तर्क—तीन से यह है। ऐसा जो यह कहा कि आत्मद्रव्य इसको जाने, ज्ञान पर को जाने। सूक्ष्म है, ऐसा कहा। ऐसे से सूक्ष्मता तो यह अन्दर में हो गयी है। यहाँ तो जरा यह कहना है। दूसरों को ऐसा कहना है कि दर्शन पर को सामान्यरूप से देखे, ज्ञान वह विशेष सबको भेद करके देखे, यह करने से एक बात कि यह दर्शन आत्मा को देखे, पर को देखे, यह उसकी अपेक्षा सूक्ष्म है। उसकी अपेक्षा यह सूक्ष्म है। समझ में आया? अध्यात्म।

चैतन्यप्रभु, तेरा अस्तित्व अर्थात् क्या? आत्मा का अस्तित्व अर्थात् क्या? कहो? आत्मा है अर्थात् क्या? आत्मा का अस्तित्व अर्थात् कि जानना-देखना आनन्द का अस्तित्व, वह आत्मा का अस्तित्व। अब आत्मा के अस्तित्व में तो जानना-देखना, आनन्द आदि अस्तित्व है और ज्ञेय में अस्तित्व में क्या? इस ज्ञान में प्रमेय हो, ऐसा उसमें अस्तित्व है। ऐसे अस्तित्व को जाननेरूप से न जानकर, ज्ञेयरूप से न जानकर, जाननेवाले को जानने की सत्ता के अस्तित्ववाले रूप से न जानकर उसकी सत्ता में अन्य विकृति साथ में खड़ी करना (कि) यह मुझे ठीक, मुझे ठीक नहीं। ऐसा ज्ञेय में रजिस्टर्ड है? छाप लगायी है? ज्ञेय में तो ज्ञात होनेयोग्य भी छाप है। स्वभाव में ऐसी छाप है? उसके स्वभाव में तो जानने-देखने की छाप है। ट्रेडमार्क तो ऐसा है, भगवान कहते हैं। तदुपरान्त यह छाप तूने कहाँ से खड़ी की? धर्मचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है, हों! परम सूक्ष्म है। हैं?

परम सत्य है ? इंजेक्शन लगाने जाए वहाँ... इंजेक्शन का यह काम हुआ। कहते हैं कि इंजेक्शन की पर्याय ज्ञेय है, वह हुआ, यह ज्ञेय है, मात्र ज्ञान जानता है। उसमें इसने यहाँ किया, ऐसा कहाँ से आया ? समझ में आया ? आहाहा!

हाथ है, वह ज्ञान में ज्ञात होता है। यह तो जड़ मिट्टी है। इसकी (ज्ञान की) सत्ता में ज्ञात होता है कि हाथ है। यह हाथ ऐसे हुआ, इसलिए मेरी सत्ता द्वारा ऐसे हुआ, उसे मैंने जाना, ऐसा है इसलिए ऐसा हुआ—ऐसा कहाँ से आया ? यह जाननेवाला ज्ञान की सत्ता में सदा ही बैठा हुआ है। जानने के अस्तित्ववाला उस जानने के अस्तित्ववाली सत्ता, वह आत्मा, उसमें रहा हुआ है, कहीं गया नहीं। वह कर्म में भी गया नहीं, वास्तव में राग-द्वेष के आस्रव में भी गया नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया ?

हाँ, भगवान आत्मा जानने-देखनेवाला जाने, उसमें जो विकार उत्पन्न करे, वह उसकी भ्रमणा। उस भ्रमणारूप होना, वह उसकी पर्याय की योग्यता। उसे छोड़कर मैं शुद्ध ज्ञानमूर्ति चैतन्य हूँ, मैं जानने-देखनेवाला हूँ—ऐसा सम्यक्रूप से परिणमन करना, यह उसका स्वभाव है। यह तो उसका स्वभाव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप होना, यह तो उसका स्वभाव, यह शुद्ध परिणति है। यह शुद्ध परिणति होने पर वह अशुद्ध (परिणति) टल जाती है। समझ में आया ?

ऐसा कहते हैं—'एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति' देखो! यह शब्द। भाई! तत्त्व तो ऐसा है। धीर, शाश्वत् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। **'एते अज्ञानिनः'** अरे! **विद्यमान हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव...** है ? जो अज्ञानी जीवों की विद्यमानता है, मिथ्यादृष्टि जीवों के समूह की (विद्यमानता) है। **'किं रागद्वेष-मयीभवन्ति' 'मयी'** में जरा जोर है। यह **राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति में मग्न ऐसे क्यों होते हैं ?** अरे! तू जानने-देखनेवाला भगवान आत्मा, ये पुण्य-पाप के भाव और अज्ञान में एकाकार कैसे हो जाता है ? क्या है तुझे यह ? समझ में आया ?

जानने-देखनेवाले को जानने-देखनेवाले में न रखकर, जानने-देखनेवाले को जानने-देखनेवाले में तन्मयता न करके, जानने-देखनेवाला भगवान, इन आस्रव, पुण्य-पाप और मिथ्याभाव में तन्मय-मग्न कैसे हो जाता है ? समझ में आया ? भारी सूक्ष्म।

धर्मी जीव ज्ञान ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में तन्मय है, मग्न है। उसे राग-द्वेष होते नहीं, होते ही नहीं। थोड़े हुए, वे भी ज्ञेय में जाते हैं। अपने ज्ञान में एकता में जाते नहीं, आते नहीं। आहाहा! भीखाभाई! आहाहा! अरे! राग-द्वेषमयी कैसे होता है? ऐसा कहते हैं। वस्तु तो ज्ञानस्वरूप है, दर्शनस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। उसे छोड़कर यह मुझे ठीक-अठीक, ऐसी मिथ्याश्रद्धा जो इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं, वह मिथ्याश्रद्धा में लीन होकर ठीक-अठीक के राग-द्वेष में क्यों लीन हो जाता है?

इस प्रकार ज्ञान... ज्ञान भगवान, इस ज्ञान में सम्यक् श्रद्धा द्वारा लीन, स्थिरता द्वारा लीन होवे, यह तो उसकी चीज़ का कार्य और स्वरूप है। ऐसी अन्तर में ज्ञानस्वरूप दृष्टा भगवान-आत्मा में लीनता न करके, जो इसकी वास्तविक स्थिति और स्वरूप है, उसे छोड़कर पुण्य-पाप के (भाव में), इष्ट-अनिष्ट परपदार्थ को देखकर इष्ट-अनिष्ट वृत्तियाँ और मैंने यह ठीक किया, ऐसी मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष में क्यों मग्न हो जाता है? समझ में आया? बहुत परन्तु बात जरा (सूक्ष्म है)। ओहोहो!

भाई! तेरे अस्तित्व में, तेरे अस्तित्व में तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द है। ऐसे अस्तित्व में लीन होना, वह तो स्वरूप है। ऐसे अस्तित्व को छोड़कर यह ज्ञात होता है, उस चीज़ को देखकर यह इष्ट-अनिष्ट है और यह ठीक है, ऐसे मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष में मग्न क्यों हो जाता है? सम्यग्दर्शन और स्थिरतारूपी वीतरागभाव में क्यों लीन नहीं होता? ऐसा कहते हैं, लो! मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसी भान की प्रतीति और उसके साथ स्थिरता—अराग की परिणति, ऐसा होना चाहिए उसके बदले यह तू क्या करता है? ऐसा आचार्य (कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? इसमें क्या करना, क्या नहीं करना? इसे कुछ खबर नहीं पड़ती।

कहते हैं कि भाई! तू ज्ञान... ज्ञान चैतन्य जानने-देखनेवाला है। उसमें तूने यह खड़ा किया कि मुझे यह ठीक-अठीक है। ज्ञेय को देखकर ठीक-अठीक मिथ्याश्रद्धा खड़ी की और इष्ट-अनिष्ट में राग और द्वेष की वृत्ति उठी, वह तेरे स्वभाव में नहीं, ज्ञेय ने कराये नहीं। मिथ्या मान्यता खड़ी करके उसमें लीन हो गया है। यह तू कर रहा है। तो अब धर्म करना हो तो कैसे होगा? यह राग और द्वेष पर की इष्ट-अनिष्टता, यह वस्तु

में नहीं है, उसमें नहीं है। यह मुझे ठीक–अठीक ऐसी मिथ्याश्रद्धा स्वरूप में नहीं है, उसमें नहीं है। यह मिथ्याश्रद्धा छोड़, इससे राग–द्वेष भी छूट जायेंगे। यह मिथ्याश्रद्धा छूटने पर ज्ञानस्वरूप है, ऐसी प्रतीति होगी। प्रतीति होने पर अरागी परिणति में लीन होगा। आहाहा! यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है, हों! आहा! समझ में आया?

'प्रभु का मारग है शूरों का, यह कायर का काम नहीं' वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा... वे तो कहते हैं, 'हरि का मारग है शूरों का' परन्तु हरि वह नहीं, हरि तो यह भगवान आत्मा है और सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने कहा हुआ आत्मा। समझ में आया? यह प्रभु का मार्ग तो है शूरों का, यह कायर का काम नहीं है। हमें यह समझ में नहीं आता। हमें यह, कायर है, पामर है तू। प्रभुता छोड़कर पामरता का स्वीकार, यह तुझे शोभा देता है?

यह ज्ञान, दर्शन और आनन्द से भरपूर भगवान, ऐसे तत्त्व का स्वीकार छोड़कर पर में मेरापन मानकर इष्ट–अनिष्ट में, राग–द्वेष में लीन (होता है), भगवान! यह तुझे शोभता है? कहते हैं। भाई! यह तो तेरी रंकाई है, हों! यह तो तूने तेरे साथ शत्रुता खड़ी की है। तेरे साथ शत्रुता खड़ी की है। आहा! राजमलजी! यहाँ क्या कहा? देखो न! **'एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयीभवन्ति, सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति'** अन्दर आवाज और ध्वनि तो देखो! अरे! **'सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति'** देखो! **सहज ही है सकल परद्रव्य से भिन्नपना...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य प्रभु इन सब परद्रव्यों से भिन्न है। शरीर, कर्म, धूल, मिट्टी, पैसा सबसे भिन्न है। सहज ही स्वभाव ही उसका ऐसा परवस्तु से पृथक्पना, **ऐसी प्रतीति को क्यों छोड़ते हैं?** देखो! **'सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति'** का अर्थ किया। क्या कहा?

सहजरूप से परवस्तु से अत्यन्त भिन्न। इस शरीर की किसी भी जड़ की अवस्था से भी भगवान आत्मा तो भिन्न है। आहाहा! जैसे दाल, भात और रोटियाँ बर्तन में पड़ी थी, उनसे यह वस्तु भिन्न है। उससे यहाँ खड़क कर यह शरीर खड़ा हुआ। दाल, भात, रोटियों का यह शरीर हुआ, उससे तो भिन्न है। ऐसा जानने–देखने का स्वभाव, उसकी उदासीनता अर्थात् पर से भिन्नपना क्यों छोड़ता है? क्या भाषा कही, देखा? **'सहजां**

उदासीनतां किं' उदास अर्थात् परद्रव्य से भिन्न, ऐसा अर्थ किया। वहाँ लगा है कि यह मेरे, यह मेरे, इसमें जो स्थिर है, लीन हुआ है... ऊपर मग्न कहा था न? यह मेरे और यह तेरे, यह ठीक और यह ठीक नहीं, ऐसे मिथ्याभाव में मग्न (हुआ है)। अरे! सहज उदासीनता को कैसे छोड़ता है? तुझमें जानने-देखने में रहना, ऐसी प्रतीति को कैसे छोड़ता है? समझ में आया? यह तू जिसमें है, जिस प्रकार से है, उमें उसकी प्रतीति को कैसे छोड़ता है? यह जानने-देखनेवाला भगवान आत्मा तो है।

राग हो, ज्ञान ने जाना। जानते हुए यह उदासीनता ज्ञान पर से भिन्नरूप से काम करता है, ऐसा तेरा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति को क्यों छोड़ता है? यह देह की दशा होने पर (वह) मुझे हुई है, मैंने उसका ज्ञान किया, तदुपरान्त ऐसा माना कि यह मुझे हुई है, ऐसी मिथ्या प्रतीति तूने क्यों खड़ी की है? समझ में आया?

'**सहजां**' **सहज ही सकल परद्रव्य से भिन्नपना...** '**उदासीनतां**' अर्थात् कि परद्रव्य से भिन्नता, ऐसी श्रद्धा। उदास अर्थात् पर से भिन्न रहना। पर से भिन्न है, ऐसा पर से भिन्न रहना, वह स्वाभाविक उदासीनता है, अर्थात् उसकी प्रतीति है। समझ में आया? '**सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति**' भगवान ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु में रहना और यह मेरे आदिरूप न होना, ऐसी शुद्ध प्रतीति को इसे छोड़ देता है? यह प्रतीति क्यों खड़ी करता है? यह ठीक है, यह अठीक है – ऐसे मिथ्याभाव की प्रतीति क्यों खड़ी करता है? सूक्ष्म बात है। ऐसे कहीं भगवान माने, ऐसा नहीं चलता। भगवान को माना, देव-गुरु-शास्त्र '....' भगवानभाई! जाओ, भगवान सच्चे।... करो, जाओ समकित हो गया।

भाई! सम्यक्त्व अर्थात् जैसा आत्मा का स्वभाव जानने-देखने का, आनन्दादि स्वभाव है, ऐसे स्वभाव का स्वीकार, स्वीकार (हो), तब तो उसकी दशा में जानना-देखना और आनन्द का परिणमन हुआ, दशा हुई। तब यह आत्मा ऐसा पूरा, ऐसा प्रतीति में आवे। ऐसी प्रतीति छोड़कर तू यह क्या करता है? परवस्तु, वह तुझे जाननेयोग्य है, उसमें मेरेपने की मान्यता खड़ी करके राग-द्वेष में क्यों लीन होता है? स्वाभाविकरूप से ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसमें उदासीन—पर से उदासीन, पर से हटकर जैसा भिन्नरूप से है, उसकी प्रतीति क्यों छोड़ देता है? समझ में आया? अभी तक सब क्रिया की, परन्तु

यह क्रिया कठिन है। भगवानभाई! यह क्या किया था तूने? भाई! तुझे खबर नहीं।

जहाँ-जहाँ शरीर की अवस्था आयुष्य हो तो बचे, आयुष्य न हो तो मर जाए, यह तो सब अवस्थाएँ पर में होती थी। उसमें तुझे तो जानना चाहिए, उसके बदले इस उपरान्त मैंने बचाया, मैंने मारा, ऐसी भ्रमणा तूने कहाँ से खड़ी की? और पर से भिन्न वे अवस्थाएँ हों, उनसे तेरी चीज़ भिन्न है, ऐसी प्रतीति को तू क्यों छोड़ देता है? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवानभाई! आहाहा! इस प्रकार से लिया है न...

कहते हैं, यह शरीर की अवस्था, लो। समझ में आया? पाउ-कायमं ठाणेणं-माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरामि। आत्मा को वोसराया (छोड़ा है)। ऐसा नहीं। ऐसा है कि जितनी शरीर की क्रिया होती है, वह अजीव वाणी की होती है, वह अजीव, मन की अन्दर होती है, वह अजीव। वह ज्ञान में ज्ञेय, वह ज्ञेय है, उसके बदले मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैं पद्मासन रहा। कहते हैं कि वह जड़ की पर्याय तेरे ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य हुई। तदुपरान्त मैंने की, ऐसा लाया कहाँ से, कहते हैं। इस मिथ्याश्रद्धा के भ्रम से उत्पन्न किया हुआ मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! कहो, शुकनचन्दजी! क्या करना अब? चक्की-बक्की लाकर अब आटा दलना या नहीं? क्या करना इसमें? अच्छा आटा न होवे तो परिणाम अच्छा न हो। कहाँ गया परन्तु? ... मेरे परमाणु अच्छे हो गये। यह क्या कहा है? आचार्य बड़ा नाम धरावे। वापस विरोध करे। अरे! भगवान! तेरा यह भी छल, छल। आहाहा!

भाई! तू चैतन्यस्वरूप है न! तेरे अस्तित्व में तो ज्ञान, दर्शन, चैतन्य का प्रकाश, देखने का प्रकाश भरा है। उस प्रकाश में ऐसा कहीं नहीं भरा कि इस चीज़ को देखने से यह मुझे राग-द्वेष करती है और यह देखने से मेरी है, ऐसा कहीं वस्तु के स्वरूप में भरा नहीं है और यह देहादि की जो किया हुई, उसमें यह नहीं भरा कि तुझे वह मेरापना मनावे, ऐसा उसमें है नहीं। शरीर की यह अवस्था होती है, वाणी होती है, उसमें ज्ञेय में तुझे मेरापन मनावे, ऐसा ज्ञेय में है नहीं।

नव तत्त्व की श्रद्धा सच्ची करना, परन्तु नव तत्त्व किस प्रकार करना? अजीवतत्त्व की जितने द्रव्य-गुण-पर्याय जो हों, उन्हें ज्ञेयरूप से रखने से, आत्मा ज्ञानरूप है, उसे

ज्ञातारूप से रखना तुझे नहीं आता और इस ज्ञेयपने से मेरी क्रिया हुई, ऐसा तूने तेरी उदासीनता की प्रतीति क्यों छोड़ दी ? अर्थात ? पर से भिन्नपने की प्रतीति क्यों छोड़ी ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह तो गजब... जरा यहाँ से... महिलाएँ आ सकी न हों और पूछे, क्या कहना यह ? क्या कहते थे ? कुछ कहते थे। कभी बात को सुना नहीं।

'जड़ और चैतन्य दोनों प्रगट स्वभाव भिन्न।' 'जड़ और चैतन्य दोनों प्रगट स्वभाव भिन्न।' भगवान आत्मा का वस्तु का स्वभाव भिन्न है, इसका स्वभाव भिन्न है। उसका ज्ञात होने का और इसका जानने का। तदुपरान्त तूने तीसरा कहाँ से डाला यह ? **'सहजां उदासीनतां किं मुंचन्ति'** परद्रव्य को जानने से परद्रव्य मेरे हुए, ऐसी प्रतीति कहाँ से लाया ? और ऐसी प्रतीति क्यों छोड़ी ? कि मैं तो उसका जानने-देखनेवाला हूँ, ऐसी श्रद्धा तूने कैसे छोड़ी ? समझ में आया ? आहाहा ! भारी बात, भाई ! क्या होगा ? मणिभाई ! जय भगवान कहे, वह सच्चा, जाओ ! क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं।

यह, आठ वर्ष की बालिका ऐसा समझ जाए। मैं एक आत्मा जानने-देखनेवाला हूँ। ज्ञात हो चीज़, वह ज्ञात होनेयोग्य रहती है। मैं एक जानने-देखनेरूप स्वभाव है, वैसा रहता हूँ। ऐसे अन्तर में स्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन की पर्याय परिणमती है। आहाहा ! उसे धर्मरूप होता है। अपने तो कहते-कहते उसे ख्याल में नहीं आता कि यह विपरीत होता है, विपरीत माना है। अरे !

'एते अज्ञानिनः' भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा हुआ सन्त जगत को कहते हैं। वे प्रतिनिधित्व सन्त करते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं, हों ! कि तेरा स्वभाव जानना-देखना है, उसमें तूने यह पर को मेरा माना। वे तो ज्ञेय हैं। भाई ! तूने ऐसा अज्ञान कहाँ से खड़ा किया ? आहाहा ! समझ में आया ? वह इन राग-द्वेष में क्यों लीन हो गया ? कि जो राग-द्वेष की वृत्तियाँ उत्पन्न हों, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं, उस चीज़ में राग-द्वेष उत्पन्न करने की ताकत नहीं। पर से राग-द्वेष उत्पन्न हो, ऐसी पर में ताकत नहीं और पर से अपने में विकार हो, यह अपना स्वभाव नहीं। समझ में आया ? यह विकार उत्पन्न क्यों किया ? कि मैं एक जानने-देखनेवाला चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा भूलकर, उस ज्ञात होनेयोग्य चीज़ में यह मुझे ठीक-अठीक पड़े, ऐसी मान्यता से राग-द्वेष खड़े किये

हैं। अरेरे! जानने-देखनेवाले की प्रतीति उदासीनता भिन्नता क्यों छोड़ता है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब बातें, बापू! आहाहा! इसने कभी वीतरागमार्ग क्या है, यह सुना नहीं। सुना नहीं और हम वीतराग के मार्ग में अवतरित हुए हैं, (ऐसा मानता है)। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर देव अनन्त तीर्थंकरों ने ऐसा फरमाया है, ऐसा महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा अभी विराजते हैं। सीमन्धर तीर्थंकर आदि बीस तीर्थंकर और लाखों केवली, वे वाणी में ऐसा फरमाते हैं, उसे सन्त प्रतिनिधिरूप से कहते हैं। समझ में आया?

भाई! तू तेरे अस्तित्व में राग-द्वेष तो है नहीं, हमने देखा नहीं। पर जो चीज़ें हैं, वे तुझे राग-द्वेष करावें, ऐसा हमने देखा नहीं। तब तेरे देखने में ऐसा कहाँ से आ गया? कि अरे! यह जानने से ऐसा मलिन हुए बिना नहीं रहते, हों! अरे! रोग को ज्ञान जानने से द्वेष हुए बिना रहे? करंट लगता है अन्दर से। और ऐसे पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी कान से सुने, ऐसे पाँच लाख का बँगला देखे। हजीरा अर्थात् मकान। आहाहा!

मुमुक्षु : मकान को हजीरा कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हजीरा ही है न, दूसरा क्या है? वोरा मरकर दफन करे, उसे हजीरा कहा जाता है। यह सब हजीरा ही है न? क्या मकान है, वह तो धूल है। ऐसे देखे वहाँ, आहाहा! भाई! तुझे मरते हुए छोड़ना कठिन पड़ेगा, हों! न्यालभाई! स्त्री रोवे। नहीं रोती? अरे! बापू! भरे घर में से निकलना कैसे सुहाया? वह रोवे। ढोंगढोंग सब। किसे कहना भरा घर? भगवान आत्मा तो अत्यन्त भिन्न है। वह कुछ लेकर आया था? और आया तो उसके कारण से आया था। समझ में आया?

आज ही दृष्टान्त नहीं दिया था? उन भाई ने कहा था। मोक्षमार्गप्रकाशक का दिया था। वह लड़का है न? उस पागल का। एक मनुष्य था, मनुष्य। मोक्षमार्गप्रकाशक का दृष्टान्त दिया था। एक पागल मनुष्य था, नदी के किनारे गया। यह क्या 'उतावणी' कहलाती है न? हमारे 'काणुभार' बड़ी नदी उमराला में है न? बड़ी लम्बी नदी। उसमें बहुत बड़े पत्थर होते हैं। उसमें जाकर बैठा। उसमें लगभग नौ, साढ़े नौ, दस बजे। उसमें राजा निकला, एक राजा। तब तो कहाँ ऐसी मोटरें-फोटरें थी? .... दरबार निकले

तो घोड़ागाड़ी लेकर निकले। परन्तु वह तो उमराला आ जाए। परन्तु बहुत दूर से निकले हों और पानी बहुत देखकर दस बजे वहाँ पड़ाव डाला। हाथी, घोड़ा। पड़ाव डाला। आधे घण्टे, घण्टे, दो घण्टे (रहे)। (भोजन) करके फिर अपन चलेंगे। तम्बू लगायें हो तो सोवे। वह पागल बैठा था। ओहो! यह मेरा राजा आया, यह मेरी रानी आयी, यह मेरे हाथी आये, यह मेरे घोड़े आये। वे ऐसे खा-पीकर, सोकर जहाँ दो बजे (तो) चलने लगे। ऐ...! पूछे बिना कैसे जाते हो? वह कहे पागल हो, हम तो हमारे कारण से आये हैं और हमारे कारण से जाते हैं।

इसी प्रकार यह पागल कहीं से घर में आया वहाँ से यह स्त्री, पुत्र और शरीर उनके कारण से सब आये हैं और वे जहाँ अवधि पूरी हो और चलने लगे तो कहे, ऐ! कैसे चलते हो? आत्मा तो कहीं से आया, अत्यन्त भिन्न है। हें? आत्मा तो कहीं से आया, कर्म के रजकण साथ में थे। बस! इतना। फिर यह शरीर हुआ, फिर यह मकान। पश्चात् यह देखने लगा, बगीचा और अमुक और अमुक और यह अवसर जहाँ आया तो वह सूखने लगा, वह चलने लगा, स्त्री मर गई, लड़का मर गया। ऐ! परन्तु तुम मुझे पूछे बिना कैसे जाते हो? परन्तु कहाँ तुझे पूछने के लिये आये थे? तुझे पूछकर आये हैं? हम तो हमारे कारण से आये थे। हमारी अवधि पूरी हुई, इसलिए हम जाते हैं।

यह तो 'कालुभार' ही पड़ी है यह। यह आज याद किया था, वह गोंडलवाला है न? रास्ते में याद किया था। चिमनभाई ने दृष्टान्त दिया है। हाँ, दृष्टान्त बराबर है। क्यों पोपटभाई? उसने लड़कों का दृष्टान्त दिया होगा। ऐसे आत्मा तो कहीं से आया। हैं? आहाहा! यहाँ जहाँ आया और वे संयोग इकट्ठे हुए तो (कहे), मेरे आये। अवधि पूरी होकर चलने लगे तो (कहे) मेरे कहाँ गये? परन्तु तेरे थे कब? मिथ्याभ्रमणा खड़ी करके मेरे माने हैं। अरे! तेरा उदासीनभाव कैसे छोड़ता है? अरे! तू तुझमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द में है, उसकी प्रतीति कैसे छोड़ता है? यह मेरे और मेरे गये, ऐसे भाव तूने कैसे खड़े किये? भाई! यह तुझे शोभा नहीं देता। ऐसा यहाँ समझाकर आत्मा के स्वभाव की अनुभव, प्रतीति कर तो तुझे आनन्द की प्राप्ति होगी। परपना का मानना तुझे छूट जाएगा। तब तुझे धर्म होगा। (विशेष कहेंगे...) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक-१३-११-१९६५, कलश-२२२, प्रवचन-२४४-G

कलशटीका, ३०वाँ कलश है, धारावाही में २२२। यह जो विषय रात्रि में पहले कहा था, वह थोड़ा कहते हैं। देखो! क्योंकि इसके साथ मेल नहीं इसमें। यह बाद के ३१वें श्लोक में आता है। यह आत्मा है, आत्मा उसकी प्रतीति, ऐसा जो सम्यग्दर्शन। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा आत्मा, उसकी जो अनुभवसहित की जो सम्यक् प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन किसे कहना और उस सम्यग्दर्शन में क्या होता है?

जो आत्मा अनन्त गुणरूप वस्तु है, ऐसे आत्मद्रव्य की प्रतीति होने पर, जैसे वह उसमें एक श्रद्धागुण है, इससे उसकी पर्याय का प्रगटपना सम्यग्दर्शनरूप से पर्याय प्रगट होती है, वैसे अनन्त गुण की प्रतीति होने पर अनन्त गुण की प्रगट—व्यक्त परिणति, शुद्ध प्रगट सम्यग्दर्शन के साथ होती है। समझ में आया? क्योंकि आत्मद्रव्य उसे कहते हैं कि जो अनन्त गुण का पिण्ड। तो अनन्त गुण का पिण्ड, ऐसे आत्मद्रव्य की प्रतीति अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्दर्शन जैसे श्रद्धागुण में से पर्यायरूप से परिणमा, ऐसा ज्ञानगुण भी स्व को पकड़ने की योग्यतावाला सम्यक्रूप से परिणमता है, इसी प्रकार चारित्रगुण भी स्वरूप की स्थिरता के अंशरूप से अन्दर साथ में प्रगट होता है। ऐसा उसके अन्दर में अकारणकार्यपना उसका स्वयं का गुण है न? इसलिए पर्याय में सम्यक् प्रतीति के साथ पर का कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं, राग से मेरी पर्याय का कार्य नहीं, ऐसा अकार्यकारण नाम का गुण भी उसके—सम्यग्दर्शन की पर्याय के साथ इस प्रकार से परिणमता है, तब ऐसे अनन्त गुण का परिणमन का एकरूप श्रीमद् ने उसे 'सर्वगुणांश, वह समकित' कहा। उसका अर्थ यह है। यह तो विचार दूसरे प्रकार से आया था, उसके ऊपर से नहीं। यह कल समकित की व्याख्या थोड़ी मुम्बई से आयी थी न?

भाई! सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यदृष्टि, तो सत्य ऐसा पूरा तत्त्व जो आत्मा है, अनन्त गुण जो सत्रूप से है, उनकी प्रतीति में अनन्त गुण की परिणति शुद्धरूप से वहाँ प्रगट होती है। आनन्द का अंश भी साथ में प्रगट होता है। विभु नाम का गुण है, इसलिए विभु गुण अनन्त गुण में व्यापक है, इसलिए प्रगट होने पर उसकी पर्याय में भी अनन्त गुण

का व्यापकर परिणति को कार्यरूप से शुद्धदशा हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। न्यालभाई! महँगा बहुत परन्तु, कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आत्म वस्तु है न? एक समय में अनन्त गुणरूप वस्तु है न? उसके अन्तर में स्वसन्मुख होकर प्रगट हुई पर्याय में सब गुणों के अंश की प्रगट-व्यक्त पर्याय साथ में विभु है न? विभु, उसके अनन्त गुण में विभु नाम का गुण व्यापक है, तो पर्याय में भी अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय शुद्धरूप परिणमे, उसके साथ की जो प्रतीति, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। ऐसे प्रतीति... प्रतीति (करे), ऐसा नहीं।

श्रद्धागुण की पर्याय का स्वरूप वह प्रतीति, परन्तु वह प्रतीति ऐसी है कि अनन्त गुणरूप द्रव्य को प्रतीति करने से अनन्त गुण उछलते हैं। वह भाषा आयी, भाई! शक्तियाँ हैं न? उछलती है, इसका अर्थ यह कि ऐसे श्रद्धा करने पर अनन्त गुण उछलते हैं अर्थात् पर्याय में अनन्त गुण परिणमनरूप से पर्याय में कार्य करते हैं। समझ में आया? उसमें यह सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूप में अकर्तागुण जो है, वह भी राग और पर का कर्ता नहीं, ऐसा अकर्ता का परिणमन, परिणमन साथ में सम्यग्दर्शन में होता है। रात्रि में कहा था, तुमने सुना था? रात्रि में तो सुना नहीं था। समझ में आया?

एक समय में भगवान पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप पूर्ण है न? तो उसकी पर्याय में भी प्रभुता की पर्याय अखण्ड प्रतापवाली स्वतन्त्र शोभायमान की पर्याय से परिणमता सम्यक् परिणमता है। उसे पूरी दुनिया के पदार्थ का क्या स्वरूप है, (वह) 'सब आगम भेद सु उर वसे।' समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो प्रतीति का भाव अकेली रूखी प्रतीति नहीं, साथ में आनन्द का कार्य लेती आवे। वीर्यगुण का कार्य क्या उस काल में? सम्यक् प्रतीति हुई वहाँ वीर्यगुण की भी स्वरूप की शुद्धता की रचनारूप परिणमन साथ में होता है। समझ में आया? ऐसे उसके षट्कारक जो कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण जो शक्तियाँ हैं, वह सम्यक् प्रतीति होने पर वे शक्तियाँ कार्यरूप से, कार्यरूप से परिणमन में स्वतन्त्र शुद्धरूप से परिणमती हैं। समझ में आया?

जीवत्वशक्ति की भी पर्याय भावप्राण जिसका आधार, जो जीवत्वशक्ति का स्वरूप वह सम्यक् प्रतीति होने पर, उस चैतन्य के भावप्राण ज्ञान, दर्शन, सत्ता आदि शुद्धपर्यायरूप से परिणमन हो, उसे आत्मा की प्रतीति और सम्यग्दर्शन हुआ, कहा जाता है। आहाहा! और उस प्रतीति में जो पर्यायों का वेदन का ख्याल आया कि यह वस्तु आनन्दरूप का परिणमन है, (यह) अकर्तापने का (परिणमन है), ऐसा पूरा आत्मा वह आनन्दमय है, पूरा आत्मा अकर्ता और अकार्यकारण स्वभाववाला तत्त्व है, पर के कर्ता बिना का तत्त्व है, स्वभाव के कर्तावाला पूरा तत्त्व है। समझ में आया? और यह प्रतीति आने पर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भी गुण जब है तो प्रतीति में जब ज्ञान, श्रद्धा और दर्शन की पर्यायरूप से परिणमन हुआ, उससे ख्याल आ गया कि यह पूरा आत्मा ज्ञान का भण्डार, वह केवलज्ञान का कन्द है, उससे केवलज्ञान होगा। इसलिए श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ, इस अपेक्षा से कहने में आता है। समझ में आया?

श्रद्धा ने द्रव्य-गुण को स्वीकार नहीं किया था। जबकि द्रव्य-गुण तो एकरूप है, गुण का एकरूप, वह द्रव्य। उसकी प्रतीति होने पर यह केवलज्ञान श्रद्धा में प्रगट हुआ। क्योंकि अकेला ज्ञानमय आत्मा है, ऐसा श्रद्धा में आ गया। इसलिए केवलज्ञान अल्पकाल में प्रगटरूप से होगा, ऐसा प्रतीति में आ गया। ऐसा सर्वदर्शीपना उसका गुण है, ऐसी प्रतीति होने पर गुण के कार्यरूप से दर्शीशक्ति की पर्याय जो प्रगट हुई, उससे भान हुआ कि इसका (आत्मा का) सर्वदर्शी पूरा स्वभाव है, वह अल्प काल में प्रगटरूप से पर्याय सर्वदर्शीरूप से होगी। समझ में आया? न्यालभाई! ८४ वर्ष में कभी सुना नहीं होगा। कठिन नहीं है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। हैं? भोगीभाई!

भाई! आत्मा वस्तु, वस्तु है न एक? तो उसके अनन्त गुण हैं न? तो आत्मा प्रतीति में, द्रव्य प्रतीति में आने पर जैसे प्रतीति पर्याय में आयी, वैसे अनन्त गुणरूप जो द्रव्य है, (वह) सब पर्यायरूप से स्वतन्त्र शुद्धरूप से परिणमता है। समझ में आया? उछलने लगे हैं, इस बार मांगलिक में यह आया था न? नूतन वर्ष के दिन यह आया था न?

भगवान आत्मा... आहाहा! अनन्त-अनन्त बेहद गुणों का जो भण्डार (उन)

सब गुणों का पर्याय में परिणमन शुद्धरूप से भास होने पर उसकी प्रतीति हुई कि यह पूरा आत्मा भगवानस्वरूप है, परमात्मा है। उसका पर्याय में वेदन सहित (प्रतीति हुई), हों! वह आनन्द का अंश आया तो पूरा आत्मा आनन्दरूप है, शान्ति का अंश आया तो पूरा आत्मा शान्तस्वरूप, चारित्रस्वरूप ही है। समझ में आया? इसी प्रकार अकर्तापना, पर्याय में राग का कर्तापना नहीं, स्वभाव का कर्तापना, वह कर्तागुण के कारण से है, राग से मुझमें कार्य नहीं होता, ऐसी परिणति होकर सम्यक् खड़ा हुआ। आहाहा! समझ में आया? अब इस स्थिति को जाने नहीं और मान ले कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। मानो। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, यह है (हमने) आत्मा माना। बापू! आत्मा मानने में तो अनन्त गुण उसकी प्रतीति में पर्याय में आवे। पर्याय में, हों! गुण में तो हैं। वे कहाँ, वे तो शक्तिरूप हैं। समझ में आया?

इस आत्मा में प्रत्यक्ष प्रकाश नाम का गुण है। इसलिए सम्यग्दर्शन के काल में वह स्वसंवेदनज्ञान प्रत्यक्ष से काम करे, ऐसा प्रत्यक्ष कार्य उसकी दशा में आना चाहिए। समझ में आया? ज्ञान राग बिना ज्ञान को वेदे और जाने, विकल्प की अपेक्षा बिना वेदे, जाने ऐसा उसका जो गुण है, उस गुण की पर्याय प्रत्यक्षरूप से स्वसंवेदन होकर, प्रगट हो, तब उसकी प्रतीति होती है कि यह पूरा आत्मा प्रत्यक्ष हो सके ऐसा है। भोगीभाई! समझ में आया इसमें? आज सवेरे भी जरा थोड़ा सूक्ष्म आया था, हों! सुनने आये हैं न, बात सच्ची। आहाहा!

भाई! तू कितना बड़ा? और तेरी प्रतीति कितनी बड़ी? तू बड़ा अनन्त गुण का पिण्ड। अनन्त-अनन्त गुण। आकाश के प्रदेश का माप नहीं, उससे अनन्तगुणे तेरे गुण, ऐसा एक द्रव्य। ओहोहो! इस आत्मद्रव्य की प्रतीति में इतने अनन्त-अनन्त जितने गुण हैं, सब प्रगटरूप से पर्याय के शुद्धरूप से प्रगट में कार्य करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! भोगीभाई! आहाहा!

भाई! तेरा स्वरूप ही वहाँ आगे (ऐसा है)। ओहो! प्रभुता का समुद्र है न, भगवान! प्रभुता के स्वभाव से—गुण से भरपूर भगवान, इसकी प्रतीति में आने पर अनन्त गुण प्रभु के सामर्थ्य और स्वतन्त्र और अखण्ड प्रतापवाले हैं, ऐसी पर्याय कार्यरूप से प्रगट

होने पर उसकी प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? इस वेदन में अनन्त गुणों की पर्याय आ गयी। प्रगटरूप से, हों! श्रद्धा एक गुण है, परन्तु उसकी प्रगटरूप पर्याय ऐसे अन्तर्मुख ध्रुव है, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव एकरूप है, ऐसा अन्तर में लक्ष्य देने पर जो परिणमन हुआ, सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का (परिणमन हुआ), उसमें अनन्त गुणों का परिणमन उस समय में इकट्ठा पूरा समूह पका। उन अनन्त गुणों की पर्याय के अंकुर अन्दर प्रस्फुटित हुए! आहाहा! समझ में आया? इसलिए सम्यग्दर्शन को केवलज्ञान का बीज कहा अथवा ऐसा कहा कि सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् केवल (ज्ञान) न हो, ऐसा नहीं होता।

केवलज्ञान जैसे तीन काल तीन लोक को जानने का अप्रतिहत, भव बिना का काम करता है, ऐसा ही काम सम्यग्दर्शन करता है। ऐसा ही काम करता है। अप्रतिहत मेरा स्वभाव जो अखण्डानन्द प्रभु है, वह मेरे पूर्ण स्वभाव को प्रगट करता समकित दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! यह क्या है? सम्यग्दर्शन अर्थात् लोगों ने साधारण कीमत मानी थी, वह चीज़ ऐसी नहीं। कहो, अब इसमें क्या करना इसमें? पचास वर्ष तक राग मन्द करके यह त्याग किया हो, उसकी कीमत कितनी?

मुमुक्षु : पुण्य तो होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कीमत भी कहाँ आयी उसमें? कीमत तो राग बिना की पूरी चैतन्यमूर्ति चारित्रगुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी जहाँ प्रतीति होने पर वह स्थिरता का अंश जो अन्दर में आया, तब उसका चारित्र का कार्य स्थिर हुआ। तब यह कार्य हुआ। मन्दकषाय वह वस्तु नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से यह प्रतीति नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के लक्ष्य से यह प्रतीति नहीं होती। समझ में आया? वह तो भगवान एक समय का पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका ध्येय—प्रतीति होने पर अनन्त गुण कार्यरूप से परिणम जाते हैं। द्रव्य भगवान कारण है अर्थात् कारण दूसरा नहीं अब अन्दर। वह वस्तु स्वयं द्रव्य और गुण कारण है। वह कारण बनाया कब? कि ऐसी प्रतीति और भान किया तो। कारण तो है, परन्तु बनावे कार्य में तब न? उसकी प्रतीति / श्रद्धा, ज्ञान होने पर ज्ञायकमूर्ति पूर्णानन्द को कारण

बनाया तो अनन्त गुण का कार्य एक समय में आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? उसमें फिर बाकी रहा हुआ राग आस्रव, बन्ध आंशिक वह उसमें नहीं, ऐसा उसमें ज्ञान होता है। समझ में आया? राजमलजी! आहाहा! हें? लोगों को बेचारों को ऐसा लगता है कि अरे! यह तो क्या होगा? अरे! भगवान! बापू! तुझे वस्तु की खबर नहीं। जैसी वस्तु की महत्ता है, वैसी ही उसके सम्यग्दर्शन की ऐसी ही महत्ता है। समझ में आया?

एक समय में जैसा भगवान पूर्णानन्द और द्रव्य शक्ति से सब पड़ा है, ऐसे आत्मा की प्रतीति न? आत्मा की प्रतीति न? उसकी श्रद्धा न? तो आत्मा तो अनन्त गुण का समुद्र है। उसकी श्रद्धा न? उसकी श्रद्धा में अनन्त गुण की पर्यायरूपी निर्मल कार्य हुए, उसमें प्रतीति हुई कि पूरा यह तत्त्व ऐसा है। समझ में आया? भीखाभाई! अरे... अरे...! हमारे देव-गुरु-शास्त्र से कुछ नहीं होता, यह तो ऐसा कहते हैं। भगवान की भक्ति से कितना होगा इसमें? तुम पुराने व्यक्ति हो। कम, अधिक और विपरीत माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं आया? खजाना खुला, उसका नाम खुल गया कहलाता है। ज्ञान के अंकुर, श्रद्धा के अंकुर, शान्ति के अंकुर, आनन्द के अंकुर, अकार्यकारण के अंकुर, अकर्ता के अंकुर, अभोक्ता के अंकुर—सब गुणों के अंकुर फूटे हैं। वे पूर्ण होकर ही रहेंगे। समझ में आया? रतिभाई!

मुमुक्षु : क्षयोपशम की पर्याय तो अपूर्ण होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अभी क्षयोपशम हो तो अपूर्ण हो, क्षायिक हो तब पूर्ण हो। तो भी अभी श्रद्धा की पर्याय पूर्ण होगी। वास्तव में तो पूर्ण हो गयी। परन्तु परमज्ञान के साथ हो, उसे परम अवगाढ़ समकित कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा एक ही आत्मा, पूर्णानन्द का घन प्रभु, उसकी प्रतीति में पर्यायें, अनन्त गुण का परिणमन (हुआ)। ऐसा कह दे कि एक प्रतीति हुई और हमको दूसरी खबर नहीं। ऐसा नहीं होता। अनन्त गुणों का धारक भगवान को प्रतीति में लिया अथवा ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाया अथवा स्थिरता में उसमें स्थिरता की (तो) सब गुणों का अनन्त कार्य परिणमन हो गया। समझ में आया? उसे सब द्रव्यों की क्या शक्ति और सामर्थ्य है, वह सब 'सब आगम भेद सु उर बसे।' विशेष स्पष्ट करना कदाचित न भी

आवे। समझ में आया? वस्तु इसके हाथ में आ गयी। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहलाता है। आहाहा! यह तो अभी (अज्ञानी कहता है), शुभभाव से क्षायिक समकित होता है। भगवान! तेरी गति भी गजब है न! समझ में आया इसमें?

रात्रि में अधिक आया था। भाई! यह तो आवे तब सही न! थोड़ा-थोड़ा जब आता था तब वह विषय ही अन्दर में घुलता था। समझ में आया? यह तो वह आया था न? समकित की व्याख्या करते हैं वहाँ। अरे! भगवान! समकित किसे कहे? बापू! तूने सुना नहीं, भाई! हें? आहाहा! यह श्रद्धागुण की पर्याय समकित किसे कहे और कितनी पूँजी साथ में लेकर प्रगटे? समझ में आया? अकेला वर न हो, उसके साथ तो अनेक बाराती लेकर आता है। अरे... भाई! आहाहा! ऐसे अकर्ता-अभोक्ता थोड़ा-थोड़ा तो और रात्रि में वापस बहुत विचार, मन्थन से आये थे। उत्पाद, व्यय और ध्रुव। सब सत् है न? गुण है न, वह तो एक गुण है न अन्दर? वह गुण भी प्रतीति में आया, साथ में क्षण-क्षण में उत्पाद उसका हो, क्षण-क्षण में उत्पाद हो, ऐसा श्रद्धा में आ गया। उसमें किसी के कारण से होता है और इस कारण से होता है, यह बात है नहीं। आता है न यह? उत्पाद, व्यय, ध्रुव का गुण।

अमूर्त का गुण आंशिक प्रगट हुआ। निष्क्रिय गुण आंशिक प्रगट हुआ। समझ में आया? योग का अकम्पन जो आंशिक है, वह भी साथ में प्रगट हुआ। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? आहाहा! यह भगवान आत्मा जितने अनन्त गुण के समुदायरूप पिण्ड है, उतनी ही पर्यायें एक साथ कार्यरूप से परिणमी हैं। उसमें यह आत्मा, ऐसी प्रतीति हुई, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। भोगीभाई! कहो, समझ में आया इसमें? जीवत्व से लेकर। है न जीवत्वशक्ति? चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शीत्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व। सम्यक् प्रतीति होने पर अनन्त गुणों का अंश स्वच्छरूप से प्रगट हो गया। स्वच्छरूप से एक गुण को दूसरे गुण के साथ अन्दर सम्बन्ध है, सब स्वच्छ हो गया। स्वच्छ अंश पर्याय स्वच्छ हो गयी। ज्ञान भी अन्दर स्वच्छ निर्मल में आ गया। ओहोहो! समझ में आया?

अरे! भगवान! सम्यग्दर्शन अर्थात् केवल (ज्ञान को) लाने की, केवल (ज्ञान)

को बुलावे ऐसी बात। सम्यग्दर्शन अर्थात् केवल (ज्ञान) को बुलावे। केवलज्ञान अल्पकाल में आना! भोगीभाई! आवाज लगाकर जैसे शोर करे, वैसे समकित शोर करता है। क्या शोर करता होगा? प्रतीति में जोर आया कि यह वस्तु अकेली केवलज्ञान का कन्द ही है। यह तो चैतन्य पिण्ड है। पर्याय में पूर्ण होगा ही। समझ में आया? केवलज्ञान को श्रद्धा—समकित बुलाता है। केवलदर्शन को बुलाता है, पूर्ण आनन्द को बुलाता है, पूर्ण वीर्य को जोर देकर (कहता है), लाओ पूर्ण वीर्य! ऐसा पर्याय में प्रतीति में इतना जोर आवे, ऐसे पूरे द्रव्य की प्रतीति (हो), उसे सम्यग्दर्शन (कहा जाता है)। आत्मद्रव्य की प्रतीति अर्थात् कि अनन्त गुण की प्रतीति और अनन्त गुण के कार्य की पर्याय की व्यक्तता। समझ में आया? कहो, समझ में आया इसमें? आने का था, उतना आया, अटका। आवे तब आवे न! यह तो रामजीभाई ने जरा कहा था कि पहले यह रखो, नहीं तो इसमें नहीं आता। वापस यहाँ आयेगा, यहाँ आयेगा। कहो, समझ में आया?

अब कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा! ऐसी प्रतीति और ऐसा ज्ञानवाली जो आत्मदशावाला तत्त्व, वह दूसरे को जाने, उसमें तुझे विकार हो, यह तू लाया कहाँ से? कहते हैं। सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानसहित आत्मा प्रगट हुआ, वह सब जाने। जाने; इसलिए उसके ज्ञान में विकार आया, ऐसा कहाँ से आया? जानने में तो निर्विकारी पर्याय परिणमित हुई है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! अन्तिम यह आया।

अरे! '**सहजां उदासीनतां किं मुञ्चंति**' अरे! भगवान स्वद्रव्य ऐसी तेरी शक्ति का सत्त्व और उसकी तेरी प्रतीति का कार्य ऐसा होना चाहिए। समझ में आया? **सहज ही है सकल परद्रव्य से भिन्नपना ऐसी प्रतीति को क्यों छोड़ते हैं?** अपने द्रव्य की प्रतीति के कार्यरूप में यह और तुझे परद्रव्य के कारण से मुझे विकार होता है, (यह कहाँ से आया)? परद्रव्य से भिन्न और स्वद्रव्य के गुण की पर्याय से अभिन्न, अपना आत्मा अपने गुण-पर्याय से अभिन्न। उसे पर के कारण से मुझे विकार हो, अरे! ऐसी प्रतीति तू कहाँ से लाया?

जानने में यह चीज़ आयी। यह स्त्री जानने में आयी। किसलिए भगा? कहते हैं। क्या ज्ञान में जानने से दोष है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह जानने से तुझे राग

होता है, ऐसा माना है, वह मिथ्याभ्रम, अज्ञान है। यह कहते हैं। यहाँ तक आया, देखो! **सहज ही है सकल परद्रव्य से भिन्नपना ऐसी प्रतीति को क्यों छोड़ते हैं?** क्योंकि **वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है,...** ज्ञाता-दृष्टापना, ज्ञान-दर्शनपना वस्तु तो प्रगट है। ज्ञान-दर्शन का भण्डार जानने-देखने का कार्य करे, ऐसी वस्तु तो प्रगट है। समझ में आया? **विचलित होते हैं...** अरे! **विचलित होते हैं, सो पूरा अचम्भा है।** अरे! यह दिख गया (तो) मुझे राग हो गया, यह दिख गया (तो) मुझे द्वेष हुआ। अरे! यह क्या तुझे भ्रम हो गया है? समझ में आया?

केवलज्ञानी तो तीन काल—तीन लोक को देखते हैं, कुछ बाकी है उनके ज्ञान में? तो उसके कारण राग होता होगा? कहते हैं कि तेरे जानने-देखने के स्वभाव के कार्य में ज्ञात हुआ, इसलिए राग हुआ, यह ज्ञात हो गया, इसलिए यह राग हुआ, आँख बन्द कर लो। आँख बन्द अर्थात् जड़ बन्द। तूने अन्दर क्या बन्द किया? समझ में आया? इस ज्ञान को तुझे अच्छादित कर डालना है? जानने के कार्य में जानने के कार्य को संकुचित करना है? संकोच करना है? परिणमनहीन करना है? क्या करना है तुझे? रतिभाई! कठिन बात, भाई!

कहते हैं, अरे! **विचलित होते हैं सो पूरा अचम्भा है।** हों! भाई! तेरे ज्ञान में इस शरीर का रोग ज्ञात हो, इन्द्रियों के आकार ज्ञात हों, इन्द्रियों की चेष्टायें सब जड़ की पर्याय ज्ञान में ज्ञात हो। ज्ञात हो, वह तो समस्त ज्ञात हो, ऐसा उसका धर्म है। जानना इसका धर्म है। इसके अतिरिक्त तीसरा यह कहाँ से लाया? यह ज्ञात हुआ, मुझे राग हो गया है। यह चीज़ दिखाई दी, उसमें मुझे द्वेष आया। दिखाई दिया, इसलिए प्रेम आया। यह कहाँ से लाया? भोगीभाई! देखो! अरे! यहाँ तो कहते हैं, **पूरा अचम्भा है।** क्या कहा? कि आत्मा ज्ञानस्वरूप से ज्ञान के कार्य में पर ज्ञात हो और यह जाने। बस! इतनी इसकी मर्यादा है। इसके अतिरिक्त, अरे! यह अंग खुल्ला दिख गया, यह अमुक दिख गया। क्या है यह? विचलित होकर क्या यह अचम्भा है तुझमें। समझ में आया?

भगवान आत्मा तो जानने-देखने के कार्य करे। उसमें तू कहे, अरे! यह दिख गया। ऐसा विचलित क्यों होता है? भगवान परमात्मा कहते हैं। **विचलित होते हैं, सो**

पूरा अचम्भा है। अर्थात् कि मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? ज्ञानस्वरूप है, वह तो जानने का गुण है तो जानने का ही कार्य करे। और जगत के जितने ज्ञेय हैं, शरीर से लेकर स्त्री, कुटुम्ब-परिवार या पूरी दुनिया, वह सब ज्ञात होनेयोग्य चीज़ है। ज्ञात होनेयोग्य के उपरान्त इसमें पर को जानने में राग हो, ऐसा उनमें गुण नहीं और जाननेवाला उन्हें जानने से इसमें गुण ऐसा नहीं कि राग हो। तब अब आचार्य कहते हैं कि अरे! विचलित होता है, यह अचम्भा है, भगवान! तेरे लिये तूने आश्चर्यकारी बात उत्पन्न की है।

भगवान जानने-देखनेवाला जाने-देखे, वह पूरी दुनिया ज्ञात हो, चाहे जो पर्याय हो नहीं। अरे! तू चलित क्यों हो जाता है कि इस ज्ञान में ऐसा कैसे ज्ञात होता है? यह ज्ञात होता है तो मुझे राग (होता है)। तू विचलित किसलिए होता है? क्या हुआ है? बड़ा अचम्भा! आचार्य कहते हैं कि तूने बड़ा अचम्भा खड़ा किया है, भाई! ए... भीखाभाई! यह परमगुरु सर्वज्ञदेव परमगुरु। परमगुरु सर्वज्ञदेव, परमगुरु सर्वज्ञस्वभावी परमगुरु आत्मा। समझ में आया? वे सर्वज्ञदेव (ऐसा) नहीं। सर्वज्ञस्वभावी भगवान परमगुरु आत्मा। यह सब सीखे ऐसा है इसमें। रतिभाई! आहाहा! उस आत्मा की बातें हैं यह। भगवान के घर की भगवान को पहुँचाने की बात है। आहाहा!

कहते हैं, ओहो! **कैसे हैं अज्ञानी जीव?** शुद्ध '**तद्वस्तु**' है न? **शुद्ध जीवद्रव्य की स्थिति अर्थात् स्वभाव की मर्यादा के अनुभव से शून्य है बुद्धि जिनकी,...** अर्थात्? भगवान आत्मा ज्ञानगुण के कार्य में तो जानने-देखने का कार्य करे, ऐसी वस्तु की मर्यादा है। ऐसी शुद्धस्वभाव की मर्यादा, उसकी जो हद चाहिए कि जानना-देखना, वह उसकी मर्यादा, ऐसे अनुभव के भान से वह अज्ञानी खाली है। उसकी बुद्धि **ऐसे हैं।** क्या कहते हैं? '**अयं बोधा**' **विद्यमान है जो चेतनामात्र जीवद्रव्य वह...** '**बोधा**' बोधवाला भगवान। ज्ञानस्वरूप भगवान '**बोधा**' देखो! यह '**बोधा**' की व्याख्या। समझ में आया? **विद्यमान है जो चेतनामात्र...** इसका अर्थ ही यह किया। विद्यमान अस्तिवाला जानने-देखनेवाला पदार्थ है। वह तो उसकी अस्ति उसकी जानने-देखने के स्वभाववाली वस्तु-तत्त्व है। और '**बोध्यात्**' **समस्त ज्ञेय को जानता है।** ज्ञेय। '**बोध्यात्**' ज्ञात होनेयोग्य

जीव को जाने, ऐसा तो तेरा तत्त्व है। इस कारण से '**कामपि विक्रियां न यायात्**' **राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप नहीं परिणमता है।** जाननेयोग्य चैतन्य भगवान आत्मा जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला विद्यमान विद्यमान अस्तिवाला पदार्थ, उसे ज्ञात होनेयोग्य '**बोध्यात्**' सब। शरीर, वाणी, मन, कर्म। गुह्य वस्तु, अगुह्य वस्तु, गुप्त, अगुप्त सब ज्ञात होनेयोग्य, भगवान के ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य वस्तु यह हुई। उसमें यह विचलितपना कहाँ से लाया? कहते हैं। समझ में आया? इस कारण से '**कामपि विक्रियां न यायात्**' ज्ञात होनेयोग्य चीज़ और जाननेवाले में कहीं विक्रिया—राग होने का अवसर है नहीं।

कान में जहाँ शब्द सुने, क्या हुआ तुझे? हें? तूने ज्ञान बिगाड़ा। हें? क्या कहते हैं? देखो न! '**कामपि विक्रियां न यायात्**' वह बिगड़े, ऐसा नहीं और तूने खड़ा कहाँ से किया कि मेरा ज्ञान बिगड़ गया। ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय है, जाननेवाला भगवान चैतन्य है। दो के बीच का ऐसा नियम वस्तु की स्थिति की मर्यादा है। दो के बीच में यह जानने से मुझे यह ज्ञात होता है, वहाँ राग होता है, द्वेष हो जाता है, आहाहा! यह दुश्मन ख्याल में आया न? कि यह दुश्मन है तो द्वेष आया। वह कहाँ से आया? दुश्मन जगत में है कहाँ? वह तो ज्ञेय है और तू तो ज्ञान—जाननेवाला है। दुश्मन कहाँ से खड़ा किया तूने? समझ में आया? ऐसा ज्ञान जाननेवाला है।

यह मेरा प्रिय पुत्र, हों! यह कहाँ से आया? कहते हैं। यह कहाँ से आया? वह तो ज्ञेय है, यह ज्ञान है। ज्ञान में ज्ञात हो इतना है। यह तीसरा कहाँ से लाया कि यह मेरा प्रिय। यह कहाँ से लाया? समझ में आया? क्या होगा इसमें? अरे! 'महासुख' आवे तो ऐसे थबड़-थबड़ मारे पीछे से। आहाहा! बेटा! कहते हैं कि कहाँ से बेटा आया? तेरे ज्ञान में वह ज्ञात हुआ, वह ज्ञेय, उसमें बेटा कहाँ से अन्दर घुस गया? न्यालभाई! ज्ञान जानने का काम करे। ज्ञेय जनवाने का काम करे अर्थात् कि प्रमेयरूप से परिणमे। अब उसमें दो के अतिरिक्त यह प्रिय और यह दुश्मन, यह लाया कहाँ से? यह तेरी मिथ्याभ्रम बुद्धि में से खड़ा किया हुआ है। आहाहा! कठिन बात है, हों! भीखाभाई!

केवलज्ञानी को देखा... ध्यान रखना। ज्ञान जाननेवाला है, वे ज्ञात होनेयोग्य है।

यह मेरे भगवान। ऐसा विकल्प, कहते हैं कि तूने खड़ा कैसे किया? कहाँ से किया? वह मेरे नहीं, वे तो ज्ञेय हैं। समझ में आया? है? कहते हैं, भाई! यह **'बोधा'** जो है। **'बोधा'** अर्थात् ज्ञान का पिण्ड आत्मा है और **'बोध्यात्' समस्त ज्ञेय को जानता है।** वह तो समस्त को जाने। उसमें यह देव ज्ञेय, वे मेरे। वस्तु में तो ऐसा नहीं है। वे गुरु मेरे, यह कहाँ से लाया, कहते हैं। ऐई! जरा कठिन बात है। यह तो धीरे-धीरे उतारते-उतारते वहाँ ही जाते हैं।

वह यह क्रिया, ज्ञान को—अपने को पहिचानना यह। ये सब बातें, सब व्यवहार से बातें कही जाये। यह गुरु अर्थात् आत्मा को पहिचाना और जाना, तब सब ज्ञात हो। समझ में आया? तूने यह तो ज्ञेयरूप से उसे जाना। मेरेरूप से नहीं। वे थे तो मुझे ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। वह ज्ञेय था तो ज्ञान (हुआ, ऐसा नहीं); ज्ञान था तो ज्ञेय को जाना।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं, यह इसे कल्पना है। ऐई! वस्तु ऐसी है, भाई! उसके अन्दर में उसे बहुमान विकल्प आवे अलग बात है। परन्तु ये मेरे हैं, इसलिए मुझे ज्ञान हुआ, ऐसा कहाँ से आया? इतनी बात है। वह तो विकल्प है, वह अस्थिरता का हुआ, उसे ज्ञेयरूप से जाना, उसे ज्ञेयरूप से जाना। मेरेरूप से उसे विकल्प में नहीं और यह वस्तु मेरेरूप से, ऐसा नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु चैतन्यज्योति सूर्य है, वह तो चैतन्य की ज्योति का सूर्य स्वरूप भगवान आत्मा है। जलहलज्योति जानने-देखने के कार्य भगवान आत्मा करे। उसमें ज्ञात हो वह उसका काम। प्रमेय वस्तु उसमें है। प्रमेय है, प्रमाण होने में प्रमेयरूप से निमित्त है। इसके अतिरिक्त यह प्रमेय जानने से मुझे ऐसा हो गया, उसके कारण मुझे ऐसा हुआ, यह विचलित दृष्टि तूने कैसे खड़ी की? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! वीतरागमार्ग, बापू! चारों ओर से देखो न! अलौकिक बात, अलौकिक बात है। वह भी कैसी? परमसत्य के पक्ष को लेती हुई खड़ी हो ऐसी। कहीं सन्देह का स्थान नहीं होता, ऐसे चारों ओर से देखो तो एक ही वस्तु खड़ी करते हैं।

भगवान! तू ज्ञाता-दृष्टा प्रभु है न! सब चीज़ें तेरे ज्ञान की ज्ञेय है, उसमें यह मेरी

और यह तेरी—ऐसे भाग तूने कहाँ किये? समझ में आया? कहते हैं, अरे! **समस्त ज्ञेय को जानता है।** इस कारण से '**कामपि विक्रियां न यायात्**'। **राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप नहीं परिणमता है।** जानने से कुछ विकाररूप परिणमना, ऐसा स्वरूप आत्मा का नहीं है। आहाहा! भगवान के ज्ञान में तीन काल तीन लोक, जगत की स्त्रियाँ, पुरुषों के शरीर, पर्यायें क्षण-क्षण में पर्याय के कार्य, भगवान के ज्ञान में तो सब आया है। तो ज्ञान में आने पर जानने से वे तो ज्ञेय और यह जाना। उसमें विक्रिया कहाँ आयी? उसमें मिथ्याभ्रम का इसने करंट खड़ा किया। जेचन्दभाई! यह जेचन्दभाई याद आये।

भगवान! तू तो चैतन्यसूर्य का प्रकाश करनेवाला है। प्रकाश में यह प्रकाशित हो, प्रकाशितयोग्य ज्ञात हो, उसमें यह मेरे और यह तेरे, इससे दु:ख और इससे सुख—ऐसी कल्पना का अवकाश जानने में नहीं है, ज्ञेय में नहीं है। मिथ्याभ्रम में से खड़ा किया हुआ है। समझ में आया? आहाहा! सत् को तो सत् रखना, कहते हैं। श्रीमद् ने कहा है, नहीं? तू सत् को बदलना नहीं। सत् तो ज्ञानस्वरूप से जाननेवाला-देखनेवाला ही सत् है और उसे सब दुनिया पूरा लोकालोक वह ज्ञेयरूप से ही है, ऐसा रखना, आड़ा-टेढ़ा करना नहीं। आहाहा! हें?

अरे! **राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप...** अर्थात् विकाररूप **नहीं परिणमता है। कैसा है जीवद्रव्य? '**पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा**'** देखो! आहाहा! भगवान! **नहीं है खण्ड जिसका,...** पूर्ण है। आहाहा! इसकी व्याख्या की। भगवान ज्ञान से पूर्ण है। ज्ञान जानने-देखने से पूर्ण है, ज्ञान अखण्ड है। **'पूर्ण' नहीं है खण्ड जिसका, समस्त विकल्प से रहित,...** भगवान आत्मा का ज्ञान तो रागरहित है, भेदरहित है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... उसमें विकल्प से रहित है। **अनन्त काल पर्यन्त स्वरूप से नहीं चलायमान...** ओहोहो! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, चैतन्य पदार्थ प्रभु, अचलित कभी **अनन्त काल पर्यन्त...** अपने जानने-देखने के अखण्ड एक स्वभाव से कभी चलित नहीं होता। समझ में आया? एक की व्याख्या **समस्त विकल्प से रहित,...** की। एक की व्याख्या शुद्ध की। शुद्ध कहो, एक कहो, रागरहित कहो। भगवान आत्मा का ज्ञान वह तो एक है, अर्थात् विकाररहित है। अखण्ड है अर्थात् कि खण्ड नहीं और

अचलित है। एकरूप तीनों काल रहनेवाला ज्ञान, ज्ञान धाम, ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ऐसा अनन्त काल रहनेवाला है।

द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित... यहाँ देखो! एक में ऐसा (अर्थ) किया। वरना तो शुद्धका एक (अर्थ करते हैं) और कहीं एक का शुद्ध अर्थ करते हैं। परन्तु यहाँ दो शब्द पड़े हैं न? एक और शुद्ध दो शब्द पड़े हैं। अर्थात् एक को उस अनेक विकल्प से भिन्न किया। तब शुद्ध (का अर्थ ऐसा किया कि) **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित...** भगवान आत्मा का ज्ञान... आहाहा! अरे! उसके स्वरूप के रूप का स्वभाव क्या? ऐसा उसने कभी निर्णय किया नहीं। कहते हैं कि प्रभु! तू तो एक है न! और खण्ड बिना का है। भेद पड़ता नहीं, राग बिना का, अनेक बिना का है। अनन्त काल रहनेवाला चैतन्यद्रव्य, चैतन्यद्रव्य, चैतन्यद्रव्य। चैतन्य ज्ञायक ज्ञायकभाव, भाव... समझ में आया?

ऐसा जो... 'बोध' ज्ञानगुण वही है सर्वस्व जिसका,... भगवान का सर्वस्व जानना-देखना एकरूप द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित ऐसी अखण्ड धारा जिसका आत्मा का सर्वस्व है। यह आत्मा का सर्वस्व है। सर्व-स्व—पूरा पूर्ण स्व। अपना वह तत्त्व है। गजब, भाई! रतिभाई! उसकी तो महिमा अर्थात... महिमा अर्थात्? वही सर्वस्व उसका है, ऐसा कहते हैं। उसकी महिमा तो एकरूप सदा काल भावकर्म, द्रव्यकर्म, विकल्प से रहित, शरीर से रहित एकरूप रहना, वही उसकी महिमा अर्थात् वही उसका सर्वस्व अर्थात् वही उसकी स्थिति है। समझ में आया? **ऐसा है।** ऐसा वह भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

इसके कार्य में भी ऐसा कार्य हो, ऐसा कहते हैं। सदा काल ऐसा का ऐसा है। सदा काल चैतन्यद्रव्य विकल्प भावकर्म, द्रव्यकर्म रहित एक और अखण्ड है तो कार्य में भी एकरूप अखण्ड भावकर्मरहित उसका कार्य होना चाहिए। जानना-देखना कार्य हो, दूसरा कार्य हो नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न!

दृष्टान्त कहते हैं—'ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव' बाएँ-दाहिने, ऊपर-तले, आगे-पीछे... 'प्रकाश्यात्' दीपक के प्रकाश से देखते हैं घड़ा, कपड़ा इत्यादि... दीपक है, वह तो चारों ओर की वस्तु को दिखाता है, प्रकाशित करता है इतना। दीपक ऊपर

हो, नीचे हो, आड़ा हो, आगे हो। दीपक प्रकाशित करता है, दीपक प्रकाशित करता है। ऊपर हो, नीचे हो चार दिशा में कोई भी चीज़ वहाँ (हो) दीपक प्रकाशित करता है, बस! इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ है? और दूसरे को प्रकाशित करने में उसमें विक्रिया हो जाती है? समझ में आया?

'ततः इतः' दायें-बायें। जहाँ दीपक पड़ा है, वहाँ आगे। **ऊपर-तले, आगे-पीछे दीपक के प्रकाश से देखते हैं...** दीपक के प्रकाश से देखने में आता है **घड़ा, कपड़ा इत्यादि, उस कारण... 'दीपः इव' जिस प्रकार दीपक में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता।** दीपक का प्रकाश होने पर आगे, पीछे चाहे जो चीज़ हो, दीपक में कुछ विकार नहीं होता। है विकार? **जिस प्रकार दीपक में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता।** तथा दीपक उन सब पदार्थों को विक्रिया उत्पन्न करता है? तथा वह दीपक प्रकाशित करते हुए दीपक में कुछ विकार है?

जिस प्रकार दीपक प्रकाशस्वरूप है, घट-पटादि अनेक वस्तुओं को प्रकाशता है। प्रकाशते हुए जो अपना प्रकाशमात्र स्वरूप था, वैसा ही है,... दीपक प्रकाशित करते हुए अन्धकार प्रकाशित करे, कोयला प्रकाशित करे, वह तो है ऐसा है। कोयले को प्रकाशित करते हुए प्रकाश काला हो जाता है? विष्टा को प्रकाशित करते हुए प्रकाश गन्धवाला हो जाता है? हल्का होता होगा? हें? नजदीक में किसी को बिच्छू काटा और उसमें दीपक ने प्रकाशित किया तो उसके कारण कुछ डंक लगता होगा प्रकाश में? जिस प्रकार दीपक **प्रकाशते हुए जो अपना प्रकाशमात्र स्वरूप था,...** वह तो प्रकाशमात्र स्वरूप था। **वैसा ही है, विकार तो कुछ देखा नहीं जाता।** दीपक प्रकाशित करते हुए जहाँ ऊपर-नीचे, कोयले नीचे ऐसे चारों ओर वस्तु हो, (उसको) प्रकाशित करते हुए दीपक के प्रकाश में विकार तो कहीं दिखता नहीं, दिखाता नहीं, होता नहीं, होता नहीं। प्रकाशरूप प्रकाश रहता है। कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं?

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ। **जीवद्रव्य ज्ञानस्वरूप है,...** समझ में आया? भगवान आत्मा तो ज्ञान के प्रकाशस्वरूप है। वह दीपक प्रकाशस्वरूप है, वैसे जीवद्रव्य ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! **समस्त ज्ञेय को जानता है।** प्रकाश में अन्धकार, प्रकाश, सब,

सोने का ढ़ेर हो, कोयला, चाहे जो हो प्रकाशित करता है, वह प्रकाशित करता है; इसके अतिरिक्त उसमें कोई फेरफार नहीं है। उसी प्रकार भगवान चैतन्य-दीपक लोक के मध्य में रहा हुआ दिखाई दे, परन्तु वह तो चैतन्य प्रकाश से, जगत को प्रकाशित करता है। जानने-देखने के प्रकाश में ही पड़ा हुआ है। वह प्रकाश के अस्तित्व को छोड़ता नहीं। बहुतों को जाने तो प्रकाश में फेरफार हो जाये और थोड़े को जाने तो थोड़ा (रह जाये) ऐसा कुछ होगा? ओहो! दृष्टान्त कैसा दिया है, देखो!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, समस्त... समस्त में क्या बाकी रह गया? जगत की दूसरी चीज़ दुर्गन्धवाली, सुगन्धवाली (हो), सुस्पर्शवाली, दु:स्पर्शवाली, कुरूपवाली, सुरूपवाली। वह तो नाम देना है न! वह तो उसकी उस काल की अवस्था है। समझ में आया? सुरसवाली, कुसरसवाली। शब्द निन्दारूप परिणमता हों या प्रशंसारूप परिणमते हों, वे सब चीज़ें ज्ञान में प्रकाशित होती है, ज्ञान प्रकाशित करता है कि यह ज्ञेय है। उसमें दूसरा आया कहाँ से? निन्दा के शब्द ज्ञेय हैं। ज्ञान जाने। उसमें यह मेरी निन्दा की, यह वस्तु कहाँ उसमें थी? यह मेरी निन्दा की है। अर्थात् तू वहाँ शब्द में गया है? यह मेरी प्रशंसा करते हैं। मेरी अर्थात् यहाँ से वहाँ शब्दों में गया है? तो तेरी प्रशंसा कहाँ से आयी? वह प्रशंसा और निन्दा के शब्द तो ज्ञेय में रहे हैं। वे ज्ञान में आये हैं? ज्ञान में आये हैं? ज्ञान वहाँ ज्ञेय में गया है? समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है, कहते हैं। जानना-जानना, उसमें तुझे बाधा क्या आती है? दीपक प्रकाशित करता है, चाहे जो चीज़ें आड़ी-टेढ़ी पड़ी हों, उसमें दीपक के प्रकाश को दिक्कत क्या है? वह तो उसकी सत्ता का स्वरूप ही ऐसा है।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान चैतन्य भगवान चीज़ों को प्रकाशित करता है, जानता है। वास्तव में तो उसे जाने और यहाँ को भी जाने। परन्तु ऐसा जानता है, इतना उसका स्वभाव अभी लेना है न? उसमें जानने से विकार—राग-द्वेष उसमें कहाँ से आया? प्रीति-अप्रीति के विकल्प वे ज्ञेय से हुए या ज्ञान से हुए? दोनों में से कुछ नहीं होते। मात्र भ्रमणा खड़ी की। ऐ... मुझे यह हो गया, यह मेरी इसने निन्दा की, यह मेरी इसने प्रशंसा की। मेरी अर्थात् मुझे। मुझे अर्थात् तू। तू अर्थात् वहाँ गया? समझ में आया?

कहते हैं, **जानते हुए जो अपना ज्ञानमात्र स्वरूप था, वैसा ही है।** जानते हुए ज्ञान, प्रकाशरूप जैसे दीपक है, वैसा है। ऐसे जानते हुए भगवान का आत्मदीपक जाननेरूप है। जाननेरूप है, ऐसा है। जाननेरूप स्वरूप था, जाननेरूप स्वरूप था। **ज्ञानमात्र स्वरूप था, वैसा ही है। ज्ञेय को जानते हुए विकार कुछ नहीं है...** समझ में आया? परपदार्थ जाननेयोग्य वस्तु हुई। उसे जानने से, जानने पर विकार हो गया? वह तो प्रकाश में स्वयं पड़ा है, चैतन्य तो प्रकाश में रहा है। प्रकाशित योग्य वस्तु में गया है? और प्रकाशितयोग्य वस्तु जो ज्ञेय है, यहाँ उसमें आयी है? समझ में आया? क्यों भटकता है, कहते हैं। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य जानते हुए उसमें भटकन क्यों खड़ी होती है? यह मुझे देखना नहीं, यह मुझे देखना नहीं। अर्थात् तेरा स्वभाव ऐसा रखना (नहीं)। ऐसा है? मुझे जानने-देखने का स्वभाव रखना नहीं। तब क्या होना तुझे? ऐ... जेचन्दभाई! यह सब समझने जैसा है, हों! ऊँची बातें—अमृत प्रवाहित किया जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग में कहाँ था? आत्मा आत्मा में पड़ा है। स्वर्ग भी यहाँ तो ज्ञेय है। कहते हैं, इन्द्र को भी इन्द्राणियाँ तो ज्ञेय हैं। तेरे ज्ञान में ज्ञात हो। इन्द्राणियों के कारण तुझे राग होता है? क्या हुआ है तुझे? ओहोहो! रूपवान मात्र नूर... नूर... नूर... जहान नहीं कहते? क्या कहलाता है? नूरजहान, नूरजहान। नूर का बड़ा पर्वत। जहान को क्या कहा जाता है? दुनिया का तेज। प्रकाश की दुनिया तो तू है। प्रकाश करनेवाला। वहाँ तो धूल जड़ की पर्याय थी। सब सुन्दरता... ऐसा... ऐसा... ऐसा... एक-एक को ऐसे जाने... परन्तु वह क्या है? वह तो ज्ञेय है, जड़ है। जड़ की संस्थान की आकृतिरूपी परिणमित ज्ञेय है। वे तेरे ज्ञान को विक्रिया कैसे करता है? आहाहा!

ज्ञेय को जानते हुए विकार कुछ नहीं है, ऐसा वस्तु का स्वरूप जिनको नहीं भासित होता, वे मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! और जानने-देखने के प्रकाश में मैं रहा हुआ पर को जानते हुए कहीं मेरा ज्ञान विकाररूप नहीं होता। ऐसा ज्ञाता-दृष्टा में रहता हुआ, वह सम्यग्दृष्टि है। इससे उल्टा माने, वह मिथ्यादृष्टि है। (विशेष कहेंगे....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २२३

(शार्दूलविक्रीडित)

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम् ।।३१-२२३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'नित्यं स्वभावस्पृशः ज्ञानस्य सञ्चेतनां विन्दन्ति' [नित्यं स्वभावस्पृशः] निरन्तर शुद्धस्वरूप का अनुभव है जिन्हें, ऐसे हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव, वे [ज्ञानस्य सञ्चेतनां] राग-द्वेष-मोह से रहित, शुद्धज्ञानमात्र वस्तु को [विन्दन्ति] प्राप्त करते हैं-आस्वादते हैं। कैसी है ज्ञानचेतना? 'स्वरसाभिषिक्तभुवनां' अपने आत्मीकरस से जगत को मानो सिंचन करती है। और कैसी है? 'चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं' [चञ्चत्] सकल ज्ञेय को जानने में समर्थ, ऐसा जो [चिदर्चिः] चैतन्यप्रकाश—ऐसा है [मयीं] सर्वस्व जिसका, ऐसी है। ऐसी चेतना का जो कारण है, उसे कहते हैं — 'दूरारूढचरित्रवैभवबलात्' [दूर] अति गाढ़-दृढ़ [आरूढ] प्रगट हुआ जो [चरित्र] राग-द्वेष अशुद्धपरिणति से रहित, जीव का जो चारित्रगुण, उसके [वैभव] प्रताप की [बलात्] सामर्थ्य से। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धचारित्र तथा शुद्धज्ञानचेतना को एक वस्तुपना है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव? 'रागद्वेषविभावमुक्तमहसः' [रागद्वेष] जितनी अशुद्धपरिणति है, उसरूप जो [विभाव] जीव का विकारभाव, उससे [मुक्त] रहित हुआ है [महसः] शुद्धज्ञान जिनका, ऐसे हैं। और कैसे हैं? 'पूर्वागामिसमस्तकर्मविकलाः' [पूर्व] जितना अतीत काल, [आगामि] जितना अनागत काल, तत्सम्बन्धी [समस्त] नाना प्रकार असंख्यात लोकमात्र [कर्म] रागादिरूप अथवा सुख-दुःखरूप अशुद्धचेतना विकल्प, उनसे [विकलाः] सर्वथा रहित हैं। और कैसे हैं? 'तदात्वोदयात् भिन्नाः' [तदात्वोदयात्] वर्तमान काल में आये हुए उदय से हुई है जो शरीर-सुख-दुःखरूप विषय-भोगसामग्री इत्यादि, उससे [भिन्नाः] परम-उदासीन हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव, त्रिकालसम्बन्धी कर्म की उदय-सामग्री से विरक्त होकर, शुद्धचेतना को प्राप्त करते हैं-आस्वादते हैं।।३१-२२३।।

कार्तिक कृष्ण ६, रविवार, दिनांक-१४-११-१९६५, कलश-२२३, प्रवचन-२४४-H

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, ३१वाँ कलश है। धर्मी को धर्म कैसे हो? और अधर्म कैसे मिटे? यह अधिकार है। सुखस्वरूप जो आत्मा; आत्मा है, वह आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दस्वरूप है। उस आनन्द की प्राप्ति कैसे हो? और दुःख की दशा कैसे टले? समझ में आया? यह अधिकार है। अनअभ्यास से इसे महँगा लगता है। कभी अभ्यास किया नहीं।

अपने ज्ञान में जिसे कभी विषय बनाया नहीं अर्थात् क्या कहा? यह आत्मा वस्तु है, उसके ज्ञान की वर्तमान दशा में उसका विषय इसने बनाया नहीं। दूसरे प्रकार से कहें तो ध्यान में उसे ध्येय में लिया नहीं। उसके वर्तमान ध्यान में परवस्तु लक्ष्य में ली है। शरीर, वाणी, पैसा बहुत तो अन्दर में पुण्य-पाप के भाव हों वे। शुभ और अशुभ, दया, दान, व्रतादि शुभभाव पाप हिंसा आदि अशुभभाव, दोनों को इसने ध्यान में विषय बनाया है। ध्यान में समझ में आता है? इसके लक्ष्य में दोनों को पुण्य-पाप, राग-द्वेष को, विकार को अनादि से दोनों को विषय बनाया है। उस विषय का ध्यान, वह तो दुःखदायक है और परिभ्रमण का कारण है। वह तो अनन्त काल से करता आया है। वह करे परन्तु ऐसा का ऐसा है। साधु होकर भी जिसे अन्दर के शुभ और अशुभ के राग का ध्यान और लक्ष्य और ध्येय वर्तता है, वह एक ही प्रकार के जीव अनादि काल के करते हैं, वहीं यह कर रहे हैं। समझ में आया? जमुभाई!

जिसने ध्येय बदला नहीं, उसके ध्यान में तो अनादि से यही लक्ष्य है। इस शरीर का किया, वाणी का किया, धन्धे का किया और यह किया। यह त्यागी हो तो मैंने दया पालन की और मैंने व्रत पालन किये और मैंने भक्ति की और मैंने बहुतों को समझाया। वल्लभभाई! इसका पूरा लक्ष्य और ध्येय उसके वर्तमान ध्यान की एकाग्रता का ध्येय तो विकार ही है।

मुमुक्षु : किया है सब आत्मा के हित के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है हित के लिये, हुआ है अहित।

जहाँ ध्येय को ध्यान में-लक्ष्य में लेने योग्य जो चीज़ है, वर्तमान ज्ञान में—श्रद्धा में जो पूरा भगवान अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु है, उसे ध्येय में अथवा ध्यान में विषय करनेयोग्य है। श्रद्धा-ज्ञान में एकाग्र होकर उसे विषय करनेयोग्य है। उसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी कभी किया नहीं। इससे उसे यह बात ऐसी लगती है कि यह क्या है यह? समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप करे तो इसे ठीक लगे कि जो यह सब शुभ विकल्प मन्दराग है और यह मन्दराग का ध्यान है और ठीक करता हूँ, वह अन्दर मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि जिसे आत्मा का कल्याण करना हो अर्थात् कि जिसे शाश्वत् आनन्द का ध्येय लक्ष्य में विषय में बनाकर आनन्द की प्राप्ति करना हो, वे जीव कैसे होते हैं, उसकी बात चलती है। समझ में आया? यह संयोग सब अनित्य है, पुण्य-पाप के विकल्प भी क्षणिक और अनित्य है। उसका ध्यान अर्थात् उसमें एकाग्र होना, वह असत्यबुद्धि है अर्थात् कि मिथ्याभाव है। उस मिथ्याभाव का ध्यान, वह राग-द्वेष का ही है। उसका फल तो अनन्त काल से यह चार गति में भटकना आया करता है।

अनादि का यह पागल है। समझ में आया? कहा न, कि ऐसे बाह्य से निवृत्ति की लगती है, प्रवृत्ति छोड़ी हो, परन्तु भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द शुद्ध है, (उसे) विषय में लक्ष्य में न ले और अकेला यह पुण्य और पाप दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को लक्ष्य में, ध्यान में ध्येय में ले, वह भी यहाँ कहते हैं कि वह गहल-पागल है। समझ में आया? आहाहा! रतिभाई! कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं अब?

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम् ।।३१-२२३।।

जरा बात (सूक्ष्म है)। इसने अभ्यास किया नहीं न! यह अभ्यास के रास्ते चढ़ा नहीं। अनादि का रास्ता, उसे भूलकर अन्यत्र भ्रम रहा है। भगवान पूरा अन्दर परमानन्द की मूर्ति स्थित है, उसके पंथ में, उसके लक्ष्य में कभी गया नहीं, इसलिए उसे यह ऐसा

बदलना, दिशा बदलना उसे ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? ऐसा कौन सा पंथ होगा ऐसा यह! समझ में आया? जिस दिशा में गया, उससे दिशा बदलने की यह बात है। वल्लभभाई! आहाहा!

कहते हैं, '**नित्यं स्वभावस्पृशः ज्ञानस्य सञ्चेतनां विन्दन्ति**' धर्मी जीव ने ध्येय को बदला है। अनन्त काल का जो ध्येय था, राग और द्वेष, पुण्य और पाप के परिणाम और निमित्त का, संयोग का जो ध्येय था, लक्ष्य में वह था, वह ध्येय बदला है। भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति में उसमें ध्येय को लगाया है। इसका नाम धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया?

'**नित्यं स्वभावस्पृशः ज्ञानस्य सञ्चेतनां विन्दन्ति**' '**नित्यं स्वभावस्पृशः**' **निरन्तर शुद्ध स्वरूप का अनुभव है जिन्हें ऐसे हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव,...** क्या कहते हैं? जो आत्मा अनादि सनातन शाश्वत् वस्तु है, शाश्वत् वस्तु है न? या नयी हुई है? उसने अनादि से पुण्य और पाप के राग और निमित्त का ही ध्यान किया है। उस धर्मी ने ध्यान के विषय को बदल दिया है। अज्ञानी के मिथ्या असत्य श्रद्धा के ध्येय में राग और पुण्य और संयोग ही वर्तते हैं। धर्मी के ध्येय में अर्थात् कि सत्यदृष्टि के ध्येय में भगवान ज्ञानमूर्ति ही दृष्टि में वर्तता है। यह और किस प्रकार? इसमें करने का क्या आया होगा? यह पूजा करे, भक्ति करे, व्रत पाले, दया, दान कुछ करे तो दिखे भी सही। भाई! यह सब विकल्पों की वृत्ति के भाव हैं। यह स्वरूप नहीं है। यह शुभ या अशुभ वृत्ति उठती है, वह दोनों विकार है। उसके ऊपर लक्ष्य को अनादि से चिपकाया है।

जिसे आत्मा की गरज पड़ी है अर्थात् कि धर्म करके शान्ति प्राप्त करनी है, उसने ध्येय को बदल डाला है। ओहो! मैं आत्मा अनन्त ज्ञान और आनन्द का भण्डार आत्मा हूँ। मेरे आनन्द के खजाने के लिये मुझे बाहर खोलने जैसा नहीं। मेरे स्वरूप में ही आनन्द है। ऐसे आत्मा को नित्य अर्थात् निरन्तर शुद्ध आत्मा का स्पर्श अर्थात् अनुभव। 'स्पर्श' शब्द पड़ा है न? अनादि से जो विकार के पुण्य-पाप को स्पर्शकर—छूकर वेदन करता है, वह मिथ्यादृष्टि का मिथ्या अनुभव है। समझ में आया? भगवान अन्दर सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा प्राप्त किया और उन्होंने जो

आत्मा उसमें देखा, ऐसा जो आत्मा वह तो अनन्त ज्ञान, आनन्द का भण्डार प्रभु है, उसके लक्ष्य को छोड़कर अनादि से पुण्य और पाप के निमित्त के संग में-संग में पड़ा, उसने आर्त और रौद्रध्यान में मजा माना है। उसका नाम असत्यदृष्टि कहो, अधर्मदृष्टि कहो या संसारभाव कहो (सब एकार्थ है)।

जिसे धर्म करना हो, उसने ध्येय को बदल डाला है। अरे! मैं—आत्मा अर्थात् मैं, मैं तो ज्ञान और आनन्द का सागर हूँ। ऐसा आत्मा ज्ञानानन्द सत् शाश्वत्, सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की खान हूँ। ऐसी जो अन्तरदृष्टि की है, वह नित्य आत्मा को स्पर्शता है, छूता है, अनुभव करता है। समझ में आया? यह क्या होगा? आहाहा!

कहते हैं, निरन्तर शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य-पाप के विकल्पों की वृत्तियाँ नहीं हैं। वह विकार वृत्तियाँ उठती हैं, वे उसमें नहीं हैं। ऐसा आत्मा का शुद्धस्वभाव आनन्दमूर्ति स्वयं है, उस पर दृष्टि देकर उसे स्पर्शता है; स्पर्शता है अर्थात् वेदन करता है; वेदन करता है अर्थात् अनुभव करता है; अनुभव करता है अर्थात् उसमें एकाग्र होता है। जो ऐसे विकार में अनादि से एकाग्र होता था, वह अब स्वभाव-सन्मुख में एकाग्र होता है। आहाहा! अब यह कौन अवरोधक होगा इसमें? भगवानभाई! स्वयं? ले! यह शरीर-बरीर अवरोधक नहीं? यह पैर चलते नहीं। यह कुछ बीच में विघ्न करते होंगे या नहीं? नहीं? यह तो मिट्टी है। इसे कैसे चलना, कैसे रहना, वह तो जड़ की दशा है; वह आत्मा का अधिकार नहीं है। पक्षघात हो, तब ऐसे स्थिर होकर पड़ा रहे। एक साथ भी ऊँचा न कर सके, हाथ क्या अँगुली ऊँची न हो। जागती ज्योति अन्दर चैतन्य है। उसे खबर भी है कि मैं यह हूँ। यह भी वह यह इसमें चाहे जो खदबदाहट विकल्प करे, उसके कारण ऊँचा होना या नहीं होना यह इसके (जीव के) अधिकार की बात नहीं है। परन्तु भगवान आत्मा अपनी दृष्टि को आत्मा में लगावे, वह उच्च दृष्टि होकर आनन्द का अनुभव हुए बिना रहे नहीं। वह तो इसका कर्तव्य और कर सके ऐसा है। इसका (शरीर का) कुछ कर सके ऐसा नहीं है। समझ में आया?

देखो न! यह बाललकवा होता है न? अब वह तो अभी बेचारा बालक है। एक पैर लड़खड़ाये और फिर कुछ रखना पड़े न? लड़के ऐसे होते हैं न? हैं? ऐसे रखे और

ऐसे चले। ऐ... परन्तु अन्दर आत्मा है न! पैर व्यवस्थित कर न! बाललकवा होवे न? बेचारे आठ-आठ वर्ष के, छह-छह वर्ष के, दो-दो वर्ष के बालक। एक पैर खोटा पड़ जाये, पतला पड़ जाये, व्यवस्थित नहीं, एक ओर व्यवस्थित तथा एक ओर पतला (हो)। और एक ओर व्यवस्थित नहीं तो ऐसे और ऊँचा रहे, वह पैर और नीचे छुए। बालक को यह? परन्तु वह तो जड़ की अवस्था। उस जड़ की अवस्था का कार्य आत्मा के अधिकार की बात नहीं। वह सब देह के धर्म हैं। परन्तु तेरा धर्म तो ज्ञान और आनन्द से भरपूर परमात्मा स्वयं, उसकी दृष्टि देने से, उसे लक्ष्य में लेने से, उसे आत्मा की दृष्टि में सत् स्वभाव में जुड़ान करने से, कहते हैं कि निरन्तर शुद्धस्वरूप, वह तो पवित्र-स्वरूप है। उसका अनुभव—उसका वेदन होता है, **जिन्हें ऐसे हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव,...** उसे सम्यग्दृष्टि और धर्मी कहा जाता है। ओहोहो! यह क्या? वल्लभभाई! यह तो बहुत कहते हैं, धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। उनके ढ़ेर हों। पूरे उपाश्रय भर जायें और मन्दिर भर जाये, लो! ऐ... जयन्तीभाई! आहाहा!

भगवान! तेरे स्वरूप की महिमा के माहात्म्य में दृष्टि तूने कभी दी नहीं और दृष्टि देने से शुद्ध का अनुभव हुए बिना रहे नहीं। जैसा विकार का अनुभव अनादि का है, वैसा इस स्वभाव का आदर करने से स्वभाव का अनुभव हुए बिना रहे नहीं। यह सम्यग्दृष्टि को शुद्धस्वरूप का अनुभव और स्पर्श और वेदन होता है। अज्ञानी को वह वेदन होता नहीं।

शुद्धस्वरूप का अनुभव है जिन्हें ऐसे हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव, वे 'ज्ञान सञ्चेतनां' क्या कहते हैं? **राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु को...** अर्थात्? दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जो होते हैं, वह कर्मचेतना है। पुण्यपरिणाम हो, दया, दान, भक्ति, व्रत के विकल्प उठें, वह कर्मचेतना है। राग में चेत जाना, वह राग कर्मचेतना है। और उसके फलरूप से हर्ष-शोक में चेत जाना, वह भी विकारी कर्मफलचेतना बन्ध का कारण है। यह मुझे ठीक, यह मुझे ठीक नहीं, ऐसे हर्ष-शोक में वेदन हो जाना, वह कर्मफलचेतना अर्थात् विकारी कार्य का फल दु:खरूप की वह चेतना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह अनुभव नहीं। ऐसा नहीं कहा। यह ऐसा कहा कि आत्मा में जो पाप के परिणाम करता है, पुण्य के जो करता है, उसे कर्म अर्थात् विकारी कार्य का चेतन कहा जाता है और उसमें मजा आता है, ऐसा जो मानता है, हर्ष और शोक परिणाम में होता है, उसे दु:खदायक कर्म अर्थात् विकारी कार्य, कार्य का फल वहाँ है। वे दोनों अज्ञानभाव चेतना, अज्ञानचेतना है, वह दु:खचेतना है। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह **राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु को प्राप्त करते हैं—'ज्ञान सञ्चेतनां'** देखो! वह ज्ञानचेतना प्रगट करता है, अर्थात् वस्तु चिदानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु में चेत जाता है अर्थात् उसमें एकाग्र होता है। उसमें एकाग्र होता है, उसे ज्ञानचेतना का आनन्द अनुभव में आता है। उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? व्याख्या ही कठिन है। कितनों ने तो जिन्दगी में सुनी न हो।

यहाँ तो चेतनेवाला विकार को और दु:ख के, विकार के फल को चेते या चेतनेवाला चैतन्य को चेते। समझ में आया? वह चेतनेवाला भगवान आत्मा अपने शुद्ध चैतन्य स्वभाव-सन्मुख में यह आत्मा ज्ञान और आनन्द है, उसके स्वभाव के सन्मुख के परिणाम में जो वेदन हुआ, उसे ज्ञानचेतना के परिणाम कहते हैं। वह पुण्य और पाप के कर्म और कर्मफलचेतना से भिन्न पड़ गये हैं। कहो, प्रवीणभाई!

दूसरे प्रकार से कहें तो यह भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है, वह आस्रव, बन्ध में चेत जाता है। यह नव तत्त्व के साथ लिया। और याद आया, किसने कहा था नवतत्त्व का? प्रवीणभाई ने कहा था, नहीं? अभी अन्दर कहा, नव तत्त्व की बात आज गजब आयी! नव तत्त्व की खबर नहीं होती। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द जिसका—आत्मा का स्वरूप है, उसमें अन्दर में चेतना एकाग्र हो तो उसे संवर, निर्जरारूपी ज्ञानचेतना और शान्ति प्रगट हो। वह संवर, निर्जरा हुई कहलाये। समझ में आया? संवर, निर्जरा अर्थात् ऐसे हाथ जोड़कर बैठे, प्रत्याख्यान किया, ऐसा नहीं है। ऐ... भगवानभाई! हें? ऐसे तो प्रौषध और प्रतिक्रमण कितने किये? हें?

भगवान आत्मा ऐसा ज्ञान का सूर्य है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है।

वस्तु है, उसमें आनन्द और ज्ञान का माप क्या? जो वस्तु है, उसके ज्ञान और आनन्द की हद और मर्यादा क्या? स्वभाव अकेला ज्ञान और आनन्द से अचिन्त्य अनन्त अमाप से भरपूर पदार्थ है। ऐसे आत्मा को ध्येय करके श्रद्धा में लेकर जो वेदन होता है, वह ज्ञान का वेदन अर्थात् संवर और निर्जरा अर्थात् शुद्ध ज्ञानचेतना हुई कही जाती है, उसे धर्म हुआ कहा जाता है, इसका नाम अधर्म का उसने नाश किया, ऐसा कहा जाता है।

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द को ध्येय में छोड़कर, मात्र पुण्य और पाप के भाव में ध्येय करके पड़े, उसे कर्मचेतना अथवा कर्मफल अर्थात् आस्रव और बन्धभाव का वेदन हुआ। आस्रव अर्थात् जिस परिणाम से नये कर्म आवें, ऐसे पुण्य और पाप। उनका उसे वेदन हुआ। इसका नाम अधर्मचेतना कहो या कर्मचेतना कहो। रतिभाई! आहाहा! समझ में आया?

मैं सामायिक करूँ, ऐसा विकल्प उठा। सामायिक-बामायिक कहाँ है वस्तु के भान बिना? यह विकल्प जो उठा, वह आस्रवतत्त्व है। उसमें चेत जाना, वह कर्मचेतना है, एकाग्र होना, वह अधर्मचेतना है। विकृतभाव को कर्मचेतना कहो या अधर्मचेतना कहो। उसने तत्त्व खड़ा किया, आस्रव और बन्धततत्त्व खड़ा किया। चैतन्यतत्त्व के सन्मुख देखकर, अन्तर में एकाग्र होकर ज्ञान और शान्ति का तत्त्व जो संचेतना ज्ञान की होनी चाहिए, वह की नहीं और उसे करे, अन्दर में ज्ञानानन्दमूर्ति मैं हूँ, ऐसा भान करके संचेतन हो तो वह संवर, निर्जरा की ज्ञानचेतना, शुद्धचेतना, आनन्दचेतना, अधर्म के अभाववाली धर्मचेतना कही जाती है। समझ में आया? ऐसी बात भी कहीं सुनी न हो, लो! हें? आहाहा! यह तो अभी नव तत्त्व की अन्दर की बात की बातें चलती है। नौ में क्या बाकी रहे? ऐ... वल्लभभाई! आहाहा!

कहते हैं, यह **राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु...** देखो! यह वस्तु। शुद्ध ज्ञानमात्र जो भगवान आत्मा अथवा जो निर्मल पर्याय, ऐसी वस्तु को वह प्राप्त करता है अथवा **आस्वादता है।** देखो! ऐसी भाषा की है न? '**विन्दन्ति**' अर्थात् अकेला जानना, ऐसा नहीं। जैसे अनादिकाल से पुण्य और पाप के राग के फल को ऐसा जानता है, वह अकेला जानता नहीं, साथ में दुःख का वेदन है। समझ में आया? भगवान ज्ञानमूर्ति

आनन्दस्वरूप को आड़ मारकर ऐसे पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभ के भाव और उसके फल में जो ऐसे लीन होता है, वह अकेला दुःखरूप वेदन है। अकेला जानना (होता है), ऐसा नहीं, वह दुःखरूप वेदन है। आहाहा! यह भगवान आत्मा अपना परमात्म-स्वभाव पूरा पूर्णानन्द प्रभु स्वयं पूर्ण इदम् आत्मा, उसकी अन्तर्दृष्टि रखकर जो एकाग्रता होती है, उसे यहाँ ज्ञान का वेदन अथवा '**विन्दन्ति**' वह ज्ञान से जानता है अर्थात् कि ज्ञान के वेदन में आनन्द को वेदता है। उसे आस्वादता है, ऐसे अर्थ में कहा गया है। वह आत्मा को आस्वादता है। वह आत्मा का स्वाद लेता है। ले! आहाहा!

अनादि से शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, स्त्री, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के जो परिणाम होते हैं, उन परिणाम का आस्वाद है, स्वाद है। परन्तु वह जहर जैसा दुःखदायक स्वाद है। आकुलता का दुःखदायक स्वाद है। मानता है कि मुझे मजा है, ऐसा मानता है। समझ में आया? हर्ष सन्निपात में हो तो दुःखी, परन्तु बहुत दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे)। बल अधिक मानो हाथ का पकड़ा न रहे। हें...हें....हें.... खिलखिलाकर (हँसे)। साथवाला मानो कि अभी अब दो-चार घण्टे में शान्त हो जायेगा। यह हर्षसन्निपात उठा। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान और आनन्द के स्वरूप के भान बिना परपदार्थ के लक्ष्य से हर्ष और शोक के जो दाँत निकालता है और हर्ष-शोक में जो वेदन में आ जाता है, वह दुःखी है, वह दुःखी है परन्तु खिलखिलाकर दाँत निकालता है, वह उसे हर्षसन्निपात लगा है। आहाहा! क्या है? जेचन्दभाई! आहाहा! अरे! भगवान!

ऐसे पाँच लाख मिले और लापसी का आँधण करो। ऐसा जो विकल्प उठा है... समझ में आया? वह जहर के वेदन में पड़ा है। आहाहा! और दया, दान, भक्ति, व्रत के कुछ शुभभाव हुए... आहाहा! ऐसे भाव में एकाकार वेदन में आ जाता है, वह हर्ष मानता है, वह उसे हर्षसन्निपात लगा है। उसे मिथ्याश्रद्धा का सन्निपात लगा है। आहाहा!

तुमने उदाहरण नहीं देखे? हमने तो एक-एक उदाहरण नजरों से देखे हैं, हों! बहुत वर्ष (पहले की) बात थी। एक बार 'लींबडा' के बाहर उतरे थे। वह ३२ वर्ष का जवान, उसे सन्निपात हुआ। यह लींबडा है न? लींबडा। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। दीक्षा लेकर गये थे, डेला के सामने उतरे थे। रात्रि में सन्निपात (उठा)। पकड़ा

रहे नहीं जवान, हों! और खिलखिलाकर दाँत निकाले। लोग इकट्ठे होकर (कहे), अरे रे! सवेरा नहीं निकलेगा, सवेरा नहीं निकलेगा। वह दाँत निकाले। उसी प्रकार भगवान सर्वज्ञ और सन्तों ने ऐसा देखा कि अरे..! यह जीव कहाँ हर्ष को मानता है? समझ में आया? अरे! यह किन वृत्तियों में रुककर हर्ष और उत्साह कर रहा है? यह हर्ष और उत्साह करे, परन्तु थोड़े समय में समा जायेगा, गति बदलकर हल्की गति में चला जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात की? रोगी की बात की। यह रोगी है।

यह 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं अरु सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरुआज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति अनादि सन्त, महन्त जिसे आराध रहे हैं। सन्त, महन्त जिसकी सेवा कर रहे हैं। ऐसे भगवान आत्मा को छोड़कर पुण्य और पाप में हर्ष में वेदन है, वह रोग और भ्रान्ति है। उस भ्रान्ति के समान कोई रोग नहीं है। जड़ के रोग तो पुण्य के कारण से मिट भी जायें। यह रोग—भ्रान्ति तो स्वभाव के भान बिना टले, ऐसी नहीं है। आहाहा!

इसे रास्ते की सूझ नहीं पड़ती। अब इसमें कहीं से दूसरे से बढ़ने में रुक गया। प्रवीणभाई! दूसरे को पचास हजार की आमदनी, मुझे चालीस हजार की। मुझे जरा दस हजार बढ़ा दूँ फिर पचास-साठ हजार हो, और वापस वह लाख पैदा करे, इसकी पचास हजार की कमी पड़े। और वहाँ लगा। चिपट वापस वहाँ। यह इसकी ममता में डोर का माप यह लाता ही नहीं। क्योंकि अमाप चीज़ भगवान आत्मा ने गुलाँट खायी तो उसकी तृष्णा अनन्त बढ़ गयी। अनन्त अमाप चैतन्य का स्वभाव जिसका भगवान आत्मा भण्डार से भरपूर बेहद, वह ऐसे तृष्णा के विकल्प में गया तो उसे अनन्त बना दिया है। कहीं उसे हद उसे आती नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह साधु हुआ, त्यागी हुआ, मुनि हुआ परन्तु तृष्णा-विकल्प की तृष्णा में बह गया। समझ में आया? यह राग के विकल्प के प्रवाह में यह बह गया। भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति में अन्दर डुबकी लगाने का अवसर मिला नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बहुतों को तो ऐसा होता है, शास्त्र में दृष्टान्त दिया है न? धोबी का, धोबी का। धोबी था, वह सवेरे दौ सौ एक वस्त्र लेकर धोने गया। समझ में आया? उसमें सवेरे का उठा हुआ और अच्छे बाजरे की रोटियाँ गर्म-गर्म फलफलते और लहसुन की सब्जी और लहसुन का मसाला। दो रोटियाँ चढ़ायीं (खायीं), उड़द की दाल और मसाला खाया। दो सौ कपड़े लेकर धोने गया। पानी में गया, पानी में पत्थर होता है न? इतना पानी हो वहाँ धोने जाये न? आठ-दस-पन्द्रह कपड़े धाये, वहाँ प्यास लगी। प्यास लगी, करना क्या? यह इतने पौने दो सौ कपड़े बाकी हैं। लाओ न पाँच धो लूँ, लाओ न पाँच धो लूँ, बाद में पानी पीयूँगा। लाओ न पाँच धो लूँ, लाओ न पन्द्रह धो लूँ, लाओ न पाँच धो लूँ, धोते... धोते... धोते इतना चक्कर लगकर (मर गया)। वह कहीं किनारे न बैठा हो। धोनेवाला तो इतना पानी हो, वहाँ (जाता है)। हिस्सो-हिस्सो करे न? उमराला में पहले करते थे। छोटी उम्र में सुनते थे। वह भावसार इस ओर थी और उस ओर, दोनों ओर थी। भावसार की कुण्डियाँ दोनों ओर थी। हिस्सो... हिस्सो... हिस्सो राम ऐसी कुछ भाषा थी। ऐसी प्यास लगी और सूतो, पानी पीकर मरा। पीया सही।

इसी प्रकार इसे बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, आज कुछ है, परन्तु बाद... बाद... बाद में आँख बन्द हो गयी, आयुष्य पूरा हुआ और गया चौरासी की डूब में, बहाव में। थोड़ी देर, अभी थोड़ी देर में, कहाँ अपने को...? थोड़ा यह कर लें, थोड़ा यह कर लें, यह लड़की का विवाह कर दें, लड़के को राह चढ़ा दें, दुकान ढंग से हो जाये। एक तीस लाख का यह डाला है, वह राह चढ़ जाये, पहले का चढ़ गया है। अब यह राह चढ़ जाये। परन्तु कहाँ तक तुझे राह रखना है। ऐई! किरीट! यह क्या दृष्टान्त दिया? तेरे भाई का दृष्टान्त आया। वह कहे, इतना कर लूँ, इतना कर लूँ। भगवान! यह साधु नाम धराकर इना संघ का कर दूँ, इतने मन्दिर कर दूँ... इतने शिष्य करूँ। धूल में भी सुन तो सही। यह अन्दर रह जाता है, उसका क्या करना है तुझे अब? जिसका साधन करना है, वह रह गया और बिना साधन के साधन करके बैठा। आहाहा! रतिभाई! ऐसा होगा या नहीं यह? संसारवालों को तो भारी कठिन काम होगा। हों! नाम रह गया यहाँ, स्वयं कहीं रहा। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे जीव जो हैं, वह ज्ञानचेतना को चेत नहीं सकते और जो आत्मा के

स्वभाव का भान और दृष्टि की है, उसे अन्तर में राग-द्वेष की निवृत्ति प्राप्त करनी है। उसे स्वभाव पर दृष्टि और आत्मा के स्वाद को आस्वादता है।

कैसी है ज्ञानचेतना? 'स्वरसाभिषिक्तभुवनां' अपने आत्मिक रस से जगत को मानो सिंचन करती है। अर्थात् क्या कहते हैं? कि ज्ञानप्रभु आत्मा, वह ज्ञान का सूर्य प्रभु आत्मा है। चैतन्यसूर्य। चैतन्यज्ञान का सूर्य भगवान, उसका अन्तर सन्मुख का वेदन होने पर वह ज्ञान प्रगट हुआ, वह सबको जानने की सामर्थ्यवाला है। क्या कहते हैं? कैसा (है) ज्ञान? **अपने आत्मिक रस से...** अपने ज्ञान के भान से **जगत को मानो सिंचन करती है।** अर्थात् पूरे जगत को मानो अभिषेक करती हो, अर्थात् सब जगत को जानती ज्ञानचेतना हो, ऐसी ज्ञानचेतना प्रगट हुई है। शशीभाई!

मैं ज्ञान, ऐसे आनन्द का भान होकर ज्ञानभाव प्रगट हुआ, कहते हैं पूरे जगत को सींचता है अर्थात् पूरे जगत को जानता है। करना नहीं किसी का और जाने बिना रहना नहीं एक का भी। समझ में आया? वह सम्यक् आत्मा का भान होने से ज्ञानमय आत्मा हूँ, ऐसा जाना। वह ज्ञान की दशा अब कोई जगत को जाने बिना रहती (नहीं)। किये बिना कुछ नहीं, पर का करने का कुछ नहीं। जैसे जगत को सबको करूँ, ऐसी मान्यता में माना था, भले थोड़ा करे परन्तु मान्यता तो ऐसी थी कि सबका कर दूँ, सबका कर दूँ। एक का क्या दुनिया का, जाति का, संघ का, परिवार का, नेता (कहे कि) देश का कर दूँ। धूल का भी कर नहीं सकता। यह ज्ञान गुलांट खाता है कि यह सब हो उसे मैं जाननेवाला हूँ। ऐसी उसकी शक्ति का विकास होता है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि दुकान में बैठा हो तो कहते हैं, जगत को ज्ञान से सींचता है। अर्थात् कि जो-जो क्रिया और रागादि हों, उन्हें जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? **अपने आत्मिक रस से... 'स्वरसाभिषिक्त'** है न? स्व अर्थात् अपना आत्मरस अर्थात् ज्ञान। ज्ञान का भान—मैं ज्ञाता हूँ, मैं तो जगत का जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। जगत का साक्षी हूँ। मैं जगत का रचनेवाला नहीं। जगत शब्द से शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के राग उस सब जगत का मैं जाननेवाला, उसका रचनेवाला नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञान ने जगत को सींचा। अर्थात् कि पूरे जगत को ज्ञान में ज्ञेयरूप से बनाया। बस! कर्ता-फर्ता फिर ज्ञानी रहता नहीं। यह मैंने किया और यह

मैंने किया, यह ज्ञानी को होता नहीं। धर्मी का यह अभिमान होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं**' कैसी है ज्ञानचेतना? अर्थात् क्या कहा? कि भगवान आत्मा वस्तुरूप से अनन्त ज्ञान और आनन्द का कन्द है, ऐसी अन्तर में सम्यग्दृष्टि जहाँ प्रगट हुई, सत्यदृष्टि, सत्य स्वरूप है, वैसी दृष्टि (प्रगट हुई), इसलिए वैसा उसका सम्यग्ज्ञान— चैतन्यस्वरूप हूँ, आनन्द हूँ, ऐसा ज्ञान। यह ज्ञानचेतना जगत के सबके भाव को जाननेवाले रूप से चेतना काम करती है। उसे जगत को सींचती है, ऐसा उसे कहने में आता है। आहाहा! वल्लभदासभाई! 'मूल मारग सुन लो जिन का रे, करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख।' सन्मुख। आहाहा!

भगवान आत्मा! यह तेरी महिमा राग से पार नहीं पड़ती, बोलने से पूरा नहीं पड़ता, ऐसा चिदानन्द प्रभु आत्मा का अन्तर भान, श्रद्धा-ज्ञान करने से वह ज्ञान ऐसी दशा प्रगट हुई कि सारे जगत को अब जाननेरूप से काम करे। करनेरूप से की बुद्धि उड़ गयी। मैंने किया, मैंने किया... ऐसा जो मिथ्याश्रद्धा में था, वह सम्यक्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान में वह बात उड़ गयी। आहाहा!

यह करते हैं। करना क्या? ऐसा इसमें होता है। आहाहा! सवेरे से शाम तक अनादि से करता क्या था? राग और द्वेष और वे मेरे, वह अज्ञानभाव चौबीस घण्टे करता है। दूसरा कुछ हराम एक तिनका भी फिरावे, वह हराम बात है। समझ में आया? यह चौबीस घण्टे क्या करता है? और चौबीस घण्टे ऐसे अनन्त चौबीस घण्टे। इसने अनन्त चौबीस घण्टों में क्या किया है? यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप, शुभाशुभभाव वह मैं हूँ, ऐसी वृत्ति और वह परिणाम, बस! यह इसने किया है। इसके अतिरिक्त हराम कोई छिलका भी बदला हो तो इसने।

बस! यह वृत्तियाँ। दूसरा किया क्या है इसने? दुकान को कर सकता होगा? दुकान का धन्धा व्यवस्थित (करता होगा)? कैसे होगा? शान्तिभाई? कटलेरी-बटलेरी, लड़के का ध्यान रखे। यह राग-द्वेष की खदबदाहट करो, वह तो उसके कारण से होना हो वह होता है। गजब बात, भाई! चौबीस घण्टे की धारा से लो तो अनन्त काल ऐसा

का ऐसा रहा तो इसने किया क्या है? स्वरूप को भूलकर राग और द्वेष मेरे, ऐसी एक ही वृत्ति की है। दूसरे प्रकार से कहें तो मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष (किये हैं)। यही निरन्तर समय-समय में प्रवाह में अखण्ड धारा से यह काम किया है। उसमें इसने टूट पड़ने नहीं दी। बस! अब दृष्टि गुलाँट खाती है।

अरे! मैं तो आत्मा हूँ और आत्मा अर्थात् ज्ञान का समुद्र भगवान। आत्मा अर्थात् कि अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, आत्मा अर्थात् कि अनन्त शान्ति का सागर। ऐसी अन्तर में प्रतीति में ज्ञान में ज्ञेय को बनाकर, ज्ञान में ज्ञेय बनाकर भान हुआ कि अब यह ज्ञान करे क्या तब? चौबीस घण्टे करे क्या अब? पूछते हैं न यह? कि चौबीस घण्टे यह जाने-देखे, जाने-देखे, जानने-देखने का काम करे। जमुभाई! क्या होगा इसमें?

यह स्त्री क्या करती होगी वहाँ चौबीस घण्टे घर में? राग और द्वेष। यह किया और यह किया, इसे नहीं आया और मुझे आया, इसने किया और यह किया, यह मैंने सुधारा, मेरे आने के बाद यह सुधरा, इसके बाद यह बिगड़ा। इकट्ठी (होकर) बातें करे तो यह किया करे। बात जड़ की है। हें? राग और द्वेष, पुण्य-पाप की विकल्प की जाल खड़ी करके ऐसा किया और वैसा किया, मेरा जेठ ऐसा मुझे सम्हाले नहीं, मेरा देवर ऐसा मुझे सम्हाले, पति और ठीक है, इसलिए ऐसा करे। पूरे दिन राग-द्वेष की होली सुलगावे। या यह रांधना आया, हमारे मेहमान का घर, इसलिए सब सुविधा चाहिए, ऐसा हुआ, अमुक लाये, इस वर्ष घर में यह लाये थे। घर का सिलपट्टा और दस्ता लाये, अमुक तवा बड़ा लाये, यह तो वह हलुवा बनाने का क्या कहलाता है? तवा लेकर आये। घर के बर्तन (लाये)। ऐसी बातें मूढ़ की। ऐसे उसके विकल्प की धारा, राग और द्वेष की धारा में ऐसे का ऐसे अनादि से चलता जाता है। चौबीस घण्टे यह क्या करता है? हें? यही (करता है)।

बस! अब दृष्टि बदलती है। अरे! यह राग और द्वेष के विकल्प जितना मैं हूँ? यह मैं हूँ? मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा स्वभाव तो सच्चिदानन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, ऐसी अन्तर दृष्टि के अनुभव में अब चौबीस घण्टे करना क्या इसे? प्रेमचन्दभाई पूछते हैं। यह जानने-देखने की परिणति की धारा किया करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके साथ भ्रमणा ? मुर्दे के साथ ? मुर्दे के साथ सगाई की न, अब दो वर्ष में विवाह करूँगा। मूढ़ है। मुर्दा है, सुन न! समझ में आया ? मुख रूपवान और एक मुर्दे को दिखाया हो, अच्छा रूपवान गहने-बहने बिछाकर। इसके साथ सम्बन्ध किया है। बहुत अच्छा। विवाह कब होगा ? छह महीने में। परन्तु किसके साथ ? मुर्दे के साथ ? इसी प्रकार यह जड़ शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र भी मुर्दे हैं, तेरा चैतन्य का तत्त्व वहाँ नहीं है। और पुण्य और पाप के भाव भी मुर्दे-विकार है, उनके साथ सगाई बाँधी ? और अब उसका विवाह करूँगा। किसके साथ ? मर गये हुए विकारी भाव के साथ सगाई ? आहाहा !

भगवान ! यह तो जागती ज्योति चैतन्य के साथ अब सगाई की। मैं आत्मा ज्ञानानन्द का सागर भगवान आनन्दमूर्ति हूँ, उसकी जहाँ दृष्टि की तो उसने सगाई की। अब जानते... जानते... जानते... जानते केवलज्ञान होने पर उसका विवाह पूरा हो जायेगा। उसका केवलज्ञान पूरा हो जायेगा, परमात्मा होगा और उसकी मुक्ति होगी। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! उसकी दशा की दिशा की खबर नहीं होती। एक व्यक्ति को खोजने जाये परन्तु कहीं उसकी दिशा सुने, खखारा सुने, कहीं होगा या नहीं ? भैंस खो जाये तो खोजना कहाँ ? किस ओर गयी ? कौन ले गया ? कुछ आवाज, स्वाद क्या कहलाता है ? आवाज आवे, कुछ समाचार दे कि दो भैंस उस ओर आगे देखी है। छह कोस दूर थी, दौड़ी-दौड़ी जा रही थी। परन्तु ऐसे जाती थी, तुम ऐसे जाते हो, वह ऐसे जाती थी। ऐसे कुछ क्या कहलाते हैं वे... ? संकेत... संकेत। हाँ यह भाषा। ऐसा संकेत मिले तो दिशा खोजे। उसी प्रकार यह आत्मा कहाँ है ? कैसा है ? संकेत न मिले इसे, हें ? चल निकला, पुण्य और पाप और क्रियाकाण्ड और बाह्य की क्रिया में खोजने। वहाँ भगवान आत्मा नहीं है। वल्लभदासभाई !

मुमुक्षु : भगवान ने बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बतावे ? भगवान कहते हैं, तू आत्मा है। ऐसा भगवान ने बताया। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने कहा, प्रभु ! यह तो तुझे खोजना हो तो ज्ञानानन्द आत्मा में खोज। यह राग-द्वेष और पुण्य-पाप और शरीर में संकेत नहीं मिले। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं '**चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं**' कैसी है ज्ञानचेतना? अर्थात्? आत्मा ज्ञानस्वरूप, ऐसा भान हुआ; वह आनन्दस्वरूप, ऐसी प्रतीति हुई, अरे! शान्ति का अंश प्रगट हुआ, अरे! राग और पर का अकर्ता, ऐसा भान हुआ, वह ज्ञान **सकल ज्ञेय को जानने में समर्थ...** '**चञ्चत्**' की व्याख्या की है। प्रकाश, दीपायमान। सकल ज्ञेय को जानने में दैदीप्यमान। वह जानने-देखनेवाली पर्याय ऐसी हुई। सकल ज्ञेय को देखनेवाला दैदीप्यमान। जानने-देखनेवाला भगवान आत्मा जानने-देखनेवाला। आकुलता बिना, राग के अवलम्बन बिना, चैतन्य के अवलम्बन से प्रगट हुई पर्याय दैदीप्यमान ज्ञान शोभता सकल ज्ञेय को जानने में शोभावाला है।

'**चिदर्चिः... चिदर्चिः**' चिद्... चिद्। यह दर्शन और ज्ञान का पिण्ड चैतन्यपिण्ड प्रभु, उसकी अर्चि—वह प्रकाश है। वह भगवान तो चैतन्य का प्रकाश है। आत्मा दर्शन-ज्ञान का पिण्ड है। '**चिदर्चिः**' है, वह तो '**चिदर्चिः**' है। वहाँ राग और पुण्य की किरणें प्रस्फुटित हों, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? जिसमें पुण्य और पाप की वृत्तियाँ, विकल्प उठे, वह वस्तु नहीं। वह तो '**चिदर्चिः**' है। चैतन्य के तेज जिसमें पड़े हैं। जिसमें ज्ञान और दर्शन के नूर पड़े हैं। आहाहा! ऐसा आत्मा इसने सुना नहीं। शान्तिभाई! इसने सुना नहीं। आहाहा!

घर में कुछ न हो तो लड़का विवाह करे तो महिलायें बड़ी बातें करें। 'थाल भर्यो रे सज मोती।' घर में एक भी मोती न हो। इसकी ममता का पार नहीं होता, भाई! इसकी ममता का माप नहीं मिलता, इसलिए ममता के माप से उसे 'थाल भर्यो मोतिअे।' यह गाना गवावे। इसी प्रकार भगवान की तुलना का माप नहीं मिलता। यह गीत गाता है, मैं पूर्णानन्द आत्मा हूँ। थाल भरा अनन्त गुण से भरा मेरा आत्मा है। समझ में आया? शान्तिभाई! महिलायें गाती हैं या नहीं? घर में एक भी सच्चा मोती न हो, हों! पाँच हजार का, दस हजार का एक भी मोती न हो। 'थाल भर्यो रे सज मेती...' ... बड़ा थाल, उसमें भरते-भरते ... ऐसी। ... पाँच, चार, तीन, दो और एक। सज करे। हराम एक भी मोती नहीं और सज कहाँ से आयी यह? बापू! ऐसा कहते हैं, तेरी तृष्णा का माप नहीं। वह तृष्णा के माप यह तेरे गीत गवाते हैं।

इसी प्रकार आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान हुए, उसके स्वभाव के माप नहीं हैं।

उसके गीत गाता ज्ञान, मैं तो चिद्घन, ज्ञान और दर्शन का अर्चि अर्थात् प्रकाश की किरणें हो, वह आत्मा हूँ। मुझमें राग-द्वेष हो और विकार हो, ऐसी मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु कभी खबर नहीं होती न, हों! पिचहत्तर वर्ष में बहुत सेना है, सच्ची बात है न? दोनों रिश्तेदार ठीक है न, इसने भी दूसरा सुना था। हें? यह पहले भी भड़कते, हों! थोड़े-थोड़े आवे सही, पूर्व के प्रेम के कारण। यह क्या? यहाँ तो क्रियाकाण्ड कुछ नहीं। प्रौषध, प्रतिक्रमण (करने का) तो कोई कहता नहीं। अब प्रौषध, प्रतिक्रमण किसे कहना, यह इसने सुना नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि और ज्ञान (हुई), उसमें एकाकार होना, इसका नाम प्रौषध कहा जाता है। पोषा, अपवास करके लंघन करके बैठे, उसे प्रौषध नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? प्रवीणभाई! कैसी बातें हैं यह? हें?

कहते हैं, अ..हो...! क्या कहते हैं? कैसी है ज्ञानचेतना? ज्ञानचेतना, हों! **सकल ज्ञेय को जानने में समर्थ...** और '**चिदर्चिः**' है, वह तो चेतन का प्रकाश है और **सर्वस्व जिसका...** वही है। सर्वस्व। जानना-देखना, वही जिसका सर्वस्व है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान सच्चे हुए तो उसके ज्ञान की पर्याय में सर्व सबको जानना, वही उसका सर्वस्व है। राग का विकल्प करना, वह भी उसके ज्ञान में नहीं। समझ में आया? **सर्वस्व जिसका, ऐसी है** ज्ञानचेतना। ऐसा भगवान आत्मा अपने ज्ञान में, चैतन्यस्वभाव में चेतता, जागता जिस पर्याय से प्रगट हुआ, वह पर्याय कैसी है? कि, सब सर्वस्व जानना-देखना, वही उसका सब है। अब फिर रागादि आते हैं, वह उसका है ही नहीं। संसार है, सम्यग्दृष्टि है, अभी पूर्ण न हुआ हो, राग आवे, विकल्प हो, परन्तु वह उसकी चीज़ ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। समकिती राजपाट में पड़ा हो। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में समकिती दिखाई दे। जमुभाई! परन्तु जिसका सर्वस्व ज्ञान और जानना, उसमें समा जाता है। वह राग और स्त्रियाँ उसमें है, यह मानता नहीं। मुझमें कुछ नहीं। स्त्री, पुत्र नहीं और राग होता है, वह मेरे स्वरूप में नहीं। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य की बादशाही की गद्दी में बैठा। वह तो चैतन्य के प्रकाश के नूर को प्रकाशित करता हुआ सर्वस्व प्रकाशित करता है, यही उसका सर्वस्व है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक-१५-११-१९६५, कलश-२२३,२२४, प्रवचन-२४४-I

कलशटीका, ३१ वाँ (कलश) है। भावार्थ देखो, क्या कहते हैं? यह चारित्रगुण की व्याख्या है। ऐसे ज्ञानचेतना की व्याख्या है, साथ में चारित्र—यह ज्ञानचेतना की उग्रता, स्थिरता, वह चारित्र है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। क्या कहा? देखो!

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धचारित्र तथा शुद्ध ज्ञानचेतना को एक वस्तुपना है। यह क्या कहा? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यस्वभाव आनन्दमूर्ति का ज्ञान ज्ञान में चेते अन्दर ज्ञान में एकाग्र हो। अनादि से पुण्य-पाप और राग के विकार में एकाग्र है, वह आत्मा के चैतन्यस्वभाव में जो ज्ञान एकाग्र हो, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन में ही ज्ञानचेतना होती है। समझ में आया?

आत्मा ज्ञायकमूर्ति चैतन्यवस्तु की अन्तर्मुख होकर जो प्रतीति हुई कि यह आत्मा शुद्ध और आनन्द है, उसके साथ ज्ञान में जो चेतना अर्थात् ज्ञान एकाग्र हुआ, उसे यहाँ ज्ञानचेतना कहते हैं। कहो, समझ में आया? उस ज्ञानचेतना में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप के आचरण का अंश तीनों इकट्ठे आते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? वस्तु पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, कर्म, शरीर रहित ध्रुव चैतन्यवस्तु की अन्तर्मुख दृष्टि होने पर जो ज्ञान में ज्ञान का वेदन ज्ञान में एकाग्रता का होता है, उसके साथ प्रतीति और शान्ति का वेदन होता है, ये तीनों मिलकर उसे ज्ञानचेतना कहा जाता है। समझ में आया? ज्ञानचेतना अर्थात् आत्मा वस्तु, उसमें ज्ञान अन्तर्मुख ढलकर एकाग्र हुआ, उसे ज्ञानचेतना कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? जमुभाई! यह क्या? ज्ञानचेतना। धर्म करना उसमें ज्ञानचेतना का क्या काम होगा?

मुमुक्षु : वहाँ से तो धर्म की शुरुआत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। भाई! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त दर्शन, अतीन्द्रिय अनन्त वीर्य—बल ऐसा अनन्त चतुष्टय का मुख्यरूप से स्वरूप और साथ में दूसरे अनन्त गुण हैं, ऐसा जो आत्मा, उसमें सन्मुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर जो श्रद्धा-ज्ञान की एकाग्रता

और स्थिरता हुई, उसे यहाँ ज्ञानचेतना से ज्ञान की मुख्यता से कथन किया है। वह ज्ञानचेतना उग्ररूप से अन्दर में स्थिर होती है, ज्ञाता में-ज्ञान में एकाग्र बहुत हो, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : घर छोड़ना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : घरबार कहाँ अन्दर घुसे थे ? घरबार का लक्ष्य छूट गया और राग की रुचि छूट गयी। पुण्य-पाप के विकल्प, उनका प्रेम, रुचि एकाग्रता छूटी। स्वभाव पूरा सागर चेतना में एकाग्र हुआ। यह उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञानचेतना कहा जाता है। अब चारित्र अर्थात् क्या ? वह यहाँ कहते हैं।

शुद्धचारित्र तथा शुद्ध ज्ञानचेतना को एक वस्तुपना है। अर्थात् क्या ? चारित्र अर्थात् आत्मा जो ज्ञानस्वरूप अन्तर्मुख होकर ज्ञान की एकाग्रता की, उसमें विशेष अन्तर्मुख होकर ज्ञान में स्थिरता की, यह स्थिरता, उसे चारित्र का बल और वैभव कहा जाता है। यह ज्ञानचेतना ही है। क्योंकि इसमें कर्मचेतना अर्थात् पुण्य और पाप के भाव और हर्ष-शोक का कर्मफलभाव, उससे छूटकर ज्ञान में एकाग्र हुआ था, इसलिए उसे ज्ञानचेतना कहा। अब अस्थिरता जो थी, वह विशेष स्थिरता में एकाग्र हुआ। अस्थिरता गयी और स्थिरता हुई, यह ज्ञानचेतना और चारित्र दोनों एक कहे जाते हैं। स्थिरता बढ़ी। समझ में आया ? जिस ज्ञान ने, वर्तमान ज्ञान की दशा ने जो वस्तु में एकाग्रता की थी, उससे उसने विशेष एकाग्रता उसमें की। देखो न! **अति गाढ़-दृढ़....** ऊपर शब्द पड़ा है या नहीं ? **अति गाढ़-दृढ़ प्रगट हुआ जो राग-द्वेष अशुद्ध परिणति से रहित जीव का जो चारित्रगुण, उसके प्रताप की सामर्थ्य से।** ज्ञानचेतना निर्मल प्रगट हुई। **ऐसी चेतना का कारण उसे कहते हैं**—ऐसा कहा है न ? गजब परन्तु क्रिया कैसी दी! यह चारित्र की व्याख्या चलती है। यह वस्त्र छोड़कर नग्न हुआ, वह चारित्र नहीं, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार उसमें पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, वह चारित्र नहीं।

मुनि का चारित्र उसे कहते हैं कि वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन चारित्र का पिण्ड आत्मा आनन्दकन्द है। वे सब गुण हैं या नहीं ? उसमें जो एकाग्र हुआ, उसका नाम सम्यक् चेतना—ज्ञानचेतना है। अर्थात् ? पुण्य-पाप में चेतता था, दया, दान,

विकल्प में एकाग्र होता था, वह कर्मचेतना थी। उसमें हर्ष-शोक मानता था, वह कर्मफलचेतना (थी)। कर्म अर्थात् जड़ की यहाँ बात नहीं है। कार्य, कार्य विकार का कार्य, वह कर्मचेतना। उस कार्य का वेदन, वह कर्मफलचेतना।

मुमुक्षु : नये लोग हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नये तो कोई नहीं। यह तो बहुत बार आ गये हैं। नहीं? नये हों, कोई नये लोग हों। समझ में आया इसमें?

वस्तु में, वस्तु जो आत्मा—पदार्थ भगवान है, उसका स्वसन्मुख के परिणाम न हों तब परसन्मुख के परिणाम, पुण्य और पाप के, शुभ और अशुभ के तथा हर्ष-शोक के होते हैं, इसका नाम कर्म अर्थात् विकारी कार्य का एकाकार चेत जाना और उसमें हर्ष-शोक का वेदन (हो), वह कर्मफलचेतना। वह बन्ध का कारण है। वह बन्ध का कारण है, वह आत्मा के धर्म की पर्याय को रोकनेवाला है। कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं, शुद्ध चारित्र अर्थात् आत्मा... है तो चारित्र शान्ति, उसमें त्रिकाली गुण, परन्तु उसमें स्थिर हुआ और शान्ति जो विशेष प्रगट हुई, वह चारित्र शुद्ध और ज्ञानचेतना दोनों वस्तु एक ही है। एक अर्थात् जैसा पुण्य-पाप से हटकर स्वभाव का जहाँ दर्शन-ज्ञान किया, वैसा पुण्य-पाप की अस्थिरता से हटकर स्वभाव में स्थिर हुआ। वह ज्ञानचेतना और शुद्धचारित्र, दोनों वस्तु तो एक ही है। एक उग्रता हुई परन्तु ज्ञानचेतना की उग्रता हुई। भारी कठिन बात! अब इसे बाहर से मानना... हें?

मुमुक्षु : मिलान नहीं खाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ मिलान नहीं खाता। बाहर की चीज़ है, वह तो जड़ शरीर है। अब उसमें भी विवाद करे, लो! शरीर की क्रिया जड़... ऐसा कुछ बहुत आता है, कुछ है सही। जड़ की क्रिया कहते हैं, अमुक जड़ की क्रिया कहते हैं। अरे... भगवान! परन्तु शास्त्रकार देखो (क्या कहते हैं)? बन्ध के पाँच कारण कहे—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। उनमें कहीं जड़ को कहा है? इन पाँच में शरीर की क्रिया बन्ध का कारण कहा है? भाई! तू शान्त होकर देख तो सही! ऐसा का ऐसा चलता जाये, उसमें क्या होगा?

आत्मा अपने स्वभाव से विपरीत मान्यता, स्वभाव से विपरीत अस्थिरता (करता है) । उस अस्थिरता के प्रकार—अव्रत, प्रमाद, कषाय और कम्पन । अब इन पाँच प्रकार के बन्धन की पर्याय है । इसके अतिरिक्त कोई जड़ की पर्याय बन्धन का कारण है, ऐसे छह प्रकार नहीं कहे हैं । पाँच बन्ध के कारण कहे । अब इसने छठा उठाया । कहा नहीं, उसने उसमें ? चरणानुयोग में । शरीर ऐसे छुए, उससे बन्ध होगा, यह छठवाँ (कारण) है । शरीर छुए न ? जीव मर जाये, वह शरीर की क्रिया हुई न ? वह भी बन्ध का कारण । अरे ! भगवान !

बन्ध के कारण तो पाँच हैं । वस्तुस्वरूप है, वह अबन्ध है । वस्तु अबन्ध मुक्तस्वरूप है । वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही हूँ । उससे उल्टी मान्यता—मैं बन्धरूप हूँ, रागरूप हूँ, (यह) मिथ्यात्व है । उसमें अस्थिरता, वह अव्रत । उसका भाग हटकर थोड़ा फिर रहे, वह प्रमाद । वे सब एक समय के पाँच प्रकार के परिणाम हैं । एक समय के, हों ! मिथ्यात्व जाये तो भी एक समय में (जाता है) । फिर चार (रहते हैं) । ऐसा जो विकारी परिणाम वह बन्ध का कारण है । भगवान आत्मा का आश्रय अबन्ध का कारण है । छोटाभाई ! उसमें छठवाँ शरीर की क्रिया बन्ध का कारण कहाँ आया ?

मुमुक्षु : कर्म का उदय आया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म का उदय आया उसके घर में गया और जड़ की क्रिया हिले-चले, वह जड़ में गयी । कारण कहाँ आया परन्तु वह ? पाँच बन्ध के कारण में छठवाँ आता नहीं । मोक्ष के कारण में कहो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः । वहाँ कोई उदयभाव मोक्ष का कारण है, ऐसा आता है ? आता है उस क्षायिकक्रिया में । वह डाला है । अरे... भगवान ! तेरी बलिहारी है न, बापू ! आहाहा ! भाई ! यह वस्तु है न ? उसमें उल्टे परिणाम और सुलटे परिणाम की क्रीड़ा है । दूसरी चीज तो जड़, उसका परिणमन स्वतन्त्र (होता है) । शरीर, वाणी, कर्म सब स्वतन्त्र है । धर्मचन्दजी ! आहाहा !

कहते हैं कि तू आत्मा है न ! भाई ! और आत्मा के बन्ध का भाव उसके स्वभाव में तो नहीं । मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग, वह कहीं स्वरूप में नहीं है । नयी उत्पन्न की हुई एक समय की कृत्रिम विकार दशा है । उसका प्रेम और रुचि छोड़कर

ज्ञायकस्वरूप के प्रति दृष्टि और रुचि करके, सम्यक् अनुभव किया कि यह आत्मा पूर्णानन्द है, ऐसी श्रद्धा और ऐसा ज्ञान का चेतना हुआ, उसमें स्थिरता हुई, उसे ज्ञानचेतना कहा जाता है। वह बन्ध के अबन्धन परिणाम हैं। वह ज्ञानचेतना, वह अबन्ध परिणाम है। उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम कहो या ज्ञानचेतना कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? अरे! इसका रास्ता भी ख्याल में न ले और रास्ते में जाना (तो) कहाँ जाना इसे? समझ में आया?

अरे! अनन्त काल से भटकता है। अरे! इसकी इसे दया नहीं। भाई! यहाँ से आँखें बन्द हो गयी... यह सब विचार की धारा के क्षयोपशमभाव आदि यहाँ जो मिले, वे अन्यत्र नहीं होते, हों! ऐसे। और यदि इस समय यह काम यथार्थरूप से नहीं किया, कहीं मार्ग निकले, ऐसा रास्ता नहीं है। समझ में आया? यह अपने लिये बात है। यह कहीं किसी के लिये बात नहीं है। इसे स्वयं भगवान आत्मा पूरी चीज़ है, उसे लक्ष्य में नहीं लिया और उल्टे परिणाम को लक्ष्य में लेकर इसने माना कि, मैं कुछ धर्म करता हूँ। यह तो अनन्त काल से करता ही आता है। यह तो निगोद से लेकर यह करता ही है। अब यह करता है, उसमें छूटने का रास्ता कहाँ? भाई! समझ में आया?

भगवान! इस अन्तर्मुख में भगवान पूरा पड़ा है न! उसे अन्तर्मुख के परिणाम से एकाग्र होना, उसे यहाँ ज्ञानचेतना कहो, अबन्ध परिणाम कहो, मोक्ष के मार्ग की शुरुआत कहो या उसे धर्म कहो। आहाहा! ऐसा इसे प्रथम श्रद्धा में लेना चाहिए। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि यह जो ज्ञानचेतना स्वभावसन्मुख होकर हुई, उसे ज्ञानचेतना कहो या उसे चारित्र की शुद्धि कहो, उस विशेष ज्ञानचेतना का एकाग्रता में चारित्र हुआ। दो ज्ञानचेतना का ही भाग है। कोई दूसरा भाग नहीं। समझ में आया? अरे! इस चारित्र के बिना इसके महाव्रत के विकल्प को व्यवहारचारित्र का भी आरोप देनेवाला कौन? हें? भाई! चारित्र तो पूज्य है, भगवान है, परमेश्वर केवलज्ञान को चारित्र बुलाता है। सामर्थ्य चारित्र की है, परन्तु वह चारित्र कौन सा?

यह चैतन्यप्रभु अन्तर में एकाग्रता की उग्रता को पाता है, एकाग्रता की उग्रता को पाता है, वह चारित्र वैभव है। वह मोक्ष के कारण का भाव है। वह चारित्रगुण और

शुद्धज्ञानचेतना एक ही वस्तु है। कहो, समझ में आया इसमें ? और चारित्र कुछ अलग होगा और ज्ञानचेतना अलग होगी ? भगवान आत्मा अपने स्वरूप में सन्मुख होकर स्थिर हो, वह ज्ञानचेतना और उसे ही शुद्ध चारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें ? पहले अभी ज्ञान ही न करे, उसे यह समझण न हो और समझण के बिना, रुचि सच्ची कहाँ से होगी ? और रुचि के बिना स्थिर कहाँ होना, उसकी इसे खबर कैसे पड़े ? समझ में आया ? और यह वाद-विवाद का विषय ही नहीं। हें ?

'रुचि अनुयायी वीर्य', 'चरण धारा सधे' आता है न ? गोपालदासभाई ! ऐसी रुचि अनादि से पुण्य और पाप, राग और द्वेष, विकल्प और शरीर, वाणी और मन जड़ आदि सब, उस रुचि के बड़े लम्बे पूंछड़े इसके। जो रुचि इसे मिथ्यात्व की दुःखदायक है। उस रुचि को (छोड़कर) भगवान की रुचि करे (कि) मैं चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ, शुद्ध परमब्रह्म आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसी वस्तु की रुचि, उसकी दृष्टि, उसका परिणमन, उसकी ज्ञान की एकाग्रता, उसमें स्थिरता, यह सब ज्ञान की एकाग्रता—संचेतन, उसे चारित्र कहा जाता है।

कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? 'रागद्वेषविभावमुक्तमहसः' जितनी अशुद्ध परिणति है... देखो ! यहाँ चारित्र लेना है न ? ज्ञानचेतना भगवान ज्ञान आत्मा अपने में—ज्ञान में ज्ञान लीन हुआ, ज्ञान में ज्ञान समझकर समाया। समझ में आया ? **जितनी अशुद्ध परिणति...** पुण्य-पाप के विकल्प, **उसरूप जो 'विभाव' जीव का विकारभाव, उससे रहित हुआ है...** सम्यग्दृष्टि जीव चारित्र में यह पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित हुआ, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। परन्तु वह सम्यक् दृष्टि होकर ली है। सम्यग्दृष्टि ही वह है कि वस्तु का भान, प्रतीति, अनुभव हुआ। अब वह जितने प्रमाण में स्वरूप में स्थिर हुआ है, वह सब अशुद्ध पुण्य-पाप के राग की परिणति से हटकर स्थिर हुआ है, उसे साथ रखकर उसकी मदद से स्थिर नहीं होता। गजब बात ! आहाहा ! समझ में आया ?

जीव का विकारभाव, उससे रहित हुआ है, शुद्ध ज्ञान जिनका, ऐसे हैं। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? कि अपने शुद्धस्वरूप की शुद्धदृष्टि हुई है, ज्ञान का—ज्ञान का ज्ञान प्रगट हुआ है और शुद्धता की स्थिरता बढ़ी है। वह हुई तो क्या हुआ है ? कि जितने

पुण्य के विकल्प, अशुद्ध परिणति थी, उनसे रहित हुए, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। आहाहा! कितने ही कहें, परन्तु ऐसी बात? परन्तु बापू! इसे धर्म करना है या क्या करना है? दूसरा तो होता है, भाई! यह रागादि मन्दता भी होती तो है, परन्तु अब वहीं का वहीं तू अटक पड़ेगा तो अब निकलने का अवसर कब? समझ में आया?

इसे श्रद्धा में अवकाश देना चाहिए कि अहो! परसन्मुख की वृत्ति उठती है, वह सब बन्ध का कारण है। उस बिना की पूरी चीज़ वस्तु है, उसे ले सकता है, श्रद्धा-ज्ञान में ले सकता है, कर सकने की सामर्थ्य है। परन्तु यह ऐसे इनकार करता है। ए... हमको सूझ नहीं पड़ती। हें? नकार करता है। उसका स्वभाव में स्थिर होने का हकार चाहिए। मैं कर सकने की सामर्थ्यवाला अनन्त वीर्य मुझमें है और वह भी अनन्त ज्ञान को रुचे, ऐसा वीर्य है, अनन्त आनन्द को रचे, ऐसा वीर्य है, अनन्त श्रद्धा को परमअवगाढ को रचे, ऐसा वह वीर्य है। आहाहा! समझ में आया? और परम यथाख्यात पूर्ण स्थिरता जो चाहिए, उसे रुचे ऐसा मेरा वीर्य है। इसे यह भरोसा नहीं आता। वह भरोसा लाने के लिये तो यह बात है। समझ में आया? ऐसा भगवान तू है, भाई! यह तुझमें जरा भी दोष, न्यूनता नहीं, ऐसा तू पूरा है। तू सबको पूरा पड़े, ऐसा विकार का नाश करने की सामर्थ्यवाला तू है। विकार को रखना, वह तेरे स्वभाव में कहीं नहीं है। समझ में आया? विकार को उत्पन्न करना, ऐसा स्वभाव में नहीं और विकार को उत्पन्न करके रखना, ऐसा स्वभाव में नहीं। आहाहा!

भगवान ज्ञान शुद्ध चैतन्यस्वरूप में तो उसकी श्रद्धा-ज्ञान होकर उसमें स्थिरता की सामर्थ्य है। समझ में आया? यह स्थिरता, उसे यहाँ चारित्र का वैभव और उसे चारित्र कहा जाता है। वह सम्यग्दृष्टि का चारित्र है। ... साथ में लिया। पहले ज्ञान लिया, सम्यग्दृष्टि लिया, अशुद्ध परिणतिरहित, यह चारित्र लिया। आहाहा!

एक चार हाथ, छह हाथ लम्बी ईयळ हो, लम्बी ईयळ होती है न? उसके ऊपर ऐसे पत्थर पड़े तो ऐसे सलवल-सलवल करके निकलना चाहे। हों! नहीं? ऐसी लकड़ी ऊपर गिर जाये। लम्बी ईयळ होती है, हों! मानो सर्प का सपोलिया हो, ऐसा नहीं परन्तु ऐसी एक बारीक पतली लम्बी आती है। उसके ऊपर ऐसे लकड़ी पड़ गयी,

पत्थर पड़ गया तो इतना भाग ऐसे दब जाये। सलवल-सलवल करके निकलना चाहे। ऐसा कहते हैं, भाई! तू पुण्य-पाप की एकत्वबुद्धि के बन्ध में फँस गया है, हों! उसमें से छूटने का कोई मार्ग तुझमें है। समझ में आया? उसका भरोसा / विश्वास तो कर। ओहो! यह प्रभु आत्मा पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करे और पूर्ण स्वरूप को रुचे, ऐसी सामर्थ्यवाला मेरा तत्त्व है। कोई विकल्प और पर्याय में यह बात नहीं। यह वस्तु में वह सामर्थ्य है।

ऐसी अशुद्ध जो परिणति विकार, उससे रहित (हुआ है) **शुद्ध ज्ञान जिसका,...** जिसका शुद्ध ज्ञान है। जिसका है न? **शुद्ध ज्ञान जिसका,...** जिसका शुद्ध ज्ञान है। सम्यग्दृष्टि का राग पुण्य-पाप रहित जितना ज्ञान हुआ, उसका नाम चारित्र कहा जाता है और उसका नाम शुद्ध ज्ञान कहा जाता है। **और कैसे हैं? 'पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला:' जितना अतीत काल...** भूतकाल के। **जितना अनागत काल,...** भविष्यकाल के पुण्य-पाप के भाव आदि। और **नाना प्रकार के असंख्यात लोकमात्र रागादिरूप अथवा सुख-दु:खरूप अशुद्धचेतना विकल्प,...** भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य की दृष्टि होने पर, ज्ञान होने पर, स्थिरता होने पर भूतकाल के पुण्य-पाप, वर्तमान के और भविष्य के, सबसे रहित हुआ शुद्धरूप परिणमना, इसका नाम चारित्र कहा जाता है। देखो!

अशुद्धचेतना विकल्प, उनसे सर्वथा रहित हैं। यह अन्तिम गाथाओं में चारित्र की व्याख्या है न? यह चारित्र ज्ञानस्वरूप भगवान में विशेष स्थिरता होना, वह चारित्र। उस स्थिरता में भूतकाल के पुण्य-पाप, वर्तमान और भविष्य के, इन सबसे रहित एकस्वरूप स्थिरता (हो), उसका नाम चारित्र कहा जाता है। वह भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमानकाल का संवर और आगामी काल का प्रत्याख्यान (यह है)। तो इसका अर्थ क्या है? कि यह आत्मा चैतन्य वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा में दृष्टि करके स्थिर हुआ, उसे भूतकाल का प्रतिक्रमण हो गया, शुभाशुभपरिणाम का प्रतिक्रमण हो गया। वर्तमान में स्थिर हुआ, उसे पुण्य-पाप का वर्तमान में संवर हो गया और भविष्य में वे पुण्य-पाप होनेवाले नहीं, उसका यहाँ प्रत्याख्यान हो गया। ऐसे तो कितनी बार रटे हैं? भगवानभाई! भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, आगामी काल का प्रत्याख्यान। यह

सब आत्मा की ज्ञान में रमणतारूप शुद्ध चेतना, शुद्ध चारित्र इस पर्याय की अपेक्षा के तीन प्रकार से नाम रखे हैं। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यद्रव्य अन्तर में दृष्टि में लेकर ज्ञान ने ज्ञेय बनाकर जो ज्ञानचेतना वर्तमान में स्थिर हुई, उसे भूतकाल का प्रतिक्रमण हो गया, वर्तमान का संवर हो गया और भविष्य का प्रत्याख्यान हो गया। एक दशा में तीन नाम अपेक्षा से दिये गये हैं। वल्लभदासभाई! भूतकाल का प्रतिक्रमण और बहुत अधिक कराया होगा। खोटा समझे, इसलिए सच्चा समझने में काम आता होगा, ऐसा होगा? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

काँटे कंकर दो-चार कोस मार्ग चले हों और दस (बजे) का समय हो गया हो और उसमें मार्ग निकले कि, ... यह रास्ता नहीं, दूसरा है। न्यालभाई! मुश्किल से चार कोस चले हों और साढ़े नौ (बजे) पहुँचूंगा ऐसा निर्णय हो गया हो क्योंकि साढ़े दस बजे रोटियाँ खाना है। उसमें जहाँ एक मील निकला (और पूछा) कि यह गाँव है? नहीं, नहीं। तब? वह तो पीछे रह गया। रास्ता भूले। ऐ! समय हो गया, रोटियों का समय गया, यह मेहनत गयी, क्या हुआ परन्तु यह? आहाहा! इसी प्रकार राग और पुण्य करके... करके... करके रास्ता काटा माना कुछ। चलकर बहुत चला। राग की मन्दता, राग की मन्दता, दया, दान, व्रत, भक्ति कर-करके (मर गया)। ...! यह मार्ग नहीं। न्यालभाई! आहाहा! इस राग से (भिन्न पड़कर) अन्दर में दृष्टि करना, वह मार्ग है। मानो अब तो समाधिमरण से मरूँगा। बहुत की है, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण।

परन्तु यह मार्ग ही नहीं था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह तो पुण्यबन्ध का मार्ग है। अबन्ध का मार्ग वह नहीं। अबन्ध कहो या मोक्ष कहो। भाई! मार्ग बदल न! जहाँ जाना है, वह दिशा रह गयी। वह दिशा सांध, वह दिशा सांध। इसी प्रकार आत्मा ऐसे पर के लक्ष्य के दशा की दिशा में चला जाता है ऐसे-वैसे। पाप परिणाम कदाचित् घटे, परन्तु वे मिथ्यात्व के परिणाम के पाप तो घटे नहीं, हों! वह तो ऐसा का ऐसा पूरा खड़ा है। भाई! यह मार्ग ही नहीं है। मार्ग तो वस्तुस्वरूप है, उसमें अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता (करना), वह मार्ग है। यह दिशाफेर है, भावफेर है। इसकी

खबर नहीं और कहे कि अपने मोक्ष में जायेंगे और हम नि:शंक है। बहुत अच्छी बात है। हमको श्रद्धा है, हम दो भव में मोक्ष जायेंगे।

भवम्... भवम्... मोक्ष भवम् एक व्यक्ति ऐसा कहता था। बातें तो हमारे बहुत चले न! एक व्यक्ति कहता था, हम भवम् भवम् मोक्ष (जायेंगे)। भवम् भवम् मोक्ष, ऐसा कहता था। परन्तु तेरे लक्षण तो देख अब। बाह्य में पूजवाने के लिये (बोले)। बहुत वर्ष की बात है, हों! चूडा में मेडी है न? चूडा में मेडी है। चूडा में मेडी है उस ओर दरवाजा पड़ता है। एक व्यक्ति बैठा था। परन्तु तेरे लक्षण तो गृहीत मिथ्यात्व के हैं, सज्जनता (का) ठिकाना नहीं, ऐसे तो लक्षण हैं। वह यहाँ निकला, प्रकाश एक निकला। हमारी थोड़ी-थोड़ी बातें चले न! प्रकाश निकला था। भवम् भवम् मोक्ष, भवम् भवम् मोक्ष। अरे! भगवान! परन्तु तू यह क्या करता है? प्रकाश तो सूर्य के (ऐसे) बहुत होते हैं। तेरी आँख ऐसे-ऐसे कर तो प्रकाश हो जाये, उसमें क्या हो गया? ऐसे-ऐसे आँख घूम जाये तो प्रकाश हो जाये। नहीं होता? भींस करे और ऐसे हो जाये। परन्तु यह क्या? ऐसा करके देखे वहाँ ऐसा कुछ हुआ हो। आहाहा! वह चैतन्य के नूर भगवान प्रकाश की अन्दर अनुभूति की प्रतीति के भान बिना तेरी स्थिरता का चारित्र आयेगा कहाँ से? भवम् भवम् मोक्ष अर्थात् भव भव छूट जायेंगे, मुक्ति नहीं होगी ऐसे उसे। समझ में आया?

असंख्यात लोकमात्र... जितने राग-द्वेष के परिणाम हैं न? शुभाशुभभाव। असंख्य प्रकार है न? असंख्यात लोकमात्र भाव। इतने शुभ-अशुभभाव। **रागादिरूप अथवा सुख-दुःखरूप...** अर्थात् कर्मचेतना अथवा कर्मफलचेतना, ऐसा लिया। पुण्य-पाप के भाव कर्तृत्वबुद्धिवाले और सुख-दुःख के वेदनवाले। ऐसी अशुद्धचेतना के जितने विकल्प हैं, उनसे सम्यग्दृष्टि चारित्रवन्त उन अशुद्ध परिणाम से हटकर स्थिर हुआ है। उसे चारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

और कैसे हैं? सर्वथा रहित हैं। हों! ओहो! हो गया केवलज्ञान? सुन न! इस चारित्र की स्थिरता में तो विकल्प से रहित ही है। समझ में आया? जितना कोई अबुद्धिपूर्वक का विकल्प रहा, उस वस्तु की यहाँ गिनती नहीं है। वस्तु अपने स्थिर...

स्थिर... स्थिरबिम्ब को जानते हुए असंख्य प्रकार के शुभाशुभराग से रहित ही चारित्रदशा है। अब ऐसी चारित्र की खबर नहीं होती। अभी खबर नहीं हो (और) लो चारित्र! हैं! ऐसे बाहर की क्रिया दिखायी दे। यह क्या कहते हैं? ऐसा इतना बड़ा अन्दर और उसमें स्थिर और ऐसा यह हो।

और कैसे हैं? 'तदात्वोदयात् भिन्नाः' 'तदात्वोदयात् भिन्नाः'। 'तदात्व' है न? ... काल में। **वर्तमान काल में आये हुए...** वे दो बोल लिये थे न? वर्तमान काल में... 'यदात्वे' आया है न? यह लिया। **वर्तमान काल में आये हुए उदय से हुई है जो शरीर, सुख-दुःख, विषयभोगसामग्री...** वर्तमान में भी विकल्प आदि, हों! मूल तो शरीर से तो हट गया है। **शरीर, सुख-दुःख, विषयभोगसामग्री इत्यादि, उससे परम उदासीन है।** चारित्रवन्त तो विकल्प और शरीर से उदास है। वर्तमान में उदास है। भूत और भविष्य के परिणाम रहित है। वर्तमान में उनसे उदास है, ऐसा लिया। वस्तु के अन्तर भान के घोलन की जहाँ चारित्रदशा हुई, भूतकाल और गतकाल और भविष्य काल के अशुद्ध परिणाम से रहित है, वर्तमान उसके शरीर, उसकी क्रिया, सुख-दुःख का संयोग, उस ओर का बाह्य विषयभोग, सब सामग्री से भिन्न परम उदासीन है। परम उपादासीन है, उसे चारित्र कहा जाता है। समझ में आया?

'भिन्नाः' की व्याख्या की। भिन्न है अर्थात्? परम उदासीन। इसलिए वहाँ से हटकर उदास... स्वरूप में वीतरागता है, ऐसा कहना है। स्वरूप में वीतरागता, वीतरागता (है)। शरीर के प्रति, बाह्य सामग्री के प्रति, इज्जत के प्रति, लोग प्रशंसा करे, उसके प्रति, सब सामग्री से वर्तमान पर्याय में वह उदासीन अर्थात् पर से हटा है, परम उदासीन है। यह चारित्र की व्याख्या है।

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव... देखा? मूल पाठ तो यह है। अकेला चारित्र... चारित्र करे, ऐसा नहीं। **कोई सम्यग्दृष्टि जीव त्रिकालसम्बन्धी कर्म की उदयसामग्री से विरक्त होकर...** भूतकाल के विकल्प और सामग्री, वर्तमान और भविष्य, तीनों काल के विकल्प से विरक्त होकर अन्तर में चिदानन्द आत्मा के अन्तरध्यान में **शुद्धचेतना को प्राप्त करते हैं...** शुद्ध चेतना को, अन्दर ज्ञानानन्द को प्राप्त करता है,

उसे **आस्वादते हैं।** शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द को वेदता और आस्वादता है, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

शुभाशुभभाव को अपना मानना, वह मिथ्यात्व है। और अकेला ज्ञान करके ज्ञान हुआ, वह अज्ञान है और उसका स्वाद लेना, वह अचारित्र है। शुभाशुभभाव का स्वाद लेना, वह अचारित्र। वह मेरे, ऐसी श्रद्धा वह मिथ्यात्व, उनका अकेला ज्ञान, वह अज्ञान। उस वस्तुस्वरूप में अन्तर्दृष्टि करने से वस्तु की प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। उसमें उसका ज्ञान किया, उसका नाम ज्ञान है और शुभाशुभ परिणामरहित स्थिरता के शान्ति का वेदन हुआ, उसका नाम चारित्र है, उसका नाम आस्वाद है। स्वाद लेना, आत्मा का स्वाद, और आत्मा का स्वाद। स्वाद तो दूधपाक का होता है, भुजिया का होता है। प्रभुदासभाई! भैंस का घी ऐसा गाढ़ा जैसा हो। स्वाद उसका आवे।

मुमुक्षु : किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ को। जड़ में स्पर्शे। ताजा घी होता है न? ... भैंस का गाढ़ा जैसा। वह नारायण कहलाता है। वे कहते थे, हमारे भाई थे न लाठीवाले! जयरामभाई! नारायण कहलाये। ... नारायण किसे दिया जाये? वीछिया में। वे तो कहे, नारायण है। नारायण तो बाधक ही नहीं। परन्तु किसने कहा? उसमें थोड़ा दिया और प्याला फटा (अभिमान चढ़ा)। मस्तिष्क की अस्थिरता और उसमें नाक में घी दिया। वे सब ऐसे थे, वे ही थे सब। नारायण है, परन्तु किसे है? समझ में आया? अपच हो, फिर मस्तिष्क में गैस चढ़े। बिगड़े, गन्ध मारे, विष्टा गन्ध मारे, कब्जियत... अन्दर में, ए... शान्तिभाई! खबर है? यह थे तब। यह एक ही रहे हैं न? यह तब नहीं थे। (संवत्) १९८७ के वर्ष की बात है। नारायण किसे कहना?

भाई! यह नर का नारायण भगवान आत्मा है, इसके स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता (करे), वह नर का नारायण है। आहाहा! घी को नारायण करके दे। नारायण नाम दे दिया। घी के अर्थी को घी तो नारायण कहलाये, चाहे जिसे (दिया जाये)। परन्तु किसे? मार डाले। सन्निपात उठे सीधे।

भगवान आत्मा यह पुण्य-पाप के प्रेम को छोड़कर भगवान आत्मा के प्रेम के

पक्ष में चढ़ा और स्थिर हुआ, वह नारायण हो गया। वह चारित्रवन्त हुआ, वह परमात्मा होकर ही रहेगा। आहाहा! समझ में आया? यह बाह्यक्रियाकाण्ड से चारित्र नहीं होता। आहाहा! अरे रे! क्या हो? भाई! मार्ग है, बापू! अरे रे! इस मार्ग की पद्धति यह है, दूसरा मार्ग कहाँ से लाना? स्व सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह मार्ग; अब इसके अतिरिक्त दूसरे मार्ग, वे मार्ग मानना (वह मिथ्या है)। आहाहा! समझ में आया? अरे! उभरने के काल में डूबने के भाव को तू उभरने का माने, भाई! मार्ग कब निकलेगा? दुनिया माने, न माने, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? दुनिया कहे, अरे! यह एकान्त है। अरे! इसमें कुछ साधन है? ऐसा कितने ही कहते हैं। परन्तु साधन ही यह है। इसमें साधन भी यह है।

विकल्प को व्यवहार साधन कहा है, विकल्प को व्यवहार साधन कहा है वह तो व्यवहार अभूतार्थ से साधन कहा है। साधन-साध्य व्यवहारनय से कहा न? भाई! तुझे खबर नहीं। वह तो व्यवहारनय से (कहा है)। पंचास्तिकाय। यह कथन की शैली (ऐसी)। व्यवहार को साधन कहा, निश्चय साध्य है। निश्चय में निश्चय साध्य-साधन एक है, व्यवहार में साध्य-साधन भिन्न है। राग, वह साधन और साध्य वह। यह तो किस अपेक्षा से? भगवान! ऐसा निमित्तपना हो, ऐसे अभूतार्थनय से उसे साधन कहा है। आहाहा! अभूतार्थ कहो या व्यवहार कहो। समझ में आया? इसमें एकान्त लगे, लो इसमें। यही साधन? यह पंचास्तिकाय में व्यवहार साधन कहा है न? धीरे-धीरे सनई... सनई... सनई ऐई! लिखा है या नहीं? हमारे पण्डितजी ने लिखा है। फुटनोट करके स्पष्टीकरण किया है सनई... सनई... सनई... सनई... व्यवहार से आगे बढ़ता जाता है। चन्द्र का प्रकाश जैसे खिलता जाये... ऐसा आता है न? और जैसे ऐसे धोबी शिला पर जैसे पछाड़ता जाता है, ऐसी भाषा है। कपड़ा पत्थर के ऊपर पछाड़े न? ऐसे पछाड़े। डुबोकर साबुन लगाया हो न? फिर ऐसे पछाड़े तो वह मैल पृथक् पड़ जाये। उसी प्रकार व्यवहार करते-करते पछाड़े तो मैल पृथक् पड़ जाये। ऐई! यह तो निमित्त की बात की है, सुन तो सही! भाई! वह स्वयं शुद्ध परिणमन से परिणमता हुआ राग को पृथक् करता हुआ परिणमता है। अरे! यह पंचास्तिकाय के कथन ऐसे, इसलिए लोगों को मानो... यह क्या कहते हैं यह! वहाँ तो निमित्त का ज्ञान कराया है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि, सम्यग्दृष्टि जीव सत्यदृष्टि, सत्य के स्वभाव का परमेश्वर आत्मा, उसकी दृष्टिवन्त जीव। **त्रिकाल सम्बन्धी कर्म की उदय सामग्री...** लो, विकल्प आदि सब। **विरक्त होकर शुद्ध चेतना को प्राप्त करते हैं—आस्वादते हैं।** उसे चारित्र और उसे मोक्ष का साधन कहा जाता है। समझ में आया? यह ३१ (कलश) हुआ।

वह यह धर्म करने से सुखी होगा। परन्तु करेगा वह न? अपना तो कुछ नहीं होता न? पाँचवाँ काल कठिन है, धर्म करेगा वह सुखी होगा। हमारे कुछ लेना-देना नहीं होता। मेलांमां लिखते हैं न? भाई! इसकी श्रद्धा तो कर। इस दिशा को बदलने की प्रतीति तो कर। समझ में आया? परसन्मुख की दिशा से माना है, उसकी अपेक्षा स्वदिशा में जा तो हो, ऐसी श्रद्धा तो कर, ऐसे ज्ञान को गोठववामा में तो रोक। रोक और उसे रुचि में जमा। समझ में आया? आहाहा! तो मार्ग निकलेगा, नहीं तो मार्ग निकलेगा नहीं।

कलश - २२४

(उपजाति)

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम्।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः।।३२-२२४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—ज्ञानचेतना का फल (तथा) अज्ञानचेतना का फल कहते हैं—'नित्यं' निरन्तर 'ज्ञानस्य सञ्चेतनया' राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति के बिना, शुद्धजीवस्वरूप के अनुभवरूप जो ज्ञानपरिणति, उसके द्वारा 'अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव' [अतीव शुद्धं ज्ञानं] सर्वथा निरावरण केवलज्ञान, [प्रकाशते] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कारण सदृश, कार्य होता है; इसलिए शुद्धज्ञान का अनुभव करनेपर, शुद्धज्ञान की प्राप्ति होती है—ऐसा घटित होता है, एिवेँ ऐसा ही है निश्चय से। 'तु' तथा 'अज्ञानसञ्चेतनया बन्धः धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि' [अज्ञानसञ्चेतनया] राग-द्वेष-मोहरूप तथा सुख-दुःखादिरूप जीव की अशुद्धपरिणति के द्वारा, [बन्धः धावन्] ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध अवश्य होता हुआ, [बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि] केवलज्ञान की शुद्धता को रोकता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानचेतना, मोक्ष का मार्ग; अज्ञानचेतना, संसार का मार्ग।।३२-२२४।।

कलश - २२४ पर प्रवचन

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम्।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः।।३२-२२४।।

एक ही बात, यह बात है। आहाहा! श्रीमद् में भी पूछते थे। तुम कहते हो यह (मार्ग है), परन्तु दूसरा मार्ग सही? कि यह भक्ति करना और ऐसा साधन तो कहते

नहीं। एक दिन गये थे न? अगास में गये थे। कोई मारवाड़ी था और कोई था। परन्तु साधन क्या? राग की मन्दता वह साधन है? वह तो व्यवहार साधन कहा। अन्दर में जाये तो उसे साधन कहा जाता है। यह बात (नहीं थी)। विपरीतता ऐसी विपरीतता (घुसायी हुई)। कुछ भक्ति करे, हे भगवान! तिराना, तिराना, प्रभु! तिराना। धुन लगावें। वह कोई साधन होगा या नहीं? ऐ... न्यालभाई! मैंने कहा, भाई! साधन तो आत्मा में स्थिरता, वह साधन है। यह साधन कहा है, शास्त्र में कहा न? 'त्याग वैराग्य न चित्त में' ऐसा शब्द है सही न? वह उसे खटके। यह तो चित्त में राग की मन्दता। परन्तु वह मन्दता यहाँ छोड़कर अन्दर न जाये तो वह निमित्त तुझे क्या करेगा? 'अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान' यह नहीं आया? इसे छोड़ दिया। इस राग की मन्दता में अटका और अन्तर से रहित, उससे भिन्न है, उसमें आया नहीं। हो गया, यह तो वह की वह दशा है।

खण्डान्वयसहित अर्थ:—अर्थ है न? अर्थ है? उसमें उड़ गया है। सबमें उड़ गया है? कहीं में है? इसमें 'अ' है। कहीं उड़ गया है। **ज्ञानचेतना का फल तथा अज्ञानचेतना का फल कहते हैं:**—अब ज्ञानचेतना; ज्ञानचेतना अर्थात् क्या? यह कहते हैं। **'नित्यं' निरन्तर... 'ज्ञानस्य सञ्चेतनया' राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति के बिना शुद्ध जीवस्वरूप के अनुभवरूप जो ज्ञानपरिणति उसके द्वारा...** यह ज्ञानचेतना। अर्थात् क्या कहा? कि भगवान आत्मा अन्तर्मुख पुण्य-पाप के भाव और मोहरहित होकर, अशुद्ध परिणति बिना जो आत्मा में शुद्ध परिणति, शुद्ध निर्मल स्वभाव-सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता ऐसे स्वरूप का अनुभव (हो), उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। ज्ञानचेतना अर्थात् यह शास्त्र के पठन की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानचेतना अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव जो ज्ञान परिणति, उसका नाम ज्ञानचेतना। समझ में आया? ऐसे शास्त्र के अर्थ खुल जाये। फट... फट... फट... फट... ऐसा नहीं। आत्मा खुल जाये अन्दर में एकाग्र होकर, उसका नाम ज्ञानचेतना है। समझ में आया? शास्त्र का पठन उसके घर में रहा। वह परसन्मुख का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? आहाहा! बाहर में उसकी छाप लगे, हों! नहीं? दुनिया अर्थात् क्या परन्तु? संसार।

भगवान आत्मा अपने शुद्ध चैतन्य में एकाग्रतारूप ज्ञानचेतना कि जो ज्ञानचेतना अन्तर्मुख ढलकर एकाग्र होती है कि जिसमें पुण्य-पाप और राग-द्वेष की परिणति का अभाव है, ऐसी परिणति को ज्ञानचेतना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध जीवस्वरूप के अनुभवरूप जो ज्ञानपरिणति...** यह किसकी व्याख्या होती है। '**नित्यं ज्ञानस्य सञ्चेतनया**' यह शब्द पड़ा है उसकी। '**ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्य**' यह पहला पद। अर्थात् '**नित्यं ज्ञानस्य सञ्चेतनया**' निरन्तर भगवान ज्ञानमूर्ति ज्ञायकस्वभाव में अन्तर की एकाग्रता रागरहित की—अशुद्ध परिणतिरहित, ऐसा जो शुद्ध जीव का अनुभव, वह ज्ञानपरिणति और वह ज्ञानचेतना (कही जाती है)। समझ में आया? उसे इतना शास्त्र का ज्ञान हो तो ज्ञानपरिणति हो, (ऐसा नहीं है)। उसे भगवान ज्ञायक का अवलम्बन मिला, उसे ज्ञानपरिणति होती है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु '**ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्य**' निरन्तर वस्तु ज्ञायकमूर्ति प्रभु, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प और परावलम्बी ज्ञानरहित, जितना अन्दर शुद्ध का परिणमन और अनुभव (होता है), उस ज्ञानचेतना से क्या होता है? वह ज्ञानचेतना, उससे क्या होता है? **उसके द्वारा '**अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव**'** कोई कहे कि, इस ज्ञान द्वारा होता क्या है? समझ में आया? '**प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं**' यह उसका फल है न? यह ज्ञान अपने शुद्धस्वभाव में एकाग्रता को प्राप्त हुआ। पुण्य-पाप के विकल्परहित होकर, दृष्टिरूप से शुद्ध हुआ, वह ज्ञानचेनता कही जाती है। यह ज्ञानचेतना का लक्षण बाँधा स्वरूप। अब उसका फल क्या? ऐसी ज्ञानचेतना हुई अर्थात् शास्त्र के पठन का उकेल एकदम होने लगे, ऐसा फल होगा? ऐई! एकदम ज्ञान में जानकारी हो जाये और फिर सभा में लोगों को (जवाब देना) आवे। यह ज्ञानचेतना का फल होगा या नहीं? ऐसा कहते हैं। ऐ... भीखाभाई! इसको लक्ष्य रखना।

'**अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव**' लो! आहाहा! वस्तु तो देखो! एक शैली, वस्तु का स्वरूप देखो! भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ज्ञान का पुंज, उसके अन्दर में एकाग्रता, वह ज्ञानचेतना अर्थात् कि उसमें ज्ञान-पठन कितना, उसकी अब यहाँ बात नहीं। समझ में आया? पढ़ा कितना और जवाब देना कितना आता है? और

जगत को समझाना कितना आता है ? और कितने लोग प्रसन्न होते हैं, उस पर ज्ञानचेतना का फल नहीं है और उसे ज्ञानचेतना कहते ही नहीं हैं। आहाहा! हें ?

मुमुक्षु : अज्ञानचेतना अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान अर्थात् राग-द्वेष के मन्द से, उघाड़ से उसे वाणी में ऐसा आवे न अन्दर हो कि, यह मेरा स्वरूप है, वह अज्ञानचेतना है। उसमें मुझे लाभ होता है, वह विकल्प उठा है और वाणी निकलती है और ज्ञान का उघाड़ कुछ काम करता है, उसमें से मुझे लाभ होता है, वह अज्ञानचेतना है, मिथ्याचेतना है। आहाहा! कठिन बात, भाई! प्रभावना होती है न ? ऐ... न्यालभाई! आहाहा! अरे! भगवान! एक व्यक्ति एक व्यक्ति को पूछता था कि दूसरे को समझावे वह ऊँचा या स्वयं अपने में समझकर स्थिर हो, वह ऊँचा ? दूसरे को समझावे, पाँच-पाँच हजार लोगों को समझावे, झपट बजावे, वह ऊँचा। भगवान इनकार करते हैं कि, वह ऊँचा नहीं है। गोपालदासभाई! आहा! दस-दस हजार लोग! परन्तु क्या है ? वह तो वाणी जड़ की है। उसमें तूने कहाँ कहा है ? और कुछ राग उठा, वह विकल्प है, तू कहाँ उसमें आया है ? और परलक्ष्यी का जितना उघाड़ है, वह भी परावलम्बी ज्ञान है, उसमें ज्ञानचेतना आयी नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया ? लो, घण्टा बजा। इसका फल क्या ? कि ज्ञान का शुद्धपना, स्थिरता विशेष होना, यह इसका फल है। दूसरा कोई फल-बल बोलना आवे या राग उठे, वह इसका फल नहीं है। विशेष व्याख्या आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ८, मंगलवार, दिनांक-१६-११-१९६५, कलश-२२४,२२५, प्रवचन-२४४-J

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका, ३२वाँ कलश है। ज्ञानचेतना का फल और अज्ञानचेतना का फल। मोक्ष का मार्ग और बन्ध का मार्ग। इसमें दो अधिकार हैं। समझ में आया? **'नित्यं' निरन्तर... 'ज्ञानस्य सञ्चेतनया'** अर्थात् क्या? कि राग, पुण्य-पाप के भाव, मोह वह सब अशुद्ध पर्याय है। शुभ-अशुभ का विकल्प, दया, दान, व्रत का विकल्प या हिंसा, झूठ, चोरी का विकल्प, वह सब अशुद्ध परिणति है और वह मेरे, यह मिथ्यात्वभाव भी अशुद्ध परिणति-पर्याय है। वह **परिणति के बिना शुद्ध जीवस्वरूप के अनुभवरूप...** अकेला ज्ञानस्वभाव शुद्ध चैतन्य, उसके सन्मुख की शुद्धता के श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति की शुद्ध परिणति के निर्विकल्प परिणाम, वह ज्ञानपरिणति। समझ में आया?

स्वभाव शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसकी अन्तर के सन्मुख के ज्ञान, दर्शन और शान्ति के परिणाम, वह ज्ञानचेतना है। वह आत्मा का अनुभव अर्थात् स्वभाव को अनुसरकर हुए परिणाम हैं, उन्हें यहाँ ज्ञानचेतना अथवा मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? उनसे **'अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव'** यह आत्मा के शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव के अन्तर में सन्मुख की एकाग्रता की पर्याय को ज्ञानचेतना कहते हैं। उस ज्ञानचेतना द्वारा आत्मा शुद्धता को, अतीव शुद्धता को प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया? पहले ज्ञानचेतना साधारण कहा था। अब उस ज्ञानचेतना द्वारा स्थिर होने पर अतीव शुद्धता को प्राप्त करता है। क्रिया एक ही बतायी।

वस्तु को अन्तर्मुख होकर पकड़ा और जो अनुभव और दृष्टि को ज्ञान में हो वह ज्ञानचेतना, उसका नाम ज्ञानचेतना। पठन कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? भगवान ज्ञायक चैतन्य ज्योति सर्वज्ञ सर्वज्ञस्वभाव वस्तु की सन्मुखता के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अर्थात् कि उस ज्ञायकभाव की एकाग्रता के परिणाम को यहाँ ज्ञानचेतना कहा जाता है। उस ज्ञानचेतना में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समाहित हो जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

चौथे गुणस्थान से शुभभाव से मोक्षमार्ग और फिर ज्ञानचेतना से मोक्षमार्ग, ऐसा

नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? पहले से ही वह चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध। श्रद्धा से शुद्ध, ज्ञान में शुद्ध और शान्ति से शुद्ध को लक्ष्य में लेकर जो आत्मद्रव्य की अन्तर एकाग्रता से जो वीतरागदृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता का भाव (प्रगट हुआ), उसे ज्ञायक में एकाग्रता के लिये उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। उस ज्ञानचेतना से क्या होता है?

'अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव' उसके कारण अन्तर स्वरूप में एकाग्र शुद्धता होने पर अतीव शुद्ध, स्थिर होने से ज्ञानचेतना से अतीव शुद्ध केवलज्ञान का प्रकाश होता है। केवलज्ञान कार्य है और इस ज्ञानचेतना से—इस कारण से प्रगट होता है। यहाँ कारण-कार्य सिद्ध किये। समझ में आया? यह कितना लगे अन्दर में? भीखाभाई! कोई दे देता होगा, कहीं से ले लिया जाता हो (तो सरल पड़े)। भगवान के निकट माँगे। हे भगवान! (मुझे दे दो)। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान के सामने देखने से भी शुभराग होता है। वह ज्ञानचेतना नहीं। आहाहा! अब यह क्या होगा?

यह चैतन्यप्रभु आत्मा जो है, उसके सन्मुख के परिणाम हों, उन्हें यहाँ ज्ञानचेतना (कहा जाता है)। जानपना कम-ज्यादा हो, उसका कुछ (नहीं)। नारकी के जीव को ज्ञानचेतना है। सातवें नरक के नारकी को ज्ञानचेतना है। पशु को, तिर्यंच को सम्यग्दृष्टि को भी ज्ञानचेतना है। समझ में आया? अर्थात् कि आत्मा ज्ञानानन्द द्रव्यस्वभाव पूर्ण, उसमें अन्तर्मुख होकर, उसे पकड़कर परिणति शुद्ध वीतरागी अवस्था प्रगट करना, बस! वही ज्ञानचेतना है। उस ज्ञानचेतना से एकाग्र होने पर **'अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव'** आत्मा उसमें एकाग्र होते-होते अतीव अर्थात् पूर्ण केवलज्ञान शुद्ध प्रकाश हो जाता है। लो, यहाँ तो ज्ञानचेतना कारण और केवलज्ञान उसका कार्य, ऐसा यहाँ कहा है। आहाहा! ऐसी बात है परन्तु कौन जाने कैसे क्या होता है? (लोग ऐसा कहते हैं), पुण्य को विष्टा कहते हो, पुण्य को बन्ध का कारण कहते हो। महाव्रत बन्ध का कारण? वह तो (संवत्) १९८५ में सम्प्रदाय में एक बार कहा था कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं है। वहाँ एक व्यक्ति बोला था, दूसरा नहीं बोला था। सभा तो बहुत (बड़ी थी)। एक व्यक्ति बोला, वोसरे... वोसरे... कहकर भागा। अरे! भगवान! भाई! १९८५ के पौष महीने की बात है। न्यालभाई!

अरे... प्रभु! कहते हैं, भाई! एक बात सुन! तेरी पर्याय में वर्तमान अवस्था में शुभ-अशुभ परिणाम का विकार वर्तता है, और वह मेरे ऐसा मिथ्यात्व वर्तता है। अब उसे सम्यक् करना हो तो उसका उपाय क्या? वह चैतन्य वस्तु है, ज्ञायक सम्यक् चैतन्यमूर्ति की सन्मुख के अन्तर में अनुभव, ज्ञान करके प्रतीति करना, उसमें प्रतीति करने से उसमें स्थिरता भी आंशिक इकट्ठी आ जाती है। बस! यह ज्ञानचेतना एक ही मुक्ति का मार्ग है अथवा वह संवर और निर्जरा उसे भगवान कहते हैं। आहाहा! क्या हो? लोगों को ऐसा बेचारों को चढ़ा दिया है कि कहीं पार नहीं आता। हें? भटकने के रास्ते से मोक्ष (होगा, ऐसा कहते हैं)।

यहाँ तो कहते हैं, एक ही बात है। प्रभु आत्मा अपने स्वभाव में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति अर्थात् चारित्र और अनन्त वीर्य आदि पड़े ही हैं। अन्दर शक्तिरूप से तो पूर्ण सत्त्व पड़ा है उसमें, वह महान पदार्थ है। सत्त्व सत् का पूरा सत्त्व महान भाव उसमें पड़ा है। उस अनन्त भाव को दृष्टि पहुँचे, यह ज्ञान उसे ज्ञेय बनावे और उसमें स्थिरता का अंश इकट्ठा साथ में हो, उसे सम्यग्ज्ञान चेतना कहते हैं। वहाँ से उसे धर्म की शुरुआत होती है। समझ में आया? तब से संवर और निर्जरा शुरु होती है। इसके अतिरिक्त संवर, निर्जरा शुरु नहीं होते। आहाहा! और वह आगे बढ़ने पर एकाग्र, एकाग्र, एकाग्र अन्दर, स्व में एकाग्रता की चेतना द्वारा '**अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव**'। '**अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते**' केवलज्ञान का प्रकाश करता है। उसके कारण क्रम-क्रम से केवलज्ञान होता है। दूसरा कोई उपाय तीन काल-तीन लोक में भगवान ने देखा नहीं और भगवान ने कहा नहीं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि कारण सदृश कार्य होता है... क्या कहते हैं? देखो! जो कार्य है, वह शुद्ध केवलज्ञान है, तो यहाँ 'कारण जैसा हो, वैसा उसका कार्य होता है।' शुद्ध कारण हो तो शुद्ध कार्य होता है। 'भगवान आत्मा अपने अन्तर्मुख में एकाग्रता (करे), उसे कारण शुद्धता कहा जाता है। उस कारण सदृश कार्य। वह कारण जैसा शुद्ध है, वैसा कार्य शुद्ध केवलज्ञान का होता है।' समझ में आया? बीच में भले दया, दान, व्रत के भाव आवें, भक्ति, पूजा, यात्रा के भाव आवें, परन्तु वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! वह बीच में कर्मचेतना जरा अस्थिरता की (हो), वह बन्धमार्ग है।

छोटूभाई! रुचे नहीं, सुहावे नहीं, बैठे नहीं और दूसरे प्रकार से किसी प्रकार से हो, (ऐसा नहीं है) दूसरा रास्ता नहीं है।

भाई! तुझमें परिपूर्णता पड़ी है न! तू पूरा-पूरा पड़ ऐसा, पूरा केवलज्ञान को ले, ऐसी सामर्थ्य है। ऐसा भगवान, उसके अन्तरसन्मुख देखने से, उसकी ज्ञान की दशा को अन्तर में झुकाने से जहाँ परिपूर्ण स्वभाव पड़ा है, उसमें झुकान से जो सम्यग्ज्ञान की चेतना सम्यक् शुद्ध प्रगट हुई, बस! वह कारण है। उस कारण सदृश—कारण के जैसा ही कार्य होता है। केवलज्ञान उस कारण के सदृश शुद्ध है तो शुद्ध होता है। कहो, बराबर है?

सौ रुपये का किसने कहा? बात ठीक कहते हैं। (यह प्रश्न) उठा था न। है न। ऐसा कि कारण सदृश कार्य। उस प्रकार का कारण। कम-अधिक प्रश्न हो सकता नहीं। यह बात उठती है। कारण सदृश हो तो ऐसा होगा न? यहाँ कारण हो, ऐसा का ऐसा होगा? यह प्रश्न चला है। समझ में आया? ऐसा नहीं। कारण अर्थात् जो आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की एकाग्रता वह शुद्धता। वह शुद्धता कारण है, उसके जैसी सदृशता, शुद्धता हो। ऐसी ही हो और इतनी हो, ऐसी कहाँ यहाँ बात है। यह प्रश्न चला है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं, कारण सदृश कार्य हो तो सौ का सौ प्रतिशत (का होना चाहिए), सौ प्रतिशत शुद्ध तो सौ प्रतिशत (होना चाहिए)। ऐसा कहाँ है? यह शुद्धता का कारण और इससे शुद्धता का कार्य (हो), इतनी बात है। शुद्धता इतनी उसका कार्य शुद्धता पूर्ण, ऐसा यहाँ है नहीं। अशुद्धता पुण्य-पाप हो और उसके कारणरूप से होकर शुद्धता का कार्य हो, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

कारण सदृश कार्य होता है, इसलिए शुद्ध ज्ञान का अनुभव करने पर... देखो! **शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है...** इतनी बात है। आत्मा चैतन्य भगवान की अन्तर की एकाग्रता जो शुद्धता है, ऐसे शुद्ध ज्ञान को अनुभव करने पर वह शुद्ध ज्ञान की पर्याय अनुभव करने पर **शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है ऐसा घटित होता है,...** ऐसा घटित होता है। आहाहा! समझ में आया? 'तारे वह तिरे', एक बार नहीं कहा था? (संवत्) १९८२ के

वर्ष में वढवाण में चातुर्मास था न? एक व्यक्ति आया। वकील है न? 'रोकडिया सुखलाल' वकील थे। पोपटभाई ने लिखा, 'तिरे वह तारे'। १९८२ में चौका लिखा हुआ। उसे चालीस वर्ष होने को आये। तिरे, वह तारे। वढवाण में सुन्दरवोरा के उपाश्रय में। तब उस वकील ने आकर कहा, ऐसा नहीं। तारे वह तिरे, ऐसा करो। कहा, किसे खोजने जाना? न्यालभाई! किसे खोजना? भाईसाहब तिरे तो मैं तिर सकूँ। तिरे वह तारे, यह भी निमित्त का वाक्य है। स्वयं तिरे तब तिरनेवाला हो, उसे वह निमित्त कहा जाता है। बाकी तिरावे कौन किसे? यह प्रश्न वहाँ से उठा था, 'तिन्नाणं तारयाणं' आता है न? यह सब किया है न, छोटी उम्र से उसने तो किया है।

'तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाण, मुत्ताणं, मोअगाणं' आता है न नमोत्थुणं में? यह 'तिन्नाणं तारयाणं' में से, तिरे वह तारे—ऐसा उसका अर्थ है न? 'तिन्नाणं तारयाणं'। इस प्रकार पोपटभाई ने लिखा था। तो कहे, नहीं। तारे वह तिरे। (हमने) कहा, कितनों को खोजने जाना? भाईसाहेब! तिर, मुझे मुक्ति में जाना है, नहीं तो मुक्ति नहीं होगी। कहो, नेमिदासभाई! क्या करना? कहो अब। पैसा दान में देना हो तो पैसा खोजना पड़े। इसका क्या करना अब? ऐसा नहीं। कोई तिरे, न तिरे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। भाषा कथनशैली हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। और कहने का विकल्प हो, उसके साथ मुक्तिमार्ग को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पर तिरे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, वाणी कहे तो बहुत वाणी प्ररूपणा करे, इसलिए वह झट तिर जाये, ऐसा नहीं है। वह उपदेश तो जड़ की क्रिया है और उपदेश का विकल्प उठे, इसलिए पहले तिर जाये, ऐसा होगा? वह तो राग है। आहाहा! चैतन्य भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति की अन्तर की अनुभव की दृष्टि, अन्तर की एकाग्रता शुद्धता, वह ही मुक्ति का कारण है। दूसरा कोई तीन काल में कारण है नहीं। कैसे होगा, सोगनचन्दजी! धूल में भी तिराता नहीं। वह तो अपने आप तिरता है। कौन तिरावे? समझ में आया?

अरे! केवली, केवली हो गये। मूककेवली, जिन्हें वाणी नहीं थी, लो! सुना है? वाणी हो, न हो, वह तो जड़ की बात है। उसे आत्मा (के साथ) क्या सम्बन्ध है? मूककेवली। वाणी नहीं होती। अन्दर में एकाग्र होकर केवल (ज्ञान) हो गया। वाणी नहीं होती। जाओ! उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

भगवान आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति, बस! उसका अन्तर में स्वभावसन्मुख का अनुभव, वही मुक्ति का कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है। संवर, निर्जरा का एक ही कारण है। समझ में आया? उपदेश दे, उसमें निर्जरा होती होगी, ऐसा होगा? तीन काल में धर्म होगा नहीं, उपदेश से क्या धूल होगा? दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता, निमित्त अकिंचित्कर है, यह प्रश्न (उठता है)। लाख बार नहीं, अनन्त बार। सुन न अब। पर कर देता था उसमें आत्मा को? यह विकल्प उठे, वह भी अन्दर ज्ञानचेतना को मदद(कर्ता) नहीं तो वाणी-फाणी कहाँ आयी? आहाहा! ऐसा परमात्मा जिसे अवलम्बन में वर्तता है।'अवलम्बति' कहीं आता है न? आयेगा। निष्कर्म अवलम्बे, आता है न? अलम्बे, एक ही अवलम्बन है। यही यहाँ कहते हैं। समझ में आया? जिसमें देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन नहीं, प्रतिमा का अवलम्बन नहीं, मन्दिर का नहीं, यात्रा का कोई अवलम्बन नहीं, लो! वह तो शुभराग हो तब वहाँ लक्ष्य जाता है, इतनी बात है, इससे आगे बढ़कर कोई कहे कि वहाँ संवर, निर्जरा हो जाये (तो) इस बात में कुछ जरा भी दम नहीं है। ऐई! आपे में थे या नहीं? थे न? वहाँ मोटर रखी थी, वहाँ कानपुर में उतरे थे। कानपुर नहीं? समझ में आया?

ऐसा ही है.... ऐसा ही है निश्चय से। ऐसा कहते हैं, देखो? '**एव**' कहा न? '**एव**'। ऐसा ही है अर्थात् कि निश्चय से ऐसा ही है। आत्मवस्तु की अन्तर की अनुभव की एकाग्रता, बस! एक ही शुद्धता का कारण, संवर-निर्जरा का कारण और मुक्ति का कारण है। बाकी सब बातें हैं। न्यालभाई! आहाहा! श्रीमद् में एक वाक्य आता है, एक जीव को भी तारे तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा एक वाक्य आता है। उसमें आता है। परन्तु उसका अर्थ कि विकल्प उठता है और सामने समझे तो वह विकल्प है, उससे बन्धन होगा, ऐसा कहते हैं। ऐसा शब्द है। वह विकल्प अबन्ध परिणाम है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? वह भी उसे दृष्टि अन्तर में पड़ी है, शुद्ध का परिणमन है, ऐसा विकल्प आया तो कहते हैं कि उसे बन्ध है। ऐसा कहते हैं। वह प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! समझ में आया? ऐसा एक वाक्य है। शास्त्र में। ३२-३३ (वर्ष में) है। एक जीव को भी सच्ची समझ हो और बोध हो तो तीर्थंकगोत्र बाँधे। अर्थात् ऐसा कहा कि, वह विकल्प उठता है। इसलिए उसे बन्ध होता है, उससे निर्जरा नहीं होती। तीर्थंकरपना

बन्ध है न? वहाँ कहाँ संवर, निर्जरा थी। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वह मोक्ष का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मोक्ष का कारण धूल में भी नहीं। प्रकृति मोक्ष का कारण होगी? विकल्प उठता है, वह तो आता है, उसका कारण वह रागरहित दृष्टि, ज्ञान किये हैं, वह क्रम से राग को तोड़कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। प्रकृति वहाँ निमित्त कहलाती है, निमित्त कहलाती है, वस्तु कहाँ थी उसमें? अरे! आहाहा! एकान्त है, एकान्त है। यहाँ एकान्त थम, एकान्त थम—ऐसा कहते हैं।

यह एक बात की। देखा? '**एव**' शब्द पड़ा है न? '**ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम्।**' अब इससे विरुद्ध (कहते हैं)। '**अज्ञानसञ्चेतनया बन्धः धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि**' अब अज्ञानचेतना की व्याख्या (कहते हैं)। अज्ञान अर्थात् क्या? अज्ञान अर्थात् कि राग-द्वेष, मोहरूप परिणाम कि जिसमें ज्ञान के चैतन्य का प्रकाश नहीं। पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप विकल्प आदि जो भाव, वे सब राग और द्वेष के विकल्प हैं। और मोह—इससे मुझे लाभ होता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। यह कर्ता की व्याख्या की। समझ में आया? शुभ-अशुभराग और द्वेष और मोह। अशुद्ध परिणति को यहाँ अज्ञानचेतना कहा।

अज्ञान अर्थात् वस्तु के स्वभाव के भान बिना की जो अशुद्ध राग-द्वेष और मोह की अवस्था, उसे यहाँ अज्ञानचेतना (कहते हैं)। अर्थात् कि जिसमें ज्ञान नहीं, उसमें एकाग्र हो गया है। पुण्य परिणाम में ज्ञान है? समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प, उपदेश का विकल्प, उस विकल्प में ज्ञान है? पवित्र कौन? वह तो आत्मा का मूल (स्वरूप) पवित्र। यह तो एक अशुभ टाले, इस अपेक्षा से। पवित्र कब था? व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया?

'**अज्ञानसञ्चेतनया**' अब यहाँ तो कहते हैं, देखो न! अज्ञान अर्थात् भगवान आत्मा से विरुद्ध, पुण्य और पाप के विकल्प, शुभ-अशुभभाव और यह मुझे लाभदायक है, ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह कर्ता के, अज्ञान के परिणाम हैं, उसे कर्मचेतना कहा। **तथा सुख-दुःखादिरूप जीव की अशुद्ध...** सुख-दुःख, उसे कर्मफलचेतना कहा। दोनों

चेतना को अज्ञानचेतना कहते हैं। शुभ-अशुभ विकल्प, वह कर्तव्य है, वह मेरा है, ऐसा मिथ्यात्वभावसहित का राग-द्वेषभाव और सुख-दु:ख (होना), उसमें हर्ष आना, हर्ष... ओहो! हमने ठीक किया, ठीक किया। शुभभाव ठीक किया। ऐसा हर्ष। और अशुभभाव में अठीक अथवा प्रतिकूल में द्वेष (होना) ऐसा सुख-दु:ख आदिरूप रति-अरति आदि के परिणाम (होते हैं), वह कर्मफलचेतना हुई। कर्मफल अर्थात् कर्म जड़ की यहाँ बात नहीं है। पुण्य और पाप का कार्य, उसका फल हर्ष और शोक। उसी समय कर्ता और उसी समय भोक्ता। उसे यहाँ अज्ञानचेतना के दो प्रकार कहा जाता है। ओहोहो! समझ में आया?

यह **जीव की अशुद्ध परिणति...** है। यह आत्मा की मलिन, निर्मल को रोकनेवाली विकारी पर्याय है। समझ में आया? उसके द्वारा, उसके द्वारा क्या होता है? उसमें भी उसके द्वारा आया था न? '**बन्धः धावन्**' यह पुण्य और पाप के विकल्प और यह मेरे और इनमें लाभ, ऐसा मिथ्यात्वभाव और सुख-दु:ख के परिणाम, वह मुझे मजा है, ऐसा जो भाव, उससे '**बन्धः धावन्**' आठ कर्म का बन्ध दौड़ता है। अर्थात् आठ कर्म बँधते हैं। समझ में आया? **ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध अवश्य होता हुआ...** अवश्य उसे आठ कर्म बँधते हैं। दर्शनमोह भी उसे बँधता है। शुभभाव में मुझे लाभ होता है, ऐसी मान्यतासहित की अशुद्ध अज्ञानचेतना से '**बन्धः धावन्**' बन्ध पड़ता है।

यहाँ सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा में वह बन्ध नहीं, यह बात नहीं है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञानचेतना है, इस अपेक्षा से कर्मफलचेतना वस्तु की एक दृष्टि से नहीं है। गौण है। इसलिए उसे बन्धन है ही नहीं इस अपेक्षा से। अन्तर एकाग्रता की मुख्यता और प्रधानता करने से ज्ञानी को अकेली ज्ञानचेतना ही है। जरा पुण्य के परिणाम हों, वे उसे बन्ध का कारण हैं। ज्ञानी को उपदेश के विकल्प में आवे, वह बन्ध का कारण है, वह आत्मा की निर्जरा का कारण नहीं है। समझ में आया?

वह '**बन्धः धावन्**' **ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध अवश्य होता हुआ...** उसमें ऐसा कहा था न? कि '**अतीव शुद्धम्**' होता ज्ञान प्रकाशित होता है। यहाँ कर्मबन्ध अवश्य होता है। '**बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि**' उसमें केवलज्ञान अर्थात् **ज्ञान की शुद्धता को**

रोकता है। पुण्य और पाप के विकल्प वे कर्तृत्वबुद्धि की कर्मचेतना; हर्ष-शोक का भोगना, वह कर्मफलचेतना। उससे आठ कर्म बँधते हैं। भगवान आत्मा केवलज्ञानरूपी प्रभु में रुककर उसका केवलज्ञान **'निरुणद्धि'** हो जाता है। ज्ञान का प्रकाशना होता नहीं। स्वरूप का प्रकाशना होता नहीं और उसे केवलज्ञान होता नहीं। यहाँ तो अकेला ज्ञान जो प्रगट होना चाहिए, चिदानन्द भगवान ज्ञाता-दृष्टारूप से (होना चाहिए), राग और द्वेष के सुख-दु:ख के कर्मफलचेतना और कर्मचेतना से ज्ञानप्रकाश प्रगट नहीं होता। समझ में आया? उसे केवलज्ञान **शुद्धता को रोकता है।**

अज्ञानी को पूर्ण अशुद्धता है, ज्ञानी को थोड़ी गौणरूप से अशुद्धता है उतनी भी केवलज्ञान होने को रोकता है। समझ में आया? उसे ख्याल है या नहीं कि यहाँ मेरे पास निर्मलता थोड़ी है। राग होता है या नहीं? समझ में आया या नहीं? राग होता है या नहीं? परन्तु उसकी मुख्यता ज्ञायक के ऊपर है, इसलिए राग को यहाँ गौण गिना है। परन्तु राग है, उतना ज्ञानी को बन्ध का कारण है। यह बात पुण्य-पाप अधिकार में आ गयी है। समझ में आया? आहाहा!

अकेला आत्मा शुद्ध चैतन्य को अवलम्बकर होती परिणति एक ही मुक्ति का कारण है। ज्ञानी को जरा रागादि आवे, वे भी बन्ध का ही कारण है, आत्मा को शुद्धता का कारण बिल्कुल नहीं है। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई! लोगों को रुचना (कठिन है)। रागियों के रस के रागी को, राग के रागी को यह बात (कठिन लगती है)। वस्तु स्वभाव से विरुद्ध कर्मचेतना, कर्मफलचेतना से बन्ध ही होता है। अज्ञानी को पूरा ज्ञान रुक जाता है। ज्ञानी को इतने परिणाम जरा मिथ्यात्व बिना के होते हैं, उसे केवलज्ञान रुक जाता है। समझ में आया?

भावार्थ बहुत संक्षिप्त। इस प्रकार **ज्ञानचेतना मोक्ष का मार्ग...** भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य में अन्तर एकाग्रता (होना), उस वस्तु में अन्तर की एकाग्रता का ध्यान (होना) वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया? कितने ही कहते हैं न? भले हमारा मोक्ष देरी हो, परन्तु यदि दुनिया को हम से लाभ होता हो तो भले दो भव करेंगे। परोपकार? भले हमारा एक देह बढ़े। एक देह नहीं, तेरे अनन्त देह बढ़ते हैं।

सुन न! जिसे राग की भावना है और उस भावना द्वारा पर को लाभ होगा, यह मिथ्यात्वभाव है। लोगों को भी कैसा अच्छा लगे! सभा बड़ी पचास हजार (लोगों की) इकट्ठी हुई हो। अरे! भाई! हमारे कदाचित् एक अवतार लेना पड़े, दो भव करना पड़े, परन्तु जगत का कल्याण होता हो तो हमारे भव बेहतर हैं। कैसा अच्छा लगे! ऐ... न्यालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे आचार्य कहलाते ही नहीं, कहते हैं। यह सच्ची बात है। अवसर पर रखा देखा इसने? भाई! श्रीमद् ने ऐसा कहा है न? .... भले हमारे जरा ... लोगों का कल्याण करके... धूल का भी नहीं। ठीक! बराबर अवसर पर किया, हों! यह बात ही खोटी है। ख्याल है, यह पढ़ते-पढ़ते भी ख्याल था। यदि दूसरे का हम से कल्याण हो, जैनधर्म का उद्धार हो तो हमारा कल्याण (भले) आगे (देरी से) हो। यह वस्तु ही खोटी है। समझ में आया? पर का कल्याण तो उसकी योग्यता होगी, तब होगा। उसमें दूसरा कर दे कि मैं यहाँ रुककर उसे कर दूँ, मैं मेरी स्थिरता में से भले मुझे ऐसा भाव आवे और दूसरे का थोड़ा कल्याण हो जाये, यह बात ही झूठी है। आहाहा! ऐई! भीखाभाई! एक बात आयी थी कि बड़ी सभा में एक व्यक्ति (बोलता था), हमारे दूसरे भव करने पड़े, परन्तु लोगों के कल्याण के लिये भले अवतार लेना पड़े। अरे! भाई! परन्तु तू कल्याण किसे कहता है? यह दाल, भात, रोटियाँ मिलना इसे? यह क्या तुझसे मिलते थे? यह तो उसके पूर्व का पुण्य हो तो उसके पास आते हैं। तू दे देता था किसी को? आहाहा! भारी कठिन बात! और हमारे एकाध-दो भव भले हो, परन्तु लोगों का कल्याण (करना है)। मूढ़ है। भव का भाव राग, उसकी ऐसी भावना मिथ्यादृष्टि की होती है। समझ में आया? आहाहा! जगत के साथ मिलान करना भारी कठिन। और दुनिया के कल्याण का काल होगा, तब होता होगा या आड़ा-टेढ़ा होता होगा? समझ में आया? इससे वहाँ होता होगा? तीर्थंकर की वाणी के काल में वाणी के कारण वहाँ लाभ हुआ होगा? जिसका आत्मा पात्र था और उसने जहाँ ऐसा सुना, अन्तर में जहाँ देखा वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ। तब उस वाणी को निमित्त कहा जाता है। वाणी करती हो तो भगवान के पास अनन्त बार गया था। आहाहा!

चाहे जो हो नहीं। उसके काल में उसकी परिणति के काल में, उसके कार्यकाल में निमित्त होता है, बस! परन्तु निमित्त कब कहलाता है? कि उसने कार्य किया, तब निमित्त का आरोप दिया जाता है। निमित्त है, इसलिए कार्य होता है? ऐसा व्यवस्थित नहीं आया बराबर। कहो, समझ में आया इसमें? निमित्त की व्याख्या इतनी है कि जिस जीव का कार्यकाल है, तब सामने वह चीज़ है, उसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त ने इसका कार्यकाल उपजाया है या कार्यकाल किया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? छोटाभाई!

जिस गुण का जिस पर्याय का उसका कार्य है अर्थात् वही काल, कार्य है। समय-समय की पर्याय प्रवाह बहती है या नहीं? अखण्ड धाराप्रवाह। उसमें जो काल जिस गुण का कार्यकाल है, तब जो अनुकूल निमित्त कहलावे, उसे निमित्त का आरोप दिया जाता है। बस! निमित्त आया, इसलिए इसमें यह कार्य हुआ, यह वस्तु में तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! भारी जगत को कठिन (पड़े), उसे ऐसा हो जाये कि कोई आकर तिरा दे न! मुझे तिरने के लिये अन्दर में जाना पड़े, ऐसा नहीं। कोई उछलकर तिराये। भगवान जन्मे तब तिर गये। तिरे, वे क्या भगवान के कारण तिरे होंगे? भगवान तो सब लाखों, करोड़ों सब में आवाज आयी थी। दिव्यध्वनि थी। समवसरण में प्रविष्ट किये हुए वापस मुड़े हैं, ऐसे के ऐसे धोये हुए मूला जैसे मिथ्यादृष्टि, लो!

एक साधु था। महावीर भगवान (की) मश्करी। पहले का साधु था। उसे ऐसा कि मुझे गणधरपद मिलेगा। वहाँ गणधरपद मिला गौतम को। वहाँ नहीं बोला, बाहर निकलकर कहे, यह सर्वज्ञ नहीं। सर्वज्ञ हो तो ऐसा बने? परन्तु तेरे कारण से है या उसके कारण से? सुन न! न्यालभाई! आहाहा!

बन्ध अधिकार में नहीं लिया? उसके परिणाम से तिरे, वह तेरा अध्यवसाय हो या न हो, वह तो उसके परिणाम से तिरता है। तू अध्यवसाय ऐसा करे कि मैं इसे तिरा दूँ और मैं इसे डुबा दूँ। वह उसके सराग के परिणाम बिना तेरा अध्यवसाय हो कि मैं इसे डुबोयूँ तो भी डूबेगा नहीं। और उसके वीतराग परिणाम बिना तू अध्यवसाय करे

कि मैं इसे तिरायूँ। तो तेरे अध्यवसाय एक ओर पड़े रहेंगे और वीतराग परिणाम से वह तिर जायेगा। समझ में आया ? यह तो पाठ स्पष्ट, परन्तु वस्तु की स्थिति ऐसी है। दूसरे को बन्ध और मोक्ष कर दूँ, इसका अर्थ क्या ?

मुमुक्षु : किसी अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी अपेक्षा और ? ऐई ! वे एक कहते हैं न ? दूसरी अपेक्षा है ही नहीं, एक ही अपेक्षा है। जो कोई एकत्वबुद्धि से विकल्प उठावे कि मैं दूसरे को बँधाऊँ, डुबायूँ, ऐसे उसे नरक में डाल दूँ, इससे उसके मिथ्यात्व के राग के, मिथ्यात्वरूपी राग, उसके परिणाम बिना नरक में जायेगा या डूबेगा ? तू विकल्प करे कि इसे तिरा दूँ। तेरा विकल्प वहाँ कार्यगत होगा नहीं। उसके वीतराग परिणाम से तिरेगा, तू विकल्प न करे तो भी तिरेगा। और तेरा विकल्प हो तो भी उसके वीतरागभाव से तिरेगा।

मुमुक्षु : आपका शास्त्र बहुत स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तो वस्तु का है न ? आत्मा का यह शास्त्र है। शास्त्र कहाँ किसी का है ? समझ में आया ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि तू मोक्ष का मार्ग उसे वह प्राप्त वीतरागभाव से करेगा, तब उसकी मुक्ति होगी। तेरे परिणाम की भावना से वहाँ वीतरागभाव होगा ? समझ में आया ? आहाहा ! यह वीतरागमार्ग ही ऐसा होता है, दूसरा मार्ग ऐसा होता नहीं। आहाहा !

कहते हैं, ज्ञानचेतना वह मोक्ष का मार्ग। यह तो क्या कहा ? कि कहीं बीच में ऐसा विकल्प आवे और दूसरे को समझाने का हो और अमुक हो और उसमें कुछ पर को लाभ हो और उसमें से आत्मा को कुछ लाभ हो, (ऐसा मानता है)। ऐ... न्यालभाई ! बहुत समझे उसका लाभ होगा या नहीं ? थोड़ा पाथेय मिलेगा या नहीं ? उठने के बाद पाथेय नहीं देते थे ? तुमको खबर है ? तुम गाँव के सेठ थे। कुछ बाधा (नियम) लो, व्रत लो तो यह भाता लिया कहलाता है। गजब ! अरे ! मिथ्या भ्रम ने मार दिया है न ? गोपालदासभाई ! समझ में आया ?

ज्ञानचेतना मोक्ष का मार्ग है। यहाँ तो क्या कहना है ? कि शुद्ध चैतन्य में एकाग्र होना, एक ही मोक्ष का मार्ग है। वे विकल्प उठें और ऐसा हो और उसके कारण ऐसा

हो। हराम बात हो तो। आहाहा! यह अनेकान्त—ज्ञानचेतना से मोक्षमार्ग होता है और राग से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त। समझ में आया? पर तिरे तो आत्मा को मोक्ष हो और पर न तिरे तो आत्मा को मोक्ष न हो, यह अनेकान्त नहीं है। मेरे भाव से मेरी मुक्ति होगी, पर तिरे या न तिरे, उसके साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! कैसे होगा शुकनचन्दजी? थोड़ा रुकना या नहीं किसी के लिये?

ज्ञानचेतना, वह मोक्ष का मार्ग। आहाहा! भगवान! वह तू तुझमें स्थिर हो, एक ही बात! मोक्ष का मार्ग। बाकी बीच में जितने विकल्प उठें, वे सब बन्ध के कारण हैं। यह अज्ञानचेतन संसार का मार्ग, ले। आहाहा! शुभभाव या अशुभभाव, वे चैतन्य के प्रकाश के घातरूप भाव हैं। आहाहा! यह अज्ञानचेतना वह संसार का मार्ग है। दो के अतिरिक्त कोई तीसरी रीति नहीं है। भगवान वीतरागमार्ग में और वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? लो, यह ३२ श्लोक पूरा हुआ। अब ३३। नौ-नौ कोटि आयी न, इसलिए ३३ आया। मन, वचन और काया आते हैं न? करे, करावे, अनुमोदे, यह आता है। आहाहा! एक श्लोक में तो कितना भरा है। एक-एक श्लोक में पूरा समाहित कर दिया है। ऐसी कोई आचार्य की पद्धति है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? परन्तु कोई दूसरा साधन-फाधन होगा या नहीं? एक ही यह मार्ग? दूसरा कोई उसका साधन? यह प्रश्न (करता था)। साधन कहो तो यह और वह का वह है, ले। कषाय की मन्दता को साधन कहा, वह तो व्यवहारनय से अभूतार्थनय से कहा है। अर्थात् कि है नहीं। है नहीं, उसे कहना, यह व्यवहारनय के लक्षण हैं। समझ में आया? 'एक ही भगवान शुद्ध चैतन्य की वज्र की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसमें एकाग्रता (होना) वही मुक्ति का मार्ग; रागादि में एकाग्रता वह बन्ध का मार्ग। दो के अतिरिक्त तीसरी बात है नहीं।'

कलश - २२५

(आर्या)

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ।।३३–२२५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—कर्मचेतनारूप (और) कर्मफलचेतनारूप है जो अशुद्धपरिणति, उसे मिटाने का अभ्यास करता है—'परमं नैष्कर्म्यं अवलम्बे' मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ; सकल कर्म की उपाधि से रहित—ऐसा मेरा स्वरूप, मुझे स्वानुभव प्रत्यक्ष से आस्वाद में आता है। क्या विचार कर? 'सर्वं कर्म परिहृत्य' जितना द्रव्यकर्म–भावकर्म–नोकर्म, उन समस्त का स्वामित्व छोड़कर। अशुद्धपरिणति का विवरण—'त्रिकालविषयं' एक अशुद्धपरिणति, अतीत काल के विकल्परूप है; जो मैं ऐसा किया—ऐसा भोगा, इत्यादिरूप है। एक अशुद्धपरिणति, आगामी काल के विषयरूप है; जो ऐसा करूँगा—ऐसा करने से ऐसा होगा, इत्यादिरूप है। एक अशुद्धपरिणति, वर्तमान विषयरूप है; जो मैं देव, मैं राजा, मेरे ऐसी सामग्री, मुझे ऐसा सुख अथवा दुःख, इत्यादिरूप है। एक ऐसा भी विकल्प है कि 'कृतकारितानुमननैः' [कृत] जो कुछ आपकी है हिंसादि क्रिया; [कारित] जो अन्य जीव को उपदेश देकर करवाई हो; [अनुमननैः] जो किसी ने सहज ही की हुई क्रिया से सुख मानना। तथा एक ऐसा भी विकल्प है, जो 'मनोवचनकायैः' मन से चिन्तवन करना, वचन से बोलना, शरीर से प्रत्यक्ष करना। ऐसे विकल्पों को परस्पर फैलानेपर, उनचास (४९) भेद होते हैं, वे समस्त जीव का स्वरूप नहीं हैं; पुद्गलकर्म के उदय से होते हैं।।३३–२२५।।

कलश - २२५ पर प्रवचन

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ।।३३–२२५।।

कर्मचेतनारूप तथा कर्मफलचेतनारूप है जो अशुद्ध परिणति, उसे मिटाने का अभ्यास करता है:—धर्मी, कर्मचेतना अर्थात् पुण्य-पाप के भाव का कर्तृत्व।

कर्मफलचेतना अर्थात् पुण्य-पाप में हर्ष और शोक का भाव। हर्ष-शोक का भाव। ऐसी जो अशुद्धदशा, वह अशुद्धदशा—अशुद्धपर्याय, उसे मिटाने का उपाय अभ्यास होता है। उसे रखना नहीं होता। '**परमं नैष्कर्म्यं अवलम्बे**' देखो! अब यह अभ्यास क्या कहते हैं? '**परमं नैष्कर्म्यं अवलम्बे' मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ।** यह उसका अवलम्बन। मैं शुद्ध चैतन्य। निष्कर्म है न? परम निष्कर्म। पुण्य-पाप विकल्प बिना का अकेला निष्कर्म चैतन्य। **शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ। सकल कर्म की उपाधि से रहित...** रागादि कर्म से रहित, ऐसा मेरा स्वरूप, **ऐसा मेरा स्वरूप मुझे... 'अवलम्बे'** अवलम्बे की व्याख्या की। **मुझे स्वानुभव प्रत्यक्ष से आस्वाद में आता है।** यह '**अवलम्बे**' की व्याख्या। आहाहा! समझ में आया?

पश्चात् यह मूर्ति का और शरीर का अवलम्बन कब आयेगा? उन दो को विवाद है। वह कहे अवलम्बन होता है, और वह कहे, अवलम्बन नहीं होता। यह तो बीच में शुभराग होता है। इसलिए उसे व्यवहार अवलम्बन कहा जाता है। उसका निषेध करते हैं कि ऐसा व्यवहार हो ही नहीं, यह खोटी बात है। परन्तु उस व्यवहार से निश्चय अन्दर अकर्म अवस्था प्राप्त होती है, यह खोटी बात है। अरे... अरे..! समझ में आया? दोनों को विवाद है न? भगवान का अवलम्बन क्या? कुन्दकुन्दाचार्य ने निश्चय से तो यह स्तुति कही है। परन्तु व्यवहार बीच में विकल्प आता है, उसका ज्ञान करने के लिये बात की है। ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। तथापि वह बन्ध का कारण है; वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में पूर्ण न हो, तब तक ऐसे भाव होते हैं। उनका यदि स्वीकार न करे तो वह व्यवहार को मानता नहीं। इतना। व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा प्रश्न नहीं है। समझ में आया? व्यवहार है नहीं, ऐसा माने, तब तो तीर्थ का नाश होता है। विकल्प, गुणभेद की पर्यायें सब हैं। और उसके साथ निश्चय पूरा तत्त्व अखण्ड है, उसके आश्रय से ज्ञान होता है, उसकी तो इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**परमं नैष्कर्म्यं अवलम्बे**' धर्मी जीव—सम्यग्दृष्टि जीव। **मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ।** ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव स्तम्भ। चैतन्य का ध्रुव स्तम्भ भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु, चैतन्य वस्तु। **सकल कर्म की उपाधि से रहित...** यह निष्कर्म की व्याख्या की।

सकल कर्म की उपाधि से रहित... परम का अर्थ शुद्ध चैतन्यस्वरूप किया। निष्कर्म का अर्थ सकल कर्मोपाधि रहित किया। अब अवलम्बन का अर्थ। एक-एक शब्द का अर्थ है। **ऐसा मेरा स्वरूप...** ऐसा मेरा स्वरूप। पुण्य-पाप के राग और कर्म बिना का और पूर्ण चैतन्य शुद्धस्वरूप अस्ति, विकल्प के राग के कर्म से नास्ति, ऐसा मेरा स्वरूप। अस्ति-नास्ति करके अनेकान्त किया। **ऐसा मेरा स्वरूप मुझे स्वानुभव...** मुझे अवलम्बन में आया है। अवलम्बन का अर्थ मुझे वह ज्ञान में प्रत्यक्ष अनुभव में—आस्वाद में आता है। उस आनन्द का स्वाद आवे, उसने आत्मा का अवलम्बन किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! भाषा देखो! समझ में आया? आत्मा का अवलम्बन किया अर्थात्? आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दमूर्ति को अवलम्बन किया अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान के आनन्द का स्वाद (आवे), उसने आत्मा का अवलम्बन किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अवलम्बन तो कथनमात्र रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कथन कहाँ रहा? उसी का अवलम्बन किया, वही अवलम्बन किया कहलाता है। आस्वाद आया, वह अवलम्बन किया कहलाता है, ऐसा। कथनमात्र कहाँ है? अवलम्बन की वस्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप ध्रुव। वह विकल्प और कर्म से रहित वस्तु। उसका अवलम्बन अर्थात् कि उसका प्रत्यक्ष अनुभव का आस्वाद (आवे), उसका नाम ही अवलम्बन है। अवलम्बन अर्थात् कथनमात्र, ऐसा नहीं है। स्वसंवेदन, इसका नाम ही अवलम्बन है। निश्चय से उसे अवलम्बन किया अर्थात् कि उस द्रव्य के एकाग्रता के अनुभव में यही अवलम्बन रहा, राग का अवलम्बन छूट गया। समझ में आया? आहाहा! वस्तु की स्थिति ही इसमें वर्णन की है।

यह अवलम्बन करता हूँ, इसका अर्थ क्या हुआ? यह आत्मा शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द राग और कर्म रहित का अवलम्बन करता हूँ अर्थात् क्या हुआ? उसके सन्मुख की प्रत्यक्ष आनन्द के वेदन में आया अर्थात् अवलम्बन करता हूँ, ऐसा यह हुआ। समझ में आया? आहाहा! वकालत से यह सब दूसरा प्रकार है। यह तो कहते हैं, अवलम्बन मुफ्त में गया।

मुमुक्षु : .... प्रत्यक्ष हो गया फिर अवलम्बन क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यही अवलम्बन है। अवलम्बन की व्याख्या। यह चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दकन्द राग और कर्म बिना का। उसका अवलम्बन लेना अर्थात् कि उसमें एकाग्रता का आनन्द का वेदन (आना), उसका नाम अवलम्बन, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा मेरा स्वरूप.... ऐसा मेरा भगवान चैतन्यस्वरूप **मुझे स्वानुभव...** उसे अनुसरकर, अवलम्बकर जो आनन्द प्रगट हुआ, वह स्वसन्मुख से प्रत्यक्ष, ज्ञान ज्ञान को स्वसंवेदन में वेदन करे, उसने आत्मा का अवलम्बन किया ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वापस शब्द कितने लिये हैं? कि **ऐसा मेरा स्वरूप...** क्यों(कि) मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप अस्ति, सकल कर्म की नास्ति। **ऐसा मेरा स्वरूप मुझे...** मुझे **स्वानुभव...** अर्थात् कि अवलम्बन अर्थात् कि उसका अवलम्बन हुआ कि स्वअनुभव हुआ। यह ज्ञानानन्द हूँ, ऐसा अनुभव (हुआ), वह भी प्रत्यक्ष हुआ। राग के अवलम्बन बिना अकेले ज्ञान का अवलम्बन ज्ञान से हुआ, ऐसे प्रत्यक्ष में आस्वाद अर्थात् शान्ति का आस्वाद आता है। उसने भगवान आत्मा का अवलम्बन किया। आहाहा! उस वस्तु में एकाग्र हुआ, उसने आत्मा का अवलम्बन किया। राग में एकाग्र हुआ, उसने विकार का अवलम्बन किया। समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रमबद्धपने में आ जाये तो समझ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इस प्रकार से चौथे में समझ जाये। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु... वस्तु... वस्तु है। उस वस्तु का स्वभाव अवलम्बन किया कब कहलाये? वह वस्तु स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति, यह अस्ति हुई। अकेला ज्ञायकभाव। साथ में समझाया कि पुण्य-पाप के विकल्प और कर्म से वह वस्तु रहित है। वह यही है और उनसे रहित है, ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई तो प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मेरा स्वरूप मुझे... भाषा देखो! मेरा स्वरूप मुझे, मुझे मेरा स्वरूप। राग मेरा स्वरूप नहीं, शुद्ध चैतन्य ज्ञायक मेरा स्वरूप मुझे। मेरा मुझे। मेरे ज्ञान के अनुभव में प्रत्यक्ष अर्थात् उस वस्तु को अवलम्बकर हुआ भाव, वह प्रत्यक्षरूप से उस आनन्द का

स्वाद (आवे), उसे यहाँ आत्मा का अवलम्बन कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा जो अवलम्बन वर्तता है, शुभ-अशुभराग या निमित्त के अवलम्बन में दु:ख का वेदन, दु:ख का वेदन है। उसमें प्रत्यक्षपना नहीं। दु:ख का वेदन है। प्रत्यक्षपना... दु:ख का वेदना वह भी प्रत्यक्ष, यह चीज़ है, ऐसा उसे ज्ञान नहीं होता। राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव को दु:खरूप से वेदे, उसे यहाँ अज्ञानचेतना और उसे मिथ्यादृष्टि की कर्मचेतना और कर्मफलचेतना कही। उसे फिर से भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु पर दृष्टि जाने से शुद्ध चैतन्य वस्तु। रागरहित वस्तु की दृष्टि जाने पर प्रत्यक्ष अर्थात् राग का अवलम्बन रहा नहीं, स्वभाव का अवलम्बन हुआ अर्थात् प्रत्यक्ष हो गया, स्वअनुभव हुआ और उसके साथ जो राग-द्वेष का वेदन परावलम्बी में था, वहाँ आत्मा की शान्ति का वेदन आया। उसे आत्मा का अवलम्बन वास्तविक, यथार्थरूप से उसे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

क्या विचार कर? 'सर्वं कर्म परिहृत्य' जितना द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म है... वह तो स्वरूप बताया था कि स्वरूप स्वयं शुद्ध चैतन्यवस्तु है और कर्म आदि से रहित है। अब **'परिहृत्य'** शब्द कहा न? इसलिए कहते हैं, क्या? जितने आठ जड़ कर्म, वह मैं नहीं। स्वामी का अर्थ मैं नहीं। मैं यहाँ (स्वरूप में) आया, इसलिए वहाँ मैं नहीं। इसका अर्थ स्वामीपना मिट गया। स्वामी का अर्थ यह। मैं यह। पुण्य के, पाप के भाव वह मैं, उनका स्वामी, वह स्वभाव की ओर का स्वामी होने पर राग का स्वामी— अहंपना मिट गया। समझ में आया? परन्तु बहुत सूक्ष्म। बापू! परन्तु मार्ग ही यह है। दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। तू सूक्ष्म कहे, स्थूल कहे, पहले कहे, बाद में कहे, सस्ता कहे, महँगा कहे। समझ में आया? जो है, वह यह है। **समस्त का स्वामित्व छोड़कर।** जड़कर्म का अहंपना छूट गया। छोड़कर, (ऐसा कहा), यह समझावे तो ऐसा न? छूट गया। पुण्य-पाप के विकल्प हों, उनका अहंपना टूट गया और शरीरादि, वाणी मैं हूँ, यह अहंपना छूट गया। उसमें से अहंपना छूटा तो द्रव्य में अन्दर अहंपना आया। उसे स्वानुभव प्रत्यक्ष वेदन कहा जाता है, और वही मोक्ष का मार्ग है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ९, बुधवार, दिनांक-१७-११-१९६५, कलश-२२५,२२६, प्रवचन-२४४-K

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका, ३३वाँ (कलश)। फिर से। **कर्मचेतनारूप और कर्मफलचेतनारूप है जो अशुद्ध परिणति...** अर्थात् क्या कहते हैं? इस आत्मा में शुद्ध चेतना को भूलकर, जितनी अशुद्ध चेतना पुण्य-पाप के भाव, राग-द्वेष के भाव करनेरूप (होते हैं), वह कर्मचेतना है और उसके फल में हर्ष-शोक का होना, शुभ-अशुभभाव में, हों! हर्ष-शोक का होना, उसे कर्मफलचेतना कहते हैं। सुख-दुःख की कल्पना होना। दोनों अशुद्ध परिणति अथवा मलिन दशा है। फिर पुण्य का भाव हो या पाप का हो या उस पुण्य में हर्ष का हो अथवा पाप में शोक का हो, वह सब अशुद्धपर्याय है, मलिन है।

उसे मिटाने का अभ्यास करता हैः—उसे मिटाने का (अर्थात् कि) स्वभावसन्मुख का अभ्यास होता है। **'परमं नैष्कर्म्यम् अवलम्बे'** उसे मिटाने का उपाय—**मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ।** परम हूँ, मैं परम हूँ। शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञान—आनन्दस्वरूप मैं जीव हूँ। **सकल कर्म की उपाधि से रहित...** और रागादि, कर्मादि से रहित मेरा स्वभाव अत्यन्त शुद्ध आत्मधर्म है। उसमें **मेरा स्वरूप मुझे स्वानुभव प्रत्यक्ष से आस्वाद में आता है।** देखो! यह ४९ भंग को मिटाने की यह एक दशा। मैं एक शुद्ध चैतन्यप्रभु हूँ। **मेरा स्वरूप मुझे...** मेरा स्वरूप मुझे **स्वानुभव...** अर्थात् ज्ञान से ज्ञान का प्रत्यक्ष वेदन और जानना (होता है), उस द्वारा आत्मा के आनन्द के स्वाद द्वारा यह ४९ के भंग को मिटाने का अभ्यास करता है। समझ में आया?

क्या विचार कर? 'सर्वं कर्म परिहृत्य' जितने आठ जड़ कर्म हैं, पुण्य-पाप के विकारभाव हैं, और नोकर्म—शरीर, वाणी इत्यादि। **उन समस्त का स्वामित्व छोड़कर।** अर्थात्? मेरा स्वरूप मुझमें ज्ञान के-आनन्द के स्वाद में मैं और रागादि में मैं नहीं, ऐसा स्वामित्व छोड़कर। सब पुण्य और पाप के विकल्प, कर्म और शरीर, इन तीनों में मैंपने का भाव, उसके लक्ष्य का, ध्येय का मैं हूँ ऐसा भाव छोड़कर, मैं तो चैतन्य प्रत्यक्ष आनन्द के अनुभव वाला हूँ, ऐसे अभ्यास से वह राग, नौ प्रकार के ४९ भंग के भाग छूट

जाते हैं। बात बहुत (सूक्ष्म) है। कहो, समझ में आया? समस्त प्रकार का अहंकार— स्वामित्व छोड़कर। अर्थात् कि शुद्धस्वभाव ज्ञान और आनन्द के स्वभाव के अन्तर स्वामीपने परिणमता हुआ पर के स्वामीपने के भाव छूट जाते हैं।

अब **अशुद्ध परिणति का विवरण:—**वह अशुद्ध परिणति कही न? अशुद्ध परिणति मिटाने का अभ्यास, वह क्या? उस अशुद्ध परिणति का प्रकार क्या? कि जिसे मिटाने का शुद्धस्वभाव-सन्मुख में ज्ञानानन्द में रहकर मिटाने का वह प्रकार क्या, उसके भेद का वर्णन करते हैं। ४९ भंग में तो आता है न? सुने थे या नहीं? सम्प्रदाय में आते हैं। **'त्रिकालविषयं'** एक तो त्रिकाल विषय। एक **अशुद्ध परिणति...** त्रिकाल विषय की। एक **अशुद्ध परिणति अतीत काल के विकल्परूप...** भूतकाल के रागरूप, गत काल का राग था, वह ठीक था, ऐसा जो भाव, उसे छोड़कर। भूतकाल का राग ठीक था कि भाई! मैंने पुण्य किया था तो मुझे यह मनुष्यदेह मिला और सुनने का मिला, ऐसा अतीत काल का विकल्प, ऐसा।

मैं ऐसा किया... मैंने पूर्व में यह किया। अतीत काल में मैंने यह भाव किया, वह मेरा नहीं था। समझ में आया? अतीत काल के जो विकल्प हैं कि मैंने ऐसा किया। मैंने पुण्य किया, मैंने पूर्व में पाप किये। यह नौ प्रकार के आयेंगे। मन, वचन, काया और करना, कराना, अनुमोदना, दो प्रकार करेंगे और तीसरा यह, (ऐसे) तीन प्रकार करेंगे। यह विकल्प जो पूर्व में किया था, शुभ-अशुभभाव किये और **ऐसा भोगा...** किया हुआ और भोगना **इत्यादिरूप है...** जो भूतकाल का विकल्प, वह मेरे स्वरूप में नहीं। समझ में आया?

एक अशुद्ध परिणति आगामी काल के विषयरूप है... यह भूतकाल की अपेक्षा हुई। आगामी भविष्य में ऐसा करूँगा। भविष्य का ऐसा विकल्प करूँ। **ऐसा करूँगा, ऐसा करने से ऐसा होगा...** ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, ऐसे विकल्प से भी मैं निवृत्त होता हूँ। वर्तमान भाव से निवृत्त होऊँ तो त्रिकाल से निवृत्त होता हूँ। समझ में आया? भविष्य में ऐसा करूँगा, कहते हैं न, भाई! भविष्य के लिये ऐसा संकल्प बाँधो कि यह काम मैं करूँ। परन्तु यह भविष्य का संकल्प बाँधूँ, वह मैं नहीं। समझ में आया? इतना काम

मुझे करना है। भविष्य में मुझे दुनिया को तारना है। ऐसा तारने का भी भविष्य का विकल्प, वह भी मेरा नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा करूँगा, ऐसा करने से ऐसा होगा... ऐसा करूँगा और उसका ऐसा होगा, ऐसा करूँगा न तो ऐसा होगा, भविष्य में ऐसे राग करूँगा तो ऐसा होगा इन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ। यह अशुद्ध परिणति है। ओहो! भविष्य का पुण्यभाव करूँ तो ऐसा होगा, यह सब भविष्य की मलिनता को भी मैं अभी छोड़ता हूँ। समझ में आया?

एक अशुद्ध परिणति वर्तमान विषयरूप है... मैं देव,... हूँ, मैं मनुष्य हूँ। **मैं राजा...** हूँ, मैं रोगी हूँ, मैं निरोगी हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, **मुझे ऐसी सामग्री...** है। वर्तमान में मेरे पैसे, इज्जत, मकान आदि है, ऐसा विकल्प, हों! वस्तु वस्तु के घर में रही। यह मुझे पैसा है, यह मुझे यह है, यह मुझे यह है। यह मुझे पुस्तकें हैं, ऐसे जो वर्तमान में विकल्प (होते हैं, वे) और **मुझे ऐसा सुख अथवा दुःख इत्यादिरूप...** कहे, मुझे अभी सुख है, हों! सुखी हूँ। निरोगता, पैसा उससे विकल्प (करे कि) मैं सुखी हूँ। प्रतिकूलता और रागी से मैं दुःखी हूँ—ऐसा जो वर्तमान विकल्प, उससे उस अशुद्ध परिणति से मैं निवृत्त होता हूँ। समझ में आया?

मेरे स्वभाव में नहीं। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञान के प्रत्यक्ष अनुभव के आनन्द के स्वाद के समक्ष ये सब मुझमें स्वाद में यह चीज़ नहीं। ऐसा मैं उनसे मैं निवृत्त होता हूँ। अर्थात् नास्ति होकर मैं परिणमता हूँ। समझ में आया? यह तो तीन काल पाड़े हैं। वर्तमान में यह हुआ, इस अपेक्षा से भूत और भविष्य तीनों काल का गया। हुआ, उसका वर्तमान का गया, यह नहीं, ऐसा भूत-भविष्य का भी गया। लो, यह भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमानकाल का संवर और आगामी काल का प्रत्याख्यान। न्यालभाई! यह तो प्रतिक्रमण में बहुत आया है।

प्रतिक्रमण क्या? मैं एक आत्मा मेरे स्वभाव में से हटकर विकल्प में आया था, उसमें से अब वापस मुड़ता हूँ, बस! यह प्रतिक्रमण। वापस मुड़कर कहाँ जाता हूँ? मेरे धाम, मेरे घर में रहता हूँ। यह बाहर घर में विकल्प में चलता था। भूतकाल में रागादि पुण्य-पाप में, भविष्य में पुण्य आदि के भाव में और वर्तमान में पुण्य-पाप और सुख-

दु:ख की कल्पना जो बाह्य घर था, उसे मैं (छोड़कर निज घर में आया हूँ)। विशेष स्पष्ट करना है न! एक में और ४९ कैसे? ऐसी भी और बात आती है। वह तो समझाते हैं। समझ में आया? यह ४९ और यह, ऐसा नहीं, एकसाथ चूरा करता है। परन्तु यहाँ समझाने की एक शैली ली है। ऐसे वस्तु इस प्रकार से जो भजी हो या विकल्प (हुए हों) उससे मैं एक स्वरूप में पूर्ण आनन्द की ओर के पक्ष में ढलता हुआ, यह सब छूटता है, उसके प्रकार की विशेषता समझायी है। समझ में आया? लो!

मैं देव, मैं राजा,... मैं रंक और दरिद्र। **मेरे ऐसी सामग्री, मुझे ऐसा सुख अथवा दु:ख इत्यादिरूप...** मुझे यह सुख। वर्तमान में मुझे सब सुख, हों! और या मुझे सब दु:ख सामग्री। ऐसी कल्पना। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप में अन्तर्मुख होकर इस भाव से मैं वापस मुड़ता हूँ, वर्तमान मैं हटता हूँ, भविष्य में तत्प्रमाण आदर नहीं करूँगा। ऐसा वर्तमान में उसका प्रत्याख्यान करता हूँ। यह तीन काल के विकल्प—भेद लिये।

अब, **एक ऐसा भी विकल्प है कि 'कृतकारितानुमननैः' जो कुछ आप किये है...** की हो। मैंने कोई **हिंसादि क्रिया की हो...** हिंसादि, पुण्यादि सब आ गया, हों! अहिंसा आदि सब इसमें आता है। मैंने जो कुछ स्वयं किया, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय आदि। और **अन्य जीव को उपदेश देकर करवाई हो...** विकल्प ऐसा था। कराऊँ ऐसा विकल्प। अन्य जीव को उपदेश देकर कराऊँ। उपदेश देकर कराऊँ, इसका अर्थ कहीं उपदेश दे सकता है, ऐसा प्रश्न नहीं, परन्तु भाव दूसरे को कराऊँ, ऐसा जो भाव। एक करने का जाति का और एक कराने का जाति का (भाव)। दूसरे से ऐसा कराऊँ, दया पालन कराऊँ, हिंसा कराऊँ। समझ में आया? ऐसे जो भाव। और **जो किसी ने सहज ही की हुई...** मेरी प्रेरणा और उपदेश कराये बिना, या किये बिना उसने किया हो (तो) ठीक किया, (ऐसा अनुमोदना का भाव)। तूने पुण्य-पाप ठीक किया। ऐसा जो पुण्य-पाप के परिणाम को सम्मत (किये), अनुमोदना (की), उससे भी मैं निवृत्त होता हूँ। समझ में आया? **सहज ही की हुई...** क्रिया से सुख मानना अर्थात् कि दूसरे ने किया, वह ठीक है, ठीक है। सम्मत होना। दूसरे के पुण्य-पाप के भाव में सम्मत होना। उससे मैं निवृत्त होता हूँ। तीन काल के तीन मन-वचन-काया के (सबसे निवृत्त होता हूँ)।

तथा एक ऐसा भी विकल्प है जो... समझ में आया? ऐसा भी एक विकल्प है। **मन से चिन्तवन करना,...** पहले कृत-कारित-अनुमोदन का था। मन से चिन्तवन करना। मन से पुण्य-पाप का चिन्तवन करना। **वचन से बोलना,...** ऐसा विकल्प। **शरीर से प्रत्यक्ष करना।** अर्थात् शरीर से हो, उसमें अपना भाव जुड़े। समझ में आया? शरीर से करना, ऐसा वापस नहीं कि शरीर से कर सकता है। यह भाषा तो ऐसी ही होती है न? शरीर के निमित्त सम्बन्ध में होता हुआ भाव, वचन के निमित्त सम्बन्ध में होता हुआ भाव, मन के निमित्त सम्बन्ध में होता हुआ भाव, उसकी यह बात है। भाव जो है, उसमें तीन निमित्त थे—मन, वचन और काया। इस अपेक्षा से यहाँ कथन किया है। **शरीर से प्रत्यक्ष करना।** ऐसा भाव कि, शरीर से यह करूँ।

ऐसे विकल्पों को परस्पर फैलाने पर उनचास (४९) भेद होते हैं,... लो! समझ में आया? मन-वचन-काया, कृत-कारित और अनुमोदना। नौ हुए और तीन काल के। ऐसा करके ४९ भेद होते हैं। **वे समस्त जीव का स्वरूप नहीं है,...** भूतकाल, वर्तमान, भविष्य। समझ में आया? मन, वचन और काया। करना, कराना और अनुमोदना। यह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो अकेला ज्ञायक चैतन्य हूँ। मेरे स्वभाव से प्रत्यक्ष होनेवाला और वेदन को प्रत्यक्ष वेदनेवाला। इस प्रकार मैं उसे छोड़ता हूँ। इस प्रकार मैंने उसे छोड़ने का अभ्यास किया है, ऐसा। समझ में आया?

वे समस्त जीव का स्वरूप नहीं है, पुद्गलकर्म के उदय से होते हैं। वे सब विकल्प पुद्गलकर्म के संग से हुए हैं। स्वभाव के संग से उत्पन्न हुए नहीं। जो आत्मा के स्वभाव चैतन्यसत्ता स्वभाव, पूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वभाव के संग से उत्पन्न होती शुद्ध परिणति (द्वारा) उस कर्म के संग से होती अशुद्ध परिणति को छोड़ता हूँ, ऐसा कहते हैं। ४९ भग तो तुमने वहाँ सुने होंगे या नहीं? ठीक! इनको याद है। यह अंक बोले थे। आहाहा! वह समस्त जीव का स्वरूप नहीं है। कहो, समझ में आया?

भूतकाल का विचार, इस प्रकार करता है —

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति।*

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् दुष्कृतं मे मिथ्या भवतु (इति)' [तत् दुष्कृतं] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड, [मे मिथ्या भवतु (इति)] स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए, मैंने आपस्वरूप अनुभवा, सो अज्ञानपना हुआ। साम्प्रत (अब) ऐसा अज्ञानपना जाओ; 'मैं शुद्धस्वरूप (हूँ) — ऐसा अनुभव होओ। पाप के बहुत भेद हैं, उन्हें कहते हैं — 'यत् अहं अकार्षं' [यत्] जो पाप, [अहं अकार्षं] मैंने किया है। 'यत् अहं अचीकरं' जो पाप, अन्य को उपदेश देकर कराया है। तथा 'अन्यं कुर्वन्तं समन्वज्ञासिषं' सहज ही किया है अन्य किसी ने, उसमें मैंने सुख माना होवे; 'मनसा (च)' मन से 'वाचा (च)' वचन से 'कायेन (च)' (और) शरीर से। यह सब जीव का स्वरूप नहीं है। इसलिए मैं तो स्वामी नहीं हूँ; इसका स्वामी तो पुद्गलकर्म है — ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, अनुभवता है।

भूतकाल का विचार इस प्रकार करता है — यह गाथा नहीं परन्तु गद्य में रखा है।

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति।*

लो, यह मिथ्या दुष्कृत आया। मिच्छामि दुक्कडम किये होंगे न कितनी बार? मिच्छामि दुक्कडम। परन्तु किसका मिच्छामि दुक्कडम। जो परिणाम पूर्व के, भविष्य के, वर्तमान के मन-वचन-काया से, करना-कराना-अनुमोदना यह विकल्प खोटे हैं। कब खोटे होते हैं? मिथ्या होते हैं? मिच्छामि—मेरे दुष्कृतम्। देखो! यह सब पुण्य-पाप के विकल्प दुष्कृत थे। मेरे शुद्धस्वभाव के वेदन समक्ष वे सब दुष्कृत थे। भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा, उस चिदानन्द प्रभु के समक्ष वे ४९ पुण्य-पाप आदि के भाव सब

* श्री समयसार की आत्मख्याति-टीका का यह भाग, गद्यरूप है; पद्यरूप अर्थात् कलशरूप नहीं है; इसलिए उसको नम्बर नहीं दिया गया है।

दुष्कृत थे। यह मैंने किये थे, वह स्वभाव के आश्रय से मैं दुष्कृत करता हूँ, मिथ्या करता हूँ कि वे मुझमें नहीं। मिच्छामि दुक्कडम ऐसे बोले, ऐसे मिच्छामि दुक्कडम् नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मिच्छामि दुक्कडम, मिच्छामि दुक्कडम। क्या मिच्छामि दुक्कडम?

मिथ्या मेरे दुष्कृत। इसमें तीन शब्द हैं। मिथ्या कब होंगे? कि सत् स्वरूप की दृष्टि हो (तब)। मि अर्थात् मैंने किये हुए यह नहीं, मेरा स्वरूप दूसरा है। दुष्कृत थे। वस्तु के स्वभाव में अपनेपन की मान्यतासहित दुष्कृत के परिणति की पर्याय प्रगट करे, तब उस पर्याय को मिथ्या—झूठी मेरा दुष्कृत है, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? कहो, भगवानभाई! यह प्रतिक्रमण में कितनी बार आता है? मिच्छामि दुक्कडम। परन्तु मिच्छामि दुक्कडम क्या? तब सच्चा क्या? मिच्छामि दुक्कडम (वह) मिथ्या मेरा दुष्कृत। (तो) मेरा सुकृत सच्चा, वह क्या? ताराचन्दभाई! क्या अब यह दुष्कृत कितने किये होंगे? पार नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भाई! एक चैतन्य बादशाह को भूलकर सब किया। वह चैतन्य सत्यस्वरूप है, ज्ञानानन्द है, वह सत्यस्वरूप है, जो त्रिकाल वस्तु सत्य है। उसे अपनेरूप से समझकर और उसमें स्थिर होने से, उसके मिच्छामि दुक्कडम ४९ भंग के हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वाणी से मिच्छामि दुक्कडम बोले, विकल्प से (करे) वह कहीं मिच्छामि दुक्कडम नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो!

राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड... दो। **'मे मिथ्या भवतु' स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए...** मेरे ज्ञानस्वरूप चैतन्य के ज्ञाता-दृष्टा के स्वरूप से भ्रष्ट होता हुआ **मैंने आपस्वरूप अनुभवा...** मैंने पुण्य-पाप के भाव, मोह के भाव अशुद्ध परिणति और कर्म को अपना माना अर्थात् कर्म मेरे, ऐसा इसने माना कहलाता है। **मैंने आपस्वरूप अनुभवा सो अज्ञानपना हुआ।** कर्म मेरे और विकार मेरा, पुण्य-पाप मेरे और उससे बँधे हुए (वे) मैंने बाँधे, उनका फल मैंने भोगा, ऐसा जो अशुद्धपना मैंने जो किया था, वह अज्ञानपना था। वह आत्मा का स्वरूप नहीं था। वह तो अज्ञान, बेभान (पना था)।

साम्प्रत (अब) ऐसा अज्ञानपना जाओ। साम्प्रत अर्थात् वर्तमान समझाने की

शैली है, इसलिए (ऐसा कहे)। मैंने भूतकाल में यह पुण्य-पाप के भाव किये थे। भूतकाल की बात चलती है न? वह अज्ञानपना जाओ। **मैं शुद्धस्वरूप ऐसा अनुभव होओ।** मैं तो चैतन्य शुद्धस्वभाव हूँ। शरीर के एक भी रजकण की पर्याय बिना का और राग के एक भी विकल्प बिना का, वह मैं। वह यह सम्यग्दृष्टि की प्रतिक्रमण की क्रिया कहलाती है। भूतकाल की है न यह? यह प्रतिक्रमण की क्रिया। कहो, प्राणभाई! यह प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण क्या होगा? भूतकाल में भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप ज्ञायक चैतन्य वीतरागीस्वभाव से भरपूर भगवान में से हटकर मैंने भूतकाल में पुण्य और पाप के भाव जो किये थे, वह अज्ञानभाव था। **मैं शुद्धस्वरूप ऐसा अनुभव होओ।** मैं तो चैतन्य निर्विकल्प शान्त ऐसा हूँ, यह अनुभव हो। इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। कहो, माणेकचन्दभाई! प्रतिक्रमण वहाँ भी करते तो होंगे, पहले किया होगा न? ये सेठिया अधिक कराते हैं। आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं। समझ में आया?

मैंने शुद्धस्वरूप को (भूलकर) भूतकाल में परिणाम किये हों... आहाहा! भूतकाल के कोई अच्छे परिणाम हुए हों, आहारकशरीर बन्धन के, तीर्थंकर (प्रकृति के) बन्धन के (परिणाम हुए हों), उनसे विमुख होना ऐसा उसमें आता होगा? पुण्य और पाप दोनों इकट्ठे हैं। यह तो 'पाप' शब्द पड़ा है इसमें। दोनों बाँधे हुए जहर के वृक्ष हैं। मेरे अमृतस्वरूप से विरुद्ध है। यह 'पाप' शब्द लिखा है। वह पाप ही है। दोष है न? भूतकाल के पाप से निवृत्त होता हूँ और पुण्य से निवृत्त नहीं, ऐसा होगा? मेरे स्वरूप से विरुद्ध भाव, वह पाप ही है। आहाहा! क्या कहा? **स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए...** ऐसा कहा है न? पाप के परिणाम वे स्वरूप से भ्रष्ट और पुण्य के परिणाम स्वरूप में स्थिरता होगा, ऐसा होगा? समझ में आया? बापू! प्रभु का मार्ग ऐसा है कि, यह पुरुषार्थ का काम है, चापलुसी का काम नहीं। कायर का कलेजा कांप उठे। यह प्रतिक्रमण की ऐसी व्याख्या!

भगवान! तू तो अकेला पुरुषार्थ का पिण्ड है न! अनन्त... अनन्त... अनन्त... वीर्य का कन्द आत्मा है। वह तो शुद्धस्वरूप की परिणति की रचना करे। उससे भ्रष्ट होकर भूतकाल में ऐसे भाव हुए, मैं वह नहीं, अब हट जाता हूँ। वह सब अज्ञान था।

पुण्य-पाप के भाव किये हुए वह अज्ञान (था), ज्ञानस्वरूप नहीं थे। क्या कहा? भूतकाल में शुभ-अशुभभाव (किये थे, वह अज्ञान था)।

यहाँ तो अभी ऐसा कहते हैं न कि देखो! भूतकाल में अपने पुण्य किया तो मनुष्यदेह मिला, यह वाणी सुनने को मिली और इससे लाभ हुआ। बराबर है या नहीं यह? सुनने का न मिले तो इसे लाभ कहाँ से होगा? परन्तु लाभ तो तू तेरे स्वभाव सन्मुख देख, तब लाभ है या यह शरीर मिला उसके कारण लाभ है? आहाहा! कठिन मार्ग! जगत को ऐसी बात। आक्षेपों में यही निकाला है। देखो! इससे लाभ नहीं होता। अमुक से लाभ होता है। अब, सुन न, भाई! भाई! लाभ का पिण्ड तो आत्मा स्वयं स्वरूप लाभवाला है न! लाभान्तराय को टालकर अपना लाभ ले तो स्वयं अपने में है। समझ में आया? भगवान! स्वयं ही पर्याय में लाभान्तराय खड़ा किया है। लाभ अपने स्वरूप को अन्तराय करे, ऐसे मिथ्याभाव से। वही स्वयं उसे छोड़कर लाभ का लाभ (ले)। स्वरूप के लाभ का लाभ स्वयं लेता है, दूसरा कोई देता नहीं। आहाहा! अरे! भगवान! भगवान की वाणी... शास्त्र में तो बहुत पाठ आये हों। दृष्टान्त दिया है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार का सदासुखदासजी का (उद्धरण दिया है)। ऐसा कि शास्त्र में कहीं धर्म नहीं, ऐसे दृष्टान्त दिये हैं। पर्वत में धर्म नहीं, अमुक में धर्म नहीं। यह दिया है न? सदासुखदास थे, यह दृष्टान्त दिये हैं। पढ़ता कौन है? अपनी दृष्टि मानकर पढ़ना है। पर्वत में—सम्मेदशिखर में धर्म होगा? शास्त्र में धर्म होगा? आत्मा का धर्म वहाँ रहता होगा? वह सर्वविशुद्ध अधिकार में तो ऐसा कहा कि सूत्र का ज्ञान मुझमें है, शास्त्र में नहीं, पृष्ठ में नहीं, मुझमें है। समझ में आया? सूत्र का ज्ञान आदि, सूत्र का ज्ञान, हों! यह ज्ञान वह मैं हूँ। यह सूत्र है, वह मैं हूँ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान, संयम वह मैं हूँ। मैं हूँ। मैं अर्थात् आत्मा है। रागादि, परवस्तु वह संयम है? आहाहा! अरे! इसकी इसे अपनी महिमा आती नहीं और दूसरे की महिमा इससे छोड़ी जाती नहीं। दूसरे को महिमा देनी है कि तू बड़ा, भाई! ओहोहो! शुभराग तुझमें बहुत लाभ, हों! तेरे कारण बहुत लाभ! समझ में आया? हमने पुण्य किये, उससे हमको लाभ मिला, ठीक! यहाँ कहते हैं कि वे भाव मेरे नहीं।

पाप के बहुत भेद हैं,... ऐसा इसमें लिखा है। समझ में आया? दोष है, दोष

सब। समझ में आया? पुण्य-पाप को दोष कहा है न? दोष ही है। निर्दोष भगवान आत्मा... अरे! उसके गुण इसे सुहाते नहीं और विकार सुहाता है। इसके अनन्त-अनन्त गुण का भगवान समुद्र इसे सुहाता नहीं और इसके विपरीत पुण्य-पाप के भाव सुहावे, वह आत्मा का सुहावक कब होगा? वह तो विकार का सुहावक हुआ है। मार्ग यह है, भाई! यह तो आत्मा वीतरागस्वरूप है और वीतराग का मार्ग अर्थात् यह आत्ममार्ग। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, पुण्य-पाप के परिणाम की रुचि पूर्व में की थी, वह अज्ञान था। रागादि भाव वह सब अज्ञान था, मेरा प्रकाश चैतन्य वह नहीं था। देखो! मेरे प्रकाश में, चैतन्य में वह भाव नहीं। ऐसे भूतकाल का प्रतिक्रमण अन्तर में शुद्धस्वभाव का आश्रय करके, शुद्धस्वरूप का अन्तर वेदन करके यह भूतकाल के पुण्य-पाप के भाव को छोड़ा है, उसे छोड़ता है, ऐसा कहा जाता है। यह प्रतिक्रमण की व्याख्या! आहाहा!

भूतकाल में भगवान के पास गये थे और भाव हुआ था। ऐई! कहते हैं कि वह भाव भी भूतकाल का अज्ञान था। वह राग मेरी जाति नहीं थी। मैं तो ज्ञान चैतन्यस्वरूप हूँ, उसमें से हटा तब वह राग था। वह अज्ञान अब जाओ। आहाहा! भारी कठिन बात। भगवान को छोड़ा? नौ तत्त्व भेद की श्रद्धा मिथ्यात्व, नौ तत्त्व को छोड़ा। आहाहा! भगवान के सन्मुख देखने से राग हो, उसे छोड़ा। किसे तुम्हारे कितने को छोड़ना है? शास्त्र में बुद्धि जाती है तो व्यभिचारिणी, उसे छोड़ा। गोपालदासभाई! हाँ, पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र में ऐसा कहा।

उसे यह सुहाया है, इसलिए उसे छोड़ना रुचता नहीं। सुहाया है और रुचा है (इसलिए) छोड़ना नहीं। छोड़नेयोग्य को छोड़ना, वह सुहाता नहीं। 'आदरणीय तो एक भगवान ज्ञायक चैतन्यमूर्ति ज्ञान-श्रद्धा में उसे लेकर उसके वेदन में रहनेयोग्य है।' इसके अतिरिक्त का भूतकाल में जो भाव हुआ हो, उसे वर्तमान में मेरे शुद्ध परिणति के वेदन से छोड़ता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**मिथ्या मे दुष्कृतं**' इसका अर्थ हुआ। यह अज्ञानपना जाओ। इसका अर्थ किया। मैं शुद्धस्वरूप, ऐसा अनुभव हो, ऐसा। ऐसी बात गुलांट खायी न? पाठ के अर्थ के साथ मिलाना है न?

'कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति' भूतकाल में शुभ-अशुभभाव हुए हों, उनका कर्म बँधा हो, वह सब मेरा स्वरूप नहीं है। वह सब अज्ञानभाव था। उसे **'मिथ्या मे दुष्कृत'** अर्थात् वह अज्ञान जाओ और मैं शुद्धस्वरूप में रहता हूँ, वह मेरा प्रतिक्रमण। कहो, समझ में आया? **पाप के बहुत भेद हैं,...** अकेल सावद्ययोग का त्याग, यह तो सब बात है, सुन न!

'यत् अहम् अकार्षं' दोनों सावद्य ही है। आत्मा की शान्ति से विरुद्ध है न, भाई! आकुलता है न? शुभ-अशुभभाव दोनों आकुलता है। अनाकुल भगवान आत्मा से विरुद्ध भाव है। तब कोई कहता है कि परन्तु ऐसे भाव समझ में आये हों और दृष्टि-अनुभव हुआ, तत्पश्चात् ये भाव क्यों करता है? समझ में आया? राजपाट करे, क्षायिक समकित होने के पश्चात् स्त्रियों से विवाह करे। विवाह कहाँ करता है? तुझे कहाँ खबर है? शुद्धस्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए यह विकल्प आता है। वह विकल्प मेरा कार्य नहीं, मेरा कार्य नहीं। उसे दुःखरूप भासित होता है। और शरीर के संयोग की क्रिया तो जड़ की पर्याय से परिणमने की थी, वह कहीं रोकी नहीं, छोड़ी नहीं जाती। अरे, परन्तु यह तह कैसे बैठाना!

अज्ञानी स्त्रियों को छोड़ता है और मिथ्यात्व को बाँधता है। मैंने इसे छोड़ा, मैंने इसे छोड़ा, मैंने इसे छोड़ा, मैं काया से सेवन नहीं करता, मैं काया से सेवन नहीं करता। मिथ्यात्वभाव को सेवन करता है। विपरीत मान्यता के कारण से, हों! उस क्रिया के कारण से नहीं। ज्ञानी ऐसे विकल्प और संयोग होने पर भी उस क्षण में वह शुद्धता की ओर के भाव के कारण शुद्धता बढ़ती जाती है। अरे! दिशा पलटने से दशा पलट जाती है। जहाँ दृष्टि में विकार और संयोग था, उस दृष्टि से वस्तु का स्वभाव भगवान दृष्टि में लिया, अब भगवान का सहारा मिला। दृष्टि को सहारा मिला भगवान आत्मा का। उसमें से तो सृष्टि शान्ति की और शुद्धता की ही उत्पन्न होती है। यह अशुद्धता होती है न? वह ज्ञेयरूप से, दुःखरूप से, उपाधिरूप से जानते हुए होती है।

यहाँ तो उसे छोड़कर, यहाँ तो नौ-नौ कोटि का त्याग है न? समझ में आया? यहाँ तो चारित्र की व्याख्या है न? पहली तो दर्शनशुद्धि की व्याख्या की थी। यह चारित्र

की व्याख्या है। वे विकल्प भूतकाल के थे, वह अज्ञान था। मैं उसे छोड़ता हूँ। तब हुआ क्या? उसे छोड़ने से हुआ क्या? हुआ शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव। वह चैतन्य की दृष्टि और उस सहित की स्थिरता का अनुभव। समझ में आया? शुद्ध ज्ञायक की दृष्टि, उस सहित की स्थिरता, यह हुआ। तब भूतकाल का मिच्छामि दुक्कडम हुआ। गजब बात! ऐसी कब कहते हैं ऐसी थी, ऐसा प्रतिक्रमण सुना था? आहाहा!

जो पाप मैंने किया है। भूतकाल। **'यत् अहं अचीकरं' जो पाप अन्य को उपदेश देकर कराया है।** यह सब भूतकाल, हों! यह सब भूतकाल की बात है। मैंने जो पुण्य-पाप के भाव भूतकाल में किये थे, कराये थे। आहाहा! दृष्टि में तो उसका प्रतिक्रमण हो गया था, परन्तु यह स्थिरता के काल की अपेक्षा से बात करते हैं। मिथ्यात्व के प्रतिक्रमण के काल में शुद्ध चैतन्य की दृष्टि के अनुभवकाल में इन सब भावों का अभावस्वभाव ऐसा तो त्याग हो गया था, परन्तु स्थिरता के प्रसंग में वह अस्थिरता छूट जाती है और भूतकाल की अस्थिरता की अपेक्षा से उसे प्रतिक्रमण कहा। मैंने भूतकाल में इस प्रकार से किये हों, वर्तमान में जितना करूँ, कराऊँ, अनुमोदना (होती है), ऐसा ही भूतकाल में उसका रहता है, ऐसा ही उसका भविष्यकाल में रहेगा।

जो पाप अन्य को उपदेश देकर कराया है। भूतकाल में यह करनेयोग्य है, ऐसा कहा था। तथा **'यत् अन्यं कुर्वन्तं समन्वज्ञासिषं' जो सहज ही किया है अन्य किसी ने,...** भूतकाल में किसी ने पुण्य-पाप के भाव किये हों, **उसमें मैंने सुख माना होवे,...** ठीक था, वह ठीक था। **'मनसा' मन से, 'वाचा' वचन से, 'कायेन' शरीर से। यह सब जीव का स्वरूप नहीं है।** यह सब जीव का स्वरूप नहीं... यह भूतकाल की बात की। समझ में आया? विशेष में जो-जो निमित्त के विकल्पों से हटा, उनके प्रकार कहे हैं। यहाँ तो स्वभावसन्मुख की एकाग्रता, वीतरागता एक प्रकार की है। परन्तु भूतकाल की अपेक्षा से यहाँ छूटा है, ऐसा कहने में आता है।

यह सब जीव का स्वरूप नहीं है। भूतकाल में मन, वचन, काया से किया, कराया, अनुमोदन किया, यह पुण्य और पाप, वह मेरा स्वरूप नहीं। **इसलिए मैं तो स्वामी नहीं हूँ।** मैं तो शुद्ध आनन्दकन्द ज्ञान का सहजात्मी स्वामी, मैं शुद्ध ज्ञानानन्द का

स्वामी, उसका स्वामी मैं। मैं शुद्ध चैतन्य में माननेवाला, वह उसमें माननेवाला मैं नहीं। समझ में आया? **इसका स्वामी तो पुद्गलकर्म है।** लो! देखो! पुद्गल के कारण सब हुआ था। निर्बलता के कार्य भी स्वभाव के नहीं, इसलिए पुद्गल के हैं, ऐसा कहने में आया है। भूतकाल में पुण्य और पापभाव वह स्वभाव के कार्य नहीं, इसलिए वे पुद्गल के काम—दुश्मन के काम थे। मेरे—सत् स्वरूप ऐसे चैतन्य के वे पुण्य-पाप के भाव, करना, कराना, अनुमोदना, वे मेरे नहीं थे। मेरे हों तो हटे नहीं। पुद्गल के थे, जाओ! स्वभाव में आने पर वे हट जाते हैं। इसलिए पुद्गल के हैं, मेरे नहीं। **ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवता है।** लो!

विकल्प उठे, वह पुद्गल का है। प्रतिक्रमण का भाव नहीं। प्रतिक्रमण तो उसे कहना... प्रतिक्रमण का भाव अर्थात् वीतरागभाव, विकल्प नहीं। मैं प्रतिक्रमण करूँ, यह विकल्प, वह प्रतिक्रमण का भाव है ही नहीं। मैं प्रतिक्रमण करूँ, वह प्रतिक्रमण का भाव ही नहीं, वह तो विकल्प है, आस्रव है, वह प्रतिक्रमण कहाँ से आया? समझ में आया? मैं भूतकाल के पुण्य-पाप को छोड़ूँ, यह भी एक विकल्प है। यह विकल्प प्रतिक्रमण का नहीं। तुमने भी कितने प्रतिक्रमण किये होंगे न?

जो वस्तु मैंपने, स्वस्वामीपने है, शुद्ध ज्ञान, आनन्दादि स्वस्वामीपने है, उसमें स्थिर होना उसका नाम भूतकाल का प्रतिक्रमण कहा जाता है। उसने भूतकाल के कर्म के सम्बन्धी के भाव अन्तर स्वभाव के अवलम्बन से छोड़े, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवता है।** ऐसा कहा न? वह ज्ञानचेतना प्रगट करके अनुभव करता है, इसलिए वह भूतकाल के इस परिणाम से छोड़ा, छूटा, प्रतिक्रमण किया, ऐसा कहने में आता है। पर से विमुख हुआ तो गया कहाँ? कि वहीं का वहीं विकल्प में खड़ा है? (खड़ा हो तो) वह वापस हटा ही कहाँ? शुद्ध चैतन्यस्वभाव आनन्द का घर अकेला, अनाकुलता के स्वभावस्वरूप प्रभु, ऐसे अनाकुल के अवलम्बन से प्रगट होती अनाकुलता के शान्ति के वेदन के समक्ष भूतकाल के भाव, विकल्प वर्तमान में छूट गये हैं, इसलिए भूतकाल के छोड़े हैं, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौबीसों घण्टे। '**नित्यं**' आता है उसमें, मूल श्लोक में आता है न? मूल श्लोक में आता है, नित्य प्रतिक्रमण करे, नित्य आलोचना, ऐसा पाठ है। मूल श्लोक है। समयसार के श्लोक। अपने निश्चय में पहले आया था न? उसमें चौबीसवें में आ गया न? चौबीसवें में आ गया। इसमें भी आयेगा। '**निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते**' देखो, आयेगा। '**नित्यं**' नीचे आयेगा, देखो! इस श्लोक में नीचे आयेगा। आज अब आयेगा। आठों नित्य होते हैं, ऐसा नीचे आता है, नीचे देखो! यह कहा जाता है, वह नीचे आयेगा, नीचे आयेगा, उसमें आयेगा। बाकी नित्य स्पर्शे २२४ में आ गया है। '**ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं**' इस श्लोक के लिये यह दो हैं। उसका श्लोक नित्य का अब आयेगा। '**नित्यमात्मना वर्ते**' है नीचे? कब करता होगा यह? सदा ही ज्ञानानन्दस्वरूप को अवलम्बन की हुई दृष्टि और स्थिरता सदा, वह प्रतिक्रमण समय-समय में हो रहा है। शाम को निवृत्त हो और प्रतिक्रमण (के लिये) बैठे, वह प्रतिक्रमण नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसका श्लोक है।

कलश - २२६

(आर्या)

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३४-२२६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'अहं आत्मना आत्मनि वर्ते' [अहं] चेतनामात्र स्वरूप हूँ जो मैं वस्तु, वह मैं, [आत्मना] अपनेपने से, (अपने द्वारा) [आत्मनि वर्ते] रागादि अशुद्धपरिणति त्यागकर, अपने शुद्धस्वरूप में अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ। कैसा है आत्मा अर्थात् आप? 'नित्यं चैतन्यात्मनि' [नित्यं] सर्व काल, [चैतन्यात्मनि] ज्ञानमात्र स्वरूप है। और कैसा है? 'निःकर्मणि' समस्त कर्म की उपाधि से रहित है। क्या करता हुआ ऐसे प्रवर्तता है? 'तत्समस्तं कर्म प्रतिक्रम्य' पहले किया है जो कुछ अशुद्धपनारूप कर्म, उसका त्यागकर। कौन कर्म? 'यत् अहं अकार्षं' जो आप किया है। किस कारण से? 'मोहात्' शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट होकर, कर्म के उदय में आत्मबुद्धि होने से।।३४-२२६।।

कलश - २२६ पर प्रवचन

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३४-२२६।।

लो! **'अहं आत्मना आत्मनि वर्ते'** अहम् अर्थात् मैं अर्थात् **चेतनामात्र स्वरूप हूँ जो मैं वस्तु...** लो। अहम् अर्थात् मैं कौन? अकेला चेतना जानने-देखनेवाला भगवान आत्मा, वह आत्मा, वह मैं। चेतनामात्र स्वरूप। 'मात्र' शब्द से राग और विकल्प नहीं, इतना। मात्र तो अन्दर अनन्त गुण हैं। चेतना की प्रधानता से पूरा आत्मा चेतनेवाला... चेतनेवाला... चेतनेवाला... चेतनेवाला... जाननेवाला, देखनेवाला—ऐसा मैं चेतनास्वरूप, चेतनामात्र हूँ। अहम् अर्थात् चेतनामात्र दर्शन-ज्ञानस्वरूप। समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न? मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा नहीं आता? अहम् वन्दे। मैं भगवान को वन्दन करता हूँ। मैं कौन? मैं दर्शन-ज्ञानस्वरूप, वह मैं। पुण्य का विकल्प उठे, वह मैं नहीं।

ऐसा जो आत्मा, मैं चेतनामात्र स्वरूप जिसमें विकल्प और शरीर, वाणी बिल्कुल नहीं। ऐसा चेतना भगवान चेतनेवाला मैं। ऐसी मैं वस्तु, मैं वह वस्तु।

जो मैं वस्तु, वह मैं, अपनेपने से 'आत्मना' अपने से। ऐसा क्यों कहा? अपने से अर्थात् उस विकल्प आदि से नहीं। अपने से अपनेरूप से—आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप मैं, वह अपनेरूप से ज्ञान से स्वयं। अपने द्वारा, अपने ज्ञान द्वारा। ओहोहो! तीन शब्द पड़े हैं न? **'आत्मना'** अपने द्वारा, **'आत्मनि वर्ते'।** मैं ऐसा चैतनय भगवान, उसमें वाणी, शरीर, कर्म तो नहीं परन्तु पुण्य-पाप के राग भी नहीं, ऐसा मैं चैतन्य, वह अपनेपन से अर्थात् ज्ञानानन्दपने से, जानने के-दर्शन के, देखने के भावपने से। राग से, पुण्य से नहीं। और अपने द्वारा (अर्थात्) किसी विकल्प द्वारा, ऐसा नहीं। इस शुभविकल्प द्वारा नहीं। मैं यह कर्ता, अपनेपन से यह अपने से, और अपने द्वारा। समझ में आया?

शुद्ध चेतना ज्ञानमय ऐसा मैं, अपने से अर्थात् ज्ञानमय स्वभाव से अपने ज्ञानस्वरूप द्वारा। यह विकल्प द्वारा, मन द्वारा नहीं। अपने द्वारा **'आत्मनि' 'आत्मनि'** अर्थात् शुद्ध स्वरूप का अनुभव। व्याख्या करते हुए ऐसा कहा, **रागादि अशुद्ध परिणति त्यागकर...** पुण्य-पाप के अशुद्ध परिणति का मैल छोड़कर। आहाहा! ऐसी एक समय की सामायिक संसार का नाश करने की सामर्थ्य रखती है। कहो, भगवानभाई! आहाहा! कितने सामायिक के खोखा किये? ऐसे भगवान ज्ञायक चैतन्यस्वरूप मैं अपने द्वारा और मैं अपने से अपने में वर्तता हूँ, मुझमें वर्तता हूँ। ओहोहो! सब करना, कराना, ढींकणा और पूछड़ा सब (भेद) निकाल दिये। करना, कराना, अनुमोदना। था न? मैं यहाँ आया। समझ में आया? मैं करूँ, दूसरे से कराऊँ, करते हुए को सम्मत होऊँ तो कहते हैं कि मैं चैतन्यस्वरूप अपने ज्ञानस्वरूप से, ज्ञानस्वरूप द्वारा, ज्ञानस्वरूप आत्मा में वर्तता हूँ। समझ में आया? इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १०, गुरुवार, दिनांक-१८-११-१९६५, कलश-२२६, प्रवचन-२४४-L

कलशटीका, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। २२६ का पहले से अर्थ (लेते हैं), ऐसे ३४वाँ कलश है। देखो! यह क्या अधिकार चलता है? यह आत्मा, आत्मा है, वह शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसे गत काल में, भूतकाल में—गये काल में अनेक प्रकार से पाप, पुण्य को किया होता है, उसका वर्तमान में प्रतिक्रमण होता है। वह प्रतिक्रमण अर्थात् क्या? यह अभी लोग करते हैं, ऐसा नहीं। प्रतिक्रमण अर्थात् कि जो आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि—अनुभव करके भूतकाल में पुण्य और पाप, मन-वचन-काया से किया, कराया, अनुमोदन किया हो, उससे हटकर अर्थात् वर्तमान में विकार परिणति खड़ी की और भूतकाल का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, ऐसा यहाँ अभ्यास बताते हैं।

फिर से, देखो! '**अहं आत्मना आत्मनि वर्ते**' मैं प्रतिक्रमण करनेवाला, उसकी क्या दशा होती है कि मैं **चेतनामात्र स्वरूप...** मैं तो एक जाननेवाला-देखनेवाला आत्मा चैतन्यसूर्य हूँ। समझ में आया? धर्मी जीव (को) प्रतिक्रमण की क्रिया काल में चौबीसों घण्टे यह होता है। मैं एक आत्मा चैतन्य ज्ञान-आनन्दस्वरूप हूँ, **जो मैं वस्तु...** शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की निर्विकल्प वीतराग परिणति द्वारा। समझ में आया? ऐसा प्रतिक्रमण कभी सुना भी नहीं होगा। माणेकचन्दभाई!

आत्मा वस्तु है, वह देह से भिन्न (चीज़ है)। यह तो हड्डियाँ, जड़—मिट्टी-धूल है। उसमें आठ कर्म की रजकण पृथक् सूक्ष्म धूल है, जिसे कर्म कहते हैं। वह भी जड़ धूल—मिट्टी है। उसमें पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव हों, वह विकार है, उस विकार से रहित अन्दर चिदानन्दस्वरूप ज्ञानानन्द का भण्डार भगवान आत्मा, उसे यहाँ चेतनास्वरूप है, ऐसा कहा जाता है। ऐसे चेतनास्वरूप के भान की प्रतीति की भूमिका में **अपने से....** मैं आत्मा। भावस्वभावरूप आत्मा, चेतनास्वरूप जाननेवाला-देखनेवाला स्वभाव वह अपने में, अपने से। शुद्ध चैतन्य की रागरहित शुद्ध निर्मल पर्याय—परिणति द्वारा, अपने से, मेरे द्वारा अर्थात् निर्मल द्वारा '**आत्मनि वर्ते**' मैं शुद्ध स्वरूप में प्रवर्तता

हूँ। यह फिर स्पष्टीकरण किया था जरा कि पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणति, वर्तमान में पुण्य-पाप के राग की दशा (होती है) वह मलिन, अशुद्ध, मैल दुःखरूप है। उससे रहित वर्तमान होता हुआ। रहित हुआ तो हुआ क्या?

पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् वृत्तियाँ जो वासना, उनसे रहित अपने शुद्धस्वरूप में अपना ज्ञायक चैतन्य आनन्द शुद्धस्वरूप में **अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ।** मेरे शुद्धस्वरूप में मैं आत्मा के आनन्द के अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ। यह प्रतिक्रमण है। यह अस्ति का प्रतिक्रमण, अस्ति। अब यहाँ से निवृतता हूँ यह बाद में कहेंगे। समझ में आया? ऐसा प्रतिक्रमण? वह प्रतिक्रमण शाम-सवेरे कर डाले। मिच्छामि दुक्कडम। जाओ! प्राणभाई! पहले अणुव्रत में दोष लगा हो, किसे खबर अणुव्रत किसे कहना? और दोष किसे कहना?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! इस देह से चैतन्य भगवान भिन्न वस्तु है। ऐसे ज्ञानानन्द का (भण्डार है)। यह देह तो एक बँगला जड़ मिट्टी है, धूल-राख है। दाल, भात, रोटी का बना हुआ यह एक पिण्ड है। यह आत्मा नहीं। आत्मा इससे (पृथक्) जाननेवाला-देखनेवाला, आनन्द, जाने-देखे (ऐसा है)। समझ में आया? एक घर में एक व्यक्ति खड़ा हो, उसे खड़ा-खड़ा ऐसे देखे। यह घर यह है? घर की खिड़की में से देखे, यह... यह... यह... वह घर में खड़ा हुआ मनुष्य, वह खिड़की है? घर है? उसी प्रकार यह सब जालियाँ मिट्टी की हैं। भगवान आत्मा अन्दर ज्ञान—चैतन्यसूर्य है वह तो। जाननेवाला चैतन्यसूर्य, वह ऐसे देखता है, जानता है। वह जानने-देखने की सत्तावाला तत्त्व, वह आत्मा है। यह (शरीर) नहीं। यह तो कोडा मिट्टी जड़ है। यह जानने-देखनेवाला जो स्वभाव।

उसमें और तर्क किया है। अचिन्त्य शक्ति है न? भगवान ने अचिन्त्य कह दिया है। तर्क किया है न? १४४ में नहीं आता? कलश में '**अचिंत्य शक्ति स्वयमेवदेव**' इसका उद्धरण दिया है। पंचाध्यायी का दिया है। आगे-पीछे है अवश्य। अनन्त अचिन्त्य शक्ति कहा। अरे! भगवान! अरे! भगवान! क्या हुआ है? ज्ञान में तो आत्मा के अनन्त गुण केवलज्ञानी को प्रत्यक्ष आवे। श्रुतज्ञानी को भी परोक्ष (रीति से) प्रतीति में आवे।

ज्ञानदशा—वर्तमान ज्ञान प्रगटरूप जो अंश है, प्रगटरूप जो जानने का काम करे, वह उतने अंश में पूरा आत्मा नहीं। उतना जानने का अंश है, वह पूरे तत्त्व का एक अंश है। पूरा चैतन्य ज्ञानानन्द भण्डार, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द—ऐसा तत्त्व जो आत्मा, उसमें अनन्त अचिन्त्य अर्थात् चिन्तवन में, कल्पना में, विकल्प में वे गुण नहीं आ सकते। इतने गुण हैं। इसलिए कहीं सर्वज्ञ ज्ञान उन्हें न जान सके, ऐसा नहीं है। अरे! पहले ही विवाद। सबने (एकत्रित) होकर ऐसा निर्णय करना चाहिए कि सर्वज्ञ क्या है?

अरिहन्त भगवान हैं। पहला अर्थ (करते हैं), अरिहन्त भगवान—णमो अरिहन्ताणं। उस अरिहन्त में सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें अरिहन्त कहते हैं, वे हैं कौन? फिर कहाँ है, यह बाद में, परन्तु है कौन? और वे किस प्रकार से हैं? उनका सर्वज्ञपना अर्थात् क्या? यह पहले विवाद। यह उसके विवाद के सामने विरोध हो, वह सब विरोध यथार्थ है, लो! मूल विवाद वहाँ से है पूरा। एक समय में भगवान आत्मा ज्ञान की वर्तमान दशा में अल्पज्ञपना वर्तमान में है। परन्तु वह वस्तु का स्वभाव, अन्तर वस्तु, अन्तर वस्तु में पूर्ण आनन्द का सागर, वह तो आत्मा है, ज्ञान का भण्डार है। उसका ज्ञानप्रवाह अन्तर एकाग्र होकर दशा बहे, वह पूर्ण एकाग्र हो तो केवलज्ञान की दशा अन्तर से बहे, प्रबहे। उस केवलज्ञान को प्रगट करने का उपाय यह है, ऐसा अभी कहते हैं। समझ में आया?

अर्थात् कि मोक्ष को प्रगट करने का यह उपाय अर्थात् प्रतिक्रमण। अर्थात् क्या? कि मैं एक सर्वज्ञस्वभावी चेतन, चेतन कहा न? देखो! चेतनामात्र का अर्थ हुआ कि चेतनामात्र अर्थात् पूर्ण चेतनास्वरूप। पूर्ण स्वरूप में फिर अपूर्णता और कलंकता यह हो नहीं सकती। ऐसा मैं चेतनास्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ऐसा मैं मुझमें, मेरे द्वारा चेतनास्वरूप में, चेतनास्वरूप द्वारा, चेतनास्वरूप ऐसा आत्मा, उसमें वर्तता हूँ। कहो, राजमलजी! यह क्या वस्तु है, इसे खबर पड़ती नहीं। कभी सुना नहीं, विचार नहीं किया। करो धर्म। कहाँ धर्म कहीं बाहर लटकता है? समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

इस देह में भगवान विराजता है। नारायण परमात्मा स्वयं, हों! आत्मा। इसे कभी खबर नहीं होती। यह चैतन्यरूप ही है। अकेला चैतन्य का पुंज, अकेला ज्ञान का पुंज

आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अन्तर में, अनुभव में दृष्टि में लेकर अपने से अपने द्वारा विकार, पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं, उनसे रहित होकर शुद्ध आत्मा के चैतन्यस्वरूप में अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ। मैं मेरे शुद्धस्वरूप को अनुसरकर राग और विकल्प का अनुसरण छोड़कर स्वभाव के शुद्धस्वभाव में अनुसरकर वर्तता हूँ, इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। कहो, नेमिदासभाई! यह टूटन में आता होगा या नहीं? ग्यारह, बारह, तेरह, अमुक, अमुक, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस... आहाहा! यह हमारे भगत थे, वे बहुत सीखे थे। सोमचन्द भगत नहीं थे? उमराला में थे न? ग्यारह, बारह, तेरह, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस। अपने अन्दर लिखे हैं न? परन्तु वह तो सब भंग की अपेक्षा से बात की है। भूतकाल में आत्म भगवान ने जो कुछ मन से, वाणी से, देह के निमित्त के लक्ष्य से राग किया हो, मन से, वचन से, काया से अर्थात् काया के लक्ष्य से, ऐसे मन और वचन से, ऐसा मन और काया से, ऐसे वचन और काया से—ऐसे भूतकाल के सब प्रकार के ४९ भंग होते हैं। उन सब भंग का उनसे हटकर एक साथ एकरूप मेरे स्वरूप में—मैं चैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ, ऐसे महान चैतन्यसागर को अन्तर में दृष्टि में लेकर अपने द्वारा अपने में अनुभव में वर्तना, इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा कैसा प्रतिक्रमण? पाठ बोल जाये, लो, मिच्छामि दुक्कडम। अणुव्रत में दोष लगा (हो) बंधे वहे अप्पाणं वोसरी।

कहते हैं कि भाई! परन्तु तू कहाँ से हटा? पाप से हटा न? ऐसा कहते हैं न कि मुझे पाप नहीं चाहिए था। पाप नहीं चाहिए था (तो) तुझे कहाँ रहना है अब? पाप और पुण्य के भाव में था तो कहे, अब मुझे प्रतिक्रमण करना है। अर्थात् कि यह पुण्य-पाप के भाव मुझे चाहिए नहीं। चाहिए नहीं तो अब (उन्हें) छोड़कर कहाँ जाना है? आत्मा की तो खबर होती नहीं। परन्तु देखता नहीं परन्तु किस प्रकार देखता नहीं? कोई निर्दोष आत्मा पूर्णानन्द ज्ञायक दृष्टि में यदि लिया हो तो उसे ऐसा होता है कि अरे...! यह निर्दोष ज्ञायकमूर्ति आत्मा, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प, भूतकाल के ४९ (भंग), उसमें से हटकर मैं मेरे स्वरूप में आता हूँ, परन्तु उस स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान हुआ हो तो स्वरूप में आवे या स्वरूप के भान बिना हटे कहाँ और जाये कहाँ? प्रतिक्रमण करते हैं, लो! शाम-सवेरे आसन खंखेर कर चले जाये, प्रतिक्रमण कर आये। प्राणभाई!

आहाहा! यह घण्टे भर बैठे सही न? धूल-बूल उड़ी हो तो झटककर बाँधकर यह चले।

मुमुक्षु : प्रसन्नता बहुत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल को प्रसन्नता ही रहती है न! समझ में आया? ज्येष्ठ महीने की धूप हो, लड़के ने दूध पीया हो, (एक) वर्ष का लड़का हो, भले प्रकार से दूध पीया हो और फिर पतली दस्त हो, गर्मी बहुत हो, शरीर ऐसे नीचे छुए तो उसे अच्छा लगता है, हाथ लगे और ऐसे चाटे तो अच्छा लगता है, प्रसन्नता बहुत होती है। जमुभाई! यह ऐसा है। मूढ़ जैसा भाव क्या किया, उसकी खबर नहीं, क्या छूटे और कहाँ और कैसे छोड़े, उसकी कोई खबर नहीं। अज्ञान की प्रसन्नता होती थी। जमुभाई! आहाहा!

लड़के बिना दस्त किये बैठे हों, दस्त करके चाटे, उससे तो कुछ अन्तर होगा या नहीं? कुछ अन्तर पड़ा या नहीं? कहते हैं। ऐ..ई! न्यालभाई! यह हमारे वृद्ध तो वहाँ बहुत मुख्य थे, सब करते थे। आहाहा! बहुत प्रसन्नता हो। बस! क्या परन्तु किया क्या तूने यह कह। कहाँ किया? क्या किया? लाओ। कहे, मिच्छामि दुक्कडम कर आये। परन्तु क्या? मिच्छामि दुक्कडम, वह तो वाणी में आया। तेरी दशा में क्या आया? तेरी अवस्था में क्या आया? तेरे भाव में क्या बदला? क्या गया? और क्या हुआ? अपने को कुछ खबर नहीं। क्यों, गोपालदासभाई? तूने क्या किया? और वहाँ क्या हुआ? किसमें हुआ? और किसमें था, वहाँ से गया? कुछ खबर है?

नहीं, नहीं। यह बात सच्ची है। अभिमान ऐसा कि हमने कुछ किया, ऐसा। ऐसा माने। परन्तु तूने क्या किया? वाणी बोली गयी, वह तो जड़ है। कुछ पृथक् पड़ा अर्थात् भी क्या? क्या पृथक् पड़ा? पृथक् पड़ा अर्थात् क्या? चौबीस घण्टे में वाणी जड़ आदि की क्रिया होती थी, चौबीस घण्टे में विकल्प और राग-द्वेष होते थे, अब उसमें से (छूटकर) नया क्या किया इसने? चौबीस घण्टे में भगवान आत्मा तो अन्दर है। यह देह, वाणी भी अन्दर चला करे। यह उनके कारण से, हों! आत्मा के कारण से नहीं। यह तो बहुतों को पक्षघात हो, उन्हें अनुभव हो गया है न? लो, यह मणिभाई को पक्षघात हुआ तो जरा ऐसा हो गया या नहीं? खीमचन्दभाई के भाई। पैसे थे और कहाँ

गये ? आहाहा ! अभी तो दो-तीन का सुना। यह रतिलाल गाठणियां को जरा हो गया है। अनूपचन्दभाई को हार्ट का अटैक आया। पैसा-बैसा कुछ सुख वहाँ डालते नहीं। यह पूनमभाई का थोड़ा सुना है। कहते हैं, उन्हें थोड़ा ब्लडप्रेशर हुआ है। थोड़ा कुछ हुआ है, मलूकचन्दभाई यहाँ थे न ? दो करोड़ रुपये हैं न ? रुपये दो करोड़, ढाई करोड़ पड़े हैं, यह ब्लडप्रेशर कहाँ से आया ? मैंने तो कहा, यह वर्ष लगेगा न ? वह पूनमचन्द आयेगा या नहीं ? यह नया वर्ष लगा तो आयेगा ? अभी ठीक नहीं था। परन्तु इतने रुपये में भी ब्लडप्रेशर होगा ? अब सुख कहाँ आया उसमें ? और शरीर में फेरफार हुआ, वह तो जड़ में हुआ। वहाँ आत्मा ने क्या किया ? आत्मा को वह करना था ? वह तो जड़ का भाव है। पर्याय बदले ऐसे... ऐसे... रक्त ऐसे... ऐसे... (घूमे) वह तो जड़ के रजकण घूमते हैं। तुझमें क्या है ? तू कौन है ? और होता क्या है ? कभी विचार नहीं किया, कभी ज्ञान नहीं किया। कहो।

अहो ! सर्वज्ञ भगवान भी समवसरण में अनन्त बार मिले, परन्तु यह वस्तु क्या है और तू कौन है ? कान से सुना। वह चीज़ कौन ? यह वह क्या है आत्मा ? मैं इस जगत को माहात्म्य देता हूँ। शरीर को, पैसे को, भोग को, विषय को इज्जत को, रूपवान को, मकान को, पत्थर को... पत्थर अर्थात् इन हीरा-माणेक को, इन वस्त्र को (माहात्म्य) देता हूँ, माहात्म्य देनेवाला मैं। क्योंकि जाननेवाले में माहात्म्य आवे, कहीं जड़ में आवे नहीं। तो यह... यह... यह... यह... यह... परन्तु यह माहात्म्य पर को देता है, वह है कौन ? समझ में आया ? यह अच्छा, यह अच्छा... परन्तु यह अच्छा... अच्छा, यह जाननेवाले को आवे या जड़ को आवे ? जाननेवाला यह अच्छा, यह अच्छा, यह अच्छा (करता है), वह स्वयं कौन है, इसकी खबर है उसे ? सब अच्छे, एक मैं अच्छा, इसकी उसे खबर नहीं होती। आहाहा ! अँधेरा, दिया तले अँधेरा, कहते हैं न ? नीचे अँधेरा होता है, दीपक के नीचे अँधेरा होता है।

भगवान चैतन्यस्वरूप अन्दर है, जलहलज्योति ज्ञायक भगवान आत्मा स्वयं, उसे प्रतिक्रमण अर्थात् धर्म करना हो तो कैसे हो ? कि मैं एक ज्ञायक महा चैतन्यसमुद्र आत्मा हूँ। वह मेरे ज्ञान द्वारा ज्ञान में ज्ञान द्वारा मेरे स्वभाव में वर्तता हूँ, ऐसा मैं मेरा

अनुभव करता हूँ। ऐसी दशा को पर से हटे हुए की अपेक्षा से प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? देखो! कहते हैं।

कैसा है आत्मा अर्थात् आप? कैसा है आप? कौन है आप? कैसा है आप? वह स्वयं कैसा है? '**नित्यं चैतन्यात्मनि**' वह अकेला '**अहम्**' शब्द था। पहला शब्द था न? '**अहम्**' इस '**अहम्**' की व्याख्या यहाँ आयी कि '**अहं नित्यं चैतन्यात्मनि**' वह '**अहम्**' तो अर्थकार ने स्पष्टीकरण किया था। '**अहं नित्यं चैतन्यात्मनि**' मैं... मैं, ऐसा जो आत्मा, वह तो नित्य अर्थात् कायम सर्व काल... देखो! मैं तो सर्व काल कायम... कायम... कायम... कायम... रहनेवाला '**चैतन्यात्मनि**' चैतन्यस्वरूप, ऐसा। चैतन्यस्वरूप अर्थात् ज्ञानमात्र स्वरूप। मैं तो एक ज्ञानमात्र जाननहार, मात्र। सर्वज्ञस्वभाव मात्र मैं आत्मा हूँ। ज्ञानमात्र कहो या पूर्ण ज्ञानमात्र कहो, सर्व ज्ञानमात्र कहो, सब एक ही बात है। समझ में आया?

मैं एक, मैं नित्य '**चैतन्यात्मनि**' मैं त्रिकाल—त्रिकाल कायम त्रिकाल चैतन्यस्वरूप, वह मैं हूँ। यह शरीर, वाणी, जड़, वे मेरे नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प, वे भी मेरे तीन काल के सत्त्व के सत् में उनका प्रवेश नहीं। समझ में आया? ऐसा कायम रहनेवाला, त्रिकाल, **सर्व काल ज्ञानमात्रस्वरूप है।** ओहो! **और कैसा है?** '**निःकर्मणि**' '**निःकर्मणि**' सर्व कर्म की उपाधि से रहित हूँ। मैं अर्थात् चैतन्य। जैसे हीरा डिब्बी में पड़ा हो परन्तु वह हीरा डिब्बी से भिन्न है और डिब्बी में कोई मैल हो और उसे छुआ हो, उस मैल से भी वह भिन्न है। उसी प्रकार यह जड़ की डिब्बी है, उसमें चैतन्य हीरा है। उस चैतन्य हीरा को डिब्बी के लक्ष्य से हुए पुण्य-पाप के मैल के भाव हैं। उस मैल और डिब्बी से रहित आत्मा है। समझ में आया?

एक बार उस अस्सी हजार के हीरा का नहीं कहा था? साठ हजार के हीरा का। बेचरभाई वहाँ लाये थे। (संवत्) १९९९ के वर्ष। अस्सी हजार का। उसमें अस्सी हजार की कीमत क्या? (उन्होंने कहा), आठ रतिभार है। आठ रतिभार। क्या? आठ रतिभार का हीरा था। कहा, इसकी कीमत कितनी? तो कहा, अस्सी हजार। क्यों? एक रति के दस हजार रुपये। पत्थर के, परमाणु के पिण्ड के? एक डिब्बी में लाये थे।

मखमल की डिब्बी, अन्दर खड्डा हो। ऐसे तो कुछ घिसता है, परन्तु अस्सी हजार की एक चीज़। डिब्बी (के अन्दर) खड्डा मखमल का। दो हीरा लाये थे। एक अस्सी हजार का, एक साठ हजार का। मुझे तो दूसरा कहना है। उस आठ रति में एक रति की दस हजार की कीमत इस पत्थर की। जिसने कीमत आँकी, उसकी कीमत कितनी? वह (हीरा) तो कुछ है नहीं, वह तो मिट्टी धूल है। हीरा इसलिए कम मिलता है, चकचके, टिका रहे। इन तीन के कारण कीमत है। क्या कहा? ऐसे हीरे कम मिलते हैं, चकचके और टिके रहे, इसलिए उनकी कीमत। दूसरा कुछ है? भूख लगी हो तो काम आवे?

यह भगवान महातत्त्व है। किसी प्राणी को प्राप्त होता है और यह चकचकाहट ज्ञान से भरपूर तत्त्व है। समझ में आया? नित्य टिकता है। कोई ज्ञानी को—आत्मा को प्राप्त होता है और वह नित्य रहनेवाला है और ज्ञान की चकचकाहट से भरपूर है। यह खबर नहीं होती। यह क्या होगा? समझ में आया इसमें? ऐसा मैं नित्य चैतन्य चमकता हीरा हूँ। चैतन्य के ज्ञान के प्रकाश की किरणों से भरपूर भगवान हूँ। यह सब मिट्टी, वह मैं नहीं। यह पुण्य-पाप के विकल्प भूतकाल में हुए, वे मेरे नहीं। मैं वहाँ से वर्तमान हटा हूँ, इसलिए भूतकाल के पुण्य-पाप से भी हट गया हूँ। समझ में आया?

समस्त कर्म की उपाधि से रहित है। आहाहा! **क्या करता हुआ ऐसे प्रवर्तता हूँ? 'तत्समस्तं कर्म प्रतिक्रम्य'** लो! **पहले किया है जो कुछ अशुद्धपनारूप कर्म...** इसी भव पहले या वर्तमान से पहले अशुद्ध—पुण्य और पाप, हों! यहाँ दोनों हैं। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, यह दो **जो कुछ अशुद्धपनारूप...** असंख्य प्रकार के अशुद्धपने के मलिन भाव। भगवान मैं तो चैतन्य चमकता तारा हीरा हूँ। ....चन्दजी!

मेरा स्वरूप धर्मी को धर्म स्वभाव पूरा आत्मा में भासित होता है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति इत्यादि। अनन्त गुण चैतन्यरूप ऐसा मैं वह, इस भूतकाल के सब विकल्पों से मैं विमुख होता हूँ, अर्थात् कि वर्तमान में विमुख हुआ है, इस अपेक्षा से भूतकाल से विमुख हुआ हूँ, ऐसा उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। समझ में आया? अरे! यह किस प्रकार का प्रतिक्रमण? ऐसी वह क्रिया कैसी होगी यह? कहो, भगवानभाई! इसका

नाम प्रतिक्रमण। प्रतिक्रम—विमुख होना। तो किससे? कि पुण्य-पाप के विकारभाव से। कि जो अशुद्ध परिणाम हैं वह। किसमें आना? कि मैं चैतन्य भगवान ज्ञानमूर्ति हूँ, उस ज्ञान में आऊँ और स्थिर होता हूँ, अनुभव करता हूँ। उस ज्ञान में ज्ञानस्वरूप चैतन्यब्रह्म आनन्दमूर्ति भगवान तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने सर्वज्ञप्रभु ने जो यह आत्मा देखा, वह आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति है, ऐसा मैं हूँ। भगवान ने देखा ऐसा मैं देखता हूँ। ओहो! ऐसे आत्मा में कर्म की उपाधिरहित... समझ में आया?

पहले किया है जो कुछ अशुद्धपनारूप... ऐसा कार्य, **उसका अतिक्रमी कर—त्यागकर।** समझ में आया? उसका त्याग करके। और पहले कहा था कि अशुद्धता का त्यागमात्र परमार्थ से आत्मा में नहीं है। नाममात्र नहीं, अशुद्धता के त्याग का नाममात्र आत्मा में है। यहाँ शैली क्या समझानी है? कि उसमें हटा तू कहाँ से, आया कहाँ से, इस अपेक्षा से इसका त्याग करता हूँ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? मैं एक चैतन्यप्रभु परमात्मा की जो शक्ति की व्यक्ति अरिहन्त परमात्मा को हुई, जो शक्ति थी वह प्रगट हुई। ऐसा शक्तिवान मैं अकेला चैतन्यस्वरूप मेरा उसमें, मैं दृष्टि देकर स्थिर होता हूँ, अनुभव करता हूँ और इन पुण्य-पाप के भाव से पृथक् (पड़ता हूँ)। ऐसे दो—इनसे छूटता हूँ और उसमें स्थिर (होता हूँ), ऐसी प्रतिक्रमण की व्याख्या में इस प्रकार समझाते हैं। समझ में आया?

यह वस्तु तो ज्ञानमात्र आत्मा है, ऐसा अन्तर में अनुभव होने पर यह छोड़ता हूँ, यह उसमें होता नहीं। परन्तु छूटता है, उसे छोड़ता हूँ, ऐसा यहाँ कहा गया है। समझ में आया? यह कितने पाठ बोलने से ऐसा प्रतिक्रमण होता होगा? वह पाठ तो यह जड़ मिट्टी बोलती है। यह जड़ है, आत्मा कहाँ है? आत्मा में भाषा है? वह तो जड़ बोलता है। अन्दर ज्ञानानन्द का पाठ पढ़ना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ को इस प्रकार त्रिकालज्ञ दिखा? तो फिर पुरुषार्थ करने का कैसे कहा? शुक्लध्यान करो, करो। अरे! भगवान! यह ऐसी बात है। परन्तु त्रिकालज्ञ जहाँ तीन काल का ज्ञान है, ऐसा जहाँ निर्णय हुआ... आहाहा! उस आत्मा में ज्ञानस्वरूप भगवान की दशा में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष पर्याय में पर्याय जानते हुए ज्ञात हो जाते हैं।

अरे! यह वह कोई (बात है), इसका निर्णय होना, यह कहीं साधारण बात है?

अरिहन्त भगवान सर्वज्ञ त्रिकाल ज्ञानी, तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में हथेली में आँवला दिखे, उससे अनन्तगुणे स्पष्ट दिखते हैं। ऐसा भगवान आत्मा का एक सेकेण्ड के असंख्य भाग का एक गुण की एक अवस्था की इतनी सामर्थ्य है! यह वह कुछ (बात है)! समझ में आया? ऐसे अरिहन्त को यह स्वीकार करने पर उसका आत्मा ज्ञान में तुल जाता है। मैं ही ऐसा समझनेवाला हूँ। ऐसी चीज़... ऐसी चीज़... ऐसी चीज़... उसकी सत्ता का स्वीकार एक समय की पर्याय से परलक्ष्य से नहीं हो सकता। यह ज्ञायकभाव पूर्ण स्वभाव (से) भरपूर। बोलने में तो क्या आवे? ऐसा एकरूप स्वभाव का अन्तर निश्चय होने पर तब सर्वज्ञ का निश्चय होता है। यह तो सम्यग्दर्शन हो गया। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्ज्ञान हुआ और स्वरूप के आचरण का अंश जागृत हुआ।

कहते हैं, कि यह भगवान ने ऐसा प्रतिक्रमण कहा है। वे भगवान सर्वज्ञ थे, उन सर्वज्ञ ने मेरे लिये ऐसा कहा है। ऐसा आत्मा अपने नित्य चैतन्य स्वकाल में रहा हुआ ज्ञानमूर्ति मैं। मैं कभी रागरूप हुआ नहीं, शरीररूप हुआ नहीं। और मेरे स्वभाव को कभी छोड़ा नहीं। ऐसा अन्तर में अनुभव होने पर अशुद्धपनेरूपी कार्य का त्याग होता है। समझ में आया? लो, यह प्रतिक्रमण। शिवलालभाई! वहाँ कितने प्रतिक्रमण किये होंगे सही! जमशेदपुर। यह प्रतिक्रमण कर आये। संवत्सरी के दिन न जायें तो बनिया जैन न कहलायें। चलो, भाई लोकलाज से भी आसन डाले न चलो वहाँ। अरे! भगवान! प्रतिक्रमण किसे कहना, भाई! तूने सुना नहीं और तुझे आया कहाँ से?

कहते हैं, अरे! **कौन सा कर्म?** कहते हैं कि किस कर्म में अशुद्धपने का त्याग हुआ? **'यत् अहं अकार्षं' जो आप किया है।** जो स्वयं ने पूर्व में पुण्य-पाप के विकल्प पर्याय में अज्ञानभाव से कर्तृत्वबुद्धि से किये थे। **किस कारण से? 'मोहात्'** देखा? भूतकाल में कैसे किये थे? **'मोहात्'** यह पुण्य और पाप के भाव, पुण्य और पाप के भाव जो पूर्व में हुए थे, (वे) कैसे किये थे? **शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट होकर...** यहाँ तो मिथ्यात्व की ही बात है। पूर्व में पुण्य-पाप के भाव किये थे, वे शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट

होकर, मेरा काम है, ऐसा मैंने माना था। ओहोहो! अभी तो यहाँ शरीर के काम (मैं करता हूँ, ऐसा मानता है)। उसमें तीसरा बोल लिया है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे, वह खोटा है। ऐसा नहीं होता तो फिर इस मदिरा का निषेध किसलिए करते हो? यह सब ढोंग किसका रचा है, यह मन्दिर और सब? ऐई! न्यालभाई! अरे... भगवान! तेरी बलिहारी है न! पूरा वह कैसा? ऐसे लेख उसमें आवे, वह उसकी दूसरी बातें करे, उसके अरमान क्या? आहाहा! जिसकी जाति की, केवलज्ञान की जाति की खबर न हो, उसने क्या जाना, उसकी खबर नहीं होती। वे लोग विरोध की बातें करे, वह विरोध तो उनका स्वयं का करते हैं। क्यों कन्हैयालालजी? आहाहा!

भाई! यह सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग तीर्थंकरदेव, भाई! उनके केवलज्ञान की परीक्षा होना, वह तो आत्मा को मोक्ष के भणकार बजे हैं। वह केवलज्ञान अर्थात् मोक्षदशा है न? आहाहा! उन्होंने ऐसे तीन काल-तीन लोक देखे हैं। आहाहा! अनादि-अनन्त सब देखा। अनादि-अनन्त देखा अर्थात् आदि क्यों नहीं देखी? परन्तु आदि है कहाँ, वे देखें। जैसा है, वैसा अनादि-अनन्त ज्ञान में देखा। तब और कहे, अनादि-अनन्त देखा न? वहाँ कहाँ ऐसा कहा कि ऐसे हो गया है? परन्तु है नहीं... पश्चात् इसलिए त्रिकालज्ञ नहीं है। आहाहा!

एक व्यक्ति कहे, त्रिकालज्ञ हो तो मेरी भविष्य की पर्याय कहे। प्रभु! क्या कहता है तू यह? भविष्य की पर्याय अर्थात् अन्तिम पर्याय कहे। अन्तिम अर्थात् मेरा नाश हो जाये, ऐसा कहे। तू क्या कहता है यह? अन्तिम पर्याय अर्थात् फिर मेरा नाश हो जाये, ऐसा भगवान कहे तो भगवान तीन काल के जाननेवाले कहलायें। छोटाभाई! अरे! भगवान! भगवान ऐसा देखे कि इसकी यह पर्याय अन्तिम है अर्थात् कि अब फिर नाश हो जायेगा, द्रव्य और पर्याय दोनों। या पहली पर्याय कहे। अर्थात् पहला द्रव्य और पर्याय मैं था ही नहीं। ऐसा भगवान ने देखा हो तो भगवान सच्चे तुम। आहाहा! गजब है न...! तर्क भी करता है न? सामने भगवान भी खड़ा है न!

रामचन्द्रजी और लक्ष्मण के सामने रावण खड़ा रहे, हों! आहाहा! साधारण का काम नहीं। लक्ष्मण, वासुदेव के सामने खड़ा रहना, वह बहुत गहरे जाना हो, वे खड़े

रहें। बलदेव के सामने रामचन्द्रजी को वह रावण खड़ा हो। विद्या... विद्या... विद्या... घेरा डाला एक बार। रामचन्द्रजी को शंका पड़ गयी। अरे! हम बलदेव, वासुदेव और यह क्या? यह रावण की इतनी विद्याओं ने घेरा डाला, मेरे लक्ष्मण को शक्ति मारी। मेरा लक्ष्मण बोलता नहीं, यह क्या हुआ? यह वासुदेव है। यह हुआ क्या? एक बार राम को ऐसा हो गया। आहाहा! समझ में आया? नहीं, मेरा भाई लक्ष्मण मरेगा नहीं। इसे मारेगा, फिर यह रहेगा नहीं। वैर-बैर नहीं, हों! हम लक्ष्मण और राम वासुदेव और बलदेव हैं। हमारी पदवी के योग्य यह दशा, हों! हमारे कोई विरोध नहीं है, हों! आहाहा! देखो तो सही ज्ञान! जमुभाई! यह स्थिति है, भाई! हमारी यह स्थिति है, बापू! रामचन्द्रजी कहते हैं। रावण के घर जाते हैं। मन्दोदरी के घर (जाते हैं)। माँ, बहिन, माता! हमारे कोई दुश्मन नहीं, हों! रावण भी... हमें इतने पुण्य के कारण ऐसी स्थिति है, माँ! .... यह वह कोई जाति है? यह वे कहीं राम और लक्ष्मण की आत्मा की जाति कौन सी है? उत्तम पुरुषों की बातें कोई दूसरे प्रकार की होती हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान के ज्ञान में बलदेवरूप से ज्ञात हुए हैं। हमारा बलदेवपना तो वह तीन खण्ड के राज का, पुण्य प्रकृति का परिणाम आयेगा, तब वह बलदेवपना हुआ कहलायेगा। दूसरा उपाय नहीं है। हम ज्ञान हैं, हम आनन्द हैं, हों! हमें यह विकल्प करना पोसाता नहीं तो दूसरे को मारना, यह हमको शोभा नहीं देता, भाई! आहाहा! यह वह कहीं दिखाव (होगा)! यहाँ सिर कटते हैं, सिर। ... लाखों मुर्दे खूनवाले पड़े हैं, लाखों हाथी मर गये हैं, रावण मरा, कुकर्म हो गये। वहाँ वे अन्दर जाकर कहते हैं, माँ! माता! हम राम और लक्ष्मण हैं, माता! हम किसी के शत्रु नहीं हैं, हों! यह हमारे सामने खड़ा रहनेवाला एक था। वह गया, वह गया अब। आहाहा! जमुभाई!

आत्मा का जहाँ भान वर्तता है, हम तो आत्मा हैं, बापू! हम तो ज्ञान और आनन्द की मूर्ति हैं, परन्तु इस पदवी के योग्य ऐसे विकल्प और इस प्रकार की स्थिति हुई है। हम जानने-देखनेवाले हैं, परन्तु यह घटित हुआ है, भाई! आहाहा! समझ में आया? उसको विधवा करते हैं और वापस जाकर माता कहते हैं। माँ! माता! बहिन! रावण मेरा

दुश्मन नहीं था। मार किसलिए दिया? बापू! हमारी स्थिति ऐसी है, पुण्य का प्रकार ऐसा है। सीताजी यहाँ लाये। दूसरा क्या उपाय हमारे? नहीं तो हमारे मारने का कुछ है नहीं। आहाहा! भीखाभाई!

यह आत्मा के ज्ञान में बोलते हैं। भान से बोलते हैं। उस भव में मोक्ष जाना है, रामचन्द्रजी को उस भव से मोक्ष जाना है। यह तो स्थिति बनती है। अरे! यह राग और यह राज। यह राग और यह राज। धिक्कार... धिक्कार है। हमारे आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसमें हम जाना चाहते हैं। हमारे राज चाहिए नहीं। विभीषण! यह तेरा राज सम्हाल, बापू! तो मार किसलिए दिया? विभीषण है न उसका (रावण का) भाई? इस ओर थे। भाई! यह राज तेरा, हों! हमें राज को क्या करना है? हम दाल, भात, रोटियाँ तो हमारे अयोध्या में है। हमारी पदवी ऐसी है। आहाहा! यह आत्मस्वभाव जहाँ दृष्टि में वर्तता है, उसे विकल्प में ऐसा भाव आया, उसका भी अन्दर अरमान नहीं और उसमें निन्दा वर्तती है। समझ में आया? यह तो उस समय का थोड़ा प्रतिक्रमण कहा। आहाहा! बापू! यह कहीं बाहर की क्रिया नहीं, हों! आहाहा! अरे! हम आत्मा हैं न! हम तो परमात्मा होने के लिये हमारा यह भव है। यह भव, भव बढ़ाने के लिये नहीं है। किसी को दुःख देने के लिये हमारा भव नहीं है। आहाहा! हमारा भव तो परमात्मा होने के लिये है, हों! उस बीच में यह हुआ। शान्ति, क्षमा दो, क्षमा दो। अन्तर में से आत्मा बोलता है। बोलता है अर्थात् जागता बोलता है अर्थात् जागता जानता है। समझ में आया? उसमें भी जब यह प्रतिक्रमण का प्रसंग—स्थिरता... यह तो छठवें गुणस्थान की, पाँचवें गुणस्थान की स्थिरता है मुनि की दशा... आहाहा! हम तो परमात्मा का पूर्ण राज लेने के लिये प्रयासरत हैं। यह बीच में भूतकाल के विकल्प आये थे। वे अज्ञानभाव से स्वरूप के भ्रष्टभाव से किये हुए, हों! हमारे स्वरूप को हमने नहीं जाना था। इसलिए वहाँ कर्तृत्वबुद्धि से पूर्व में पुण्य और पाप (किये हुए हैं), देखो! पुण्य और पाप कर्तृत्वबुद्धि से किये, उसका हम नाश करते हैं। आहाहा! यह कहते हैं, कि पूर्व में पुण्य किया और हमको पैसे मिले और हम सुखी हैं। मूढ़ है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

'अहं' स्वयं किये। मैंने किया था, कहते हैं। अर्थात् क्या? कि यह कर्म के कारण मुझे हुए है, ऐसा नहीं। भाई! आहाहा! पूर्व में मुझमें पुण्य-पाप के भाव थे, किये थे, हों! किये थे, हों! वह कर्म का जोर था, इसलिए किये थे, इसलिए विमुख होता हूँ—ऐसा नहीं है। मैं ही मेरे चैतन्य शुद्धस्वरूप से हटा था। अकेला हटा (ऐसा) नहीं, भ्रष्ट था। अकेला ज्ञानानन्द भगवान आत्मा यदि मैंने अनुभव में लिया हो तो पूर्व में यह शुभाशुभभाव का कर्तृत्व कैसे स्वीकार किया जाये? इसलिए आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान से भ्रष्ट हुआ मैं भूतकाल में पुण्य और पाप के भाव किये (उन्हें अब) छोड़ता हूँ, त्यागता हूँ, स्वरूप में स्थिर होता हूँ, इसका नाम भगवान तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी प्रभु प्रतिक्रमण कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? कहीं सुनना न मिले, खबर न हो। सोनगढ़ में प्रतिक्रमण नहीं, ऐसा कितने ही कहते हैं? है तुम्हारे हमारे जैसा प्रतिक्रमण है? अरे... भगवान! सुन न भाई!

प्रभु वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने यह प्रतिक्रमण कहा है। दृष्टि को आत्मा में रखने से मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता है, वह वास्तविक पहला प्रतिक्रमण है। आहाहा! पहला तो मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होगा या नहीं? या मिथ्यात्व के प्रतिक्रमण बिना अव्रत का प्रतिक्रमण हो जाये? यहाँ भ्रष्ट कहा न? अरे! मैं आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्यस्वरूप मेरा, उसे मैंने भ्रष्ट किया, मैंने लक्ष्य में, दृष्टि में नहीं लिया और यह मैंने पुण्य और पाप के भाव, भूतकाल में किये, वे मैं छोड़ता हूँ। मेरे स्वरूप में वे नहीं थे और भ्रष्ट होकर किये, वह अब स्वरूप में आकर छोड़ता हूँ। स्थिर होकर, वर्तमान स्थिर होकर छोड़ता हूँ, इसका नाम भूतकाल का प्रतिक्रमण कहा जाता है।

ऐसे तो सवेरे, शाम बहुत बोलता है। भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, आगामी काल का प्रत्याख्यान। पहाड़े बोल रखे हैं। एक भी भाव की खबर नहीं होती, भाषा की खबर नहीं होती। भीखाभाई! दो वर्ष के लड़के को कहे कि ऐ, विवाह करना है? सबकी हाँ... हाँ... करते (पूछे कि) विवाह करना है? तो कहे, हाँ। किसके साथ? यह पच्चीस वर्ष की जवान लड़की है, इसके साथ? हाँ। परन्तु तू यह हाँ क्या कहता है? क्या हाँ कहता है और क्या न कहता है, कुछ तुझे खबर है? आहाहा!

धरमचन्दजी! यह अज्ञानी के ऐसे प्रतिक्रमण हैं। न्यालभाई! यह दो वर्ष के लड़के को पूछे।

हमारे हिम्मतभाई की उस गीता की परीक्षा की थी न? उस लड़की के जातिस्मरण की। तू वहाँ जूनागढ़ में जाकर तेरी माँ को पहिचानेगी? हाँ। तेरे पिता को पहिचानेगी? हाँ। तेरे काका को पहिचानेगी? हाँ। गीता को पहिचानेगी? गीता को पहिचानेगी? गीता मैं हूँ, ऐसा बोली। यह वजुभाई के पुत्र की पुत्री। जूनागढ़ के गोकलदास की पुत्री थी, ढाई वर्ष में मरकर यहाँ अवतरित हुई है। यह प्रवीणभाई के यहाँ। वजुभाई के पुत्र की पुत्री। यहाँ राजुल नाम है, वहाँ गीता नाम था। उसने और ऐसा तर्क रखा कि उसे पहिचानेगी? हाँ। अमुक को पहिचानेगी? हाँ। गीता को पहिचानेगी? गीता मैं हूँ। गीता कहाँ से आयी? खोली बदली है। वहाँ थी और यहाँ आयी हूँ। यह खोली हूँ, मैं गीता हूँ। है न वह लड़की राजुल केशोद है न? केशोद है। समझ में आया? पाँच वर्ष की है। उसने ऐसा मारा। मुझे बात करते थे। यह पण्डित भी गजब लगता है। वहाँ भी पण्डितपना... तू वहाँ गीता को पहिचानेगी? गीता तो मैं हूँ। मैं ही गीता वहाँ से मरकर यहाँ आयी हूँ। हें! कहो, समझ में आया?

आत्मा कौन है? राग में आत्मा है? अमुक आत्मा है? मैं चैतन्य हूँ। आत्मा को पहिचानेगा तू? राग को पहिचानेगा? आत्मा पहिचानेगा? आत्मा तो मैं हूँ। मैं ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप, वह मैं आत्मा हूँ। कहो, समझ में आया इसमें? ऐई! इसे कुछ खबर नहीं होती। जय नारायण, भगवान... भगवान, जय सीमन्धर भगवान, मिच्छामि दुक्कडम। जाओ, यह चले। सीमन्धर भगवान कौन है? कहाँ है? उन्होंने क्या कहा है? आत्मा क्या? कुछ खबर है? कौने-कौने में चरण छूता है। उन लोगों को मूर्ति नहीं न, इसलिए (ऐसा करते हैं)। ईशान कौने में न? जय भगवान...! वहाँ विराजते हैं न? यह तेरा भगवान यहाँ विराजता है, वह कौन है, तुझे खबर है। आहाहा!

कहते हैं कि मैं एक चिदानन्द भगवान आत्मा हूँ। मैं आत्मा मेरे स्वभाव में वर्तते हुए भूतकाल के पुण्य-पाप के भाव मैंने मेरे चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा से भ्रष्ट होकर किये थे, वे मैं छोड़ता हूँ। मेरे चैतन्यस्वरूप में अन्तर स्थिर होकर छोड़ता हूँ। **कर्म के उदय**

में आत्मबुद्धि होने से। देखो! क्या कहा? और वापस ऐसा लिया। विकार है, वह मेरा स्वभाव नहीं था। उसमें मैंने आत्मबुद्धि की थी (कि) यह मेरे हैं। पूर्व में पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव हुए थे, उन्हें मैंने मेरा माना था, इसलिए मैं स्वरूप से भ्रष्ट हुआ था। देखो, यह वापस डाला? समझ में आया? आहाहा! **शुद्ध स्वरूप से भ्रष्ट होकर कर्म के उदय में आत्मबुद्धि होने से।** इसका अर्थ, कर्म के उदय में आत्मबुद्धि होने से अर्थात्? कर्म के उदय में अर्थात् कि जो विकार है, वह कर्म के निमित्त से हुआ विकार है, ऐसा बतलाना है। कर्म से हुआ, ऐसा नहीं कहना। परन्तु कर्म के संग में मैंने पूर्व भगवान आत्मा चिदानन्द का संग छोड़ा, शुद्ध चैतन्य का संग छोड़ा, मैंने वहाँ संग किया, उनके संग से उत्पन्न हुआ भाव, उसे मैंने मेरा माना। यदि उसे मेरा न माना होता तो मैं ज्ञानानन्द मेरा स्वरूप है, उसमें मैं आ गया होता। समझ में आया? लो, यह प्रतिक्रमण। जमुभाई कभी सुना नहीं होगा। कौन जाने कैसा होगा? शाम को वृद्धा बैठे। जय भगवान! बातें करे। आहाहा! अरे! भगवान! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर महा देवाधिदेव की वाणी में ऐसा आया। यह भगवान ने कहा है। आगम में कहा है, ऐसा कहा है। कुकर्म किये हैं। आगम में छह द्रव्य कहे हैं, इसलिए कहा। आगम को तर्क और युक्ति से कहना है। अरे! भगवान! यह क्या कहता है तू यह? अररर! ऐसे के स्थान दिये इसमें। भगवान केवलज्ञानी तो एक समय में, भगवान का ज्ञान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष जानता है। यह भूतकाल के प्रतिक्रमण की व्याख्या की। अब वर्तमान काल का संवर कहते हैं? वर्तमान की आलोचना किसे कहना, यह बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक-१९-११-१९६५, कलश-२२७, प्रवचन-२४४-M

भूतकाल के प्रतिक्रमण की बात हो गयी है। होता है, एक क्षण में, हों! परन्तु उसके काल के भेद से तीन प्रकार के कथन किये हैं। अर्थात् क्या समझ में आया? देखो! वर्तमान आलोचना।

वर्तमान काल की आलोचना इस प्रकार है —

न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि
मनसा च वाचा च कायेन चेति।*

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'न करोमि' वर्तमानकाल में होता है जो राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मबन्ध, उसको मैं नहीं करता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है—मेरा स्वामित्वपना नहीं है, ऐसा अनुभवता है, सम्यग्दृष्टि जीव। 'न कारयामि' अन्य को उपदेश देकर नहीं करवाता हूँ। 'अन्यं कुर्वन्तं अपि न समनुजानामि' अपने से सहज अशुद्धपनारूप परिणमता है जो कोई जीव, उसमें मैं सुख नहीं मानता हूँ; 'मनसा (च)' मन से, 'वाचा (च)' वचन से, (और) 'कायेन (च)' शरीर से। वर्तमान कर्म का, मेरे (सर्वथा) त्याग है।

न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि
मनसा च वाचा च कायेन चेति।

वर्तमान में होता है जो राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मबन्ध, उसको मैं नहीं करता हूँ। क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि जीव (जिसे) आत्मा शुद्ध आनन्द का अन्तर सम्यग्दर्शन में अन्तर अनुभूति से आनन्द में अनुभव हुआ है। सम्यग्दृष्टि में अथवा सम्यग्दृष्टि को यह आत्मा शुद्ध चैतन्य पवित्र आनन्दकन्द का अनुभूति द्वारा आनन्द का वेदन हुआ है। वह सम्यग्दृष्टि वर्तमान में संवर की स्थितिरूप वर्तने को क्या विचार करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवर और आगामी काल का प्रत्याख्यान। यह संवर की स्थिति वर्णन करते

हैं। यह संवर के काल में भूतकाल का प्रतिक्रमण होता है, भविष्य का प्रत्याख्यान भी उसी काल में है परन्तु कालभेद से तीन प्रकार का कथन किया है। आता है प्रतिक्रमण में? सुना है? कभी प्रतिक्रमण में गये नहीं? वर्षों पहले (किया था)। भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, आगामी काल का प्रत्याख्यान, यह तो बहुत बोलते हैं पूरे दिन.... क्यों प्राणभाई! न्यालभाई ने तो कितनी बार ऐसा किया होगा।

कहते हैं कि धर्मी अर्थात् देखो! शब्द कौन सा लिया है? कि, वह सम्यग्दृष्टि जीव। देखो! भावार्थ में अन्त में लिया है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि प्रथम है। आत्मा को पुण्य-पाप के राग से, कर्म से, शरीर से भिन्न हटाया है। अर्थात् कि भिन्न हटाकर आत्मा के स्वरूप में अनुभव की दृष्टि (हुई है), वह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अनुभव में उपयोग में आया है। वह संवर एक बात है। यह कहीं आठवें गुणस्थान की बात नहीं है। 'मैं ऐसा करूँ' ऐसा शब्द है न इसमें? भले अभी कथनशैली ऐसी हो परन्तु यह वस्तु आठवें की नहीं है। शुद्ध उपयोग में अन्तर में स्थिर होने के काल में मेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञानानन्द है, मैं शुद्ध चैतन्य को अवलम्बता हूँ। यह अवलम्बन पहले आ गया है। वर्तमान काल में जो कुछ पुण्य-पाप के भाव अर्थात् राग-द्वेष के विकल्प अर्थात् कि अशुद्ध परिणति, मलिन दशा एक (बात) अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल-कर्मबन्ध। जड़ ज्ञानावरणीय और अशुद्ध परिणति, उसे मैं करता नहीं। अर्थात् कि अशुद्ध अवस्था को मैं करता नहीं, इसलिए कर्मबन्धन को भी मैं करता नहीं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? आलोचना और आता है या नहीं तीन में? संवर कहा। यहाँ तो सरल भाषा (की है)।

आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञान का पिण्ड प्रभु! अकेला आनन्द रसकन्द, उसके अनुभव में यह आत्मा ऐसे आनन्द का भान उपयोग में आया। अब स्थिर होने के काल में इस प्रकार से अभ्यास करता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। जो अशुद्ध परिणति पुण्य और पाप की शुभ-अशुभ की है, उसे मैं करता नहीं, अर्थात् कि मुझमें वह उत्पन्न होते नहीं। समझ में आया? मैं शुद्ध चैतन्य के अन्तर स्वभाव के सन्मुख परिणाम द्वारा यह अशुद्ध परिणमन मुझमें होता ही नहीं। अर्थात् कि मैं करता नहीं, इसलिए होता नहीं, इसलिए मुझे आठ कर्म का बन्ध है नहीं। समझ में आया?

यह संवर की—धर्मी की संवर की व्याख्या। यह हाथ जोड़कर खड़े हैं न, पाँच आस्रव के सेवा प्रत्याख्यान कराओ, वह संवर नहीं है। यहाँ तो आत्मा जिससे एकत्वबुद्धि राग की अस्थिरता जो हो; एकत्वबुद्धि पहले टली है, शुभ-अशुभभाव के राग की और स्वभाव की एकत्वबुद्धि जो मिथ्यात्व में थी, वह टलकर ज्ञायक चैतन्य शुद्ध हूँ, ऐसे स्वभाव के साथ एकत्व हुआ है। राग से पृथक्त्व आत्मा को जाना, अनुभव किया, देखा है। इसे अब अशुद्ध परिणति जो है, वह स्वभाव-सन्मुख के परिणाम के काल में कहते हैं कि, वह अशुद्ध परिणति मैं करता ही नहीं और जरा होती हो तो उसका मैं स्वामी नहीं। उसमें मैंपना नहीं, मैंपना मेरे ज्ञायक शुद्धस्वभाव में मैंपने के कारण पुण्य आदि के विकल्प हैं, उनमें मेरा मैंपना नहीं है। समझ में आया? ऐसी सब व्याख्या भारी। कहो, समझ में आया या नहीं?

जो आठ कर्म और अशुद्ध परिणति का मैं स्वामी अर्थात् मैं उसमें नहीं। वे मेरे नहीं, मैं उनमें नहीं। मैं तो ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य द्रव्य जो मार्ग देखा है अन्दर दृष्टि से, ज्ञान से मार्ग देखा है, उसमें मैं उन्मुख हुआ हूँ, इसलिए यह अशुद्ध की परिणति मेरी नहीं है, मैंने नहीं की अथवा होती हो तो मैं उसमें नहीं, उसका स्वामी नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? यह साधारण मनुष्य को न समझ में आये, फिर कुछ दूसरा तो करना पड़े या नहीं? परन्तु वह धर्म करता नहीं दूसरा करे तो वह। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे पुण्यभाव विकल्प हैं। वह धर्म नहीं करता। परमार्थ धर्म वह नहीं है, वह परमार्थ संवर नहीं है।

चैतन्य के ज्ञायक स्वभाव के भण्डार को देखता, देखता, अनुभवता हुआ उसकी ओर के परिणाम से झुकता हुआ, अशुद्ध परिणति से हटता हुआ अथवा कर्मबन्धन मुझे नहीं है अथवा मुझमें नहीं है, उसमें मैं नहीं हूँ, ऐसे आत्मा को अनुभवता हुआ, **मैं नहीं करता हूँ।** अर्थात्? **भावार्थ इस प्रकार है—मेरा स्वामित्वपना नहीं है...** अर्थात् उसमें मैं नहीं, ऐसा। जिसमें मैं हूँ, वहाँ तो शुद्ध ज्ञान और आनन्द की परिणति, वहाँ मैं हूँ। धर्मचन्दजी! यह संवर वहाँ खण्डवा में कही सुना है?

सब चिल्लाहट मचाते हैं। आज आया है, अरे! तुमने तो छहढाला में कुकर्म

किये हैं। वह की वह बात। कुशास्त्र किये, कुशास्त्र किये। सब कुशास्त्र.... अब जरा हल्का किया है। वह तो श्वेताम्बर के लिये लिखा है, ऐसा करके हल्का करके बचाव करते हैं। अरे! भाई! यहाँ तो वह परमार्थधर्म नहीं है। निश्चयधर्मरूप से निश्चय धर्मी को व्यवहाररूप से धर्म कहा जाता है, परन्तु वह व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य। उसे निश्चय परमार्थ धर्म माने, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। यह नहीं, नहीं यह नहीं। यह शुभभाव भी धर्म है और यह साधन करते हुए निश्चय पाया जायेगा, वह आठवें में पाया जायेगा।

यहाँ तो अभी छठवें में बात करते हैं। मुनि की प्रधानता से बात है न इसमें? समझ में आया? छठवें में विकल्प उठता है, वहाँ यह मैं। फिर स्थिर होता है वहाँ यह नहीं। उस अशुद्ध परिणति में मैं नहीं, कर्म में मैं नहीं। मैं तो शुद्ध स्वभाव में हूँ, उसमें मेरा स्वामित्व है। राग का विकल्प पंच महाव्रत का उठे, उसमें मैं नहीं अर्थात् उसमें मेरा स्वामित्व नहीं। उसे मुनिदशा के योग्य संवर होता है। समझ में आया?

ऐसा अनुभवता है सम्यग्दृष्टि जीव। ऐसा अनुभवता है अर्थात् जानता है। आलोचना का अर्थ जानना भी होता है। भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान का आलोचन अर्थात् जानना। मैं शुद्ध चिदानन्द हूँ और रागादि मुझसे पृथक् है, उनका स्वामी नहीं। ऐसे ज्ञाता-दृष्टारूप से अपने में रहना, उसे जानना—ऐसा भी कहा जाता है। समझ में आया?

मेरा स्वामित्वपना नहीं है... अर्थात् कि पुण्य और विकल्प के भाव में और कर्म में मैं नहीं। मेरा अस्तित्व वहाँ नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तो पूर्ण आनन्द, ज्ञान, आनन्द आदि वस्तु का मैं स्व, वह मेरा और उसका मैं स्वामी। ऐसा धर्मी अपने संवरभाव की इस प्रकार भावना करता है। आहाहा! न्यालभाई! किस प्रकार यह संवर की भावना की थी? भाई! यह तो वृद्ध-पुराने व्यक्ति हैं न? सेठिया पुराने व्यक्ति हैं, शान्त हैं, शरीर भी वापस जवान जैसा शरीर है। क्यों प्राणभाई! आहाहा! अरे! इसने सुना नहीं, भगवान!

मैं एक भगवान परमात्मस्वरूप शुद्ध। ओहोहो! उसके अवलम्बन में पड़ा धर्मी अशुद्ध परिणति को कैसे अवलम्बे? उसे पृथक् रखता हुआ, स्वभाव में स्पर्शता हुआ अपनी स्थिति को शुद्ध प्रगट करता हुआ, वह अपने स्वभाव को अनुभवता हुआ, वह सम्यग्दृष्टि अस्थिरता का स्वामी नहीं होता। अस्थिरता वास्तव में निश्चय से देखें तो

उत्पन्न ही नहीं होती। जरा होती है तो उसका स्वामी नहीं अर्थात् वस्तु की पर्याय से भिन्न रह गयी, पर्याय से भिन्न रह गयी, हों! आहाहा! समझ में आया?

'न कारयामि' अन्य को उपदेश देकर नहीं करवाता हूँ। यह पुण्य-पाप करनेयोग्य हैं, ऐसा मैं मानता नहीं, ऐसा मैं कराता नहीं। वह शुभ-अशुभभाव करनेयोग्य है, मैं ऐसा उपदेश देता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! करनेयोग्य शुद्ध चिदानन्दस्वरूप में दृष्टि करके स्थिरता करनेयोग्य है। आहाहा! कठिन भाई! कहते हैं **'न कारयामि' अन्य को उपदेश देकर नहीं करवाता हूँ।** यह शुभ-अशुभराग या कर्मबन्धन मैं कराता नहीं, मैं कराता नहीं। समझ में आया?

शिक्षा करनी चाहिए। कहते हैं कि यह स्वरूप दृष्टि करके स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। बन्ध की भावना नहीं करना। बन्ध की और बन्ध के भाव की दोनों की कराता हूँ? कि, नहीं। संवर नहीं उसमें कराना क्या? समझ में आया? ओहो! ऐसा उपदेश है तो ऐसा कहते हैं, अब उस बात को न पकड़े। जिसके उपदेश में ऐसा आवे कि शुभ-अशुभभाव करनेयोग्य है, इसका अर्थ कि कर्म बाँधनेयोग्य है। अर्थात् बन्धन करनेयोग्य है और अशुद्धभाव करनेयोग्य है। यह तो उपदेश ही मिथ्यात्व हुआ। आहाहा! परन्तु दूसरा क्या हो? भाई! चाहे जो भी कर दूसरी चीज़, दूसरी पद्धति नहीं, वहाँ होगा क्या? समझ में आया? वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, ऐसा है उसमें दूसरा लाना कहाँ से? पुकार करे या चिल्लाहट मचाये या शान्त होकर सुने, मार्ग तो यह है। समझ में आया? व्यवहार के उपदेश में ऐसा आता है कि यह राग है, उसे जानना, ऐसा। रागादि हो, वह जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है न? (समयसार १२वीं गाथा)। इसका अर्थ है कि वह राग है, एक व्यवहार है, ऐसा जानना। जानना, आदरना नहीं। तथा नीचे व्यवहार नहीं है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! आज पत्र आया है न? जिनबिम्ब इसे कहा है। पत्र आया है, देखो! बात सच्ची, भाई! जिनबिम्ब तो यह आत्मा है। वह जिनबिम्ब तो पर है, व्यवहार है। ऐसा कहकर (यह कहना है कि) जिनबिम्ब यह ही है। उस बिम्ब में भटकते हैं, वे सब मूर्ख हैं। अरे! भगवान! बापू! वह व्यवहार असत्यार्थ है, आदरणीय नहीं परन्तु

व्यवहार का विषय है या नहीं? विषय है या नहीं? पूर्ण वीतराग न हो वहाँ व्यवहारनय का विषय है या नहीं? और है, इसलिए लाभदायक है, ऐसा नहीं और है, इसलिए असत्यार्थ है, इसलिए वस्तु ही नहीं, (ऐसा नहीं)। अरे! क्या हो? मूर्ति को नहीं माना। मूर्ति, भाई! वह तो पर है, वह जिनबिम्ब नहीं, उपचारिक जिनबिम्ब है।

यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, जिनबिम्ब यह वीतरागबिम्ब आत्मा, वह जिनबिम्ब है। मुनि की दशा, जिन वीतराग परिणति से परिणमित बिम्ब भगवान निश्चय से तो जिनप्रतिमा, वह आत्मा है। परन्तु उस आत्मा का ऐसा होने पर भी जब तक वीतरागता पूर्ण नहीं, उसे शुभ विकल्प आये बिना रहता नहीं। उससे लाभ है, ऐसा नहीं, परन्तु वह विषय आये बिना रहता नहीं और इसलिए उसका लक्ष्य भगवान की प्रतिमा... अरे! साक्षत् समवसरण में भगवान विराजते हों, लो न! तो भी उनमें विनय आदि का भाव आये बिना नहीं रहता। यह भाव है, वही असत्यार्थ विकार है, लो! परन्तु असत्यार्थ का अर्थ स्वरूप में उसका स्वरूप नहीं परन्तु पर्याय में है, वह भाव नहीं, ऐसा है? आहाहा! भारी खींचतान। एक व्यक्ति ने उड़ाया और एक व्यक्ति (कहे) बिल्कुल ही नहीं। एक व्यक्ति ने कहा, भगवान की मूर्ति के दर्शन और यात्रा और धर्म और संसार का नाश। उसके सामने डाला है, उसके सामने जिनबिम्ब का डाला है न? धवल में। जिनबिम्ब के दर्शन से निधत और निकाचित कर्म टलते हैं। अरे! कौन सा वह जिनबिम्ब? भगवान के जिनबिम्ब हैं, उनके सामने देखने से, विकल्प से दर्शनमोह टलता होगा? अरे! इसने ऐसा खींचा, उसने और ऐसा खींचा कि जिनबिम्ब तो कुन्दकुन्दाचार्य ने बोधपाहुड़ में उसे कहा। एक व्यक्ति कहता था वहाँ। वह बहुत अच्छा अधिकार है। सच्ची बात है। परन्तु वापस व्यवहार भी कहा है या नहीं उन्होंने? उस बोधपाहुड़ में कहा है। मुनियों के ध्यान के स्थान, जिनायतन। ऐसे स्थान कहे हैं। जिनायतन मन्दिर है या नहीं? नहीं? परन्तु खींचतान तुम्हारे। समझ में आया? यह भाव आवे, हो। उसकी मर्यादा व्यवहार के पुण्य जितनी है। वह धर्म को मदद करता है, ऐसा नहीं तथा वह भाव पर से आया है, ऐसा नहीं। इसकी निर्बलता के उस स्थिति के भाव में शुभभाव आये बिना रहता नहीं। बस! इतनी इसकी हद न आँककर, वह होता ही नहीं और आवे तो उससे लाभ हो, दोनों बातें विपरीत हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **उपदेश देकर नहीं करवाता...** देखो! यह आया व्यवहार उसे बतावे सही, परन्तु करनेयोग्य है और उससे लाभ है, ऐसा मैं उपदेश नहीं करता। आहाहा! क्यों, आया है न भाई इसमें? आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह मैं **उपदेश देकर नहीं करवाता...** इसका अर्थ इतना है। उसे आता है, उसे होता है—ऐसा व्यवहार के उपदेश में उसे बतलाते हैं, परन्तु वह करनेयोग्य है, कर्तृत्वबुद्धिसे करनेयोग्य है, ऐसा मैं उपदेश में कहता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! वस्तु को तो वस्तुरूप से रख न, भाई! खींचतान किसलिए करता है? समझ में आया?

अन्य को उपदेश देकर नहीं करवाता... यह संवर की क्रिया इसका नाम है। पुण्य और पाप के भाव और उनका बन्धन। मैं उपदेश देता नहीं कि पुण्य-पाप के भाव करनेयोग्य हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं। संवर का स्वामी, चैतन्य का स्वामी संवरदशा में ऐसा अभ्यास करता है। आहाहा! समझ में आया?

आनन्दघनजी कहते हैं, 'जिसका पक्ष लेकर बोलूँ वह मन से सुख माने।' आता है न? 'जिसका पक्ष छोड़कर बोलूँ, वह मन में चित्त ताने, माडी मुने निरपक्ष रहने नहीं दिया।' 'माडी मुझे निरपेक्ष किसे नहीं रखा।' निरपक्ष किसी को रहने नहीं दिया। वह का वह कहते हैं कि हाँ, यह तुम्हारी (बात सच्ची)। वह कहे, इसमें से धर्म नहीं होगा। खोटा। वह कहे, यह पुण्य पुण्य ही नहीं, यह व्यवहार बीच में होता ही नहीं। नहीं, यह खोटी बात है। वह उसे खींचे। खींचतान (करे)। उसे यह खोटा लगे। कहो, जमुभाई! 'माडी मुझे निरपक्ष किसने न रखा।' जहाँ-तहाँ पक्ष ले-लेकर बातें करे। अज्ञानी को यह कहते हैं, मुझे उलझन में डाल दिया।

भगवान आत्मा शुभ-अशुभ परिणाम बिना की चीज़, ऐसी दृष्टि के अनुभव में स्थिरता में कहते हैं, मैं कुछ पुण्य-पाप करता तो नहीं, क्योंकि वह उत्पत्ति ही नहीं अथवा मेरा स्वामित्व नहीं। तथा पुण्य-पाप में कराने का मेरे पास है नहीं। दोनों बात है कि अकेले पाप की ही बात है इसमें? आहा! अरे! भाई! यह शान्ति से समझना चाहिए। खींचतान (करे कि) लो! तब उसमें भगवान ने उपदेश दिया है या नहीं व्यवहार का? परन्तु हेतु तो एक यह शुद्धस्वरूप में उपयोग में स्थिर नहीं होता तब उसे ऐसा भाव

व्यवहार का होता है, ऐसा ज्ञान कराया है परन्तु कर्तृत्वबुद्धि से करना, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। उसका विकल्प उस प्रकार का आता है, उस प्रकार का ज्ञान कराया है और उस व्यवहारनय को भगवान ने स्थापित किया है। स्थापित नहीं किया, स्थापना न्यायसर है। नहीं आता ? स्थापना, दर्शाना, ऐसा वहाँ पाठ है। दर्शाना, व्यवहारनय दर्शाना, वह न्यायसंगत है। वहाँ ऐसा है। सब बात अक्षर-अक्षर सत्य है। आहा!

संवर उसे होता है, संवर उसे होता है कि पुण्य-पाप के परिणाम स्वयं करे नहीं और दूसरे से मैं कराता नहीं। और कराने का भाव (आवे), वह तो पुण्य-पाप ठीक है, ऐसा हुआ। पुण्य-पाप ठीक माने, उसकी तो दृष्टि आत्मा के धर्म पर है नहीं। बराबर है कन्हैयालालजी! आहाहा! अरे! भगवान! बापू! बात सत्य है, उसकी अन्दर में हाँ तो पाड़, हाँ तो (पाड़), मार्ग यह है, हों! आहाहा!

'अन्यं कुर्वन्तं अपि न समनुजानामि' अपने से सहज अशुद्धपनारूप परिणमता है, जो कोई जीव... कोई जीव अपने आप पुण्य-पाप के भावरूप होता है। मेरे किये बिना, मेरे कराये बिना होते हों। समझ में आया ? **उसमें मैं सुख नहीं मानता हूँ...** मैं उसमें आनन्द नहीं मानता, ऐसी भाषा ली है। देखो! उसमें मैं आनन्द नहीं मानता। आहा! मैं सुख नहीं मानता। है न ? आनन्द में ऐसा कहीं अर्थ में अपने आया था। समझ में आया ? आनन्द नहीं मानता। समझ में आया ? 'अनुमोदन' शब्द उसमें कहीं आया अवश्य था। आनन्द ऐसा अर्थ किया था।...

यहाँ कहते हैं, कोई प्राणी अशुद्धपने पुण्य-पापरूप परिणमे तो मैं उसे ठीक नहीं मानता अर्थात् मैं उसे आनन्दरूप से स्वीकार नहीं करता। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ तो अभी मुनि इस काल में अपने स्वरूप की भावना में ऐसा अभ्यास करता है। यहाँ तो निचले गुणस्थान की बात है। यहाँ आठवें की बात नहीं, आठवें में तो अन्दर ध्यान में स्थिर हो गया है। समझ में आया ? ओहोहो!

कहते हैं धर्मी संवर होनेवाला, संवर होनेवाला, संवररूप होनेवाला जीव ऐसी भावना विचारता है कि कोई मेरे अतिरिक्त के प्राणी, मैंने किये-कराये के अतिरिक्त, पुण्य-पाप के परिणामरूप परिणमता हो तो वह ठीक है, ऐसा मानता नहीं। ठीक है,

ऐसा मानता नहीं, इसका अर्थ कि मैं उसमें सुख मानता नहीं। समझ में आया? आहाहा! फिर ऐसा क्या लिया? कि शुभ-अशुभ कोई अशुद्ध परिणति करता है, वह तो दुःख है। उसमें मैं सुख मानता नहीं अर्थात् ठीक मानता नहीं। पुण्य और पाप की अशुद्ध परिणति—भाव, वह स्वयं दुःखरूप है, दुःखरूप परिणमे, उसे मैं ठीक कहता हूँ, सुख मानता हूँ—ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह वीतरागमार्ग। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का यह मार्ग—उज्ज्वल मार्ग है, उसे लोगों ने मलिन करके मनवाया है। मनवाया, हों! है नहीं; है तो जैसा है, वैसा है। समझ में आया इसमें? सुनने को मिलता नहीं और समझने के लिये विचार करे नहीं और अन्तर्मुख दृष्टि कैसे होना, उसकी खबर नहीं और संवर हो, हमको धर्म हो (ऐसा माना है)। क्या हो? अनन्त काल ऐसा का ऐसा अभिमान में व्यतीत किया, अनन्त-अनन्त काल।

आचार्य महाराज... देखो! अर्थ भी इन्होंने कैसा किया है! समझ में आया? '**कुर्वन्तं अपि न समनुजानामि**' सम्यक् प्रकार से मैं सुख नहीं मानता। सुख तो मेरा स्वभाव शुद्ध आनन्द में स्थिर होऊँ, उसमें मुझे सुख है। दूसरा भी आनन्द में स्थिर हो, उसमें उसे सुख है। क्या (कहा)? दूसरा भी स्वरूप के आनन्द में स्थिर हो, उसमें सुख है। अशुद्ध परिणति करे, उसमें उसे सुख नहीं। न्यालभाई! आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है।

मुमुक्षु : मध्यस्थ और तटस्थ ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तटस्थ अर्थात् मैं उसमें सुख मानता नहीं। मैं उसे अनुमोदता नहीं अर्थात् सुख मानता नहीं। वह दुःखरूप परिणमता है, ऐसा का ऐसा, सुखरूप मानता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

धार तरवारनी सोह्यली दोह्यली चौदमा जिन तणी चरण सेवा,
धार पर नाचता देख बाजिगरा सेवना धार पर रहे न देवा।

भगवान की आज्ञा की सेवा, वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की आज्ञा। यह आनन्दघनजी कहते हैं, लो, इसमें। भगवान की आज्ञा तो वीतराग परिणति की है।

समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ की आज्ञा वीतराग परिणति की है। राग की आज्ञा भगवान की नहीं। इस सेवा में धार की तलवारवाले सरल है। यह दुर्लभ है, कहते हैं। आहाहा! दुर्लभ का अर्थ अनअभ्यास से अनन्त काल में इस प्रकार का अभ्यास, इस प्रकार की रीति और पद्धति ही ज्ञानमें वीर्यपने, श्रद्धापने इसने स्वीकार ही नहीं की। आहाहा! पूरा भार बड़ा परमात्मा ऐसे उठाना बुद्धि से... आहाहा!

अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का महापिण्ड आत्मा, जैसे यह आत्मा वस्तु है न? वस्तु है या नहीं? अरूपी परन्तु वस्तु है न? वस्तु, वह महान पदार्थ है। वह भी असंख्यप्रदेशी चौड़ा है वापस, परमाणु जितना चौड़ा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे अनन्त आनन्द का धाम, ऐसे असंख्यप्रदेश में अनन्त आनन्द का धाम, अनन्त शान्ति, स्थिरता का धाम, श्रद्धा शक्ति आदि का बड़ा महान धाम भगवान। उसे दृष्टि से झेलना, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाना और फिर उसमें स्थिरता, वह तो अलौकिक बातें हैं। यह वीतरागमार्ग है। जगत से कठोर लगे। आहा! अनअभ्यास से कठिन है, अभ्यास से कठिन नहीं। सत् स्वरूप सरल, सहज है परन्तु ख्याल में जहाँ कीमत ही न आवे, उस पुण्य-पाप के परिणाम की कीमत लगे। कीमत लगे, ऐसा वहाँ देखा, वहाँ यह किया, देखो! बदला, यह बदला, परन्तु क्या बदला? तू बदला या वह तो राग की परिणति बदली, अशुभ की शुभ (हुई)।

कहते हैं '**मनसा' मन से...** हों! वापस ऐसा कहते हैं। कोई अशुद्ध परिणति मैं मन से करता नहीं, मन से कराता नहीं, मन से अनुमोदन करता नहीं। **'वाचा' वचन से,...** वाणी से मैं अशुद्धपरिणति वर्तमान करनी है, ऐसा कहता नहीं। वाणी से कराता नहीं, वाणी से अनुमोदता नहीं और 'शरीर से'। शरीर से भी नहीं। कोई चेष्टा करके अन्दर विकल्प यह अशुद्ध परिणति ठीक है, हों! ऐसा मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदना मेरी दशा में वह है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, जिसकी अन्तर में, नजर में श्रद्धा-ज्ञान में तैरता है, उसकी पर्याय में ऐसे भाव मुझे होते नहीं। आहाहा!

'मन से, वचन से, शरीर से। सर्वथा वर्तमान कर्म का मुझे त्याग है।' देखो! कैसा

योगफल किया! मैं ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य के स्वभाव की दृष्टि और ज्ञान में रमता हुआ मुझे सब कर्म अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्पों का त्याग है। कहो, इसका नाम संवर कहा जाता है। समझ में आया? 'सर्वथा वर्तमान कर्म का मुझे त्याग है।' परिणति है, वह तो शुद्ध है, उसमें विकल्प का सर्वथा त्याग है। समझ में आया? आंशिक भी त्याग नहीं, वह कोई संवर नहीं। जितना राग बाकी है और त्याग नहीं है, वह संवर नहीं है। इसलिए जितने पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उन सब रहित मेरी परिणति है, इसलिए मुझे शुभ-अशुभ परिणतिरूप अशुद्ध मेरी परिणति में उनका त्याग है। छोटाभाई! लो! यह वर्तमान का संवर का गद्य कहा, गद्य गद्य, अब इसका पद्य।

कलश - २२७

(आर्या)

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३५-२२७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अहं आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते' [अहं] मैं, [आत्मना] परद्रव्य की सहाय बिना, अपनी सहाय से, [आत्मनि] अपने में [वर्ते] सर्वथा उपादेयबुद्धि से प्रवर्तता हूँ। क्या करके? 'इदं सकलं कर्म उदयत् आलोच्य' [इदं] वर्तमान में उपस्थित [सकलं कर्म] जितना अशुद्धपना अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गल, जो कि [उदयत्] वर्तमानकाल में उदयरूप है, उसका [आलोच्य] शुद्धजीव का स्वरूप नहीं है-ऐसा विचार करते हुए, स्वामित्वपना छोड़कर। कैसा है कर्म? 'मोहविलास-विजृम्भितं' [मोह] मिथ्यात्व के [विलास] प्रभुत्वपने के कारण, [विजृम्भितं] फैला हुआ है। कैसा हूँ मैं आत्मा? 'चैतन्यात्मनि' शुद्धचेतनामात्र स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? 'निष्कर्मणि' समस्त कर्म की उपाधि से रहित हूँ।।३५-२२७।।

कलश - २२७ पर प्रवचन

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३५-२२७।।

इन सबमें अन्तिम शब्द तो यही था। समझ में आया? (२५५ में) **'परिहृत्य कर्म सर्वं परमं'** ऐसा था, **'परिहृत्य'** था। (२२६ में) **'आत्मानि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते'** था। समझ में आया? यह बाद में भी आयेगा। इन तीनों में समान आयेगा। यह वर्तमान संवर की व्याख्या है।

'अहं आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते' धर्मी जीव **'अहं'** अर्थात् **मैं....** (२२६ में) अहं की व्याख्या कर थी—चेतनामात्र स्वरूप। परन्तु वह आगे आयेगा। समझ में आया? **'आत्मना'** आया न? मैं एक आत्मा हूँ। ज्ञान, दर्शन, स्वभाववाला तत्त्व, वह मैं आत्मा

हूँ। अर्थात् कौन? कि **'आत्मना' परद्रव्य की सहायता बिना अपनी सहायता से...** ऐसा अर्थ किया! (२२६ में) **'आत्मना' अपने से...** किया था न? ऐसा यहाँ अर्थ किया। मैं आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, मेरी शुद्ध संवरदशा में, शुद्ध संवरदशा में परद्रव्य का सहारा—सहायता बिल्कुल नहीं। अर्थात् क्या कहा, समझ में आया?

मैं शुद्ध चैतन्य द्रव्य ज्ञायक, उसके अन्तर मेरी शुद्ध परिणतिरूप संवर में इस शुभविकल्प का बिल्कुल सहारा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में भी जो संवरदशा है, उसमें मेरे आत्मद्रव्य को यह शुभ विकल्प जो है, उसका बिल्कुल सहारा नहीं। वह है, इसलिए यह मेरी परिणति संवर की है, ऐसा नहीं है। परद्रव्य के सहारा बिना की है। आहाहा! गजब बात!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ, ऐसा अन्तर दृष्टि के परिणमन के भाव में कहते हैं कि वह परद्रव्य अर्थात् शरीर, यह ठीक रहा, इसलिए मुझे संवर हुआ या यह विकल्प जो उठा पंच महाव्रत का, इसलिए इसके सहारे यहाँ संवर हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **'आत्मना'** मेरा आत्मा ही ज्ञायकभाव है, उसके अवलम्बन से ही मेरी शुद्ध परिणति और संवर होता है। ऐसा कभी वहाँ संवर में सब सुना नहीं था। उल्टे-उल्टे पढ़े थे सब। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, बात यह है शरीर इतना बड़ा और यह, परन्तु वह आत्मा कहाँ है? इतना शरीर और इतना शरीर और स्त्री का शरीर और पुरुष का शरीर और नपुंसक का शरीर। उसमें पुण्य-पाप भाव। परन्तु वह आत्मा कहाँ है? आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव से पूर्णानन्द भरपूर यह आत्मा है। ऐसे आत्मा की जहाँ दृष्टि, ज्ञान (करके) स्थिर हुआ (तो) कहते हैं कि मेरी स्थिरता में मेरे स्वद्रव्य की ही सहायता है। मेरे संवर में विकल्प और निमित्त के संयोग की बिल्कुल सहायता नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? है न इसमें? देखो न, क्या लिखा है या नहीं? पढ़े तब न, परन्तु पढ़ते नहीं। अपनी दृष्टि से अर्थ करे, अर्थ का अनर्थ करे।

मैं एक आत्मा हूँ, जो हूँ, उसमें अकेली शुद्धता ही भरी है। उस शुद्धता के परिपूर्ण के आनन्द के आलम्बन में जो मेरी संवर की परिणति दर्शन, ज्ञान, स्थिरता की

हुई है, उसमें विकल्प और निमित्त का बिल्कुल सहारा—आश्रय—अवलम्बन है ही नहीं। समझ में आया? मैं बोला ऐसा और विकल्प उठा (कि) मुझे सब त्याग है। ऐसी वाणी, ऐसा विकल्प वह आत्मा के संवर में जरा सहायक हुए, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अपने में... मेरा भगवान मैं ज्ञानानन्दस्वरूप, मेरे वस्तु के स्वभाव के अवलम्बन से मेरी शुद्ध परिणति पर्यायरूपी संवर, उसमें परद्रव्य की बिल्कुल सहायता निमित्त नहीं। पंच महाव्रत को जो निमित्त कहा था न? परन्तु कहते हैं कि, उसका कुछ सहारा नहीं (कि) संवर उसके कारण हुआ है। समझ में आया? आहाहा! **अपने में...** मैं मुझमें। मेरा स्वभाव ज्ञानस्वरूप से रहा हुआ तत्त्व, आनन्दरूप से रहा हुआ आत्मा, ऐसे आत्मा में—अपने में मैं रहता हूँ, विकल्प में मैं जाता नहीं। मुझमें पर की सहायता (बिल्कुल नहीं है)। अपने में—शुद्ध परिणति में **'वर्ते' सर्वथा उपादेयबुद्धि से प्रवर्तता हूँ।** देखो! यहाँ 'सर्वथा' शब्द प्रयोग किया है, हों! उसमें सर्वथा था। आहाहा!

मैं तो मेरा शुद्ध चैतन्यद्रव्य अनन्त शुद्ध गुण का पिण्ड प्रभु, उसे ही उपादेयरूप से प्रवर्तता हूँ। अर्थात् शुद्ध परिणति को उपादेयपना कहो तो उस द्रव्य के उपादेयरूप से शुद्ध परिणति प्रगट हुई है। वह राग के अवलम्बन से और निमित्त के अवलम्बन से शुद्ध परिणति का संवर प्रगट नहीं होता। समझ में आया? क्या कहते हैं? एक व्यक्ति कहता था, कुछ समझे नहीं। कभी सुना न हो, अभ्यास नहीं होता। गरज लेकर आये न हों और सत्य क्या है, उसे समझने की यदि जिज्ञासा हो तब तो समझे बिना रहे नहीं। परन्तु यह तो अपनी उस धारणा में रटकर निश्चित करके आया हो। अब यह सुने (तो) कुछ मिलान नहीं खाता। क्या कहते हैं यह? छोटाभाई! यह छोटाभाई पहले वहाँ थे, हों! ये 'नागनेश' के प्रमुख थे, लो! झोबालिया। आहाहा!

कहते हैं, यह संवर होनेवाला, संवररूप से परिणमनेवाला भगवान आत्मा ऐसा भाता है और ऐसा है (कि) मैं तो मेरे स्वभाव में शुद्ध परिणति में मेरा आश्रय, मेरा द्रव्य है। मुझे कोई विकल्प का आश्रय नहीं। ऐसे आत्मा में मैं सर्वथा उपादेयबुद्धि से प्रवर्तता हूँ। अर्थात् कि वह विकल्प है, उसका स्वामित्व नहीं, हेयबुद्धि हो गयी। यह शुद्ध परिणति की उपादेयबुद्धि (हो गयी)। द्रव्य उपादेय हुआ तो शुद्ध परिणति की उपादेय

बुद्धि हुई। समझ में आया? यह गजब। अध्यात्म की बात ऐसी लगे न, कथा-वार्ता हो तो इसे जरा (ठीक पड़े)। एक राजा था और एक रानी थी और फिर भगवान के पास गये और फिर ऐसा हुआ... जँचे भी सही, घर में बात भी करे, लो! (यहाँ तो ऐसा होता है कि) यह क्या कहते हैं यह? परन्तु दीक्षा अर्थात् क्या, खबर है तुझे? यह वस्त्र बदले वह दीक्षा? दीक्षा अर्थात् क्या? यह आत्मा के आनन्दमूर्ति का भान हुआ, उस आनन्द की उग्रता अन्दर प्रगट की और दुःख की दशा नाश की, उसका नाम दीक्षा है। इस बात को समझे नहीं। यह वस्त्र बदले और नग्न हुए, वे साधु, लो! जाओ। समझ में आया? आहाहा!

यह छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ छोड़कर निकलते होंगे, कहीं अन्दर के आनन्द में घुसने के लिये निकलते हैं। समझ में आया? यहाँ फिर से अब अन्दर में जाना है, अब अन्दर में जाना है, यह अमृत की, अमृत की डकार अनुभव के लिये जाना है। समझ में आया? यह विकल्प का होना और वह तो आना हो भले, परन्तु अपना आत्मा अकेला अमृत अतीन्द्रिय का रसकन्द है, उसमें प्रविष्ट होने के लिये, अन्दर स्थिर होने के लिये जाये, उसका नाम दीक्षा है। आहाहा! इसकी तो खबर नहीं होती (और) वस्त्र बदलकर हो गयी दीक्षा। आत्मा ने ऐसा ही अनादि से भोगा है न? और भूला और ऐसे भव किये हैं, ऐसा ही काल बिताया है। तीर्थंकर हुए जीव भी पूर्व में भूले हुए, ऐसे ही भूले थे। आहा! उन्हें अपने चैतन्यस्वभाव का क्या स्वरूप है, उसका माहात्म्य जहाँ दृष्टि में अभी आवे नहीं और अनुभव में आये बिना उसकी स्थिरता भी कहाँ से जमे? समझ में आया? आहाहा!

यह बाघ और भालू जहाँ पड़े हों, वहाँ (चैतन्य) बिम्ब में अन्दर स्थिर हो जाते हों, खबर भी नहीं क्या है? उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद लेने में (स्थित हैं)। आहाहा! एक मक्खी भी शक्कर की डली से चिपटती है। लड़का पाँच-सात (शक्कर की) डली लेकर रोटी खाने बैठा हो न! उसमें जरा हाथ छुआ हो तो मक्खी हो, उसका पंख छू जाये, चिपट गयी हो। दूसरी डली लेने जाये तो साथ में मक्खी ऐसे इकट्ठी आवे, परन्तु स्वाद की मारी उसमें से हटे नहीं। उसी प्रकार आत्मा के आनन्द की रुचि और अनुभव में आत्मा का आनन्द आया है। उस आनन्द में स्थिर होने से परीषह से गिनता नहीं, अन्दर से हटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सहन करूँ, ऐसा नहीं चलता,

ऐसा नहीं होता। यह सहन (किया ही नहीं)। अरे रे! मुझे सहन करना पड़ेगा, अरे रे! परन्तु क्या है? उस अतीन्द्रिय आनन्द के अन्दर मौज मनाता हुआ उसे बाहर के परीषह क्या है, उनका, विकल्प न हो तो ख्याल भी नहीं होता। विकल्प हो तो ख्याल हो कि कुछ होता है। बस इतना। समझ में आया?

ऐसी दशा में संवर का भाव, वह शुद्ध उपयोग से रमता हुआ, कहते हैं सर्वथा प्रकार से मेरे स्वभाव को ही उपादेयरूप से प्रवर्तता हूँ। यह मुनिपने की स्थिरता का संवर। '**इदं सकलं कर्म उदयत् आलोच्य**' वर्तमान है न? **वर्तमान में उपस्थित...** लो! 'उपस्थित' शब्द आया। मूल में होगा? **वर्तमान में उपस्थित...** '**सकलं कर्म**' लो, समझ में आया? इसमें क्या शब्द है? उपस्थित, वह निमित्त का .... 'उपस्थित' शब्द है न? 'इदं' निमित्त उपस्थित है न? उपस्थित का और यह याद आ गया। विद्यमान है, वह इसकी भाषा कहाँ से आयी? यह तो अपनी (भाषा) है। विद्यमान है अर्थात् है, ऐसा। कहो, समझ में आया? यह तो इसका शब्द आया इसलिए....

यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द ज्ञान के स्थिरता के भाव में वर्तमान में उपस्थित अर्थात् कि विद्यमान कर्म का उदय है, ऐसा। **जितना अशुद्धपना अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गल...** हो, उदयरूप हो। **'उदयत्' वर्तमान काल में उदयरूप है, उसका 'आलोच्य' शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है...** '**आलोच्य**' का अर्थ किया। मैं शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, उसमें जितना विकल्प शुभराग का उठे, वह भी हो, उपस्थित हो, मेरे ज्ञान की स्थिरता में उसकी उपस्थिति नहीं, उसकी उपस्थिति बाहर में है। समझ में आया? आहाहा! अमृत बहाया है न अकेला! आहाहा! समझ में आया? भगवान अमृत का कुण्ड है न! उसमें से—कुण्ड में से अमृत बहा ही करे, ऐसे बहा ही (करे), झरना झरा करे। जिस पर्वत में ठण्डा शीतल जल हो, वहाँ ठण्डा झरे, जिसमें गर्म भरा हो तो गर्म झरे।

यह भगवान आत्मा शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... अनुकूल परीषह या प्रतिकूल परीषह, परीषह के दो प्रकार हैं न? परीषह के दो प्रकार हैं। स्त्री आदि के, प्रशंसा के अनुकूल परीषह और निन्दा आदि के, वध आदि के प्रतिकूल (परीषह)।

दोनों में जिसकी जिसे गिनती नहीं, स्थिर हो गया है अन्दर। समझ में आया? यह अनुकूल भी परीषह है, हों! स्त्री ललचावे या कोई प्रशंसा करे, इज्जत-महिमा करे, वह भी एक परीषह है। और निन्दा करे, वध करे, वह प्रतिकूल है। यह अनुकूल-प्रतिकूलता के प्रकार हैं। उसमें मैं नहीं। हो वे, कहते हैं। समझ में आया?

वर्तमान काल में उदयरूप है, शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है... वह हो, राग हो, कर्म हो, बाह्य वस्तु हो। समझ में आया? वह मेरे शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं, उसमें मैं आता नहीं, वे मुझमें आते नहीं। समझ में आया? अघाति के उदय में निन्दा-प्रशंसा और उसमें रागादि का उदय, वह हो, विद्यमान हो। '**आलोच्य**' उसे आलोचता हूँ। अर्थात् मेरे स्वरूप में रहकर मैं मुझे जानते हुए जानता हूँ। अर्थात् कि शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं, ऐसा जानता हूँ। लो! '**आलोच्य**' की यह व्याख्या की। यह और धर्मदेशना ऐसी कैसी?

कहते हैं **ऐसा विचार करते हुए स्वामित्वपना छोड़कर।** ऐसा। यह तो विचार तो अन्दर लिया है। पहले एक बार कहा था कि विचार भी विकल्प है। ऐसा आया था न पहले? यहाँ तो इस ज्ञान में वह जानता हुआ, ऐसा। **स्वामित्वपना छोड़कर...** यह शुभराग हो, कर्म हो, यह संयोग अनुकूल-प्रतिकूल हो, वे मुझे नहीं हैं, मुझमें नहीं हैं, उनका मैं स्वामी नहीं। इस प्रकार धर्मी अपने चैतन्यस्वरूप को अनुभवता हुआ पर का स्वामी नहीं होता। कहो, समझ में आया? घर में एक बिल हो और सर्प निकला। है तो विद्यमान। ठीक निकला, ऐसा (होता) होगा? इसी प्रकार भगवान आनन्द में उसे यह जो विकल्प देखता है, वह जहर जैसा अशुभ है। आहाहा! उसका धर्मी को अहंपना अर्थात् कि मुझमें यह है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसने व्यर्थ माना है। माना है, इसलिए हो गया है, ऐसा है? अच्छा माना, इसलिए अच्छा था? कहो, समझ में आया इसमें?

शुद्ध जीव का स्वरूप... भगवान आत्मा! आहाहा! आठ वर्ष के सन्त मुनि ऐसे संवर में झूलते होंगे! 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में' परन्तु कोई माँ नहीं, बाप

नहीं, साथ में नहीं, चेला-चेली कोई सहायक, कोई वैयावृत्त्य के लिये कोई (नहीं)। 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ, सिंह संयोग जब, अडोल आसन अरु... (वह तो देह की क्रिया) मन में नहीं क्षोभता' स्थिरता। क्षोभता नहीं अर्थात् स्थिरता है। स्वरूप की दृष्टि के भान में, आनन्द में स्थिर हो गया है, ऐसे स्थिर है। जिसे किसी परद्रव्य का सहारा नहीं, वह उदय विद्यमान मुझमें नहीं, ऐसा जानकर अपनी स्थिरता में रमता है। समझ में आया? यह उसे संवर और मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। आहाहा! स्थिरतासहित चारित्र की यह सब व्याख्या है न? चारित्र की व्याख्या है। सम्यग्दर्शनसहित चारित्र।

कैसा है कर्म? 'मोहविलासविजृम्भितं' मिथ्यात्व के प्रभुत्वपने के कारण फैला हुआ है। आहाहा! यह राग का मेरापन तो मिथ्यात्व के कारण से फैला हुआ था, उसकी प्रभुता थी, वह सम्यग्दर्शन की प्रभुता नहीं। उल्टी मान्यता की प्रभुता से मेरेपने मनाता था। यह राग और पुण्य और यह और वह और यह कर्म का उदय ठीक आया, यह भाव मुझे ठीक हुआ, यह मिथ्यात्व की प्रभुता थी, यह मिथ्या अर्थात् उल्टी मान्यता की बलवन्तता थी, बलवत्तता थी। आहाहा! क्या कहते हैं? यह मिथ्या—उल्टी मान्यता का प्रभुपने कारण था। यह उल्टी मान्यता का इसने प्रभुपना, सामर्थ्यपना था। यह राग ठीक, पुण्य ठीक, यह ठीक, यह ठीक, यह ठीक। समझ में आया?

'विजृम्भितम्' यह उगे थे, फैले थे, ऐसा। **कैसा हूँ मैं आत्मा?** अब मेरा विस्तार तो शुद्धता से फैला हुआ है, ऐसा कहते हैं। यह प्रभुता मिथ्यात्व—उल्टी मान्यता में जो राग का विस्तार था, उसे मेरा माना था। अब मैं शुद्ध में रमते हुए मेरी शुद्धता का विस्तार फलता है। कैसा हूँ मैं आत्मा? **'चैतन्यात्मनि' शुद्ध चेतनामात्रस्वरूप हूँ।** मैं तो चेतन शुद्ध चेतनामात्र भगवान हूँ। **और कैसा हूँ? 'निष्कर्मणि' समस्त कर्म की उपाधि से रहित हूँ।** ऐसी दृष्टिपूर्वक की स्थिरता, उसे संवर कहते हैं, उसे वर्तमान की आलोचना कहते हैं। भूतकाल का प्रतिक्रमण और वर्तमान की आलोचना। प्रत्याख्यान कहेंगे।

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १२, शनिवार, दिनांक-२०-११-१९६५, कलश-२२७, २२८, प्रवचन-२४५

यह सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। समयसार कलश, प्रत्याख्यान का अधिकार है। यह अधिकार तो चारित्र का है। चारित्र अर्थात् क्या? कि आत्मा का ज्ञानानन्दस्वभाव अनुभव में आवे, आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द है, ऐसा अनुभव में, वेदन में, प्रतीति में आवे, पश्चात् स्वरूप में स्थिर होने की दशा जो चारित्र, उस चारित्र में यह तीन प्रकार का निश्चय से वर्णन है। भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवर, भविष्य के प्रत्याख्यान। है तो एक ही समय की दशा, उसका तीन काल की अपेक्षा से कथन किया है। अर्थात् क्या? कि आत्मा ज्ञायक शुद्ध द्रव्यस्वभाव का अन्तरभान होने पर मैं ज्ञाता और दृष्टा हूँ, ऐसे एक राग का, पुण्य का विकल्प उठे, वह भी मेरा नहीं, मैं उसका स्वामी नहीं, उसे मैं करता, कराता या अनुमोदता नहीं। ऐसी तो प्रथम सम्यग्दर्शन में यह बात तो दृष्टि में आ गयी है।

अब यहाँ निश्चय चारित्र में स्वरूप में स्थिर होने पर शुद्धोपयोगरूपी चारित्र की बात है यह तो अभी। शुद्धोपयोगरूपी चारित्र में भूतकाल में रागादि अस्थिर हुए हों, यह वर्तमान में रागरहित होकर मैं शुद्धोपयोग का आचरण करता हूँ। इससे भूतकाल के राग का भी प्रतिक्रमण भाव मुझे है। अर्थात् कि यह मैंने किये ही नहीं। समझ में आया? मैं तो शुद्धोपयोग चैतन्य का आचरण करनेवाला आत्मा हूँ।

चारित्र अधिकार है। व्यवहारचारित्र में ऐसा आवे कि कुछ पाप लगा हो तो शुभ विकल्प से उसका मिच्छामि दुक्कडम आदि व्यवहार शुभभाव वह है। भूतकाल के पाप का मिच्छामि, वह शुभभाव है और वर्तमान का अशुभभाव हुआ हो तो उससे हट (जाना, वह) शुभभाव है, भविष्य का भी शुभविकल्प (कि) ऐसा न करूँ, वह तो शुभविकल्प है।

यह तो निश्चय प्रत्याख्यान और निश्चय चारित्र की व्याख्या है। इसमें तो यहाँ कहते हैं कि मैं, (मैंने) भूतकाल में जो कुछ मन, वचन और काया से किया, कराया, अनुमोदन किया था, वह मैं नहीं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर होनेवाला हूँ। ऐसा मेरा

अभ्यास—स्वभाव की धारा में बहने का मेरा अभ्यास है। राग का करना, मैंने किया नहीं, कराया नहीं, कर्ता को मैंने भला जाना नहीं। वर्तमान मैं राग को, पुण्य-पाप को करता नहीं, कराता नहीं, कोई करता हो तो उसमें सुख मानता नहीं। समझ में आया? ऐसा था न उसमें? सुख मानता नहीं, ऐसा आलोचना में था। यह अनुमोदन की व्याख्या। तब यही ख्याल में आ गयी थी। अनुमोदन का एक जगह आया था। वह यह ही। अनुमोदन में आनन्द, सुख मानता हूँ। अपने वांचन में आ गया न? यह वह होगा प्राय:। कोई भी प्राणी वर्तमान में पुण्य और पाप के भाव करता हो, उसे मैं सम्मत होता नहीं कि, यह ठीक है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं आता है अन्यत्र? हाँ, अन्यत्र कहीं आता है। आनन्दपूर्वक सम्मत करना। अन्यत्र कहीं आता है। किस जगह? आनन्दपूर्वक मानना। सम्मत करना, आनन्दपूर्वक सम्मत करना। मैंने कहा कहीं आता अवश्य है। परन्तु हुआ यहाँ होगा। कल नहीं आया था? कहीं आता है, आनन्दपूर्वक सम्मत करना, आता है कहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

पहले तो सम्यग्दर्शन में ही ऐसा आता है। यह उसमें आता है न? भाई! यह क्या नाम? समयसार नाटक। (श्लोक-९६)। 'करनी हित हरनी सदा, मुक्ति वितरनी नांहि।' मोह विलास। .... मोह विलास आ गया न यह? उसमें डाला है। यह पूरा हो गया, अर्थ पूरा हो गया। यह शुभ परिणाम की जो क्रिया है। कठिन बात है। जगत को (कठिन पड़े)। वह 'करनी हित हरनी...' यह आत्मा के हित को नाश करनेवाली है। ऐई! क्या यह सब भी अभी तक किया? 'मुक्ति वितरनी नांहि'। वह मुक्ति देनेवाली नहीं है। वह शुभभाव की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का शुभभाव, वह मुक्ति को देनेवाली नहीं है, वह शुभभाव है। आहाहा! जगत को भारी कठिन!

'गनी बंध-पद्धति विषै,...' भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ ने इस शुभ परिणाम की क्रिया बन्ध पद्धति की रीति में भगवान ने गिनी है, उसे मोक्ष की पद्धति में भगवान ने नहीं गिना। भारी कठिन बात पड़े! तब तो सब अभी चिल्लाहट

करते हैं न? चारों ओर पुकार (करते हैं)। भगवान के पास करो पुकार, भाई! दूसरा क्या? मार्ग तो यह है। आहाहा! 'सनी महादु:खमांहि।' यह 'महादु:ख से लिप्त है।' 'सनी' अर्थात् लिप्त है। क्या कहा?

शुभभाव का भाव जो क्रिया का होता है, उसके चार बोल लिये। एक हितहरणी अर्थात् अहित करनेवाली, मुक्ति देनेवाली नहीं। क्रिया की पद्धति गिनी बन्धपद्धति में और वह शुभभाव दु:ख से लिप्त है। छोटभाई! चिल्लाहट मचाये ऐसा है। .... अरे! भगवान! बापू! भाई! पहले अभी निश्चय तो कर। निर्णय अनुभव की दृष्टि में यह राग का भाव उठे सही, हो भले व्यवहार। व्यवहार पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा भाव हो, हो परन्तु है वह बन्ध की करनेवाली; मुक्ति देनेवाली नहीं। समझ में आया? और बन्धपद्धति तथा हितहरणी और दु:ख से सनी—दु:ख से लिप्त भाव है, वह आकुलता का रागभाव है। समझ में आया?

जितना शुभराग उठता है दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, यात्रा, वह सब शुभराग दु:ख से लिप्त है, आकुलता है, आनन्द से उल्टी दशा है। भारी कठिन बात पड़े न? लोग फिर चिल्लाहट न करे! भगवान के पास चिल्लाहट करो, बापू! (समयसार नाटक) पृष्ठ २७०। वहाँ '**मोहविलासविजृम्भित**' का अर्थ है, भाई! अपने आलोचना का कलश गया न?

क्रिया की निन्दा (सवैया इकतीसा)

करनी की धरनी मैं महा मोह राजा बसै,
करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।
करनी करम काया पुग्गल की प्रतिछाया,
करनी प्रगट माया मिसरी की छुरी है॥
करनी के जल मैं उजझि रह्यौ चिदानन्द,
करनी की वोट ग्यानभान दुति छुरी है।
आचारज कहै करनीसौं विवहारी जीव,
करनी सदैव निहचै सुरूप बुरी है॥९७॥

आचार्य कहते हैं, अन्दर देखो! यह है न? समझ में आया?

अर्थ :- क्रिया की भूमि पर मोह महाराज का निवास है,... शुभराग मैं करूँ, वह कर्तृत्वबुद्धि मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दुनिया को यह वीतरागमार्ग परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का मार्ग, जगत को-दुनिया को बैठना कठिन पड़े। हाय...हाय...! यह व्यवहार सब लोप हो गया। परन्तु सुन न, भाई! यह व्यवहार राग है, यह धर्म नहीं। यह ज्ञान करने के लिये बराबर है, ज्ञान करने के लिये कि यह है। मेरा स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की अनुभव की दृष्टि और स्थिरता (हो) वह मेरा धर्म है। बीच में ऐसा व्यवहार का राग आवे सही, परन्तु हेय दुःखदायक है। बन्ध पद्धति के परिणाम हैं। मोहराजा—यदि कर्तृत्वबुद्धि हो तो मिथ्यात्व राजा राग के कर्ता में बसता है। धर्मी को राग आवे, उसका ज्ञाता-दृष्टा है, आदर नहीं। अज्ञानी को शुभ क्रियाकाण्ड में यह मेरा कर्तवय है, ऐसा मानकर उसमें मिथ्यात्व का मोह राजा घुस गया है।

क्रिया अज्ञानभावरूप राक्षस का नगर है,... राक्षस का नगर है। शुभ परिणाम वह विकार है, राक्षस का नगर है, उसमें चैतन्य की शान्ति खो जाती है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! अरे! भाई! बापू! ऐसा अवसर / काल मिला। आहाहा! और उसमें उभरने के अवसर के काल में ऐसी विपरीतता करेगा (तो) भाई! अन्त कब आयेगा? मुश्किल से समय मिला है, हों! अनन्त काल में पच्चीस-पचास वर्ष की जिन्दगी (मिली), अनन्त काल के हिसाब में यह वर्ष कितने? सत् के जितने ५०-६० वर्ष है, उनकी गिनती क्या? बापू! यह भगवान आत्मा चिदानन्द की ज्योति है, उसके अनुभव की दृष्टि में यह रागादि तो कहते हैं कि राक्षस है। छोटाभाई! यह सब बड़े होकर फिर वहाँ कहोगे तो शोर मचायेंगे। अज्ञानभाव का राक्षस का नगर है, कहते हैं। जितना क्रियाकाण्ड का शुभराग रचता है, वह राक्षस का नगर है। ज्ञानी को भाव आवे सही, परन्तु उसका आदर नहीं, उसको जानने-देखनेवाला रहता है। अज्ञानी को उस राग की क्रिया में ही पूरा सर्वस्व बस गया है।

'क्रिया, कर्म और शरीर आदि पुद्गलों की मूर्ति है,... क्या कहा? **'करनी कर्म काया'** वह तो कर्म की काया है, आत्मा की काया नहीं, भगवान का समूह उसमें नहीं। शुभराग, वह तो कर्म की काया है, आत्मा का समूह उसमें नहीं है। ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता उसमें नहीं है। वह तो कर्म की काया है। कर्मकाया।

आहाहा! ऐ शुकनचन्दजी! चिल्लाहट मचाये ऐसा है या नहीं? फिर? वह पुद्‌गल की मूर्ति है। क्योंकि अमूर्त ऐसा चिदानन्द भगवान, उसके पास शुभभाव स्थूल... स्थूल... स्थूल... स्थूल... कर्म की मूर्त काया है।

क्रिया साक्षात् मायारूप मिश्री लपेटी हुई छुरी है... यह मायारूप मिश्री, उससे लपेटी हुई छुरी। जैसे छुरी पर मिश्री लपेटे, उसी प्रकार शुभभाव में मिथ्यात्व में लपेटा हुआ शुभभाव है। यह शुभ मेरा... मेरा... मेरा... मुझे लाभ करेगा। मिथ्यात्वरूपी छुरी उसमें शुभभाव लपेटा है जरा। आहाहा! यह उसका स्वरूप वर्णन किया जाता है। समझ में आया?

क्रिया के जंजाल में आत्मा फँस रहा है,... यह विकल्प की जाल, क्रियाकाण्ड की, उसमें चौबीसों घण्टे पूरा फँस रहा है। यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, वह राग की क्रियारहित, उसकी इसने दृष्टि और सम्हाल कभी नहीं की। समझ में आया? देखो! यह बनारसीदास जैसा आचार्य का अर्थ है, तत्प्रमाण लिखते हैं। बनारसीदास घर का नहीं कहते। आचार्य स्वयं यहाँ कहते हैं। '**आत्मनि चैतन्य महा मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म**' ऐसा है न? उसका यह अर्थ किया है। **महा मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य**' आहाहा! कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा चैतन्य का प्रकाश का नूर—तेज भगवान आनन्द की मूर्ति, उसके सन्मुख स्थिरता, दृष्टि किये बिना अकेला क्रियाकाण्ड विकल्प के राग में भगवान राजा भूलकर उसमें घुस गया है। समझ में आया?

क्रिया के जंजाल में आत्मा फँस रहा है, क्रिया की आड़ ज्ञान-सूर्य के प्रकाश को छुपा देती है। इस शुभराग की क्रिया में अहंकार होने से चैतन्यसूर्य वहाँ ढँक जाता है। उसकी रुचि के प्रेम में भगवान ज्ञानानन्द भगवान ढँक जाता है। समझ में आया? क्रिया की आड़ में। '**श्रीगुरु कहते हैं कि क्रिया से जीव कर्म का कर्ता होता है,...** उससे राग मेरा कर्म, मेरा कार्य—ऐसा मिथ्यादृष्टि उसके क्रियाकाण्ड में मिथ्यात्वभाव से कर्ता होकर। **निश्चय स्वरूप से देखो तो क्रिया सदैव दुःखदायक है।** कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में विकल्प हो (परन्तु) उसका स्वामी नहीं, उसमें मैं नहीं, उससे मुझे लाभ नहीं। आहाहा! अज्ञानी उसमें—क्रियाकाण्ड में ऐसा लिप्त हो गया है।

[ज्ञानियों का विचार (चौपाई)]

मृषा मोह की परनति फैली।
तातैं करम चेतना मैली॥

यह शुभभाव, यह कर्मचेतना है, आत्मा ज्ञानचेतना का यह स्वरूप नहीं है। आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब भगवान की अन्तर में लीनता की दृष्टिसहित की लीनता, वह तो जिनबिम्ब, चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा है। उसे छोड़कर यह **मृषा मोह की परनति फैली।** अकेला शुभराग, उसे मृषा—झूठा, झूठा क्यों कहा? उसमें माया कही थी। भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द, निर्मलानन्द सत् है, इस अपेक्षा से राग मायाजाल कहो या असत् कहो। समझ में आया? मायाजाल। कहीं आया था, परमात्मप्रकाश में आयेगा। मायाजाल, माया की व्याख्या वहाँ असत्य की है, असत्य की है। क्यों? कि वस्तु जो है वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति सत् है, इस अपेक्षा से विकल्प वह मायाजाल है। मायाजाल अर्थात् असत्य है। यहाँ भी यह शब्द प्रयोग किया है न? माया। समझ में आया? है अवश्य कहीं, पाठ में है, हों! माया-जाळु, माया-जाळु। टीकाकार ने व्याख्या क्या की? '**मायाजालमप्यसत्यमपि**' वेदान्त असत्य कहता है न? भाई! इस अपेक्षा से असत्य रखा, परन्तु है (अवश्य), वह (-वेदान्त) कहता है, नहीं। इतना अन्तर है। इसलिए आचार्य ने यह शब्द प्रयोग किया है कि जो विकल्प उठता है, वह मायाजाल है। भगवान आत्मा चिद्बिम्ब ज्ञान है, वह सत्य है, तो राग है, वह असत्य है, मायाजाल अर्थात् असत्य है। यह ८३वीं गाथा में है। अपने आयेगा न अब? यह कितनी गयी? अपने ७९वीं गयी न? यह ८३वीं है, ८३वीं है। है पुस्तक? देखो न! किसी के पास परमात्मप्रकाश। आत्मा शुद्ध ज्ञानघन अनाकुल आनन्द वह सत् है, तब विकल्प उसे मायाजाल है। अन्यमति मायाजाल कहते हैं, वह 'नहीं' ऐसा करके कहते हैं। परन्तु यहाँ राग है, परन्तु वह सत् की अपेक्षा से असत् है, असत् भी है अवश्य। ८३ में है, मूल पाठ में '**माया-जालु**', '**माया-जालु**' दूसरी लाईन में पहला शब्द है। संस्कृत में '**सव्वु मायाजालमप्यसत्यमपि**' बस, यह इतना। समझ में आया? यह सब राग है। ऐसा कि '**जणणी जणणु**' सब कर्म के फल हैं, यह सब असत्य है, वस्तु का स्वरूप नहीं। ओहोहो! समझ में आया? यह ओ तब बात (और स्पष्ट होगी)।

यह तो जरा इसमें शब्द (आया) था न?

मृषा मोह की परनति फैली।
तातैं करम चेतना मैली॥

'मृषा' शब्द आया उसके ऊपर से देखा झूठा... झूठा... झूठा। झूठा अर्थात् भगवान ज्ञानमूर्ति का कन्द चिदानन्द वीतरागमूर्ति आत्मा है। वस्तु वर्तमान वीतरागमूर्ति है। आत्मा ही उसे कहते हैं। पुण्य-पाप, वह आत्मा नहीं, वह तो आस्रव है, वह आत्मा नहीं। कर्म, शरीर अजीव है। भगवान ने आत्मा जो देखा यह, वह भगवान ने आत्मा उसे कहा है। वीतराग निर्दोष पिण्ड का तत्त्व, वह आत्मा है। विकल्प उठे, वह तो आस्रव है इसलिए यहाँ उसे माया कहकर 'मृषा मोह की परनति फैली' वह वस्तु में नहीं, ऐसी असत् विकल्प की जाल उठी है। समझ में आया? आहाहा! भीखाभाई! आहाहा!

[ज्ञानियों का विचार (चौपाई)]

मृषा मोह की परनति फैली।
तातैं करम चेतना मैली॥
ग्यान होत हम समझी एती।
जीव सदीव भिन्न परसेती॥९८॥

आत्मा का भान हुआ, मैं तो ज्ञानानन्दमूर्ति हूँ। ऐसा सम्यक् होने पर राग मुझसे भिन्न, तीनों काल भिन्न है। क्योंकि वह आस्रवतत्त्व, वह आत्मतत्त्व नहीं होता और आत्मतत्त्व, वह आस्रवतत्त्व नहीं होता। इस आस्रवतत्त्व को इस क्रियाकाण्ड के कर्मकाण्ड में डाला है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसे अर्थ शास्त्रों में हैं, वस्तुस्थिति है। कन्हैयालालजी! अर्थ यदि इसमें से निकालने जायें तो (कहे), अर्थ बदले। हम अर्थ करते हैं। परन्तु तू उल्टा अर्थ करता है और वस्तु ऐसी नहीं है। आहाहा! कहते हैं, समझ में आया?

[पुनः (चौपाई)]

***मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।**
चिदविलास पद जग उजयारा॥
राग विरोध मोह मम नांही।
मेरौ अवलम्बन मुझमांही॥१००॥

आहाहा! **मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।** सम्यग्ज्ञानी अपने चिदानन्दस्वरूप को ऐसा देखे, जाने, अनुभव करे। भले चाहे जिस स्थिति में (हो), शुभाशुभराग में खड़ा, युद्ध में खड़ा हो परन्तु मैं तो तीनों काल राग की क्रियाकाण्ड से तो निराला ही हूँ। आहाहा! मेरे चैतन्य के स्पर्श को राग का अन्धकार स्पर्श नहीं करता। यह शुभराग, वह अन्धकार की ज्योति है। वह चैतन्य के प्रकाश को अन्धकार स्पर्श नहीं करता। उस अन्धकार में चैतन्य नहीं है और चैतन्य में अन्धकार नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

***मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।**
चिदविलास पद जग उजयारा॥
राग विरोध मोह मम नांही।
मेरौ अवलम्बन मुझमांही॥१००॥

मैं शुद्ध आनन्द ज्ञायक हूँ, उसका अवलम्बन मेरा मुझमें है, व्यवहार का अवलम्बन मुझे नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्मी जीव (जानता है)। बात बहुत कठिन। परन्तु यह सब अभी तक यह त्याग किये, उसका फल क्या आया? भगवान! तेरी चीज़ तो ऐसी ज्ञान गोला चैतन्यसूर्य वीतराग निर्दोष बिम्ब, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में विकल्प का स्पर्श नहीं, हों! उसे स्पर्शा नहीं। आहाहा! स्पर्श करे तो एक हो। एक नहीं है, इसलिए स्पर्शा नहीं है। आहाहा! स्पर्श करे तो एक हो। अड़े, समझे? स्पर्श करे। शुभराग को चैतन्य स्पर्श करे तो एक हो। राग इसे स्पर्श करे तो रागमय आत्मा हो जाये। दोनों स्पर्शे नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, यह प्रत्याख्यानवाला कहता है। प्रतिक्रमण गया, आलोचना वर्तमान कहा कि पुण्य-पाप के भाव को करता नहीं, कराता नहीं, कोई करता हो तो मैं सम्मत नहीं, मैं सम्मत नहीं कि यह ठीक है। अब यह व्यवहार करो और व्यवहार ठीक है, (ऐसा) अनुमोदन करो तो वह ठीक कहलाये, (ऐसा अज्ञानी) कहते हैं। वह व्यवहाररूप से व्यवहार आवे तो व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि यह ठीक है, परन्तु परमार्थ से ठीक है, वह वस्तु में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा में परालम्बी ज्ञान जितना वर्ते शास्त्र का, वह भी मोक्षमार्ग नहीं

और वह परमार्थ ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान ज्ञान की मूर्ति चैतन्यसूर्य में एकाग्र होकर ज्ञान-आत्मज्ञान, आत्मज्ञान—आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान मोक्ष का मार्ग और परमार्थ ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, तो फिर इस रागभाव को मैं सम्मत नहीं हूँ। अब यहाँ प्रत्याख्यान की व्याख्या करते हैं। वर्तमान आलोचना की गयी।

भविष्य (के) कर्म का प्रत्याख्यान करता है —

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं
समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति।*

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'न करिष्यामि' आगामी काल में रागादि अशुद्धपरिणामों को नहीं करूँगा; 'न कारयिष्यामि' न कराऊँगा; 'अन्यं कुर्वन्तं न समनुज्ञास्यामि' [अन्यं कुर्वन्तं] सहज ही अशुद्धपरिणति को करता है जो कोई जीव, उसको [न समनुज्ञास्यामि] अनुमोदन नहीं करूँगा; 'मनसा (च)' मन से, 'वाचा (च)' वचन से, (तथा) 'कायेन (चेति)' शरीर से।

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं
समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति।*

'न करिष्यामि' मैं आगामी काल में रागादि (पुण्य-पाप के) अशुद्ध परिणामों को नहीं करूँगा,... अशुद्ध परिणति अर्थात् पुण्य-पाप दोनों। पुण्य और पाप के भाव दोनों दोषस्वरूप है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये ऐसा है न? जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वह विकल्प कर्मचेतना है और दोषरूप है। सब उल्टी मान्यता साफ हो जाती है। मार्ग तो यह है, भाई! ऐसा तू चापलूसी करे और मार्ग मिले, ऐसा नहीं है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतराग! ओहो! जिसमें ज्ञानमूर्ति प्रभु में विकल्प का स्थान भी जिसके स्वरूप में नहीं। ऐसे स्वरूप को इस विकल्प का करना, मैं करता नहीं, भविष्य के लिये मैं किसी को कहता नहीं कि यह मैं करता नहीं भविष्य में, तुम करो। मैं कराऊँगा नहीं, हों! भविष्य में यह शुभ-अशुभभाव मैं नहीं कराऊँगा, हों!

यह प्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा! और '**अन्यं कुर्वन्तम् न समनुज्ञास्यामि**' कोई मेरे किये और कराये बिना अपने आप कोई शुभभाव, अशुभ करता हो (तो) मैं भविष्य में सम्मत नहीं होऊँगा। भविष्य के लिये वर्तमान सम्मत नहीं। भविष्य के लिये भी वर्तमान सम्मत नहीं। आहाहा! अरे! भगवान के मार्ग को भूला। वीतरागमार्ग को (भूला)। समझ में आया? अज्ञान ने राग को घेरकर माना, बापू! मार्ग यह नहीं है, भाई! आहा!

निराधार, निराधार यह .... कौन है। मैं गया वहाँ शोर मचाया, प्रभु! कहा, उलझ नहीं, भाई! जवान है। .... बापू! कौन है? भाई! तुझे शरण नहीं, बापू! शरण तो अन्दर भगवान स्थित है। आहाहा! ऐसे काल में, अरे रे! क्या होगा? क्या होगा? बापू! यह तो जड़ की (अवस्था है)। मेरा क्या होगा, इसकी चिन्ता की है? उसकी चिन्ता की है। और उसका क्या होना, वह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। वह तो जड़ की दशा है, भाई! वह तो मिट्टी है, वह तो धूल पुद्गल है। वह तो उसकी पर्याय के क्रम में जो पर्याय होनेवाली है, वह होनेवाली है। आत्मा का उसमें कोई अधिकार नहीं है। आहाहा! अरे! इसने कभी आत्मा के सम्मुख नजर नहीं की। जहाँ शरण पड़ा है। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' भगवान आनन्द का धाम प्रभु! वह निर्विकल्प शान्ति का पिण्ड आत्मा। अरे! वहाँ नजर डाले बिना तुझे कहीं सन्तोष मिले, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस शुभभाव में सन्तुष्ट न हो, यह वाणी की अनुकूलता से उलझ नहीं। और वाणी न हो तो उलझ नहीं। वाणी का होना, न होना तो पुद्गल की सामग्री है। भाई! उसके कारण तुझे उसमें क्या है?

मैं भाव से यहाँ कहते हैं, हों! शुद्धोपयोग की भावना। विकल्प से भले बात परन्तु है शुद्धोपयोग करने का अभ्यास। यह नहीं, हों! नहीं। कोई भविष्य में राग को, शुभ को करे न, (तो) मैं वर्तमान कहता हूँ कि भविष्य के लिये मैं सम्मत नहीं। आहाहा! श्रद्धा में तो करना सम्मत नहीं, परन्तु अब स्थिरता में अन्दर जाता हूँ, इसलिए कोई करे उसके लिये अब मैं सम्मत नहीं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

अहो! चौरासी के अवतार में अकेला भगवान जन्मे और मरे। उसे आत्मा अपनी जाति को कभी जानने का प्रयत्न किया नहीं। ऐसे का ऐसे समय बिताया। कोई समाधान किया, ऐसा किया और वैसा किया, अमुक किया। अरे! भगवान! बापू! अन्दर चैतन्य

की ज्योति वस्तु है न! उसकी दृष्टि में भी जहाँ राग का करना—कर्तृत्वबुद्धि नहीं, वहाँ दूसरे को कराना कि करे, उसे सम्मत होना, यह दृष्टि में नहीं है। यहाँ तो शुद्धोपयोग के आचरण में अब स्थिर होना चाहता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! कोई अपने आप शुभ-अशुभराग करता हो। **सहज ही अशुद्ध परिणति को करता है जो कोई जीव उसको अनुमोदन नहीं करूँगा...** है न? पहले में ऐसा कहा था कि में उसे सुख नहीं मानता, ऐसा कहा था। उसका अर्थ ही है कि अनुमोदन करे उसमें सुख मानता है। कोई रागादि करे, उसे अनुमोदन माने तो उसमें सुख है तो अनुमोदन मानता है। मैं उसमें सुख मानता नहीं, अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? यह दुनिया दुनिया के घर में पुकार करती रहेगी। तू तेरा कर ले, कहते हैं, भाई! यहाँ कहते हैं। यह भट्टी सुलगती हो तो सुलगने दे उसके कारण से। तू हट जा, तू हट जा, तू हट जा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, मैं एक आत्मा हूँ और मैं आत्मा... आहाहा! मैं एक आत्मा। मेरे भाव से भाव बोलता है, पुकारता है, कहते हैं। अरे! मैं तो आत्मा हूँ न! मैं तो अरागी निर्दोषी वीतरागी सत्त्व का तत्त्व, वह मैं आत्मा हूँ। उसमें अब मैं स्थिर होना चाहता हूँ तो कोई भविष्य में राग आप करेगा तो मैं सुख नहीं मानूँगा। क्योंकि सुख राग में नहीं, सुख तो रागरहित स्थिरता में आनन्द है। समझ में आया? इसलिए राग को दुःख कहा न? 'सनि महा दुःख मांही' यह राग-कर्मकाण्ड का राग दुःख से लिप्त भाग है। आहाहा!

ऐसे राग से जीव को कल्याण हो तो उसकी सच्ची श्रद्धा कहलाये, ऐसी तो अभी बात चलती है। आहाहा! अरे! भगवान! क्या हो? कोई वीतराग की उपस्थिति नहीं होती। वीतराग से भरपूर आत्मा, उसकी दृष्टि में उसकी उपस्थिति नहीं होती। भगवान त्रिलोकनाथ की उपस्थिति भरतक्षेत्र में नहीं होती और यह वीतरागस्वभाव से भरपूर (आत्मा), उसे दृष्टि में लेता नहीं। अब इसे साक्षी कौन दे? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! मैं तो मेरे वीतरागस्वभाव में जाना चाहता हूँ न! इसलिए किसी का शुभ-अशुभ का विकल्प, मैं भूतकाल का किया हुआ, अभी करता और भविष्य में (करेगा) उसका मेरा सम्मत नहीं, हों! मैं तो मेरे शुद्धोपयोग में स्थिर होना चाहता हूँ, इसलिए सम्मत है नहीं। आहाहा!

मन से, वचन से और काया से। है ? देखो ! अन्दर में है, तुम्हारे वहाँ अन्दर पड़ा है या नहीं पुस्तक में ? जामनगर, है अन्दर ? वहाँ से सब विरुद्ध है तुम्हारे से। गाँव से विरुद्ध है या नहीं ? पुस्तक नहीं ली ? यह पुस्तक दो पुस्तक। नहीं है ? (पूरे) हो रहे हैं, लो ! **'मनसा' मन से 'वाचा' वचन से 'कायेन' शरीर से।** मैं भविष्य का कोई राग करे तो मन से अनुमोदता नहीं, मन से करता नहीं, कराता नहीं, और अनुमोदता नहीं। मन से नहीं, वाणी से नहीं और काया से नहीं। समझ में आया ? परन्तु भाई ! ऐसी दृष्टि से धर्म की शुरुआत होती है। क्या हो परन्तु अब दूसरी बात। यह चैतन्यमूर्ति भगवान इन पुण्य-पाप के क्रियाकाण्ड के भाव से रहित है। अरे ! यह व्यवहाररत्नत्रय के राग से रहित है। ऐसे आत्मा की दृष्टि में जहाँ राग का अनुमोदन नहीं तो स्थिरता में राग का अनुमोदन हो नहीं सकता। समझ में आया ? आहाहा ! इसका श्लोक है। यह गद्य था, उसका यह पद्य है।

कलश - २२८

(आर्या)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३६-२२८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'निरस्तसम्मोहः आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते' [निरस्त] गई है [सम्मोहः] मिथ्यात्वरूप अशुद्धपरिणति जिसकी, ऐसा हूँ जो मैं, सो [आत्मना] अपने ज्ञान के बल से, [आत्मनि] अपने स्वरूप में, [नित्यं वर्ते] निरन्तर अनुभवरूप प्रवर्तता है। कैसा है आत्मा अर्थात् आप? 'चैतन्यात्मनि' शुद्धचेतनामात्र है। और कैसा है? 'निःकर्मणि (निष्कर्मणि)' समस्त कर्म की उपाधि से रहित है। क्या करके आत्मा में प्रवर्तता हूँ? 'भविष्यत् समस्तं कर्म प्रत्याख्याय' [भविष्यत्] आगामी कालसम्बन्धी [समस्त कर्म] जितने रागादि अशुद्धविकल्प हैं, वे [प्रत्याख्याय] शुद्धस्वरूप से अन्य हैं—ऐसा जानकर, अंगीकाररूप स्वामित्व को छोड़कर।।३६-२२८।।

कलश - २२८ पर प्रवचन

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।।३६-२२८।।

अरे! '**निरस्तसम्मोहः आत्मना आत्मनि नित्यम् वर्ते**' '**निरस्त**' '**सम्मोहः**' अहो! मेरी भ्रमणा गयी है, **गयी है मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति जिसकी ऐसा हूँ मैं...** देखो! सम्यग्दृष्टि पहले से पुकार करता है। '**सम्मोहः**' अर्थात् **मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति...** देखा? मिथ्यादृष्टिपना है तब तक पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणति को अपनी मानता है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि को अशुद्ध परिणति ही है। सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध परिणति नहीं। आहाहा! क्योंकि शुद्धस्वभाव का पिण्ड भगवान की जहाँ अनुभव में प्रतीति हुई, वह शुद्ध की परिणति ही एक उसे गिनने में आयी है। समझ में आया?

कहते हैं, यह भविष्य का कलश है। गद्य कहा, उसका पद्य है। मैं कैसा हूँ? कि

जिसमें भ्रान्ति राग, पुण्य आदि मेरे—ऐसी भ्रमणा, जिसकी परिणति मिट गयी है, व्यय हो गयी है। उत्पाद—मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा उसकी पर्याय का उत्पाद हुआ है। **परिणति जिसकी ऐसा हूँ जो मैं...** ऐसा जो मैं, जो मैं, ऐसा जो मैं—ऐसा कहा। इसे पकड़ना कठिन पड़े। यहाँ सम्यग्दृष्टि ऐसा कहता है, सम्यग्दृष्टि पहला कि, **गयी है मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति जिसकी ऐसा हूँ...** मिट गयी... मिट गयी '**निरस्त, निरस्त**'। मैं ज्ञानस्वरूपी सच्चिदानन्द सिद्ध समान मेरा वीतरागी स्वरूप। ऐसा वीतरागी अनाकुल आनन्द का पिण्ड कन्द आत्मा है, अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द वह आत्मा, उसके भान से, मिथ्यात्व की विपरीत परिणति—अशुद्ध पुण्य-पाप वे मेरे—ऐसी मिथ्यात्व की परिणति है, वह मिट गयी है। समझ में आया? क्योंकि अशुद्ध परिणति मिथ्यात्व है, वहाँ अशुद्ध परिणति है। क्योंकि वस्तु शुद्ध है। वस्तु शुद्ध कहो, वीतरागी भाव कहो, निर्दोष अकषायस्वभाव कहो। तो वह अकषायस्वभाव निर्दोष और शुद्ध है तो उसमें अशुद्ध परिणति है, वहाँ मिथ्यात्व भाव है, ऐसी अशुद्ध परिणति को यहाँ गिनने में आया है। ज्ञानी को जरा अशुद्ध परिणति है, वह ज्ञेय में जाती है, उसका परिणमन द्रव्य का वह परिणमन नहीं कहलाता। आहाहा! समझ में आया? यह भगवान शुद्ध अर्थात् वीतराग अर्थात् आनन्द, ऐसे आत्मा को तो आनन्द की शुद्ध की ही परिणति, वह आत्मा की परिणति—पर्याय कही जाती है। मलिन पर्याय वस्तु में नहीं, गुण में नहीं और उसकी परिणति किसे कहना उसे? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो **गयी है मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति जिसकी...** अर्थात् मेरी। ऐसा मैं जो सम्यग्दृष्टि। खबर पड़ गयी? यह कहते हैं न कि सम्यग्दृष्टि की खबर नहीं पड़ती, तो यहाँ तो कहते हैं, देखो! '**निरस्त**' '**सम्मोहः**' ऐसा मैं आत्मा। समझ में आया? श्रीमद् ने लिया है, भाई! निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह केवलीगम्य है, ऐसा जो कुछ कहा जाता हो, वह तो यह उसकी पर्याय के हेतु अहेतु, अनन्त पर्याय के भाग सहित जानना केवली को होता है। परन्तु बनारसीदास जैसे महापुरुषों ने कहा है कि हम समकिती हैं, हमको समकित हुआ है। यह निश्चय समकित हुआ है, ऐसा कहते हैं। वह तो यह विषय एक जगह (आता है)। समझे न? ३२वें वर्ष में है। पर्याय के अनन्त हेतु क्या हैं, अहेतु क्या हैं, इतने सब प्रकार के अविभाग प्रतिच्छेद आदि सहित का ऐसा ज्ञान केवली को है,

यहाँ नहीं। परन्तु शुद्ध भगवान आत्मा में से मिथ्यात्व टला है, और समकित हुआ है, उसका तो हमको भान वर्तता है। उसके भगवान को पूछने जाना पड़े, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। इसलिए कहते हैं, देखो!

'**निरस्त**' हुई है मिथ्यात्वरूप परिणति। '**आत्मना**' **अपने ज्ञान के बल से...** है न? '**आत्मना**' तो पहले भी आ गया था। परद्रव्य की सहायता बिना अपनी सहायता से, ऐसा पहले में लिया था। है न? '**आत्मना**' और उसके पहले में '**आत्मना**' '**अपने से**'। पहले में है न? शब्द तो वह के वह है न? स्वयं से। यहाँ '**आत्मना**' परद्रव्य की सहायता बिना अपनी सहायता से। यहाँ **अपने ज्ञान के बल से....** ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान, ऐसा। समझ में आया? अन्तिम शब्द तीनों के एक ही हैं न? ओहोहो!

भगवान आत्मा **अपने ज्ञान के बल से...** देखा? साथ में विकल्प उठता है, उसके बल से मैं स्थिर नहीं होता, कहते हैं। यह व्यवहार विकल्प उठा, उसके बल से मैं स्थिर नहीं होता। मेरा स्वत: स्वभाव ज्ञान और आनन्द के बल से मैं आत्मा में वर्तता हूँ। गजब बात, भाई! एक तो '**आत्मना**' दूसरा '**आत्मनि**' तीसरा '**नित्यम् वर्ते**' ये तीन शब्द पड़े हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा में ऐसा समझता और जानता है कि मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति मेरी नाश हो गयी है। दूसरी बात—अपने आत्मा के आनन्दबल द्वारा दृष्टि जब स्वभाव का अनुभव हुआ अर्थात् यह आत्मा तो अकेला ज्ञान स्वरूप ही है। ऐसे **ज्ञान के बल से अपने स्वरूप में...** ज्ञानबल द्वारा स्वरूप में स्थिर होता हूँ, नित्य वर्तता हूँ, ऐसा है न? वह नित्य वर्तता हूँ। नित्य वर्तता हूँ अर्थात् क्या?

निरन्तर अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ। '**नित्यम्**' वर्तता है न? **निरन्तर अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ।** अर्थात् परिणमता हूँ। मैं तो शुद्ध ज्ञानमूर्ति, जाननेवाले-देखनेवाले की प्रवृत्ति के परिणामरूप से मैं तो प्रवर्तता हूँ। यह मेरी परिणति है। यह रागादि की परिणति मुझे नष्ट हो गयी है। कोई कहे कि, यह तो बड़ी वीतराग की बात है। अरे! भगवान! भाई! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि से और स्थिरता का यहाँ विशेष वर्णन है, परन्तु बाकी सम्यग्दर्शन से ही यह बात है। आहाहा! अशुद्ध परिणमन शुद्ध द्रव्य में से नहीं आता। अर्थात् शुद्ध द्रव्य के अवलम्बन से दृष्टि अशुद्ध परिणति को स्वीकार नहीं करती। वह मेरी परिणति नहीं। मेरा द्रव्य ऐसा नहीं तो मेरी परिणति ऐसी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **अपने ज्ञान के बल से...** भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य के प्रकाश के बल द्वारा **अपने स्वरूप में...** अपना स्वरूप अर्थात् वीतरागी निर्दोष स्वभाव, उसमें नित्य अर्थात् निरन्तर। क्योंकि दृष्टि स्वभाव को अवलम्बती है, इसलिए नित्यरूप से मैं आत्मा में वर्तता हूँ। नित्यरूप से, शुद्धरूप से ही परिणमता हूँ। नित्य कायम नित्य वस्तु जैसी शुद्ध है, वैसी दृष्टि और ज्ञान हुए इसलिए मेरा परिणमन नित्य आत्मा का शुद्धरूप से परिणमता हूँ। अशुद्धपने का परिणमन, वह मुझमें है नहीं। गजब बात, भाई! यहाँ तो अभी (ऐसा कहे), शुभयोग से क्षायिक समकित होता है और शुभयोग है, वह धर्म ध्यान कहलाता है। अरे! भगवान! क्या किया तूने यह? अर...र..! अरे! अभी वीतराग नहीं मिलते। तीन ज्ञान और चार ज्ञान के धनी प्रत्यक्ष देखनेवाले नहीं मिलते कि जिससे ऐसा कहे कि अरे! भाई! तू यह क्या करता है? समझ में आया? बहुत से विपरीत दृष्टिवाले हैं। मार्ग बाहर नहीं होता, मार्ग बाहर नहीं होता। अरे! साक्षात् वीतराग वर्तते हों, साक्षात् जिनेन्द्र वर्तते हों, एक के बाद एक ... समझ में आया? बाह्यवाले न हों, अभ्यन्तर में भले हों। समझ में आया?

कहते हैं, अहो! '**नित्यम् वर्ते**' नित्य वर्ते की व्याख्या—वस्तु ज्ञान में, दर्शन में शुद्धता का भास, भान अनुभव हुआ है, वह शुद्धपना जैसे द्रव्य का नित्य है, ऐसा जहाँ दृष्टि में वह आया तो दृष्टि के परिणमन में वर्तन निर्मल शुद्ध कायम रह गया। उस शुद्ध परिणति को यहाँ धर्म कहा जाता है। उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहा जाता है। वर्तता है न? परिणमन है। समझ में आया? '**नित्यम् वर्ते**'। निरन्तर वस्तु के स्वभाव को अनुसरकर ही परिणमन है। कर्म को अनुसरकर परिणमन मेरे स्वरूप में है नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग की यह बात सुनना कायरों को कठिन पड़े ऐसी है। कायर के कलेजे काँप उठें कि अर र र! यह क्या, यह क्या? बापू! यह तो सिंह का मार्ग है। स्वरूप वीर्य सूर्य जिसे जगा, उसका मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं, अहो! **कैसा है आत्मा अर्थात् आप?** '**चैतन्यात्मनि**' कहते हैं कि, मैं कैसा हूँ? मैं तो शुद्ध चेतनामात्र हूँ। वस्तु कैसी है? कि शुद्ध चेतनामात्र। देखा? शुद्ध, शुद्ध का परिणमन कहना है न? नित्य वर्ते। क्योंकि मैं तो शुद्ध चेतनामात्र हूँ, मैं तो शुद्ध चेतनामात्र हूँ। आहाहा! शुद्ध निर्दोष वीतरागी चेतनामात्र मेरा आत्मस्वभाव, उसके

कारण मेरा परिणमन अकेला शुद्ध ही बहता है। आहाहा! यह व्यवहारवाले को कठिन पड़ता है। व्यवहार हो भले बीच में, परन्तु वह व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं, हेय में जाता है, सहायकपने नहीं। उसे शास्त्र में किसी समय साधक भी कहा परन्तु वह व्यवहारनय से, अभूतार्थनय से साधक कहा है। आहाहा! यह पंचास्तिकाय के बोल बोलते हैं न? साधक-साध्य। भिन्न साध्य-साधन। अभिन्न साध्य-साधन। भाई!

मुमुक्षु : भिन्नता को निमित्त से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु निमित्त ऐसा कि देखो! उसके साधन से साध्य होता है। भगवान! बहुत कठिन पड़ेगा, भाई! ऐसे अर्थ करना आत्मा को कठिन पड़ेंगे, बापू! उसका दु:ख सहन करना कठिन पड़ेगा। दुनिया वहाँ साथ नहीं आयेगी। माननेवाले मानेंगे कि आहा! वाह! गजब अर्थ, हों! अपने को भी खड़ा रखा धर्म में।

कहते हैं, **कैसा है आत्मा ?** वह तो शुद्ध चेतनामात्र प्रभु है न! उसमें पुण्य-पाप के विकल्प नहीं, वहाँ कर्म और कैसे उसे? मेरे अस्तित्व में तो शुद्ध चेतनामात्र ही हूँ। मेरे अस्तिरूप से मैं हूँ। शुद्ध चेतनामात्र—अकेला शुद्ध जानने-देखने के स्वभावमात्र आत्मा। **और कैसा है ?** यह अस्ति से किया। अब नास्ति से (कहते हैं)।

'नि:कर्मणि' समस्त कर्म की उपाधि से रहित है। अस्ति-नास्ति की। भगवान आत्मा शुद्ध चेतना सत्तामात्र अस्तिरूप भगवान है। **'नि:कर्मणि'** आठ कर्म और रागरहित है। वे आठों कर्म, अभी राग और आठ कर्मरहित है, हों! आहाहा! वापस ऐसा कहे, सिद्ध हो तब (आठ कर्म से रहित होगा)। समझ में आया? एक समय की जो विकार आदि परिणति है, यहाँ तो मिथ्यात्वसहित की ही अशुद्ध परिणति को गिनने में आया है। शुद्ध चेतनामात्र वस्तु भगवान आत्मा का अन्तर्दृष्टि अनुभव होने पर कहते हैं कि मैं तो कर्म की उपाधि से तीनों काल रहित हूँ। आहा! अभी संसार में ऐसा इसे कर्मरहित (कहते हो)? वह तो पर्याय में जरा राग और निमित्त कर्म और उसे राग के साथ सम्बन्ध, परन्तु राग और वह दोनों वस्तु में ही जहाँ नहीं तो पर के साथ सम्बन्ध है, यह बात है नहीं। वस्तु को (सम्बन्ध) नहीं, वस्तु शुद्ध चेतनामात्र भगवान है। आहाहा! अरे रे! समझ में आया?

समस्त कर्म की उपाधि से रहित है। यह अस्ति-नास्ति की। **क्या करके आत्मा में प्रवर्तता हूँ ?** अब तीसरी परिणति की बात बताते हैं। **क्या करके आत्मा में प्रवर्तता हूँ ? 'भविष्यत् समस्तं कर्म प्रत्याख्याय' आगामी काल सम्बन्धी जितने रागादि अशुद्ध विकल्प हैं...** भविष्य में जितने शुभ और अशुभ विकल्प, **वे शुद्ध स्वरूप से अन्य हैं ऐसा जानकर...** यह प्रत्याख्यान की व्याख्या। प्रत्याख्यान में ऐसा आया और जाना। नहीं कहा ? यह प्रत्याख्यान है। जाना, यह प्रत्याख्यान है। दूसरा प्रत्याख्यान कौन सा था ? ज्ञानमूर्ति भगवान को राग से पृथक् जानकर स्थिर हुआ, वह प्रत्याख्यान, ज्ञान की स्थिरता वह प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान कोई विकल्प और यह त्याग किया, ऐसा कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहा ! समझ में आया ?

जितने रागादि अशुद्ध विकल्प हैं... देखो ! कर्म की व्याख्या यह की। अशुद्ध विकल्प को ही यहाँ कर्म कहा। है न ? **'समस्तं कर्म'** कर्म अर्थात् कार्य, कार्य अर्थात् विकल्प भाव। जितने शुभ-अशुभ विकल्प के भाव हैं, उतने सब विकल्पों को मैं छोड़ता हूँ अर्थात् कि मेरे शुद्ध स्वरूप से अन्य है, ऐसा पृथक् करके स्थिर होता हूँ, उसका नाम मुझे भविष्य के प्रत्याख्यान हैं। आहाहा ! इसलिए अहं—मैंपना उनमें नहीं है। मैंपना है वह यहाँ है—ज्ञानानन्द चेतन में मैंपना है, यहाँ (रागादि में) मैंपना नहीं। अर्थात् वे मुझसे अन्य हैं।

ऐसा जानकर अंगीकाररूप स्वामित्व को... देखा ? अकेला स्वामी नहीं। अंगीकाररूप। यह मेरे हैं, ऐसा न करके, मैं मानकर जो था, ऐसा नहीं। राग-विकल्प हो परन्तु उसे मैंपना अंगीकार करके था, वह अब नहीं है। समझ में आया ? एक-एक शब्द के अर्थ भी ऐसे भरे हैं न ! समयसार, 'पाण्डे राजमल जैनधधर्मी समयसार नाटक के मर्मी' बनारसीदास ने ऐसा कहा। वस्तु में जैसे भाव भरे हैं न, वैसा ही वाच्य है, वैसा ही वाचक कहा है।

प्रत्याख्यान की व्याख्या—**शुद्धस्वरूप से अन्य हैं, ऐसा जानकर अंगीकाररूप स्वामित्व को छोड़कर।** राग के विकल्प और स्वभाव के साथ स्थिरता के साथ राग मिलान नहीं खाता, ऐसी स्थिरता का भाव हुआ, उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। उसका

नाम प्रत्याख्यान। हाथ जोड़कर करो प्रत्याख्यान (ऐसा नहीं है)। यह भूत(काल का)— गत काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवर और आगामी काल के प्रत्याख्यान। ये तीन प्रकार एक ही वीतरागभाव को एक काल की अपेक्षा से तीन वर्णन किये, बाकी वर्तमान वीतराग शुद्धोपयोग भाव के ये तीन प्रकार वर्णन हैं। वर्तमान पुण्य-पाप के विकल्प से छूटकर स्थिर हुआ, वह भूतकाल का प्रतिक्रमण कहलाया, वर्तमान का संवर कहलाया और भविष्य का प्रत्याख्यान कहलाया। उसे शुद्धोपयोग का आचरण और चारित्र कहा जाता है। उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित स्थिरता (हो), वह चारित्र कहलाता है, दूसरा चारित्र नहीं हो सकता। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २२९

(उपजाति)

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे।।३७-२२९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'अथ विलीनमोहः चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे' [अथ] अशुद्धपरिणति के मिटने के उपरान्तु, [विलीनमोहः] मूल से ही मिटा है मिथ्यात्वपरिणाम जिसका—ऐसा मैं, [चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे] ज्ञानस्वरूप जीववस्तु को निरन्तर आस्वादता हूँ। कैसा आस्वादता हूँ? 'विकारैः रहितं' जो राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति से रहित है। ऐसा कैसा हूँ मैं? 'शुद्धनयावलम्बी' [शुद्धनय] शुद्धजीववस्तु का [अवलम्बी] आलम्बन ले रहा हूँ, ऐसा हूँ। क्या करता हुआ ऐसा हूँ? 'इत्येवं समस्तं कर्म अपास्य' [इत्येवं] पूर्वोक्त प्रकार से, [समस्तं कर्म] जितने हैं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म, उन्हें (अपास्य) जीव से (अपने से) भिन्न जानकर-स्वीकार को त्यागकर। कैसा है रागादि कर्म? 'त्रैकालिकं' अतीत-अनागत-वर्तमान कालसम्बन्धी है।।३७-२२९।।

कार्तिक कृष्ण १३, रविवार, दिनांक-२१-११-१९६५, कलश-२२९, प्रवचन-२४६

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका ३७वाँ कलश है।

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे।।३७-२२९।।

क्या कहते हैं? '**अथ विलीनमोहः चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे**' धर्मी जीव अर्थात् क्या? कि यह आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है। आत्मा का ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है। यह शरीर, वाणी, वे इसके नहीं, वे तो जड़ हैं। उसमें पुण्य

और पाप के शुभ-अशुभभाव हों, वह विकार है। आत्मा तो सत् चिदानन्द ज्ञानानन्द स्वरूप शुद्ध है। ऐसा अन्तर में भान करके, कि मैं आनन्द हूँ, ज्ञानानन्द की मूर्ति हूँ, ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा का अनुभव करके कहते हैं, **अशुद्ध परिणति के मिटने के उपरान्त...** यहाँ चारित्र की व्याख्या है न?

मैं एक आत्मा पुण्य और पापरूपी अशुद्धभाव, यह अशुद्ध परिणति की व्याख्या है। शुभ और अशुभभाव, यह अशुद्ध परिणति अर्थात् अशुद्ध विकार है। उसके मिटने के उपरान्त। यहाँ चारित्र की व्याख्या है न? वह मैं नहीं—पुण्य और पाप के विकल्प/वृत्तियाँ, वह मैं नहीं। मैं एक ज्ञानानन्द सत् त्रिकाल शाश्वत् शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा हूँ। आहाहा! ऐसी अन्तर्मुख की स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि में पुण्य-पाप की परिणति का नाश हो गया है। धर्मी को (ऐसा धर्म प्रगट हुआ है)। यह धर्म, धर्म कोई बाहर की चीज़ नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य-सूर्य, जिसमें नित्य नित्यानन्द आनन्द अतीन्द्रिय जिसमें आनन्द पड़ा है, ऐसे आत्मा को अन्तर्मुख होकर (जाना है)। जो उसकी दशा अनादि काल से पुण्य-पाप के मलिन परिणाम से जो दशा वर्तती है, उसे छोड़कर मैं एक अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी परिणति में परिणमे, हो, तब उसे अशुद्ध परिणतिरूप शुभाशुभ मिट जाये। गजब बात, भाई! भगवानभाई! भारी धर्म, भाई! ऐसा धर्म! यह तो सबका चलता है, दूसरे प्रकार का।

भगवान आत्मा... इसने कभी अनन्त काल में इसकी क्या चीज़ है, इसने जाना ही नहीं। मैं कौन हूँ? यह कहेंगे। यहाँ शुद्धनय का अर्थ ही यह करेंगे। समझ में आया? आत्मस्वरूप शुद्ध जीव वस्तु। है न नीचे? भाई! छठी लाईन में। वह शुद्धनय अर्थात् ही यह। मैं शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव अनाकुल आनन्द का रस स्वभाव, वह मैं आत्मा। उसमें जितने विकल्प पुण्य-पाप के, शुभ-अशुभ की वृत्तियाँ उठती हैं, वह सब विकार है। उस विकार को यहाँ अशुद्ध परिणति कहते हैं। अशुद्ध अर्थात् मलिन दशा। यदि उसमें मलिन दशा न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वर्तमान स्वाद-अनुभव होना चाहिए। अतीन्द्रिय आनन्द का (स्वाद होना चाहिए)। क्योंकि वह वस्तु, स्वयं वस्तु है, वह तो

अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, परन्तु उसका अनादि से भान नहीं करके शुभ और अशुभ के राग और यह शरीरादि मेरे, ऐसी मलिन दशा को खड़ा किया, दुःख की दशा को अनुभवता है, इसका नाम संसार और इसका नाम परिभ्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी **अशुद्ध परिणति के मिटने के...** मैं यह पुण्य-पाप के मलिन परिणाम, वह मैं नहीं। उसे मिटाकर अन्तर्मुख होकर। यहाँ जरा ऐसी शैली लेते हैं। '**अथ**' का अर्थ ऐसा किया, फिर तदुपरान्त '**विलीनमोहः**' ऐसा (कहा)। **मूल से ही मिटा है मिथ्यात्व परिणाम जिसका ऐसा मैं....**

मुमुक्षु : मिथ्यात्व परिणाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहा है। '**विलीनमोहः**' कहा न? मोह अर्थात् मोह-मिथ्यात्व। **मूल से ही मिटा है....** यह शैली है। आगे २०९ पृष्ठ पर भी आयेगा। **अज्ञानचेतना का विनाश होने के उपरान्त आगामी सर्व काल शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु...** यह थोड़ी शैली है। २३४ (कलश की) अर्थ की दूसरी लाईन। **अज्ञानचेतना का विनाश होने के उपरान्त...** है न? ४२ कलश (२३४) कलश की दूसरी लाईन। पहले से दूसरी लाईन। **उपरान्तु आगामी सर्व काल...** ऐसा यहाँ एक शब्द यह है। इसका अर्थ क्या है? कि मूल '**अथ**' शब्द पड़ा है न, इसलिए कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वपने का नाश किया है, इसलिए अशुद्ध परिणति मिटी है—मूल तो ऐसा कहना है।

मिथ्या अर्थात्? कि यह पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध-मलिन हैं, वह मैं हूँ—ऐसी मान्यता को मिथ्याभ्रम कहते हैं। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो जड़, मिट्टी-धूल है परन्तु अन्दर में उठते पुण्य और पाप के विकल्प... जरा सूक्ष्म बात है, भाई! इसने अनन्त काल में आत्मा को जानने का प्रयत्न नहीं किया। सब मर गया कर-करके राग और द्वेष, चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करके मर गया, सूख गया। धर्म के नाम से भी अपवास और त्याग और क्रियाकाण्ड करके मर गया। शुभराग हुआ, पुण्य बँधा, वह स्वर्ग या धूल का सेठिया होकर वापस चार गति में भटका।

भगवान आत्मा ऐसे सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... शाश्वत् सत्, उसका ज्ञान और आनन्द उसका रूप, उसके अन्दर में जो यह पुण्य-पाप की अवस्था दशा में

होती है, वह विकार है, वह दु:खदायक है, अहितकर है, वह परिभ्रमण का मूल है। उसे मिटाकर अर्थात् कि मूल से मिथ्यात्व मिटाया तो वह मिट गया है। भ्रमणा मिट गयी है। मैं ज्ञाता-दृष्टा चिदानन्द हूँ, यह पुण्य और पाप की वृत्तियाँ विकृत है, वह मेरे मूल स्वरूप में नहीं है। स्वरूप में नहीं, स्वरूप में मैल और मलिनता है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मूल से ही मिटा है मिथ्यात्व परिणाम जिसका.... अर्थात् जिसने भ्रम उखाड़ डाला है। आहाहा! आत्मा ज्ञानज्योति चैतन्य ब्रह्म प्रभु की अन्तर में दृष्टि करके पुण्य-पाप के मलिन परिणाम वह मैं, ऐसा जो भ्रम-मिथ्यात्वभाव, वह चिदानन्दमूर्ति आत्मा मैं, ऐसे भान द्वारा मिथ्या भ्रान्ति को जिसने नाश किया है। तब उसे धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! जयन्तीभाई! भारी धर्म, भाई! यह। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि अशुद्ध परिणति मिटी, उसका कारण क्या? ऐसा 'उपरान्त' भले शब्द लिया। **मूल से ही मिटा है मिथ्यात्व परिणाम जिसका ऐसा मैं....** क्योंकि मेरा भ्रम ही मिट गया है। मैं तो ज्ञान चैतन्य-सूर्य अनादि अनन्त, शाश्वत् अनन्त चैतन्य तत्त्व हूँ। समझ में आया? ऐसे अन्तर के ज्ञायक चैतन्य के भान द्वारा चैतन्य सूर्य दृष्टि में प्रकाशमान आत्मा प्रगट हुआ है, इसलिए पुण्य-पाप के (परिणाम में) मेरेपन का भ्रम—मिथ्यात्व का नाश किया है। समझ में आया?

(मिटा है) मिथ्यात्व परिणाम जिसका ऐसा मैं.... ऐसा मैं—ऐसा धर्मी विचार करता है। आहाहा! '**चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे**'। देखो! मैं तो '**चिन्**' अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा। भगवान '**चिन्**' ज्ञान। '**चिन्**' '**चिन्**' अर्थात् ज्ञान। चैतन्यसूर्य प्रकाशबिम्ब, चैतन्यसूर्य का स्वरूप वह मैं। चैतन्यसूर्य जाननस्वभाव चैतन्य सत्त्व, वह मैं। ऐसा '**चिन्**' चिन्मात्र, चिन्मात्र अर्थात् **ज्ञानस्वरूप जीववस्तु को....** देखो! इस जीववस्तु को ऐसा कहते हैं। उसे आत्मा कहते हैं। वे पुण्य-पाप के भाव उठें, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। वह विकृतभाव, दु:खरूपभाव, वह अनादि का भ्रमणा के कारण उत्पन्न किया हुआ भाव, वह दु:खदायक है। इसलिए चिन्मात्र जीवस्वरूप हूँ। अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान अर्थात् यह अन्दर समझण का पिण्ड, चैतन्य पुंज, ज्ञान पुंज। चिन्मय ज्ञानस्वरूप जीव, वह वस्तु।

निरन्तर आस्वादता हूँ। ओहोहो! क्या कहा? कि अज्ञान में मैं जो पुण्य-पाप के अशुद्ध ऐसे भाव को मैं वेदता था, स्वादता था, अनुभव करता था। शुभ-अशुभभाव विकार को अनुभव करता था, वेदता था, आस्वादता था। अब, मैं वे मलिन परिणाम, वह नहीं, मैं तो निर्मलानन्द प्रभु हूँ। ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि हुई और आत्मा का जो आनन्द अन्दर में है, वह प्रगटरूप से आनन्द की व्यक्तता शक्ति में से प्रगट हुई, इससे मैं अब आनन्द को वेदता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

चिन्मात्र वस्तु निरन्तर आस्वादता हूँ। अर्थात् कि अनादि काल का भगवान मेरा स्वभाव ज्ञानानन्द को भूलकर यह पुण्य-पाप के विकल्पों की वृत्तियाँ उठे, उन्हें मैंने मेरा माना, उनका वेदन अनादि का नित्य था। नित्य अर्थात् कायम, कायम। अज्ञान... अज्ञान... अज्ञान... अज्ञान... अज्ञान... राग-द्वेष... राग-द्वेष... पुण्य-पाप विकल्प। अब मैं गुलाँट खाता हूँ, मैं तो चिदानन्द आत्मा हूँ। मेरे स्वरूप में इस मलिनता की गन्ध नहीं। मैं तो ज्ञानानन्द से भरपूर भगवान हूँ। ऐसे अन्तर में दृष्टि होने पर जो ज्ञान और आनन्दस्वरूप सत्त्व है, वह पर्याय में अर्थात् अवस्था में सम्यग्ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट होती है, उसे मैं (वेदता हूँ)। धर्मी ऐसा कहता है कि अब तो मैं उसे वेदता हूँ, मैं जो अज्ञान को वेदता, अनुभव करता (था), अब मैं ज्ञान और आनन्द को वेदता हूँ। आहाहा! रतिभाई! यह गजब धर्म, भाई! लो! इसका नाम धर्म। धर्म कोई दूसरी चीज़ नहीं। यह पूजा-भक्ति की या दया-दान, व्रत, भक्ति करके धर्म हो गया। भीखाभाई! शुभभाव है एक, पुण्यभाव है। पाप के भाव से बचने का एक शुभभाव है, धर्म नहीं।

धर्म तो 'वत्थु सहावो धम्मो'। वस्तु भगवान आत्मा का स्वभाव तो प्रकाश, ज्ञान और आनन्द है। उसका अन्तर्मुख में जो पुण्य-पाप की परिणति का स्वामीपना छोड़कर सहजात्म स्वरूप चिदानन्द सहज चैतन्यस्वरूप, उसका स्वामीपना अन्तर में स्वीकार करके जो पर्याय अर्थात् अवस्था में ज्ञान के प्रकाश की पर्याय, प्रतीति की पर्याय, शान्ति की पर्याय, आनन्द की पर्याय (प्रगट हो), उसे मैं वेदता हूँ, ऐसा मैं आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप जीव ऐसी वस्तु। मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यप्रकाशसूर्य—चैतन्यसूर्य,

पूरा चैतन्य शक्ति का सूर्य चैतन्य, ऐसी जो मैं वस्तु, उसे मैं आस्वादता हूँ। ज्ञान को अनुभव करता हूँ। इसका अर्थ कि सच्ची अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द के अंश को मैं अनुभव करता हूँ। यह उसका नाम चारित्र कहा जाता है। उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई बाहर का क्रियाकाण्ड, तिलक (किया), वस्त्र छोड़े, वह क्रिया चारित्र नहीं है। कठिन बात, भाई! यह चारित्र की व्याख्या उपरान्त बात आयी है न? यह तीन आ गये न? प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान।

चरना... चरना। वस्तु ज्ञानानन्द में शुद्ध चैतन्य को दृष्टि में लेकर अन्दर में चारित्र अर्थात् चरना, रमना, स्थिर होना, जमना और अन्तर की शान्ति और आनन्द की व्यक्तता प्रगट करके अनुभव करना, यह इसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यहाँ तो चारित्र मूली के हाट में बिकता है अभी। बाबा हुआ और वस्त्र बदले। आहाहा! सस्ता क्या हुआ, धूल हुई।

अरे! बापू! चारित्र अर्थात् क्या? वस्तु ज्ञानानन्द प्रभु को पुण्य-पाप की वृत्तियों से विमुख करके, स्वभाव में स्थिर करके, यह आत्मा मैं पूर्णानन्द, ऐसी प्रतीति और भान करके और फिर उसमें स्थिर होना, चरना, वह आनन्द का चारा चरे आत्मा। आहाहा! भगवान आनन्द की मूर्ति आत्मा नित्यानन्द प्रभु आत्मा है। शक्ति का सत्त्व, उस पर एकाग्र होकर उसकी पर्याय में, अवस्था में, वर्तमान दशा में उस आनन्द का चरना, आनन्द को चरे, वेदन करे, अनुभव करे। यह चारा चरते हैं या नहीं पशु? इसी प्रकार आत्मा आनन्द को चरे। आहाहा! यह और कैसा? समझ में आया? ऐसे जमीन में घास उगी हो तो यह ढोर चरते हैं या नहीं? ढोर चारा चरने गये, ऐसा कहते हैं। यह आत्मा अन्दर में चारा चरने गया, कहते हैं।

भगवान नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख दृष्टि करके और उसकी रुचि करके और उसमें स्थिरता का चारा चरे, उसे आनन्द का स्वाद आवे, उसे भगवान चारित्र कहते हैं और वह चारित्र, मुक्ति का कारण है। समझ में आया? मुक्ति अर्थात् परमानन्द की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। मुक्ति कोई दूसरी चीज़ नहीं। आनन्दमय भगवान आत्मा की दशा में पूर्ण आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण प्राप्ति अन्दर में से होना, इसका नाम

मुक्ति। इसके उपायरूप से यह चारित्र है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे तो कहें, अरे! भाई! दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना। भगवानजीभाई! ऐसा सुना है या नहीं? रेत के ग्रास चबाना, बापू! चारित्र बहुत कठिन है। अरे! भगवान! तुझे चारित्र की खबर नहीं। तलवार की धार (जैसा चारित्र है, ऐसा लोग कहते हैं)। अर्थात् चारित्र दुःखरूप होगा? ऐसा सुना है या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू तो आनन्द का घन है न, भाई! सच्चिदानन्दस्वरूप है न! सत् शाश्वत्, शाश्वत् अर्थात् अकृत्रिम, अनाश हो ऐसा। ज्ञान का, आनन्द का कन्द ऐसा है। ऐसे आनन्द को अन्तर में प्रगट करके, अन्तर्मुख होकर आनन्द का वेदन (आवे), उसका नाम चारित्र है। उसमें तो शान्ति और सुख है, उसमें दुःख नहीं हो सकता। आहाहा! कभी सुना नहीं, विचार नहीं किया, उस तत्त्व के सन्मुख कभी देखने का प्रयत्न नहीं किया। घानी के बैल की भाँति घूमा ही करता है। पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, क्रियाकाण्ड कर-करके मर गया, परन्तु तत्त्व को जाना नहीं। समझ में आया?

यह कहते हैं, मैं तो **निरन्तर आस्वादता हूँ।** मुझे तो आनन्द है। आहाहा! हमको तो आनन्द है। यह (पूछे न), कैसे हो? भाई! सुख है? सुख-साता है? ऐसा कहते हैं या नहीं? धर्मी को कहते हैं कि भाई! कैसा है तुम्हें? आनन्द है। यह प्रतिकूल परीषह पड़े, खाने को मिले नहीं, पीने को मिले नहीं, सोने को मिले नहीं, जंगल में पड़ा हो। हमको आनन्द है। हम हमारे आनन्द की शैय्या चैतन्य भगवान, उसमें हम पड़े हैं, हमको आनन्द है, हमको दुःख नहीं। आहाहा!

यह घाणी में मुनि पिलते हैं। हमको आनन्द है। हम घाणी में पिलते नहीं। वह तो शरीर की क्रियायें हैं, हम तो हमारे आनन्द में स्थित हैं। आहाहा! देखो! यह मुनियों को यह सिंहनी खाती है। है न यह सिंहनी? पूर्वभव की उनकी माँ थी। उन्हें दुःख नहीं है। लोगों की दृष्टि की भूल है कि अरे! उन्हें दुःख है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह देह की क्रिया उनके आत्मा को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! उनके आत्मा में अन्दर में आनन्द का.... आनन्द का... आनन्द का.... स्पर्श हुआ है। उस आनन्द के स्पर्श से

शीतल छाया में आत्मा अन्दर शान्त पड़ा है। उन्हें दुःख नहीं है। दूसरे ऐसा (देखें कि) अरे रे! मुनियों को भी दुःख कितना! भाई! तुझे आनन्द की दशावन्त सन्तों की-धर्मात्मा की तुझे खबर नहीं है। समझ में आया? तेरी नजरों में चारित्र और आनन्द क्या होता है, उसकी कीमत आयी नहीं। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में आत्मा के भानवाले धर्मी जीव हों। निर्धन हो, अविवाहित हो, विधुर हो, गरीब हो, शरीर एकदम काला हो। हमको आनन्द है। क्योंकि उस चीज़ में हम नहीं। हम तो आनन्दमूर्ति में हैं, ऐसी दृष्टि में हमको तो आनन्द है। यह सब पैसे और धूलवाले कहे, हम सुखी हैं। (वास्तव में) दुःखी के सरदार हैं। कौन कहे, सुखी हो?

मुमुक्षु : पैसा है, इसलिए दुःखी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा है, इसलिए (नहीं), उसकी ममता है, इसलिए दुःखी है। पैसा है इसलिए दुःखी नहीं। यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... उन्हें मेरा... मेरा... मानने का जो अभिमान भाव ममता, वह दुःख है। यह ज्ञानानन्दी मैं... ज्ञानानन्दी मैं... ज्ञानानन्दी मैं—ऐसा अन्तर परिणमन, हों! आहाहा! परिणमना अर्थात् उस दशा का होना। मैं ज्ञानानन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द का कन्द आत्मा हूँ। ऐसी अन्तर दशा अनुभव की दृष्टि होने पर आनन्द है, आनन्द है। आहाहा! कहो, रतिभाई! यह किस प्रकार के माप होंगे यह? अरे! भाई! यह गज ही अलग प्रकार के हैं।

कैसा आस्वादता हूँ? 'विकारैः रहितं' देखो! **जो राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति से रहित...** मैं तो आत्मा हूँ न! जिसमें मेरी दृष्टि पड़ी है, वह तो आत्मा है। मेरी दृष्टि पुण्य-पाप और शरीर में मैंपने की रही नहीं। मैंपने की दृष्टि ज्ञानानन्द में रही है, इसलिए मैं विकाररहित आत्मा हूँ। समझ में आया? ऐई... जमुभाई! विकार अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्पों की वृत्तियाँ जो हैं, उनसे रहित। **अशुद्ध परिणति से रहित है ऐसा कैसा हूँ मैं? कैसा हूँ मैं?** ऐसा। इस प्रकार मैं कैसा हूँ? ऐसा कहते हैं। कि **'शुद्धनयावलम्बी'** मैं तो शुद्ध जीववस्तु हूँ। शुद्धनय के अवलम्बन की व्याख्या है यह। शुद्धनय अर्थात् जो ज्ञान आत्मा को अवलम्बता है। पूर्णानन्द प्रभु, वह वस्तु ही स्वयं शुद्धनय अवलम्बी उसे कहा जाता है। पुण्य-पाप के अवलम्बन से वह व्यवहारनय से

हेय है। आहाहा! यह धर्मी का मार्ग आनन्द का अलग प्रकार का है। समझ में आया?

कहते हैं, मैं तो शुद्ध-शुद्ध जीववस्तु हूँ, उसका अवलम्बन लेता हूँ। भगवान आत्मा देहादि होने पर भी वह मेरी चीज़ में नहीं। विकल्प, वृत्तियाँ उठती हैं, तथापि वह मेरी मूल चीज़ में, दृष्टि के (विषयभूत) मूल वस्तु में नहीं। मैं मेरे शुद्ध आत्मा को अवलम्बता हूँ। मेरी दशा का आधार, मेरी वर्तमान दशा का आधार शुद्ध ध्रुव मेरु आत्मा है। क्या कहते हैं यह? इसकी धारा, इसकी लाईन कभी समझी नहीं, इसलिए यह क्या होगा यह वह? यह भगवान आत्मा अन्दर (भिन्न है)। यह (शरीर) तो मिट्टी, धूल है। रजकण सूक्ष्म धूल और मिट्टी अन्दर सूक्ष्म कर्म है। वह बारीक धूल है, यह स्थूल (धूल है)। और शुभ और अशुभराग उठता है, वह मैल, विकार है। उसके बिना की चीज़ को आत्मा कहा जाता है। आहाहा! उस आत्मा को मैं अवलम्बता हूँ, ऐसा कहते हैं। यह जन्म-मरण के नाश का उपाय है, भाई! समझ में आया?

मैं तो शुद्ध जीववस्तु का अवलम्बन लेता हूँ। यह व्यवहार का विकल्प उठे, उसका अवलम्बन मुझे नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! बीच में वृत्ति भक्ति, दया, पूजा, भाव, स्मरण, आवे, परन्तु वह शुभराग है। वह शुभराग वस्तु का स्वरूप नहीं है। उसे मैं अवलम्बता नहीं। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़ता है। बेचारे पढ़-गुने उलटे पड़े गोते खाते हैं। पढ़-पढ़कर पढ़े शास्त्र, परन्तु शास्त्र पढ़कर निकाला क्या वह? समझ में आया?

चिदानन्द भगवान आत्मा भरपूर शान्त और आनन्द से भरपूर पदार्थ, उसका अवलम्बन लेना, यह वीतराग सर्वज्ञ शास्त्र की आज्ञा है। आहाहा! बीच में मूर्ति, पूजा, भक्ति भाव आवे, वह शुभराग है। उसके अवलम्बन से तू जाने कि मेरी धर्म दशा और मुक्ति होगी (तो ऐसा नहीं है)। जयन्तीभाई! ऐ... निहालभाई! देखो! यहाँ तो अवलम्बन लिया। आहाहा! मंजिल पर चढ़ने के लिये जैसे सीढ़ियाँ और डोरी का अवलम्बन है। मेरा भगवान शुद्धस्वभाव की धातु चैतन्यघन, वह मेरी दृष्टि और मेरी दशा को आधार है। वर्तमान मेरी दशा का आधार वह भगवान आत्मा है। मुझे अवलम्बन मेरे तत्त्व का है। मुझे अवलम्बन किसी का, विकल्प या देव-गुरु-शास्त्र कहे भगवान की प्रतिमा या

साक्षात् तीर्थंकर विराजते हों, उनका मुझे अवलम्बन नहीं है। ऐ... भीखाभाई!

मुमुक्षु : तीर्थंकर भगवान की वाणी सुनते हुए तो आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह वार्ता चैतन्य की ऐसी है कि यदि रुचिपूर्वक सुने तो उसमें भी आनन्द है। आकुलता कहाँ है उसके घर में? अरे! इसमें प्रेम से सुना कब है? पाँच हजार की आमदनी की बात सुने तो हुंकारा करे अन्दर से। हें? कहाँ? धूल में अब, सुन न! परन्तु यह तेरा परमात्मा अन्दर विराजता है पूर्णानन्द का नाथ, उसके सन्मुख देख! उसे देख, वह क्या है? आहाहा! क्या कहते हैं यह? यह क्या कहते हैं? लो! भ्रमणा में पड़ जाते हैं।

भगवान अन्दर चिदानन्द नाथ है। आहाहा! जगत की साधारण चीज़ को तू महिमा देता है तो महिमा जिसे देनेवाला, उसकी महिमा कितनी है? वह महिमावन्त प्रभु! जिसके गीत वाणी द्वारा पूरे नहीं पड़ते, ऐसा वह है। वचनातीत, विकल्पातीत, मनातीत, देहातीत ऐसा भगवान आत्मा, यह आत्मा, हों! ऐसा प्रत्येक, ऐसा प्रत्येक का आत्मा। आहाहा! शुद्ध जीववस्तु, जिसमें अनन्त शक्तियाँ बसी हुई हैं, ऐसा भगवान, उसका अवलम्बन लेता हूँ। ओहोहो! उसका अवलम्बन लेता हूँ। यह तो समझाते हैं न? मुझे उसका अवलम्बन है, ऐसा। लेता हूँ, (ऐसा) अर्थ करते हैं। समझाना है न!

वस्तु में रागादि या शरीरादि हो, परन्तु वे कहीं मेरी चीज़ में नहीं हैं। उनका अवलम्बन मुझे नहीं है। धर्मीजीव की दृष्टि में भगवान चिदानन्द आत्मा पड़ा, उसका अवलम्बन है। मोक्षमार्गप्रकाशक में शुरु किया वह शुद्धोपयोग से धर्म शुरु किया है। तब (कोई कहता है), शुभयोग से मुनिपना होता है। अरे! भगवान! यह तूने क्या किया? शुभराग जो उठता है, वह तो विकल्प है, राग है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें आत्मपना कहाँ आया? सम्यग्दर्शन कहाँ आया? और मुनिपना उसमें कहाँ आया? आहाहा! जगत को उल्टी मान्यता में अनादि से हैरान किया है। मनुष्यपना पाया, तब और कहीं धर्म के बहाने आया, तो ऐसी उल्टी विपरीतता घुस गयी। हैरान... हैरान होकर चला गया। भव-भव हैरान हो गया। समझ में आया?

भगवान आत्मा देह-देवल में महान चैतन्य प्रभु विराजता है। उस देवल से

भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! और महान पदार्थ है। कहते हैं, धर्मी की दृष्टि में तो अकेला आत्मा ही अवलम्बन में वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? और वापस कहे, ऐसी बातें करे, और वापस विशाल मन्दिर (बँधावे), और यह (कहे)। भाई! यह तो उसके काल में होता है, प्रभु! यह शुभभाव होता है, तब उसका लक्ष्य वहाँ जाता है। शुभभाव, वह पुण्य का कारण है। जब स्वरूप में स्थिर नहीं हो, तब पाप के भाव से बचने के लिये उसे शुभभाव भक्ति आदि का होता है, परन्तु इतने अवलम्बन से तू ऐसा मान ले कि आत्मा का धर्म है (तो ऐसा नहीं है)। आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... (बोला करे), वह तो सब विकल्प है, कहते हैं। नामस्मरण भी राग है। वह धर्मी को अवलम्बन नहीं है। आहाहा! ऐई! भाई! तुझे आत्मा की महत्ता की खबर नहीं। यह भगवान आत्मा धर्मी की दृष्टि में भगवान चिदानन्द प्रभु! वह अवलम्बनरूप, आश्रयरूप, आधाररूप वर्तता है। वह तो आश्रय तो 'भूयत्थमस्सिदो खलु' आहाहा! यह विवरण है। यह सब शैली की हो, उसे अनेक प्रकार से वर्णन करके वास्तविक सिद्ध करना होता है न! समझ में आया?

क्या करता हुआ ऐसा हूँ? ऐसा हूँ, ऐसा कहते हैं वापस। मैं तो शुद्ध जीव भगवान पूर्ण आनन्द का स्वरूप ऐसा आत्मा, उसका ही मुझे अन्तर आश्रय अवलम्बन है। **ऐसा हूँ....** ऐसा वापस। **आलम्बन ले रहा हूँ, ऐसा हूँ।** ऐसा मैं हूँ। अन्दर में रागादि, शरीरादि के निमित्त और अवलम्बन ले रहा हूँ, ऐसा मैं नहीं। यदि ऐसा सीखना हो तो कहीं हेडमास्टर में आता होगा न? तुम्हारे विद्यालय में आवे? नहीं? आहाहा! अरे! इस वाड़ा में भी जहाँ खबर नहीं, क्या हो? कहीं का कहीं (लगाते हैं)। बेचारे को मुश्किल से ऐसा मनुष्यदेह मिला। आहाहा!

कल देखा, पांसली करके वापस ऐसा का ऐसा सोना पड़े पन्द्रह-पन्द्रह दिन। गजब बात है। क्योंकि पसली टूटी हो और सांध लगायी हो तो ऐसे भी न हो, ऐसे भी न हो। आँखवाले को तो अभी छह घण्टे ही रहे। वह भी पैर ऊँचा-नीचा कर सके, छह घण्टे बाद फिर ऐसे घुमाये। उसे तो कौन जाने (क्या हुआ), कल उसके कारण चिल्लाहट मचा गया बेचारा, हों! अरे! प्रभु! आहाहा! तेरह-तेरह दिन हुए। पसली

काटी होगी अन्दर और अन्दर वे (टाँके) लगाये होंगे। डॉक्टर कहे, घूमना नहीं, हों! जरा ऐसे भी नहीं होगा। टाँका टूटा तो फिर हो गया। हाय... हाय! और दृष्टि देह के ऊपर हो। आत्मा कौन है, उसकी तो खबर नहीं। ऐसे का ऐसे रहना, हों! ऐसे का ऐसे रहना। कितने समय? हम कहते हैं तब तक। जब तक डोरा पक्का होकर तोड़नेयोग्य न हो, तब तक ऐसे घुमोगे नहीं, हों! घूमे तो फिर से वापस टाँका लगाना मुश्किल पड़ेगा। हाय... हाय! पन्द्रह दिन तक ऐसे पड़ा रहा। कल तो अभी देखा। चिल्लाहट मचाये, चिल्लाहट। हों! पूरा परिवार इकट्ठा हो गया। अस्पताल में कल गये थे। चिल्लाहट मचाये, वे रोवे, वह रोवे। अरे! भगवान कहाँ शरण है? बापू! किसे पुकार करता है? चिदानन्द की पसली अन्दर पड़ी है बड़ी। वह चिदानन्द की शिला पड़ी है। आहाहा! ऐसे एकाग्र होकर वहाँ सोने जा। वहाँ जागकर हिल नहीं। भगवान आत्मा ऐसी दृष्टि को वहाँ स्थिर कर (कि) हिले नहीं। तब उसे शान्ति और आनन्द आये बिना रहे नहीं। आहाहा!

कहते हैं, क्या करता हुआ ऐसा हूँ? **'इत्येवं समस्तं कर्म अपास्य' पूर्वोक्त प्रकार से जितने हैं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म,...** जड़ आठ कर्म हैं न? उनसे भी रहित और **रागादि भावकर्म....** विकार, मैल, शुभ-अशुभराग। **उन्हें जीव से भिन्न जानकर...** भगवान आत्मा से चैतन्य के तेज के समक्ष यह राग और कर्म आदि भिन्न हैं। चैतन्य के प्रकाश के नूर में यह रागादि, कर्म आदि नहीं। ये रागादि कर्म को मेरे चैतन्य के प्रकाश में रहता हुआ इन्हें भिन्न करता (हुआ रहता हूँ)। यह भिन्न करता अर्थात् भिन्न हो जाते हैं। स्वभाव चैतन्य के सन्मुख अन्तर में देखने से, उसमें एकाकार होने से यह रागादि कर्म को भिन्न करता हुआ, ऐसा कहने में आया है। इसका अर्थ कि **स्वीकार को त्यागकर।** ऐसा। मैं शुद्ध चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द का स्वीकार करता हुआ, अवलम्बन करता हुआ अन्दर में पुण्य-पाप की वृत्ति और जड़ कर्म, जिसे नसीब कहते हैं, उसे मैं स्वीकार नहीं करता, मैं मेरे स्वरूप में उसे स्वीकार नहीं करता। आहाहा! देखो! यह धर्मी की दृष्टि। अरे! आहाहा!

यह मैं मेरे चैतन्य शुद्धस्वभाव को स्वीकारता हुआ, अवलम्बता हुआ पुण्य-पाप

के विकल्प और कर्म को नहीं स्वीकारता हुआ, नहीं अवलम्बता हुआ उन्हें मैं छोड़ता हूँ। **भिन्न जानकर-स्वीकार को त्यागकर।** ऐसा। भिन्न जानकर की व्याख्या की है, हों! जीव से भिन्न जानकर। '**अपास्य**' है न? '**अपास्य**' अर्थात् छोड़ता हूँ, नाश करता हूँ परन्तु इसका अर्थ यह कि **उन्हें जीव से भिन्न जानकर-स्वीकार को त्याग...** मेरे शुद्ध चैतन्य के अन्तर अवलम्बन में वे राग की वृत्तियाँ जो दया, दान वृत्ति उठती है, उसका मेरे अन्तर स्वभाव में स्वीकार नहीं। आहाहा! समझ में आया? प्रवीणभाई! यह कठिन बातें! भाई! यह तो अनन्त काल में भटका जन्म-मरण में रुला, उसे छूटने का यह उपाय है, प्रभु! बाकी कोई चापलूसी करने से कुछ मिले, ऐसा नहीं। दो, पाँच करोड़ रुपये दान कर दे तो धर्म हो जाये। मर जाये तो भी धर्म नहीं होता। दान—पैसा कहाँ तेरे बाप के थे, वे तो जड़ हैं। समझ में आया? थोड़े से दया-दान के भाव करे, वह तो पुण्य है, शुभभाव है। शशीभाई! आहाहा!

यह तो नरसिंह मेहता ने नहीं कहा? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' क्या किया तीर्थ और तप करने से? शून्य है तेरे, सुन न! तीरथ, तप, भजन और भक्ति... आहाहा! यह सब शून्य। भगवान आत्मा में यह नहीं, ऐसा यह आत्मा है।

जितने कर्म हैं, जितना विकार है, (उसका) स्वीकार नहीं। विकार का स्वीकार नहीं, स्वभाव का स्वीकार। अस्ति तो सिद्ध की। विकार है सही, न हो तो इसे आनन्द हो। दशा में विकार न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु के आनन्द का वेदन चाहिए। वह आनन्द नहीं है, इसलिए दुःख तो—विकार तो है, परन्तु वह क्षणिक है और मेरा स्वरूप त्रिकाली आनन्द है। ऐसे त्रिकाली आनन्द को स्वीकारता हुआ विकार को नहीं स्वीकारता। आहाहा! समझ में आया इसमें? कठिन बातें, भाई!

ऐसा धर्म! ऐसे सब साधारण समाज के लिये ऐसा धर्म? भाई! आत्मा के लिये ऐसा धर्म है। समझ में आया? दूसरे रास्ते चढ़ा दिया हो तो यह उल्टे रास्ते जाता है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' दूसरा मार्ग नहीं हो सकता। आहाहा! टोडरमलजी ने नहीं लिखा? कि अध्यात्मरस के आस्वादी हों, वे जैनधर्म के रहस्य के

जाननेवाले हैं, वह सत्य बात कह सकता है। प्ररूपक में कहा है न? क्या कहलाता है? उपदेशक.... वक्ता, वक्ता।

मोक्षमार्गप्रकाशक में वक्ता की व्याख्या में लिया है। अहो! भगवान आत्मा इतने ही क्षेत्र में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके अनुभव के स्वाद के रहस्य धर्म बिना वह वक्ता हो तो कुछ का कुछ लपेट डाले। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहा है, हों! सब विद्या में अध्यात्मविद्या मुख्य है। एक ऐसा है। 'अपने स्वरूप का यथार्थ अनुभवन जिसे न हुआ हो, वह पुरुष जैनधर्म के मर्म को न जानकर मात्र पद्धति द्वारा वक्ता होता है, तो उससे अध्यात्मरसमय सच्चे जैनधर्म का स्वरूप...' देखो! अध्यात्मरसमय सच्चा जैनधर्म। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु वीतराग आनन्दमय प्रभु आत्मा का अन्तर भान करके प्रगट करना, उसका नाम जैनधर्म है। जैन कोई सम्प्रदाय वाडा की चीज़ नहीं है।

आत्मा भगवान वीतराग आनन्द निर्दोष कन्द है, ऐसा जो जैनधर्म अर्थात् आत्मा का स्वरूप वह अध्यात्मरसमय सच्चा जैनधर्म स्वरूप। देखा? वह '**किस प्रकार प्रगट होता है?**' आहाहा! क्या हो? समझ में आया? आत्मा अत्यन्त निर्दोष परमात्मस्वरूप ही है, उसका अन्दर। उसमें विकल्प से रहित, राग से रहित आत्मा के भान बिना वह धर्म की कथनी करे तो कुछ का कुछ धर्म मना देगा वह। या दया, दान, भक्ति, व्रत में मनवा देगा और पूरा उसका अवतार व्यर्थ चला जायेगा। समझ में आया?

अब, ऐसी बात लिखनेवाले को (अज्ञानी जीव) अप्रमाणिक ठहराते हैं, लो! भगवान... भगवान क्या हो? यह कल्पना परन्तु यह बाहर में तो लोगों को ऐसा कि, नहीं। ऐसा चाहिए। उन्हें तो धवल ग्रन्थ देखने को मिले थे। उन्होंने स्वयं लिखा है, हमको दर्शनमात्र थे। हमको तो उनके जानपने का ज्ञान हुआ। भाई! तुझे पचे नहीं, बापू! यह क्या कहता है? भाई! वह सब शास्त्र में कहने का तो वीतरागपने का स्वभाव, निर्दोष भगवान स्वभाव, उसे निर्दोषरूप से प्रगट करना, वह सब शास्त्र को कहना है। लाख शास्त्र हो या करोड़ शास्त्र हो, ले! चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द का नाथ, उसे अन्तर्मुख होकर शक्ति में से निर्दोष दशा प्रगट करना, वह सब शास्त्र को कहना है। उसे यदि न समझे तो सब शून्य है, कहते हैं। तेरे शास्त्र के और काशी में पढ़ा और अमुक

ब्रह्माण्ड में पढ़ा हो, ले! समझ में आया? यह जयधवल और महाधवल की टीका पढ़ा हो। बापू! वह टीका तू समझा नहीं, हों! आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं, हमारे तो धर्म दृष्टि में धर्मी ऐसा भगवान आत्मा हमारी दृष्टि में अवलम्बन है, हमारे राग और कर्म का स्वीकार ही नहीं है। शुभ परिणाम का स्वीकार नहीं। वहाँ यह कहते हैं, शुभ परिणाम, वह धर्म। प्रभु! क्या हो? उसमें से लिखा है न? परम्परा खोटे अर्थ फैलाये, उसे अब खोटे निकालनेवाले निकले, नहीं चले अब, ऐसा करके लिखते हैं। उसका आधार देते हैं। वाह... रे! बलिहारी है प्रभु की भी!

कैसा है रागादि कर्म? देखो! आया न? त्रिकाली की बात। त्रिकालिक है। समझ में आया? भूत—गत काल का प्रतिक्रमण आया था न? वर्तमान काल का संवर और आगामी काल का प्रत्याख्यान। अर्थात् क्या परन्तु? प्रतिक्रमण अर्थात् क्या? यह प्रतिक्रमण बोल जाना, यह प्रतिक्रमण मिच्छामी दुक्कडम्.... ऐसा नहीं। भूतकाल के पुण्य और पाप के भाव से प्रति अर्थात् विमुख होता हूँ और मेरे आनन्दस्वरूप में आता हूँ, उसका नाम प्रतिक्रमण है। जयन्तीभाई! कितने प्रतिक्रमण कर डाले हैं अभी तक थोथे? भगवानजीभाई! वह यह तीन काल का (कहते हैं)।

अरे! गत काल में भगवान को भूलकर, आत्मा भगवान सच्चिदानन्द मेरे मूल स्वरूप को भूलकर और शुभ और अशुभभाव जो दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के थे, वे छूट गये, वह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा अन्तर के अनुभव में, वर्तमान में आना, उसे भूतकाल के पुण्य-पाप के दोष का प्रतिक्रमण किया, ऐसा कहा जाता है। प्रतिक्रमण—विमुख हुआ, तब कहीं गया सही या नहीं? कहाँ प्रतिक्रम किया ऐसे? वह गया कहाँ? अखण्डानन्द प्रभु आत्मा में स्थिर हुआ, तब राग का प्रतिक्रमण हो गया। आहाहा! शाम-सवेरे यह प्रतिक्रमण कर आये।

कहते हैं, अतीत का प्रतिक्रमण उसे कहते हैं। अनागत का—भविष्य में शुभ और अशुभ राग को मैं नहीं करूँ, नहीं कराऊँ, कर्ता को सम्मत नहीं होऊँ। मेरा वीतराग निर्दोष आत्मस्वभाव, उसमें मैं स्थिर होता हूँ, स्थिर होकर भविष्य के पुण्य-पाप को नहीं करूँ, इसका नाम प्रत्याख्यान अथवा पच्चक्खाण कहा जाता है। भाषा का—वाचक

का वाच्य क्या है, इसकी खबर नहीं और प्रत्याख्यान किया। प्रत्याख्यान है। परन्तु किसका प्रत्याख्यान ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... गुरु देवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु क्या दे देव ? कहाँ दे देवे ? उसके पास हैं इसके प्रत्याख्यान—इसकी दशा ? गुरु के पास है इसकी दशा ? इसका आत्मा तो इसके पास है।

यहाँ कहते हैं कि अनागत—भविष्य के प्रत्याख्यान। मैं आज से भविष्य में जो कुछ पुण्य-पाप के भाव शुभ-अशुभभाव छोड़ता हूँ। मैं करता नहीं, कराता नहीं और भविष्य में करता हो, उसे मैं सम्मत होनेवाला नहीं। उसमें तो ऐसा आया था, मैं उसे आनन्द मानता नहीं। ऐसा आया था न ? अनुमोदन की व्याख्या ऐसी की है। समझ में आया ?

यह **'उसमें मैं सुख मानता नहीं...'** यह २१५ पृष्ठ पर बीच में है। देखो! **'न करोमि न'।** वर्तमान काल की अपेक्षा में आलोचना में है। आलोचना में। **'जो कोई जीव उसमें मैं सुख मानता नहीं... अपने से सहज अशुद्धपनेरूप परिणमता है जो कोई जीव, उसमें मैं सुख मानता नहीं,...** वर्तमान काल है न ? किसी भी वर्तमान में शुभ और अशुभरागादि पुण्य-पाप का भाव करे, अपने आप मेरे किये, कराये बिना (करे) तो मैं सम्मत नहीं। क्योंकि वे भाव दु:खरूप हैं, उनमें मैं सुखरूप मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? जयन्तीभाई! शुभ-अशुभभाव करे, उसे मैं सम्मत नहीं होता। क्योंकि वह दु:खरूप है। आकुलता विकल्प की वृत्ति है। भगवान आत्मा के आनन्द से विरुद्ध वृत्तियाँ हैं वे। समझ में आया ? मैं सम्मत नहीं होता अर्थात् मैं सुख मानता नहीं। आहाहा! शुभ-अशुभ वृत्तियाँ उठें, उनमें मैं सुख मानता नहीं, इसी प्रकार दूसरे को उठे, उनमें भी मैं सुख मानता नहीं। तूने ठीक किया, हों! नहीं। शुभराग है, वह भी दु:खरूप है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, अनागत के और वर्तमान काल। तीनों काल है। मैं एक ज्ञानानन्द प्रभु, उसमें अन्तर में दृष्टि रखकर स्थिर होता हुआ, आनन्द को वेदता हुआ भूतकाल के राग पुण्य-पाप में से निवृत्त हुआ हूँ, भविष्य का मुझे उसका त्याग है अर्थात् कि मुझे अब

करना नहीं और वर्तमान में पुण्य-पाप के भाव से हट गया हूँ। मैं शुद्ध आनन्दकन्द में रहता हूँ। इसका नाम भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, आलोचना और आगामी काल का प्रत्याख्यान। अरे... अरे...! व्याख्या भारी कठिन। कहो, मास्टर! यह तो सब क्या लेकर बैठे। आहाहा!

कैसा है रागादि कर्म ? कि '**त्रैकालिकं**' तीन काल सम्बन्धी, ऐसा कहा। है न? कैसे हैं, रागादि पुण्य-पाप के विकल्प? वह दया, दान, भक्ति का विकल्प भी शुभराग। हिंसा, झूठ, चोरी का भाव, वह राग-विकार अशुभ। वह शुभ और वह अशुभ। तीन काल के राग, पुण्य-पाप के भाव से मैं निवृत्त हूँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनशन कहा? अन्दर में आनन्द में स्थिर होना उसका नाम अनशन है। लौकिक में करे कहाँ अनशन थे।

मुमुक्षु : आहार-पानी का त्याग करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार, पानी (छोड़े), परन्तु त्याग किसका? आहार, पानी जड़ है। कब आत्मा में घुस गये थे? मानता है कि मैंने छोड़े, वह मिथ्यात्वभाव है। भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा चिदानन्दस्वरूप है। उसे उन रजकणों का आहार मैंने छोड़ा, तो क्या अन्दर ग्रहण किया था? अरूपी भगवान ज्ञानघन में जड़ शरीर के आहार-पानी थे कब अन्दर में? उसके बदले ऐसा माने कि, मैं छोड़ता हूँ। अर्थात् इसका अर्थ कि मैंने ग्रहण किये थे। ऐसा ही मिथ्यात्वभाव है। राग-द्वेष के, पुण्य-पाप के परिणाम जो अस्थिरता के थे, उन्हें छोड़ता हूँ, वह तो कथनशैली है। मैं अखण्डानन्द प्रभु आत्मा में लीन होता हूँ, आनन्द का आश्रय लेकर रमता हूँ, उसमें वह राग-द्वेष छूट जाते हैं, उन्हें छोड़ा, ऐसा कहने में आता है। अब, आहार-पानी तो कहीं रह गये धूल में। अरे..रे..! समझ में आया? यह संथारा तो आनन्द में झूलते (हो), उसे संथारा कहा जाता है। अरे रे! मुझे सहन करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : पाँचवें काल में ऐसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक व्यक्ति पूछता था बेचारा, हों! एक व्यक्ति पूछता था।

महाराज! यह पाँचवें काल के समाधिमरण तड़पहाडट मरकर करते होंगे, ऐसा होगा कुछ? क्योंकि जितने देखे हों वे सब हठ के कारण त्याग किया हो, आत्मा का भान (हो नहीं)। फिर मरने के समय बलजोरी से लेना तो पड़े कि अब छोड़ो भाई। और फिर सहन हो नहीं इसलिए पैरे ऐसे-ऐसे और मरे। यह वह कहीं मरण कहलाता है? ऐसा बेचारा पूछता था। महाराज! इस पाँचवें काल में समाधिमरण तड़पकर मरे, ऐसा होगा? ऐ..ई..! न्यालभाई! बापू! वह समाधि नहीं कहलाती। शान्ति आत्मा में शान्त... शान्त... जैसे बर्फ की शिला पड़ी हो और सो रहा हो और शीतलता लगे, उसी प्रकार भगवान ज्ञानानन्द शीतल.... शीतल.... शीतल.... शीतल स्वभाव भगवान आत्मा का निर्दोष वीतरागी स्वरूप है, उसमें स्थिर होने से जो आनन्द आवे, उसका नाम मरण है। उस आनन्द में रहते हुए देह छूट जाये। उसका नाम समाधिमरण कहा जाता है। वे तो हठ के बालमरण कहलाते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो हो वह मरते देखे हों। साधु नग्न हो, वस्त्रधारी... वे क्या कहलाते हैं? ब्रह्मचारी हो। तत्त्वदृष्टि क्या है, उसकी तो खबर नहीं। इस क्रियाकाण्ड में सब माना हो। अब, वह मरते हुए वस्तु की तो खबर नहीं, वहाँ दृष्टि गयी नहीं। उसे समाधि नहीं कहा जाता, भाई!

अहो धर्मात्मा तो अन्तर के आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द के डकार का अनुभव करते हुए देह छूट जाती है। उसे जन्म-मरण के अन्त—फेरे टल जाते हैं, उसे समाधिमरण कहा जाता है। कहते हैं कि तीनों काल सम्बन्धी विकार से रहित मेरे स्वरूप को अवलम्बकर तीनों काल के राग को छोड़ता हूँ। स्वीकार (करता नहीं) अर्थात् ऐसे जाते हुए स्वीकार करता नहीं, उसे मैं छोड़ता हूँ, ऐसा कहा जाता है। यह इसका नाम चारित्र और इसका नाम मुक्ति का मार्ग और इसका नाम शान्ति के रास्ते चढ़ा हुआ आत्मा, वह मोक्ष के पंथ में है, ऐसा कहने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक-२२-११-१९६५, कलश-२३०, प्रवचन-२४७

समयसार कलश, ३८वाँ कलश। ३७ (कलश) पूरे हुए, लो! देखो! उसमें क्या आया? ऊपर ३७ तक तीन अधिकार आये न? भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की आलोचना अर्थात् संवर और भविष्य के प्रत्याख्यान। अर्थात् कि यह आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके, साथ में सम्यग्ज्ञान प्रगट भेदज्ञान करके और स्वरूप के आचरणरूप स्थिरता का अंश भी प्रगट है। उस काल में कोई भी पुण्य-पाप के विकल्प करना, ऐसा तो दृष्टि और ज्ञान में होता नहीं। भूतकाल के पुण्य-पाप, वर्तमान के पुण्य-पाप और भविष्य के (पुण्य-पाप) वे करनेयोग्य है, ऐसा तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में भी होता नहीं। अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी या पाँचवें और छठवें गुणस्थान तक श्रद्धा और ज्ञान में तो किसी भी प्रकार का विकल्प करनेयोग्य है, करानेयोग्य जैसा सम्मत है, वह वस्तु में है नहीं। समझ में आया? फिर आत्मा की शुद्धोपयोग की चिन्तवना एकाग्रता करना चाहता है, तब वहाँ आगे उस विकल्प की अस्थिरता भी छूट जाती है। उसे यहाँ भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान की आलोचना—संवर और भविष्य के प्रत्याख्यानरूपी स्थिरता प्रगट होती है। समझ में आया इसमें?

दो बोल लेने हैं—कर्मचेतना और कर्मफलचेतना। कर्मचेतना अर्थात् कि शुभ-अशुभ विकार का करना, उसका नाम कर्मचेतना। वह कर्मचेतना सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान हुआ, तब से कर्मचेतना करनेयोग्य है, यह दृष्टि तो होती नहीं। समझ में आया? फिर भूतकाल का भाव हो, वर्तमान का हो और भविष्य का (हो) कोई भी पुण्य-पाप का विकल्प, राग करनेयोग्य है, ऐसा तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (में) होता नहीं। आत्मा सहजात्म शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा के भान में श्रद्धा-ज्ञान में तो वही वर्तता है। कोई राग करनेयोग्य नहीं। व्रत का विकल्प उठे, वह भी करनेयोग्य नहीं। परन्तु अस्थिरता के कारण से जो कुछ शुभ-अशुभभाव थे, अब वे शुद्धोपयोग में एकाग्र होने में मन्थन में वे भाव भी मेरे पूर्व के न हों, अभी न हों और भविष्य ने न हो,

ऐसा करके स्थिरता का अभ्यास करता है। समझ में आया इसमें? यह एक कर्मचेतना की व्याख्या की इतनी व्याख्या है।

अब, कर्मफलचेतना आयेगी। कर्मचेतना और कर्मफलचेतना क्या होगी? जड़ का चेतना और जड़ का भोगना, ऐसा होगा? कर्म शब्द आया या न इसमें? तब क्या आया कर्मचेतना में? धर्मचन्दजी! राग-द्वेष, शुभ-अशुभ, दया-दान, व्रत आदि के परिणाम या हिंसा, झूठ, आदि के भाव, उन्हें राग की एकता की अपेक्षा से उसे कर्मचेतना (कहते हैं)। विकारी कार्य का चेतना, उसे कर्मचेतना कहते हैं। और ज्ञानचेतना (अर्थात्) आत्मा ज्ञानस्वरूप है, शुद्ध है, उसमें एकाकार होना, ऐसी दशा को ज्ञानचेतना कहते हैं। इसलिए आत्मा की प्रथम दशा ज्ञानचेतना प्रगट करके चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में वह कर्मचेतना करनेयोग्य, करानेयोग्य सम्मत है, यह दृष्टि और ज्ञान में तो होता नहीं। समझ में आया?

मात्र जो अस्थिरता के भाव थे, उन्हें (छोड़ने के लिये) आत्मा के स्वरूप के सन्मुख की एकाग्रता का अभ्यास सातवें गुणस्थान में शुरु होता है। समझ में आया? इस अभ्यास में भूतकाल के विकल्प प्रतिक्रमण में नहीं किये हुए के, उससे विमुख होकर स्वरूप का अभ्यास, स्वरूप की स्थिरता करता है। उसे यहाँ चारित्र का वैभव कहते हैं। वह चारित्र का वैभव, वह वैभव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान का वैभव तो पहले प्रगट हुआ। यह वैभव कैसा?

सम्यग्दर्शन और ज्ञान का वैभव—भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द हूँ, परमानन्द की मूर्ति हूँ, ऐसा अन्तर में ज्ञान का भान करके प्रतीति होना और उसका भेदज्ञान—राग से भिन्न होना, ऐसा ज्ञान और दर्शन का वैभव तो चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में प्रगट हुआ होता है। उस वैभव से ही कोई राग करनेयोग्य नहीं, करानेयोग्य नहीं, सम्मत नहीं—ऐसी दृष्टि और ज्ञान तो होते हैं। अब, यहाँ तो चारित्र वैभव की स्थिरता की विशेष की बात है। समझ में आया?

भगवान जैसा जाना है और माना था, अनुभव में आया था, वैसा उसके सन्मुख में स्थिरता (का अभ्यास करता है)। स्थिरता अर्थात् रमणता; रमणता अर्थात् अतीन्द्रिय

आनन्द की विशेष शक्ति की व्यक्तता का अनुभव, ऐसे अभ्यास में भूतकाल का या वर्तमान का, भविष्य का कोई विकल्प मेरे स्वरूप में नहीं है। ऐसी स्थिरता का अभ्यास, उसे चारित्र का अभ्यास, शुद्धोपयोग का अभ्यास, चारित्र वैभव की दशा कहा जाता है। समझ में आया? लो, यह बात हुई ३७ तक।

अब, ३८ में पूर्व में जो कोई अज्ञानभाव से विकार हुआ और जो कर्म बँधे हुए पड़े हैं, सत्ता में जड़ पड़े हैं, उनका फल भी अब मुझे भोगना नहीं। अर्थात् कि उसमें जो जुड़ता था, वह अब मैं जुड़ता नहीं। मेरे स्वरूप ज्ञानानन्द में, वस्तु जो मेरा शुद्धोपयोग, शुद्ध चेतना, उसके आनन्द के फल को अनुभव करता हुआ, पूर्व के कर्म के फल को मैं भोगने का अभिलाषी नहीं... समझ में आया? यह बात नये लोगों को तो ऐसी लगे। कैसी लगे? भाई! ऐसी लगे कि यह क्या होगा?

कहते हैं कि कर्मचेतना से पहले निवर्तन की अपेक्षा कही। है तो दोनों की एकसाथ। समझ में आया? तब पुण्य-पाप के भाव करनेयोग्य नहीं है, ऐसा दृष्टि-ज्ञान हुआ, उसी काल में पूर्व के कर्म के फल भोगनेयोग्य नहीं, ऐसा भान तो उसी काल में होता है। और कर्मचेतना मेरी नहीं और स्थिर हुआ, ऐसे ही काल में कर्मफल का भोक्ता होता नहीं। परन्तु जैसे तीन काल की अपेक्षा से कर्मचेतना से हटाया, वैसे यहाँ उसी काल में हटता है, उसे दूसरी अपेक्षा से कहा। उस समय कर्म के रजकण पड़े हैं, उनका उदय आवे, उनकी ओर मेरा लक्ष्य नहीं है। मेरा लक्ष्य शुद्ध चिदानन्द के ऊपर है। उसके अनुभव में उसके फल को मैं भोगता नहीं। इस प्रकार यह कर्मफलचेतना से हटने की बात की है। समझ में आया? कितने भंग करना और वर्तमान एक। समझ में आया इसमें? अब, देखो! जरा कठिन बात कहते हैं। हों! यह लोग चिल्लाहट करते हैं न!

कलश - २३०

(आर्या)

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव।
संचेतयेऽहमचलं　　चैतन्यात्मानमात्मानम् ।।३८-२३०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अहं आत्मानं सञ्चेतये' मैं, शुद्धचिद्रूप को-अपने को आस्वादता हूँ। कैसा है आत्मा अर्थात् आप? 'चैतन्यात्मानं' ज्ञानस्वरूपमात्र है। और कैसा है? 'अचलं' अपने स्वरूप से स्खलित नहीं है। अनुभव का फल कहते हैं — 'कर्म विषतरुफलानि मम भुक्तिं अन्तरेण एव विगलन्तु' [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूप [विषतरु] विष का वृक्ष — क्योंकि, चैतन्यप्राण का घातक है, उसके [फलानि] फल अर्थात् उदय की सामग्री, [मम भुक्तिं अन्तरेण एव] मेरे भोगे बिना ही, [विगलन्तु] मूल से सत्तासहित नाश होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्म का उदय है सुख अथवा दु:ख, उसका नाम है कर्मफलचेतना, उससे भिन्नस्वरूप आत्मा—ऐसा जानकर, सम्यग्दृष्टिजीव अनुभव करता है।।३८-२३०।।

कलश - २३० पर प्रवचन

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव।
संचेतयेऽहमचलं　　चैतन्यात्मानमात्मानम् ।।३८-२३०।।

अहो! सम्यग्दृष्टि जीव '**अहं आत्मानं सञ्चेतये' मैं शुद्ध चिद्रूप को...** मैं एक ज्ञानरूप मेरा आनन्दरूप शुद्ध चैतन्यरूप है, उसे '**अहं आत्मानं सञ्चेतये' मैं शुद्ध चिद्रूप को...** यह अहम्। **अपने को...** अर्थात् आत्मा को अर्थात् अपने को। '**सञ्चेतये' अर्थात् आस्वादता हूँ।** धर्मी जीव ने अपने आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया है। सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्ज्ञान होने पर, भेदज्ञान होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का नमूना अनुभव में आया है। अब, उस अतीन्द्रिय आनन्द को विशेष अनुभव करने के काल में ऐसी शुद्धोपयोग की भावना में ऐसी भावना होती है कि मैं शुद्ध चिद्रूप ज्ञानरूप

मेरा आनन्दरूप है। वह **अपने को आस्वादता हूँ।** विशेषरूप से मैं आनन्द का स्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, स्वसंवेदन चैतन्य का स्वाद मैं लेनेवाला हूँ।

यह उकताहट आती है न, यह उससे उल्टा (आनन्दभाव है)। उकताहट आती है या नहीं? रात्रि में जब ऐसे कोई न हो और ऐसे पड़े हों, बैठे हों। वह दुःख का भाव है, उससे उल्टा अन्दर आनन्द का भाव है। भाई! समझ में नहीं आया? परलक्ष्य से अरति आवे अरति और अनुकूल हो, उसे रति आवे, दोनों दुःखरूप दशा है, वह आकुलता है। उस आकुलता से अन्दर में भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे अवलम्बकर आनन्द का जो विपरीत भाव—आकुलता का था, उसमें बदले उसकी जाति के आनन्द का अनुभव होना, इसका नाम आत्मा के आनन्द का स्वाद कहने में आता है। वह जो पुण्य-पाप, रति-अरति के भाव का अनुभव था, वह आकुलता का स्वाद था, वह स्वाद तो था। यह अनाकुल का स्वाद स्वभाव का है वैसा। वह विभाव का स्वाद था। समझ में आया?

कोई शरीर को या लड्डू, दाल, भात को कोई भोग नहीं सकता। भोगने के काल में उसे ऐसे राग होता है (कि) यह ठीक। बस! उस राग को वेदता-अनुभवता है। और प्रतिकूलता... परन्तु करे तब? टाले तब जायेगा या किसी से जायेगा? शोर मचाया करे और ऐसे जायेगा? (विनती) किसके पास करेगा? आत्मा के पास या दूसरे के पास?

आत्मा स्वयं अपने को भूलकर संयोग के लक्ष्य से आकुलता उत्पन्न करके आकुलता को वेदता है। यह वेदनेवाले को दुःख का, आकुलता का वेदन है। वह मिथ्यादृष्टि अर्थात् स्वरूप सचेतन ज्ञानानन्द मूर्ति की ओर के भान बिना की दशा उसे यह रति और अरति की आकुलता के दुःख का स्वाद है। बस! वह स्वाद अनादि का लिया करता है। उसने दूसरी कोई स्त्री, शरीर और दाल-भात और मौसम्बी खायी नहीं कभी इसने। आहाहा! समझ में आया?

तीन काल में कभी इस शरीर को स्पर्शा नहीं, अग्नि को स्पर्शा नहीं, सर्प को स्पर्शा नहीं, बिच्छू को स्पर्शा नहीं, शरीर के अन्दर रोग के भाग को भी जीव कभी स्पर्शा नहीं। यह स्पर्शा नहीं परन्तु तो भी, 'यह मुझे होता है', ऐसी जो मिथ्या मान्यता की

आकुलता, उसे वह वेदता है। ...भाई! यह बापू पूछे तब इसे जवाब तो देना पड़े न व्यवस्थित। क्या करना तब? अरे! भगवान आत्मा है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! अन्दर, अन्दर में जब यह बिच्छू की वेदना उठे, वह तो शरीर की है, हों! कृत्रिमता। यह क्या कहते हैं यह? यह हार्टफेल। यह मूलजीभाई को नहीं हुआ? ऐसे मरोड़ खाये। वह तो जड़ की क्रिया है परन्तु उसका वहाँ लक्ष्य है न! और वह लक्ष्य ज्ञातापने, दृष्टापने रहा नहीं, इसलिए उसके लक्ष्य से ऐसे बल खाये, उसमें इकट्ठा स्वयं द्वेष से बल खाता है। अन्दर में द्वेष से बल खाता है। द्वेष, वह द्वेष का उसे वेदन है। दुःख है। समझ में आया? शरीर के कारण नहीं, वह दुःख शरीर के कारण नहीं। शरीर में होने पर मुझे होता है, (ऐसा ही अनुभव करता है)। क्योंकि उसका लक्ष्य ही वर्तमान ज्ञान की पर्याय ऐसी ही झुकी रही है। अन्तर चीज़ कौन है, उसकी खबर नहीं। जिसमें इसने एक अंश में अपना अस्तित्व स्वीकार किया, वह अंश लम्बा जाये तो यह शरीर और राग में ही जाये। अर्थात् यह मैं.... यह मैं.... यह मैं.... उसमें कुछ हो तो मुझे हुआ। ऐसी असत्य परिणति, असत्य भावना, वह असत्य आकुलता, उस असत्य परिणाम को दुःख कहने में आता है। आहाहा! वह असत्य परिणति गुलाँट खाकर, अरे..! मैं आत्मा (हूँ, ऐसा स्वीकार करती है।) आहाहा!

छह-छह महीने तक ऐसे शरीर पड़ा रहे, देखो न! ... पाँच महीने मगनभाई को था न। पैर ऊँचा रखे, यहाँ लोहे का कीला डाले। देखो! हिलना नहीं, हों! वह कीला आड़ा-टेढ़ा होगा तो... हाय... हाय... ! जीवन की आशा के लक्ष्य से भगवान के आनन्द के लक्ष्य को चूककर यह किसी प्रकार पैर में यदि कुछ होगा न, यदि खराबी रह गयी तो फिर पूरी जिन्दगी में गये। भाई हैं ने माणेकचन्दभाई! भाई माणेकलाल। वह जवान व्यक्ति। एक जरा सी कुछ नुक्कड़ पर गिर गये थे, सहज पैर ऐसा हुआ। ऐसी चूक क्यों हुई? जीना जिन्दगी पूरी। साहूकार व्यक्ति, पैसे तब दस लाख थे।

(संवत्) १९७६ के वर्ष में दस लाख रुपये। बाद में तो बहुत हो गये। वह कैसे रहे? उसका मुम्बई में ऑपरेशन किया। दो वर्ष का विवाह। लड़का छोटा था। फिर बाँधा, फिर सड़ान हुई। उस सड़ान की बात वेदना। लालचन्दभाई उसके ससुर कहते

थे। (वह कहे), हम देख नहीं सकते थे, हम देख नहीं सकते थे। दामाद पैसेवाला, अब तो छूट जाये तो अच्छा। यह एक खोट जरा सी नहीं सहन करना, उसे व्यवस्थित करने गया वहाँ दिक्कत, वे प्लास्टर बाँधे न? क्या कहलाता है वह? पट्टियाँ। ऐसा बाँधे। डॉक्टर कहे कि काटो। यहाँ तक काटो। नहीं तो यहाँ से ऐसे चला जायेगा। यहाँ से काटा। देखा नहीं जाता था। घर में दस लाख (रुपये)। देखा नहीं जाता था, हमको ऐसा होता था कि अब यह छूट जाये। ऐई... परन्तु यह (लड़की) विधवा हो। यह सड़ान पड़ी। ऐसे की ऐसे पसलियाँ बाँधे हुए और अन्दर पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... उसमें फिर काटा, वह भी सड़ता जाता था। वहाँ काल बिताता है।

परन्तु यही कहते हैं, बापू! कहाँ तेरा लक्ष्य है। किसकी... ? यह लक्ष्य ही वहाँ बँधा है। भगवान पूरा अखण्डानन्द ऐसा निराला भिन्न पड़ा है। ऐसे चैतन्य ज्ञान में तैरना चाहिए, उसके बदले ज्ञान में यह तैरता है, इसलिए उसमें कुछ फेरफार होने पर एकत्वबुद्धि (होती है)। अब इसमें से छूटे। छूटकर कहाँ जायेगा तू? सर्वत्र इसी प्रकार की आकुलता की पीड़ा है। शरीर की नहीं, रोग की नहीं, काटने की नहीं, भाई! आहाहा!

एकत्वबुद्धि की। क्या कहा यह? हाय... हाय...! इन सबको अच्छा और मुझे अच्छा नहीं। ऐ... होली सुलगायी अन्दर एकत्वबुद्धि की परन्तु यही मूढ़ है, दूसरे को अच्छा मानना यही वह (मूढ़ है)। अच्छा अर्थात् क्या? शरीर अच्छा (हो और) उसके ऊपर लक्ष्य होगा तो उसे रति की आकुलता है। यहाँ खराब है, उसके ऊपर लक्ष्य है तो अरति की आकुलता है। दोनों आकुलता में है। अच्छा किसे कहना?

मुमुक्षु : आकुलता कम-ज्यादा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल कम-ज्यादा कुछ नहीं। समझ में आया? क्या अन्तर होगा? ऐसे पाँच-पचास लाख, पाँच-दस लड़के आज्ञाकारी, शरीर सुन्दर। मोटर हिलावे, बड़े गृहस्थ को क्या है? आहाहा! भगवान! परन्तु वह उसे दुःख है, तुझे खबर नहीं। वह पागल है, उसका ज्ञान मूढ़ हो गया है। उसे हर्ष सन्निपात है। अर्थात् यह ठीक है, यह मान्यता ही मिथ्या है। संयोग के कारण ठीक है, यह मान्यता ही झूठ है।

उसकी कल्पना में उसने माना है कि मुझे ठीक है, यह रति का भाव ही अत्यन्त आकुलता और दुःख है। आनन्द की लूट पड़ती है, अतीन्द्रिय आनन्द भगवान, उसे लुटाता है, लुटाता है, खून होता है। चोट पड़ती है। अतीन्द्रिय भगवान आनन्द का कन्द ध्रुव चिदानन्द मूर्ति है। उसमें यह रति (होती है), ऐसी पद्मिनी जैसी स्त्री। आहाहा! अरे! क्या है परन्तु? उस रति में आनन्द की चोट, तलवार पड़ती है। उसे तू सुखी माने, तेरी दशा मूढ़ की है। सुखी किसका?

इसी प्रकार प्रतिकूल। ऐसे शरीर का सड़ा (हुआ हो)। वह तो तब सुना था। लालचन्दभाई कहते थे, सुना जाये नहीं। महाराज! देखते-देखते हमको ऐसा हो जाये कि यह दामाद इसमें से छूट जाये तो अच्छा। क्योंकि जीनेवाला तो नहीं, यह तो निश्चित् हो गया था। यह शरीर रहे तब तक पीड़ा रहे। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... ऐसे फिरना नहीं। घूमने दो न, अब मरनेवाला है उसे। उसको अभी ठेठ तक (आशा) हो। डॉक्टर ठेठ तक घोदा मारा करे। ऐसा करो, ऐसा करना नहीं। परन्तु अब मरनेवाला है, अब करने दो न! फिर कहे कि तुझे घर में ले जाना हो तो ले जाओ। फिर ऐसा कहे। घर में ले जाना हो तो ले जाओ। आहाहा! अरे! ऐसा.... रास्ते में मर गया।

यह देखो न! यहाँ थे न? भाई! मुझे घर ले जाओ। जेठाभाई थे न? डाह्याभाई के पुत्र। भावनगरवाले। दो-तीन बार हम गये थे। मुझे ले जाओ, घर ले जाओ, रास्ते में देह छूट गयी। कहाँ घर में ले जाये? किसे ले जाये? चिल्लाहट (मचाये)। आहाहा! परन्तु घर में आता नहीं। उस घर में ले जाओ। जहाँ जन्मा था, वहाँ जाऊँ। होली सुलगती है वहाँ आत्मा की। आहाहा!

अरे! मैं एक चिदानन्द भगवान मेरे सम्यक्द्वार द्वारा अन्दर में जाऊँ। समझ में आया? सम्यक्द्वार द्वारा अन्दर में जाकर जिसमें आनन्द पड़ा है। यह बात सूझती नहीं और दुःख छूटता जाता नहीं, वेदा जाता नहीं। आहाहा! धूल में भी कहीं सुख नहीं, वह सब अप्सरायें लेकर पड़े हों। करोड़ोंपति, अरबोंपति वहाँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कैसा भोग? लन्दन में ऐसी मोटरें... हाँके, मालिक पीछे बैठे। भारी मजा! होली है, तुझे भान कहाँ है? तुझे माप करना कहाँ आता है? वह आकुलता के सुलगे

सड़ते हैं। सड़ते हैं आकुलता में। यह प्रतिकूलतावाले आकुलता में अरति में सड़ते हैं। परन्तु है क्या? आहाहा! समझ में आया?

यह हड्डियाँ टूटे। डॉक्टर जबरदस्ती (खींचे), वह कहे, व्यवस्थित करना पड़ेगा। आहाहा! और यह पेशाब की नली में जब छोटी नली में पेशाब अटके और वह अन्दर सुई डाले, चिल्लाहट करे। इतना पेशाब निकलने का नहीं जरा, उसमें कहीं फँसा है। वह कहे, पेशाब नहीं निकले तो जहर चढ़ जायेगा तो अभी मर जायेगा। हाय... हाय...! क्या है परन्तु तुझे? उस समय तुझे एकताबुद्धि के राग का रस, रति का रस था। यहाँ उसमें एकताबुद्धि का अरति का रस है। वेदन रति और अरति का है, संयोग का नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसे दुःख की खबर नहीं पड़ती। मूढ़ है न!

यहाँ कहते हैं, धर्मी... ओहो! मेरा आनन्द, मेरा आनन्द। वह सेठ नहीं गाते थे? मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान। लड़का मर गया तब (गाते थे)। दीपचन्द सेठ। पुत्र का पुत्र मर गया था। बहू को कहे, क्यों पुत्री? रोना है? नहीं, बापूजी! रोना नहीं मुझे। मैं गायन बनाता हूँ वह बोलो। आँख में से आँसू नहीं, मुर्दा पड़ा था। सेठिया का घर बड़ा, लोग आने लगे। ऐसे आवाज करे मानो कि रोते हैं। मेरा पुत्र, मेरा पुत्र करते हैं न? पुत्र कब तेरा था? सुन न! मुफ्त का हैरान होकर मर गया। मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान। मैं ज्ञानस्वरूप चैतन्य हूँ। मेरे ज्ञान की वेदना मेरे पास है। इस चेतन की वेदना को भूलकर यह मेरा पुत्र मर गया। कौन मर गया? पुत्र था कब? मूर्खता का वेदन अज्ञान करे और कहे, इसके कारण, समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, **'अहं आत्मानं सञ्चेतये'** अब मैं गुलाँट खाता हूँ। मैं तो शुद्ध चिद्रूप हूँ। मैं तो ज्ञानरूप हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप में दुःख कैसा? ऐसा **अपने को आस्वादता हूँ।** मैं आनन्द को वेदता हूँ। आहाहा! अज्ञान में सब ओर से लक्ष्य छूटकर आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय (का लक्ष्य छूटकर) लक्ष्य अकेला वहाँ चिपट गया। ऐसे भान में मैं सर्वत्र से लक्ष्य छूटकर मैं ज्ञानानन्द चैतन्य हूँ। समझ में आया? आहाहा! मैं शुद्ध चिद्रूप को आस्वादता हूँ।

कैसा है आत्मा अर्थात् आप? स्वयं कैसा है? ऐसा कहा न **'आत्मानं'।** कैसा है

अपना स्वरूप। **'चैतन्यात्मानम्'**। वह तो ज्ञानस्वरूप मात्र है। वह तो ज्ञानस्वरूप मात्र— ज्ञान, जानन... जानन... जानन... जानन... यह जानने के शुद्ध सूर्य चैतन्यप्रभु मैं हूँ, जाननेमात्र मैं हूँ, जाननेमात्र मैं हूँ। **'चैतन्यात्मानम्'** अर्थात् ज्ञानस्वरूपमात्र, ऐसा। चैतन्य अर्थात् ज्ञान, आत्मानम् अर्थात् स्वरूप, ऐसा। चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप। समझ में आया? **'चैतन्यात्मानम्'** ज्ञानस्वरूप। आत्म अर्थात् यहाँ स्वरूप लेना है। मैं तो अकेला ज्ञानपुंज, चैतन्यपुंज, चैतन्यपुंज हूँ, जिसमें से ज्ञान की किरणें निकलती हैं। प्रकाशशक्ति की व्यक्ति आती है, वह ज्ञानपुंज मैं हूँ। कहो, समझ में आया?

और कैसा है? 'अचलं' अपने स्वरूप से स्खलित नहीं है। मेरे आनन्दस्वरूप ज्ञानप्रभु, जिसकी ज्ञान की प्रभुता है। उसमें आया था न? विपरीत। उसमें (कलश ३५ में) मिथ्यात्व की प्रभुता आयी थी। मिथ्यात्व का विलास आया था न? विलास अर्थात् प्रभुता। यहाँ सम्यग्दर्शन की प्रभुता है। समझ में आया? मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। विकल्प का जाल ही मेरी जाति में, वस्तु में नहीं है। ऐसा मैं अचल अपने स्वरूप से स्खलित नहीं। मेरा स्वरूप जो ध्रुव ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... उससे मैं च्युत नहीं होता, चलित नहीं होता, बदलता नहीं, भ्रष्ट नहीं, वह मैं आत्मा हूँ। समझ में आया? ऐसा प्रयत्न करना नहीं और (कहे कि), कैसे हो जाये? कैसे हो (क्या) अपने आप होगा? उल्टे पुरुषार्थ से करता है, वह सुल्टे पुरुषार्थ से टाले। कोई मेहरबानी कर दे? विपरीतता में कहाँ किस की प्रार्थना की थी? विपरीतता में कहाँ प्रार्थना की थी कि विपरीतता का स्वाद मुझे कोई दो। समझ में आया? इसी प्रकार सुल्टाई के स्वाद में प्रार्थना किसे करनी है? मैं यह चैतन्यमूर्ति हूँ। ज्ञान के, दर्शन के, आनन्द का धाम पड़ा है। **अपने स्वरूप से स्खलित नहीं है।**

अनुभव का फल कहते हैं—अब कहते हैं कि मैं एक ज्ञान चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य को चेतनेवाला, चैतन्य को चेतनेवाला, चैतन्य का स्वाद लेनेवाला। मेरा ज्ञानस्वरूप है, उसका मैं स्वाद लेनेवाला, उसका अनुभव करनेवाला। मैं कौन हूँ? **'कर्म विषतरुफलानि मम भुक्तिं अन्तरेण एव विगलन्तु' 'कर्म'** कर्म शब्द से **ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूप है...** क्या कहा? यह मतिज्ञानावरणीय की जड़ प्रकृति है, वह पुद्गलपिण्ड है। वह **विष का वृक्ष...** है, जहर का फल है। **क्योंकि चैतन्य प्राण का घातक है...**

मतिज्ञानावरणादि जड़ प्रकृति है। यह पूर्व की बात चलती है। ... उसका फल जहर है। अल्पज्ञान का होना, उस ओर के लक्ष्य से अल्पज्ञान का होना, घात होता है। उसकी ओर का फल चैतन्य के प्राण को हीन, घात कर देता है। उसे मैं भोगता नहीं। क्योंकि उस फल के काल में मैं मेरे चैतन्य द्रव्य के स्वभाव के झुकाव में मैं मेरे चैतन्य को ही अनुभव करता हूँ। समझ में आया? यह क्रिया अज्ञानी को भासित नहीं होती। अन्दर में हो और अन्दर में समाये। भीखाभाई! कैसी बात की?

यह ज्ञानावरण आदि है न? उसमें आठ कर्म और उसकी सब प्रकृति ले लेना। समझ में आया? यह मैं केवलज्ञानावरणीय के फल को भोगता नहीं, वह जहर का फल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान, श्रद्धा में तो चौथे, पाँचवें, छठे से होता है परन्तु अब चारित्र के उपयोग के शुद्धभाव में ऐसी उन्मुखता उग्र हो गयी है। उसकी ओर की हीनता की दशा, वह झुकाव ही मेरा नहीं, ऐसा झुकाव (उन्मुखता) हो गया है, उसके फल में हीनता हुई, वह मेरी चीज़ नहीं है। मैं तो ज्ञानस्वरूप से अधिक चिदानन्द में हूँ, उसके फल को भोगता हूँ। ऐसी बात है भाई! समझ में आया? श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन:पर्ययज्ञानावरणीय, ऐसे (दर्शनावरणीय की) निद्रा-अनिद्रा की प्रकृति है न? नौ। उनके उदय के फल को (भोगता नहीं)। वह तो जड़ का पाक जड़ में होता है, मुझमें पाक कहाँ से हो? मैं तो चैतन्य के पाक का क्षेत्र हूँ, मेरा क्षेत्र ही आनन्द के पाक का है, मेरे क्षेत्र में तो आनन्द पकता है, जहर नहीं पकता। आहाहा! मैं ही उसके लक्ष्य में रहकर एकाग्र होता हुआ जहर पकाता था। भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप... उसका नाम प्रतिक्रमण, भूतकाल के कर्म के फल का त्याग, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक क्षण, एक समय किया, उसके संसार का नाश। उसके जन्म-मरण की गाँठ रही नहीं। अकेला अनन्त गुण का पिण्ड दृष्टि में रह गया। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें! .... विचार करना चाहिए, विचार करना चाहिए। ...

सम्यग्दृष्टि तो उसके फल को जहर ही मानता है। इसमें साता-असाता इकट्ठी

आती है या नहीं? दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, वेदनीय। लो, यह आया। साता के उदय में यह सब सामग्री के ढ़ेर (हों)। समझ में आया? स्त्रियाँ और बाग, शब्द, रंग और रस। पाँच इन्द्रिय के विषयों के ढ़ेर। एक मास्टर नहीं कहते थे? राजा का। 'महमद बेगडो।' खाने बैठे वहाँ पाँचों इन्द्रियों के विषय (हों)। रस ले, ऐसे वैश्या नाचे, बाग, सुगन्ध और नीचे स्पर्श। कोमल गद्दी, रेशम में बैठा हो। पाँचों ही इन्द्रियाँ। होली में सुलगता है। ज्वाला धग... धग... धग... पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का लक्ष्य करके साता के उदय में (राचता है)। वह साता का उदय, उसकी ओर का लक्ष्य जहर है। आहाहा! उस फल को मैं भोगता नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह पुद्‌गलपिण्ड तो विष का वृक्ष है। क्योंकि चैतन्यप्राण का घातक है। समझ में आया?

उसके फल अर्थात् उदय की सामग्री... देखो! **'मम भुक्तिं' मेरे भोगे बिना ही मूल से सत्तासहित नाश होओ।** सत्ता के साता के उदय के ढ़ेर मेरे भोगे बिना नाश हो। मुझे भोगने का जहर न हो। समझ में आया? नीचे है, इसका अर्थ चलता है। अर्थ नीचे है, उसका चलता है। बहुत चलाया न! समझ में आया? उसमें तो अभी बहुत है। कहते हैं, **ज्ञानावरणादि पुद्‌गलपिण्ड...** यह अन्तिम में अन्तिम तीर्थंकरप्रकृति का उदय भी कहते हैं कि विष का वृक्ष है। ऐसा कहा, हों! १४८ (कर्मप्रकृतियों) में कहा है। चैतन्यप्राण का घातक। प्रकृति बन्ध पड़ा है, वहाँ उस पर्याय में हीनदशा हो गयी। उसमें बन्धन क्यों है अकेला? उसके फल के समय तो केवलज्ञान होता है। तब फल तो यह बाहर का संयोग आता है। समवसरण और वह तो फल कहाँ आया? यहाँ तो केवलज्ञान पका तब वह फल आया बाहर। उसमें भोगने का कहाँ रहा? पुण्यफला अरिहंता, महा अतिशयवाणी तीर्थंकर की प्रकृति। वह तो पुण्य का फल वर्णन करना हो तब तो ऐसा बतावे या नहीं? परन्तु उससे आत्मा को क्या हो गया? बाहर की सामग्री। ऐसे इन्द्र खम्मा.... खम्मा.... खम्मा... (करते हों)। समवसरण अर्थात् आहाहा! अभी देखना, क्या है, उसे सुनना मुश्किल, इतना तो उनका पुण्य। लोक में पुण्य बिछाये तो पूरा न पड़े। वह मैं कहाँ हूँ? पुण्य परिणाम मैं नहीं, उसके परमाणु बँधे (मैं) नहीं, उसके फल की सामग्री मैं नहीं। आहाहा! अरे.. भाई! ऐसा सम्यग्दर्शन में प्रतीति, अनुभव

किये बिना तुझे उसके फल मीठे लगे, वह मूढ़ है, मिथ्यात्व है। तुझे तीर्थंकर प्रकृति होगी किसकी? समझ में आया?

असातावेदनीय, हों! असाता के ढ़ेर पड़े हों। मुझे क्या? मैं तो आनन्दस्वरूप में एकाकार होकर मेरे आनन्द का वेदन करता हूँ, उसका स्वाद है, भाई! कहा नहीं? 'बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तर सुखरस गटागटी'। समझ में आया? यहाँ तो चारित्र का विषय है, विशेष बात है।

स्वरूप में जोर, झुकाव करके शान्ति का उपयोग हुआ है। बात करे विकल्प से परन्तु वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आनन्द का सागर अन्दर उछलता है, भगवान! आहाहा! ऐसे आनन्द को मैं वेदता हुआ, ऐसी प्रकृति के फल को मैं भोगता नहीं। असाता, मोहनीय, मिथ्यात्व नहीं परन्तु दूसरी भी प्रकृति के फल को भोगनेवाला नहीं। आयुष्य को मैं भोगता नहीं, कहते हैं। मनुष्य का आयुष्य अच्छा, देव का आयुष्य अच्छा। कहते हैं कि आयुष्य ही मेरा नहीं न! मैं तो ज्ञानानन्द अनादि-अनन्त चिदानन्द की मूर्ति हूँ। मनुष्य आयु, देव के आयुष्य का भोग मेरे नहीं हैं। यहाँ तो लोग कहे, मनुष्य का आयुष्य मिले, देव का आयुष्य मिले। यहाँ तो कहते हैं, विषवृक्ष का फल है। बिना भान के वाँच जाये, परन्तु इसका स्पष्टीकरण हो तब (चिल्लाहट मचाये)। ए... दूसरा निकला। परन्तु दूसरा नहीं, यह है उसकी बात है यह तो। समझ में आया?

मोहनीय। समकित मोहनीय। आयुष्य अर्थात् मनुष्य आयु, देव आयु। फिर उच्च गोत्र और नीच गोत्र और नामकर्म में तीर्थंकरगोत्र, आहारकशरीर, आहारक अंगोपांग, औदारिकशरीर, वैक्रियकशरीर, यशोकीर्ति। यशोकीर्ति बँधी हो तो मेरे भोगे बिना (नष्ट होओ), मुझे यशकीर्ति चाहिए नहीं। मेरे आत्मा के यश के वेदन में मुझे यह चाहिए नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ही उस प्रकृति के फल को भोगने का श्रद्धा-ज्ञान में तो भाव है ही नहीं।

यहाँ तो अस्थिरता के भाग को जहर गिनकर स्वरूप में उपयोग में स्थिर होता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह त्रस नाम, बादर नाम और... सब १४८ प्रकृति है

न? नामकर्म की ९३ प्रकृति है, लो! मेरे भोगे बिना (नष्ट) हो जाओ। क्योंकि वह तो जहर का वृक्ष है। अमृत का वृक्ष तो आत्मा है। अमृत का वृक्ष आत्मा है। फल पके, झिंझोड़े। आम को झिंझोड़े वहाँ आम निकले। पूरा-पूरा। इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसमें जितनी एकाग्रता हो, उतने आनन्द के पाक के फल आते हैं। आहाहा! अरे...! परन्तु वह आत्मा क्या है? उसकी श्रद्धा और ज्ञान नहीं होता, उसका माहात्म्य नहीं होता, बाहर का माहात्म्य छूटता नहीं। समझ में आया? अन्तराय, दानान्तराय, भोगान्तराय सब। समझे न? आयुष्य आ गया। अन्तरायकर्म।

ज्ञानावरणादि... अर्थात् आठों (कर्म)। **पुद्गलपिण्ड...** यह जड़। यह पुद्गलपिण्ड, उसका विषवृक्ष है। वह चैतन्यप्राण का घातक। **उसके फल अर्थात् उदय की सामग्री... 'मम भुक्तिं अन्तरेण एव' मेरे भोगे बिना ही... 'विगलन्तु' मूल से सत्तासहित नाश होओ। 'विगलन्तु'** है न? **'विगलन्तु', 'विगलन्तु'** इसलिए सत्ता अर्थ किया है, **मूल से सत्तासहित नाश होओ।** कोई कर्म अच्छा बाँधा, सुल्टा बाँधा मुझे नहीं चाहिए। पुण्य के फल भोगना तो पड़े या नहीं? तब वह पुण्य बाँधा, भोगा कहलाये या नहीं? ऐसी उल्टी घानी में चढ़ गया है न! हमने पुण्य बाँधे। पापवाला (ऐसा बोले), हम इस हाथ से पाप करते हैं तो इस हाथ से भोगेंगे। चिल्लाहट मचायेगा, मर जायेगा वहाँ। चिल्लाहट वहाँ नहीं चलेगी। शरीर के उसमें...

एक व्यक्ति ने राजा को जरा कहा, तुम यह बहुत पाप करते हो। (तो राजा ने कहा), हम क्षत्रिय हैं। इस हाथ से करते हैं और इस हाथ से भोगेंगे। यह तेरा हाथ वहाँ नहीं रहेगा। सुन न अब। मरकर जायेगा नरक में, चिल्लाहट मचायेगा। सड़ा हुआ शरीर मिलेगा। हाय... हाय... (करेगा)। अभी पुकार करता था। समझ में आया? शराब का नशा चढ़ता है न? (उसी प्रकार) मिथ्यात्व का नशा फाट... फाट... हम क्षत्रिय हैं। अरे! वहाँ (नरक में) नपुंसक होकर मर जायेगा। वहाँ क्षत्रिय-बत्रिय नहीं रहेगा। अरे! यह वह क्या स्थान है? कहाँ इसका अन्त होगा? क्षेत्र कितना? कितने...? असंख्य अरब वर्ष तक रहने का (होगा)। समझ में आया? ठीक से पाप करे तो ठीक सी स्थिति में जाये या नहीं? ओहो!

तैंतीस सागर। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। हीरा के पलंग, सोलह हजार देव सेवा करे, मणिरत्न की जगमगाहट। जगमग... जगमग... अन्धेरा हो जानेवाला है, बापू! धर्मी कहता है, भाई! हमारे यह पुण्य का फल नहीं चाहिए। हमारे आनन्द के फल के समक्ष बापू! यह (विष है)। उस अंधारी कोठरी में हमें नहीं जाना है। आहाहा! जागती चैतन्य ज्योति प्रभु है न! यह मार्ग अन्दर जाने का दिखा है, वहाँ हम जाते हैं। उसके फल को भोगते हैं, दूसरा मुझे चाहिए नहीं। आहाहा!

यहाँ तो फल का अर्थ ही यह कहा, उदय की सामग्री। अघाति की सामग्री और अन्दर हीनता आदि हो वह। वह मेरा नहीं, कहते हैं। समझ में आया? पुण्य के फल को कहा है, पुण्य को नहीं कहा। पुण्य के फल को विष्टा कहा है। विष्टा तो उसमें कहा है। भाई ने नहीं कहा? 'विट तो वखत माने', बनारसीदास ने कहा। उनकी लेखन की शैली में ... जिसे विष्टा कहते हैं, उसको छोड़कर चले जाना चाहिए तो उसे विष्टा माना। सुन न, भाई! 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग, कागविट सम मानत है समकित दृष्टि लोग।' छोड़े तो ही कागविष्टा माना कहलाये? उसे छोड़ना अर्थात् भी क्या? वह तो अस्थिरता होती है, उस अस्थिरता को स्वीकारता कहाँ है? पर के फल का स्वीकार ज्ञान-दर्शन में है ही नहीं। सैकड़ों, करोड़ों अप्सरायें ऐसे खम्मा... खम्मा करे। वह उसे जहर वर्तता है। और सातवें नरक के प्रतिकूल दुःख का ज्ञान में आदर है नहीं। हम आत्मा आनन्द हैं। हमारी बादशाही हमारे में है। हमारी बादशाही को रोकनेवाला जगत में तीन काल में कोई है नहीं।

इसी प्रकार आत्मा के फल को भोगते हुए ये (कर्मफल) **भोगे बिना ही मूल से सत्तासहित नाश होओ।** मेरी सत्ता चैतन्य केवलज्ञान की पूर्ण प्रगट होओ, ऐसी भावना करेगा। **भावार्थ इस प्रकार है कि कर्म का उदय है सुख अथवा दुःख,...** यहाँ तो कर्मफलचेतना लेनी है न? कर्म का उदय सुख और दुःख। विकल्प अथवा बाहर की सामग्री अनुकूल-प्रतिकूल। **उसका नाम है कर्मफलचेतना,...** सुख-दुःख की कल्पना, सुख-दुःख की कल्पना का नाम कर्मफलचेतना है। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में सुख-दुःख की कल्पना।

उससे भिन्न स्वरूप आत्मा... समझ में आया ? उससे भिन्न निराला भगवान आत्मा। वह **भिन्न स्वरूप आत्मा—ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव करता है।** समझ में आया ? (अज्ञानी) राह देखे। कब पुण्य फले ? कर्ज हो गया हो, रोग हुआ हो तो कब पुण्य का उदय आवे ? क्या है परन्तु होली ? उसे जड़ के फल की भावना है। ज्ञानी को अन्तर की एकाग्रता की भावना है। आहाहा! अरे! कठोर बँधे। अभी दृष्टि की ठिकाना नहीं होता, उसे यह शुद्ध उपयोग की क्रीड़ा कहाँ से आवे ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा पुण्य-पाप की कर्मचेतना के कार्य से भिन्न चीज़ ज्ञानचेतना और यह फल जो सुख-दु:ख की कल्पना से भिन्न चीज़, उसके आनन्द का भोग। ऐसा मैं भिन्नस्वरूप आत्मा हूँ। समझ में आया ? छह खण्ड के इन्द्राणी के भोग और चक्रवर्ती के, विकल्प आवे (तो) ऐसा जहर-जहर, उपसर्ग लगे। समझ में आया ? यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... अरे! कहाँ मेरा आनन्द और यह क्या ? उसे भोग में रस उड़ गया है। समझ में आया ? दुनिया ऐसा कहेगी कि आहाहा! क्या परन्तु तुम्हारे सामग्री ? परन्तु क्या है ? समझ में आया ? धर्मीजीव को भोग का रस उड़ गया और आनन्द के रस में प्रेम में पड़ा है। अज्ञानी आनन्द के रस को भूलकर कर्म के फल और कर्मचेतना के रस में लीन है, तन्मय हो गया है।

कहते हैं, भाई! आहाहा! शरीर जवान हो, तीन-तीन ... लड्डू पचते हों आधे-आधे शेर की और घी डाला हो .... उसमें उड़द की व्यवस्थित एकरस दाल हो, पापड व्यवस्थित .... पापड़ (हो) और देव में बैठा क्या होगा उसे ? वहाँ देव में भी होली है। समझ में आया ? एक बार वहाँ राणपुर में देखा था। एक ... था। खाट ... बाहर बुनने आया हुआ था। उपाश्रय है न ? उसके अन्दर वोहरा की गली है न ? वोहर की गली में बैठा था। देख रहा, उसकी स्त्री और उसकी लड़की .... रोटी। मानो चक्रवर्ती बैठा हो, इस प्रकार से बैठा था। फूटी हुई वरणी थी उसमें लावे छाछ। दस बजे, साढ़े दस बजे खाने बैठे। और मेरा ऐसा आहार करके घूमना। (ऐसा हुआ) यह लहर करता है न! वह चक्रवर्ती रानी में विलास करे, वैसी यह लहर है। ऐसी दोनों की एक है। आहाहा! अरे! राग की क्रीड़ा में लुटा है, वह आत्मा को लूटे और मानता है कि हमको मजा है।

ठीक भाई ! समझ में आया ? अरे ! भाई ! कहाँ मजा ? बापू ! चिदानन्द भगवान में मजा, वह कैसा ! उसे तीन काल में खबर नहीं ऐसी। उसके आनन्द के समक्ष कहते हैं कि मुझसे वह भिन्नस्वरूप है।

आत्मा—ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव करता है। अपने आनन्द को अनुसरता है, अपना आनन्दस्वभाव है, उसे धर्मी अनुसरता है, कर्म को अनुसरता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि अपने पुण्य का ... विष्टा समान जानता है। बनारसीदास ने ... तुम्हारे तो ... बापू ! लड़के ऐसे पके, बहू ऐसी आवे। गायें ऐसी कहीं से कामधेनु पके। मकान बनाना हो तो विचारा हो उससे दूसरा उत्कृष्ट हो जाये, अच्छा हो जाये, ऐसे कारीगर मिलें। गोकलदासभाई ! आहाहा ! अरे ! भगवान ! परन्तु उसमें तुझे क्या है ? आहाहा ! और प्रतिकूलता के ढ़ेर जहाँ पड़े हों... अरे रे ! एक भी सुविधा नहीं, हों ! नहीं शरीर में ठीक, नहीं जीभ में ठीक, नहीं पेट में। एक व्यक्ति कहता था। तीन रोग। नारणभाई कहते थे। तीन रोग—केंसर, टीबी और भगंदर। अर्थात् ? यहाँ, यहाँ और पीठ में। हो गया, तीन भाग में। हाय... हाय... ! केंसरवाला जीवे नहीं, टीबी वाला जीवे नहीं, भगंदर का क्या करना ? किसी का करना तो इसका क्या हो ? और इसका करूँ तो इसका क्या हो ? धूल में भी उसमें दुःख नहीं, ऐसा यहाँ कहना है। सामग्री का घेरा, वह दुःख का कारण नहीं है। होली मानकर बैठा, मुझे दुःख... दुःख... दुःख। धर्मी कहता है कि मुझे सामग्री का दुःख भी नहीं और सामग्री का सुख भी नहीं। मैं तो पर से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। कहो, समझ में आया इसमें ? लो, यह ३८ श्लोक (पूरा) हुआ। ३९ वाँ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कलश - २३१

(वसन्ततिलका)

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ।।३९-२३१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'मम एवं अनन्ता कालावली वहतु' [मम] मुझे, [एवं] कर्मचेतना (और) कर्मफलचेतना से रहित होकर, शुद्धज्ञानचेतनासहित विराजमानपने से, [अनन्ता कालावली वहतु] अनन्त काल यों ही पूरा होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मचेतना-कर्मफलचेतना, हेय; ज्ञानचेतना, उपादेय। कैसा हूँ मैं? 'सर्वक्रियान्तर-विहारनिवृत्तवृत्तेः' [सर्व] अनन्त—ऐसी [क्रियान्तर] शुद्धज्ञानचेतना से अन्य—कर्म के उदय (और) अशुद्धपरिणति, उसमें [विहार] विभावरूप परिणमता है जीव, उससे [निवृत्त] रहित, ऐसी है [वृत्तेः] ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति जिसकी, ऐसा हूँ। किस कारण से ऐसा हूँ? 'निःशेषकर्मफलसंन्यसनात्' [निःशेष] समस्म [कर्म] ज्ञानावरणादि के [फल] (फल के अर्थात्) संसार-सम्बन्धी सुख-दुःख के [संन्यसनात्] स्वामित्वपने के त्याग के कारण। और कैसा हूँ? 'भृशं आत्मतत्त्वं भजतः' [भृशं] निरन्तर [आत्मतत्त्वं] शुद्धचैतन्यवस्तु का [भजतः] अनुभव है जिसको, ऐसा हूँ। कैसा है आत्मतत्त्व? 'चैतन्यलक्ष्म' शुद्धज्ञानस्वरूप है। और कैसा है? 'अचलस्य' आगामी अनन्त काल तक, स्वरूप से अमिट है।।३९-२३१।।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या, मंगलवार, दिनांक-२३-११-१९६५, कलश-२३१, २३२, प्रवचन-२४८

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ।।३९-२३१।।

क्या कहते हैं, '**मम एवं अनन्ता कालावली वहतु**' यह पहला शब्द है। धर्मी जीव को अपने आत्मस्वरूप को सम्यग्दर्शन में शुद्ध दृष्टि से अनुभव किया है। आत्मा चिदानन्द ज्ञायक आनन्द है, ऐसा सम्यग्दर्शन के काल में भान हुआ है कि यह तो आत्मा आनन्द है। ऐसे आनन्द के वेदन में प्रतीति, उसे ज्ञान सच्चा हुआ है, तदुपरान्त स्वयं अपने शुद्ध ज्ञानचेतना का अन्तर अभ्यास करता है। यहाँ चारित्र की व्याख्या है न यह ?

मैं, पुण्य-पाप के विकल्प कर्मचेतनारूप या पूर्व के बाँधे हुए कर्म के फल में जुड़ानरूप इस भाव से मैं निवृत्ति लेता हूँ। समझ में आया ? पहले सम्यग्दर्शन में पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर से निवृत्त होकर शुद्ध ज्ञानमय चैतन्य वस्तु है, उसका अनुभव होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान में पुण्य-पाप के विकल्प वर्तमान वर्तने पर भी उनसे मेरा स्वरूप निवृत्तरूप और आनन्दमय अस्तिरूप है। समझ में आया ? उनसे निवृत्तरूप और आनन्द आदि से अस्तिरूप, ऐसा प्रवृति के परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान हुआ था, वह अब, पूर्व के कर्म के निमित्त में जुड़ान से शुभाशुभकर्म हो, कर्मचेतना और पूर्व के कर्म में फलरूप जो अपनी दशा हीन आदि हो, उन सबसे मैं निवृत्त हूँ। चारित्र की दशा है।

मुमुक्षु : जुड़ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जुड़ता नहीं। ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प से प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यानरूप से हुआ शुद्धोपयोग के अभ्यास में वीतरागभाव से मैं वर्तता हूँ। समझ में आया ?

कहते हैं, **मुझे...** ऐसा आत्मा मुझे, ऐसा आत्मा **मुझे कर्मचेतना...** '**एवं**' शब्द पड़ा है न, इसलिए पूर्व के साथ-साथ जोड़ दिया। प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान (के साथ जोड़ दिया)। कर्मचेतना अर्थात् शुभ-अशुभराग में एकाग्र होना, ऐसी **कर्मचेतना-कर्मफलचेतना से....** कर्मफलचेतना अर्थात् पूर्व के प्रकृति के १४८ प्रकृति हो या जिसे जितनी हो, उसके फल से **रहितपने...** (अर्थात्) उसकी ओर मेरा झुकाव नहीं है। मैं तो एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव आनन्द का अमृत की वेलडी भगवान आत्मा, उसे मैं वेदता-अनुभवता हुआ, इनसे रहित हुआ हूँ।

कर्मचेतना से और कर्मफलचेतना से (रहित हुआ हूँ)। कर्मचेतना अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प / राग वह कर्मचेतना और पूर्व के कर्म में जुड़कर फल भोगना, वह कर्मफल। सुख-दुःख की कल्पना। उससे निवृत्त हुआ हूँ। ऐसा रहित होकर। तो सहित क्या हुआ?

शुद्ध ज्ञानचेतना सहित विराजमानपने से... अस्ति-नास्ति की। दूसरे प्रकार से कहें तो यह चारित्र, वह शुद्ध ज्ञानचेतना है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, आत्मा सत् शाश्वत्... शाश्वत् है न? ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु! उसका भान (होने) के बाद स्वरूप की स्थिरता का जो चारित्र वैभव (प्रगट हो), उसे यहाँ शुद्ध ज्ञानचेतना कहा जाता है। क्या यह बात वह कुछ! चारित्र में तो यह व्रत ले, यह करे और अमुक करे और ढींकणा करे, ऐसी सब बातें आती हैं। नियम लेने की। हमारे सेठ बाधा कहते हैं। यह बाधा (नियम) ले, वह चारित्र है या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब, चैतन्यबिम्ब भगवान आत्मा शाश्वत् वस्तु अनन्त-अनन्त शान्त और आनन्दरस से भरपूर भगवान आत्मा है। उसके अनुभव में भान हुए उपरान्त वस्तु की स्थिरता का उपयोग शुद्धता को साधता है। इसलिए कहते हैं कि मैं राग के कर्तृत्व से और कर्म के फल के भोक्ता से पृथक् होता हूँ। तब मैं होता क्या हूँ?

मैं ज्ञान की चेतना, शुद्ध ज्ञान में विशेष लीनतारूप मेरे ज्ञान की चेतना में मैं जागता रहता हूँ। इसका नाम चारित्र। यह शरीर की क्रिया, वह चारित्र नहीं है, पंच महाव्रत के विकल्प (आवे) वह नहीं, वह तो कर्मचेतना है। कठिन काम! यह तो कहीं लोगों को वस्तुस्थिति नीचे से ऐसे एकदम ऊँचा जाना है न, उसे मानो नीचे से शुभराग से मानो आगे जाया जायेगा। परन्तु वस्तु में ही वह नहीं (तो) उसमें जायेगा कहाँ से? समझ में आया?

चैतन्य एकदम राग के विकार के वैभव से, विभाव से भिन्न है। ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव, उसके भानसहित की स्वरूप की रमणता, वह राग के कर्तृत्व से

और हर्ष के भोगने से या शोक प्राप्त करने से रहित हुई आत्मा की दशा को यहाँ शुद्ध ज्ञानचेतनादशा कहा जाता है। ज्ञानचेतना तो चौथे गुणस्थान में ही प्रगट हुई। समझ में आया? परन्तु यहाँ अधिक कहा कि, मैं '**एवं**' अर्थात् '**एवं**' अर्थात् पहले दो से छूटा है अर्थात् विशेष शुद्ध ज्ञानचेतना में विराजमान हूँ। समझ में आया? '**एवं**' शब्द पड़ा है न? '**मम एवं**'। मुझे '**एवं**' अर्थात् पूर्व में जो कहा कर्मचेतना और कर्मफलचेतनारहित। '**एवं**' ऐसी जो शुद्ध ज्ञानचेतना, ऐसा। ऐसा तो सुना नहीं होगा, भगवानभाई! आहाहा! अरे! भगवान! तेरा घर, बापू! बहुत ऊँचा है। सवेरे एक 'ऊँच' शब्द आया है उसमें। तुम्हारी ... एक था। उसमें और 'ऊँच' क्या आया? ऐसा शब्द था सही। उसमें लिखा है कि यह तो बहुत उच्च अधिकार है। ऐसा शब्द था। तुमने नहीं देखा था? 'ऊँच' शब्द था, वह 'ऊँच' क्या आया? यह ऊँचा। वह तो सब समझने जैसा है। पम्पलेट था न कहाँ गया? कोई ले गया होगा। उसमें एक 'ऊँच' शब्द था। खबर है? ऐसा बड़ा। ऊँच है। समझ में आया? भीखाभाई! आहाहा! उस प्रकार की भात पाड़ी अन्दर में। एक शब्द है सही बड़ा। है न? मेरा ख्याल था। ऊँच तो यह है। समझ में आया? ख्याल तो है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी ज्ञानशक्ति का सत्त्व जो भगवान, उसका चेतना अर्थात् उसमें एकाग्र होकर ज्ञानचेतना प्रगट हुई, उसका नाम तो प्रथम अभी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ऐसी दशा उपरान्त पुण्य के विकल्प आदि या पाप के विकल्पों का कर्तापना छूटकर, कर्म के संग उदय में पूर्व के बाँधे हुए में संग में जुड़कर जो अस्थिरता थी, वह भी भोगने की सुख-दुःख की कल्पना से छूटकर, इस **शुद्ध ज्ञानचेतनासहित विराजमानपने है...** ऐसा विशेष लिया है। ज्ञानचेतना तो चौथे में भी शुद्ध ही थी, परन्तु यह विशेष चारित्र की शुद्ध ज्ञानचेतना हुई। ज्ञानानन्द आत्मा में एकाग्र... एकाग्र... एकाग्र... जमा, ऐसा जमा, वह कहेंगे।

'**अनन्ता कालावली वहतु**' ऐसी स्थिरता जमी अन्दर में, आनन्द का अनुभव भोक्ता का इतना विशेष बढ़ गया कि, उसमें से निकलने का लक्ष्य नहीं होता परन्तु यह और यह अनन्त काल रहना, ऐसा अन्दर में भावनारूप से नित्य का आश्रय लिया है,

उसमें से वह रहेगा, ऐसा वहाँ हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **शुद्ध ज्ञानचेतना सहित विराजमानपने से...'अनन्ता कालावली वहतु' अनन्त काल यों ही पूरा होओ।** अर्थात्? होओ का अर्थ? अर्थात् कि अपने आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा में जमा, तो उसमें से निकलना नहीं, ऐसा का ऐसा रहना, इसका अर्थ कि अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहो। यह तो बात करे तब क्या करे? समझ में आया?

अनन्त काल यों ही पूरा होओ। पूरा हो अर्थात् ऐसा का ऐसा रहो। पूरा कब होता था? पूरा हो अर्थात् ऐसा का ऐसा अनन्त काल यह रहो। रहो की व्याख्या ऐसी नहीं, वह तो समझाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में-वैभव में पड़ा, बस! उसी और उसी में रहता है, इसका नाम अनन्त काल पूरा पड़ो, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त काल पूरा हो जायेगा वहाँ? ऐसा होगा? अर्थात् ऐसा का ऐसा भाव, ऐसे का ऐसा अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहो, ऐसा का ऐसा रहो। रहो, यह भी एक विकल्प है। परन्तु यह तो वस्तु स्थिति जैसी नित्य है, वैसे अन्तर आनन्द का अनुभव अतीन्द्रिय चारित्र का ज्ञान शुद्धचेतना ऐसी जमी... बस! ऐसा का ऐसा हो गया। जैसे द्रव्य ऐसा का ऐसा रहेगा, वैसे यह वैभव भी चारित्र का—अनुभव का ऐसा का ऐसा रहेगा। समझ में आया?

शक्कर की डली का स्वाद लेते हुए मक्खी भी उड़ती नहीं। कदाचित् उसका पंख चिपक जाये तो भी। उसे तो ऐसा ही है कि यहीं की यहीं चिपटी रहूँ। ऐसा है या नहीं? यह लड़के को रोटी खाने में शक्कर की डली देते हैं न? दो-तीन टुकड़े खाये हों और हाथ छुआ हो और थूक लगा हो तो मक्खी आयी हो। लेने जाये तो मक्खी का पंख भी उसके नीचे छू जाए। स्वाद की मारी उखड़े नहीं। ऐसी की ऐसी रहूँ, ऐसा उसे है। है या नहीं? यह तो धूल का स्वाद।

इसी प्रकार आत्मा के... भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ, वह तो जितनी खोले, उतनी निकले। ऐसा भगवान आनन्द में नजर लगाकर वर्तमान प्रगट दशा; विराजमान कही न वर्तमान? वर्तमान शुद्ध आनन्ददशा ज्ञानचेतना की प्रगटी है, (वह) ऐसा का ऐसा आनन्द के स्वाद में ही रहे, ऐसा दूसरे कहते हैं

अथवा उसे विकल्प आया हो तो ऐसा आनन्द था, (वह) ऐसा का ऐसा सदा रहो। समझ में आया ? आहा ! चारित्र, वह आनन्दस्वरूप है; चारित्र, दु:खरूप नहीं। ऐसे दूध के, क्या कहते हें ? ऐई ! 'दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना', ऐसा सुनते थे। क्या कहलाता है वह 'मृगा पुत्र' का ? दूध के दाँत से लोहे के चने। आहाहा ! चारित्र ऐसा दु:खकर होगा ? बालू (रेत) के ग्रास भरना, बालू के ग्रास। बापू ! चारित्र ऐसा है। ऐसा नहीं है, सुन न ! वह तो आनन्द का कन्द है। यह शक्कर की मिठास... आहाहा !

यह लड़के भी नहीं (खाते) ? कुल्फी ऐसी मीठी हो और गर्मी के दिन हों, ऐसी लम्बी हो, ऐसे ऐसे किया करे। वहाँ से उसे मुँह हटाना सुहावे नहीं। वह तो वहाँ निगलने के लिये तो क्या करे ? क्योंकि ऐसी मोटी इतनी हो तो ऐसे करे तो पिघलने तो लगे। और फिर थोड़ा सा ऐसा करे, थोड़ा सा ऐसा करे, वहाँ तो सब पूरा हो जाये, यह तो पूरा हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आत्मा अतीन्द्रिय नित्यानन्द की कातली, नित्यानन्द आत्मा। उसकी चूसनी में उसका नित्यानन्दपना ऐसा का ऐसा सदा रहता है। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत समय से देखा होगा न ? कुल्फी यूँ भी संसार में नहीं खायी ? हाँ, हुआ है।

(उस समय) बहुत अधिक थी। भरुच जाते न माल लेने, भरुच माल लेने जाते थे बहुत बार खायी है। सब अनेक प्रकार का किया है, अनुभव थोड़ा-थोड़ा सब किया है। वहाँ माल लेने जायें न, इसलिए शाम को खाना हो तो समय हो गया हो। क्या समझ में आया ? बड़े-बड़े ऐसे दौने होते थे। उसमें ठण्डे में डालते। बर्फ के पत्तल, पत्तल में वे देते। यह तो (संवत्) १९६३-६४-६५ की बातें हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान चूसनी आत्मा ऐसा है अन्दर... आहाहा ! यह लड़के भी ऐसे लकड़ी चूसण करते हैं। कुछ नहीं मिलता, लकड़ी में कुछ है ? चूसनी छोड़े नहीं। है तो उसका थूक का थूक। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान, उसमें नजर लगाकर जो स्थिरत प्रगट हुई है... आहाहा ! वह आनन्द का भोजन भोगता है। कहते हैं कि यह सदा रहना। मेरे आगे का काल इसमें ही पूरा होओ। पूरा अर्थात् ऐसा का ऐसा रहो ऐसा। पूरा-पूरा अर्थात् पूरा कब होता था। आहाहा ! समझ में आया इसमें ?

भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मचेतना-कर्मफलचेतना हेय,... देखो! संक्षिप्त कर दिया। पुण्य-पाप के भाव और कर्म का जुड़ान करना, ऐसी सुख-दुःख की कल्पना, वह सब छोड़नेयोग्य है। यह विकल्प जो पुण्य का दया, दान का व्रत का (आवे), वह छोड़नेयोग्य है—ऐसा कहते हैं। और **ज्ञानचेतना उपादेय।** भगवान आत्मा अखण्डानन्द गोला चिदानन्द का, उसमें एकाकार होकर शुद्धचेतना ही एक आदरणीय है। विकल्प, रागादि कोई आदरणीय नहीं है। आहाहा! .... अवरोधक है। पुण्य विष्टा, नियत, उपादान पंगु। अरे! भगवान! यह तो सब एक का एक है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! इस नियत का अर्थ अकेला नियत नहीं है। उसका निर्णय करने जाये वहाँ पाँचों समवाय साथ में है। तब उसे नियत होता है।

मुमुक्षु : पाँच समवाय हो तो भी एकान्त। अनियत आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त अरे! चल... चल...! अनियत आया। चार बोल। नियत बिना के। कहाँ क्या हो? नियत का अर्थ ही कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है (वह होनेवाली है)। काल शब्द ऐसा प्रयोग किया है न इन्होंने, भाई! काल तो इन्होंने रखा है, हों! जरा सा यह देखा था। उसमें यह काललब्धि का आता है न? यह शैली ही दूसरे प्रकार से प्रयोग की है भाई ने। यह काललब्धि की। उसकी भाषा ली है। जिस काल में कार्य बने, कार्य बने काल तो बराबर है वह। जिस काल में कार्य बने, वही काललब्धि।

मुमुक्षु : काललब्धि कोई वस्तु नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह वस्तु नहीं अर्थात् कोई अलग चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। अर्थ न समझे। यहाँ तो सब लेंगे। जिस काल में कार्य बने, वही काललब्धि, ऐसा। जिस समय कार्य बने, वह काललब्धि। जो कार्य हुआ, वह भवितव्य। हुआ, वह भवितव्य। यह दो निश्चित हो गये। समझ में आया? यह आत्मा जिस कारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो, उस कारण (रूप) उद्यम करे, वहाँ तो अन्य कारण अवश्य मिलते हैं। यह तो वापस काललब्धि का कारण तो है शामिल। ऐसे पुरुषार्थ करता है तब काललब्धि का कारण शामिल है ही, भवितव्य भी शामिल है ही; नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहा

है, वह शैली ऐसी की है। समझ में आया ? अन्य कारण न मिले, अन्य कारण मिले तो कार्यशील न हो। जिनमत में मोक्ष का कहा है न ?

देखो ! जो मोक्ष का पुरुषार्थ करता है, उसे तो काललब्धि, भवितव्य भी हो चुके। हो चुके अर्थात् उसमें है। नहीं है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। यह आत्मा ज्ञानानन्द है, शुद्ध है, ऐसा जहाँ स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ किया, तब वह पुरुषार्थ करने का कार्य उसका है, यह बताते हैं। काल एक होना है, यह बतावे उसे ? वह तो एक वस्तु में है कालस्थिति। उसे इस ओर में पुरुषार्थ करे, उस समय काललब्धि है, भवितव्य है, पुरुषार्थ है, स्वभाव है और कर्म का अभाव भी है। समझ में आया ? काललब्धि का निषेध नहीं किया। वस्तु कोई अलग नहीं है, ऐसा ये कहते हैं। है न ? हो चुके। पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष का उपाय करे तो सर्व कारण मिलते हैं। उसमें काललब्धि आदि मिलते हैं, ऐसा है ही, ऐसा कहते हैं। वही काल। जो जीव पुरुषार्थपना करता नहीं, उसे काललब्धि और भवितव्य भी नहीं। देखो न ! ऐसे स्वभाव की ओर का पुरुषार्थ नहीं करता, उसे काललब्धि का जो काल है, वह उसे हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। सब बात ऐसी ली है, बहुत ली है। समझ में आया ? पूरी बात उड़ाई नहीं। परन्तु काल में, काल में जिस काल में कार्य हो, उसका नाम काललब्धि। जिस समय में काल होनेवाला है, तब पुरुषार्थ से ऐसा देखा, पुरुषार्थ से किया, तो काल से हुआ, ऐसा काल का ज्ञान हुआ और कार्य हुआ, वह भवितव्य। जिस काल में कार्य बना, वह काललब्धि और हुआ, वह भवितव्य। आहाहा ! ऐसे उड़ाते हैं न मूढ़पने से। अभी इसे कर्तृत्वबुद्धि करनी है न !

कहते हैं, एक भगवान आत्मा ऐसे सच्चिदानन्द मूर्ति ज्ञानानन्द की खान आत्मा है। ऐसी अन्तर्मुख की दशा और ज्ञानचेतना, वही आदरणीय है। वह आदरणीय होने पर सब काल इकट्ठा आ गया, ऐसा कहना है यहाँ तो अभी। समझ में आया ? काललब्धि हो गयी, वह कार्य हुआ, यह भवितव्य हो गया, स्वभाव प्रगट हुआ, पुरुषार्थ आया और उस समय कर्म का अभाव होता ही है। आहाहा ! समझ में आया ? यह शुद्ध उपादान से काम हुआ, वह काल में हुआ, भवितव्य हुआ, निमित्त-विकल्प था, उससे हुआ नहीं अर्थात् व्यवहार से निश्चय हुआ नहीं। यह सब इसमें आ जाता है। इसमें आ गये

पाँचों? पाँच यह कहे—उपादान, निमित्त, निश्चय, व्यवहार और क्रमबद्ध। ऐसे पाँच कहे।

ज्ञानचेतना, ज्ञानचेतना आयी न? भगवान आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्य, उसका ऐसे भान हुआ ज्ञानचेतना प्रगटी, उपादेय हुआ। उपादेय हुआ, उस ज्ञानचेतना में आनन्द आदि वह स्वभाव हुआ, पुरुषार्थ से हुआ इसलिए पुरुषार्थ आया, उसी काल में हुआ तो काल हो गया, यह भाव हुआ तो भवितव्य हुआ, उस समय ही कर्म का अभाव है। ये पाँच। समझ में आया? वे पाँच, वे पाँच वे आये। क्या पाँच? कि उपादान से काम हुआ, ऐसे दो पाँच। शुद्ध उपादान से काम हुआ, वहाँ आगे दूसरी चीज़ संहनन आदि भले निमित्त हो या विकल्प पहले निमित्त कहो। वह शुद्ध उपादान, वहाँ वह निमित्त। शुद्ध निश्चय यह हुआ, वहाँ विकल्प और व्यवहार और उसी समय में काल में वह पुरुषार्थ हुआ, वह काललब्धि उस समय नियत वही था। उपादान, निमित्त, निश्चय और व्यवहार, काल और क्रमबद्ध सब नियत, सब पाँचों इस प्रकार से प्रगट हो गये। वे पाँच और ये पाँच, ऐसे। वे पाँच अलग। समझ में आया?

निश्चय व्यवहार और काल में हुआ है वह। क्रमबद्ध अर्थात् काल में हुआ है वह। वे पाँच तो वे आये कि पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, भवितव्य और कर्म का अभाव। अब, उसके साथ यह पाँच दूसरे आये कि जब स्वभाव का पुरुषार्थ हुआ अर्थात् शुद्ध उपादान आया, और उस काल में हुआ तो काललब्धि आ गयी। समझ में आया? और पुरुषार्थ हुआ, वहाँ वह राग ऐसा पूर्व का निमित्त था कि अभी निमित्त, वह निमित्त भी ज्ञान में आ गया और वह व्यवहार था और यह निश्चय। व्यवहार का लक्ष्य छूटा और यहाँ निश्चय हुआ तो व्यवहार से निश्चय हुआ, यह रहा नहीं। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में हैं, उपादान-निमित्त साथ में हैं, काल उस समय पक गया है। समझ में आया? जगत को भारी कठिन बात पड़े। समझ में आया इसमें?

कर्मचेतना-कर्मफलचेतना हेय, ज्ञानचेतना उपादेय। लो! इसमें सब आ गया। राग का विकल्प जो है, वह निमित्त है, कहो या व्यवहार है कहो (एकार्थ है)। हेय हो गया। इस स्वरूप का एकाग्र हुआ, ज्ञानचेतना उपादेय हो गयी। निश्चय वहाँ व्यवहार; उपादान, वहाँ निमित्त और उस समय में काल पका, उसका काल। कारण यहाँ हुआ

कि वही काल, वही काल हुआ है, वह कार्यकाल में ही हुआ है और वह भवितव्य है। आहाहा! क्या हो? यह कहीं किसी से कुछ देने से दी जाये ऐसी बात है? इसके परिणाम में यह बात न बैठे, तब तक विवाद... विवाद। यहाँ तो यह इकट्ठा आया, कर्म के फल को जहर कहा। लो! दुष्ट अभिमान, जहर कहा। उसने विष्टा कहा, भाई! समझ में आया? 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग, कागविट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' तब कहे, परन्तु वह छोड़े तब। परन्तु छोड़े दृष्टि में से या छोड़े अस्थिरता में से? अरे! बाहर में तो छह खण्ड का धनी हो। वैभव नहीं? उसके काल में रजकण को संयोग जो होनेवाला है, वह संयोग है, वह कहाँ जाये? इसलिए संयोग की अभिलाषा है, ऐसा कैसे कहा जाये उसे? उसको विष्टासम मानता है। विष्टा अर्थात् जहर, जहर का फल है बाहर का। आहा!

जहर अच्छा, बहुत अच्छी बात। विष्टा तो शूकर भी खाता है और जहर तो मार डालता है। इस जगत को कौन जाने क्या है अन्दर? मिठास है। आहाहा! फल अच्छा आवे... ऐसा हो... देखो! अरिहन्त ऐसे हुए। क्या हुए अरिहन्त? वे वीतराग हुए थे। उन्हें समवसरण हुआ, वह अरिहन्त पद है? 'जिनपद नहीं शरीर को जिनपद है चेतनमाहि' यह चेतन में वीतरागता प्रगट हुई, वह जिनपद है। यह समवसरण जिनपद है?

मुमुक्षु : पुण्य के फल के कारण से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसके कारण से 'जिन' होते होंगे? अतिशयवाला ऐसा पुण्य! परन्तु वह अतिशयवाला पुण्य अर्थात् वह तो संयोग की बात की। भगवान का अतिशय वीतरागता है, वह कहाँ से किस कारण प्रगट हुआ? ऐसे ज्ञानचेतना। भगवान आत्मा पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... शक्ति का तत्त्व पूरा भरपूर है। उसमें एकाग्र हुआ तो वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट हुआ। वह जिन चेतना है, वह जिन वैभव दशा है। वह कहीं संयोग की विभाव दशा वह कहीं उसकी नहीं है। उसकी है? उससे हुई है? उसमें से—जड़ में से आती होगी? इस जड़ में से आत्मा होता होगा? और आत्मा में से यह जड़ आता होगा? समझ में आया? मिठास माननी है। .... भिखारी किसका? भाई! यह राग हो, अलग बात है, वे चीज़ें हो अलग बात है, तो भी उनकी भावना है,

वह अलग चीज़ है। आहाहा! क्या बात है! जड़ से पृथक् पड़ा, उसे जड़ की भावना कैसे हो? वह राग से भिन्न पड़ा, उसे राग की भावना नहीं रहती। आहाहा! और इसलिए भावना नहीं, इसलिए वह चला जाता है, यह सब चीज़ें (चली जाये), तब तो वीतराग हो जाये, केवलज्ञानी हो जाये। समझ में आया? और केवलज्ञान हुआ तो समवसरण हुआ। आहाहा! वह तो जड़ की पर्याय हुई। संयोग में परमाणु के परावर्तन का ऐसा (काल हुआ)। यह परावर्तन केवलज्ञान को प्राप्त हुआ।

शुद्ध ज्ञानचेतना ही एक उपादेय है। वे चीज़ें उपादेय नहीं, ऐसा यहाँ कहना है। कर्मचेतना उपादेय नहीं, वह तो बाहर के फल। फल उपादेय कहाँ से आये? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! छह-छह महीने, बारह-बारह महीने, पाँच-पाँच वर्ष कितनों को सोते रखे, लो! सोते रखे। कल किसी का नहीं कहा था? तुम्हारे मगनभाई नहीं? कितने समय से ऐसे के ऐसे। मैंने उन्हें देखा, हों! (संवत्) १९८४ में। ऐसे बदला। वह तो पासड़ा (पसलियाँ) अन्दर से सड़ी हों और यह ऑपरेशन किया हो। अब वे अन्दर में सड़ते हों, घाव का भरना न आवे। डॉक्टर को पूछे तो कहे, भाई! धीरे-धीरे भरेगा। परन्तु यह भरता नहीं, पीव होता होगा। हाय... हाय! अब, पीव हो वहाँ उसका क्या करना? ऐसे एकदम अन्दर से एकत्वबुद्धि हो जाये। हाय... हाय! फिर से यह तोड़ेंगे? अभी इतने दिन मुश्किल से निकाले उसमें फिर से तोड़ेंगे? हाय... हाय! अरे! बापू! तेरी नजर बापू! पर में है, भाई! यह चैतन्य पाटला ऐसा स्थिर निष्क्रिय पड़ा है। उसके सम्मुख देख, उसमें कुछ नहीं होता। हिले-बले वह... परन्तु वह वहाँ काल बितावे।

आत्मा अन्दर है। अरे! एक बार तो होने दे, उलझन आवे तो उलझन को (होने दे), शरीर को कुछ हो (तो भले हो परन्तु) अन्दर में जा। समझ में आया? जरा ऐसे-ऐसे होवे तो (कहते हैं), यह शरीर चलता नहीं। वह व्यवस्थित करने की आड़ में (आत्मा में) जाता नहीं। समझ में आया? और उस समय व्यवस्थित करने जाये तो कुछ हो नहीं। ऐसे घुमाना नहीं, हों! जो टांगा... टांगा... क्या कहलाते हैं वे? टाँके। यह तो टांगा याद आ जाये। ऐई! पैर ऐसे के ऐसे रखे आठ-आठ महीने तक। ऐसे ऊँचा रखकर कीला लगाकर (कहे), हिलाना नहीं। आहाहा! नजर वहाँ है। भगवान चैतन्यबिम्ब

उससे निराला पड़ा है। चैतन्य पाट पड़ी है, परन्तु उसकी नजर की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुनि दो-दो महीने के संथारा लें। साठ-साठ दिन! कैसा? पादोपगमन। पादोप अर्थात् झाड़। जहाँ पैर वहाँ पैर और सिर वहाँ सिर और हाथ वहाँ हाथ। समझ में आया? साठ दिन। परन्तु अन्दर आनन्द है। अरे! ये वह कहीं बातें हैं! यह तो शुद्ध ज्ञानचेतना है वहाँ। समझ में आया? पत्थर पड़े नीचे। वहाँ कहाँ आसन बिछाया था, वहाँ कहाँ चरणा-फरणा जंगल में जगे हो, वहाँ हो। जहाँ-तहाँ संथारा करके रहे हों। गुफा में पड़े हो, पत्थर पड़े हों। आहाहा! साठ-साठ दिन! ऐसा साठ क्या ऐसा का ऐसा काल अनन्त जाये तो भी अन्दर में पड़े हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया?

हमारी इस ज्ञानचेतना के आनन्द में हम पड़े हैं, ऐसा का ऐसा रहना। यह कब अब छूटे? ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! जहाँ नजर लगायी है, वहाँ तो आनन्द भरा है। जहाँ से नजर हटायी है, वहाँ चाहे जो हो, उसमें उसकी दरकार नहीं है। आहाहा! कहाँ तक ऐसा का ऐसा रहेगा? भाईसाहेब! पत्थर पड़ जायेंगे। बहुत गर्मी हो और पसीना आवे। वह पसीना नीचे गिरे, नीचे जमीन हो, गीली हो जाये... और उसे स्पर्श करे। आठ दिन तक फिरा नहीं जाये। सुख होता होगा न उन्हें? आहाहा!

कहते हैं कि भाई! जिसने विकल्प के कर्तृत्व से बुद्धि को हटा दिया है। कर्म के अनुकूल-प्रतिकूल के फल से जिसने दृष्टि को हटाया है। आहाहा! ऐसी ज्ञान की शक्ति का पिण्ड भगवान, उसमें लीन हुआ ऐसा का ऐसा रहना, हों! कहीं फिरना नहीं। परन्तु यह तो थोड़ा छूटने दो। छूटे या बूटे परन्तु मुझे कहाँ अन्दर था? आहाहा! समझ में आया? जहाँ पड़ा हूँ, वहाँ तो आनन्द की पाट में सोता हूँ। समझ में आया? ऐसा सहजात्मस्वभाव को पकड़े बिना कभी इसका छुटकारा आवे, ऐसा नहीं। मर जाये, सूख जाये क्रियाकाण्ड करके। आहाहा! यह तो मात्र इसका अर्थ ही किया, हों! **अनन्त काल ऐसा ही पूरा हो।** उसको छोड़ा न? '**एवं**' छोड़ा है और इसे ग्रहण किया है। अनन्त काल रहो, इसका इतना ही अर्थ किया कि **कर्मचेतना-कर्मफलचेतना हेय,**

ज्ञानचेतना उपादेय। बस। दोनों का इतना संक्षिप्त अर्थ कर दिया। आहाहा!

कैसा हूँ मैं ? अब कहते हैं, **कैसा हूँ मैं ?** आत्मा। '**सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः**' देखो! इतना अन्तर पड़ा। '**सर्व**' शब्द से देखो। यहाँ कहा, **अनन्त ऐसी 'क्रियान्तर' शुद्धज्ञानचेतना से अन्य...** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानचेतना अर्थात् यहाँ विशेष चारित्र लेना है न? विशेष। नहीं तो चौथे गुणस्थान की शुद्ध ज्ञानचेतना ही है। परन्तु यहाँ मुनि स्वरूप में इतना जम गये हैं, शुद्धोपयोग के आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... लवलीन हैं कि जो आनन्द ऐसी विकल्प की क्रिया... समझ में आया?

अनन्त ऐसी 'क्रियान्तर' शुद्धज्ञानचेतना से अन्य... विकल्प अनेक प्रकार के और फल अनेक प्रकार के। **कर्म के उदय से अशुद्ध परिणति,...** अनन्त, विकल्प की बेहद दशायें **उसमें 'विहार' विभावरूप परिणमता है जीव,...** अर्थात् विकल्प में विहार न जाये, विकल्प में वर्तन न हो। मेरे आनन्द में वर्तन हो। समझ में आया? भगवान आत्मा के आनन्द के पूर में पड़ा, कहते हैं कि वह मेरी जो क्रिया है, '**सर्वक्रियान्तर**' अनन्त ऐसी '**सर्वक्रियान्तर**' अर्थात् शुद्ध ज्ञानचेतना की जो क्रिया, उससे विरुद्ध, ऐसा। क्या कहा? '**सर्वक्रियान्तर**' शब्द पड़ा है न? शुद्ध ज्ञानचेतना जो मेरी क्रिया, उससे **अन्य-कर्म के उदय से अशुद्ध परिणति, उसमें 'विहार' विभावरूप परिणमता है जीव, उससे 'निवृत्त' रहित ऐसी है...** उसके विहार से निवृत्त है। क्या कहा समझ में आया? यह अनन्त लागू किसे पड़ता है? शुद्ध ज्ञानचेतना को या कर्म के उदय को?

अनन्त ऐसी... 'क्रियान्तर' है न? क्रिया तो यहाँ शुद्ध ज्ञानचेतना है। '**क्रियान्तर**' अर्थात् क्रिया से अन्य क्रिया। यह क्रिया तो ज्ञानचेतना की ली। समझ में आया? सर्व है न? 'स्व क्रिया या अन्या' क्रिया क्रियान्तर वह तो ठीक है। '**...क्रियान्तर विहार**' इतना है। '**...क्रियान्तर विहार**' ऐसा है। अनन्त ऐसी अशुद्ध हुई। अनन्त ऐसी पहले कही थी। विकल्प आदि अनन्त-अनन्त बेहद। इसका अर्थ कि अनन्त-अनन्त ज्ञान की मेरी क्रिया में पड़ा हूँ, ऐसा। शब्द ऐसा है न कि अनन्त ऐसी क्रिया। किया तो अपनी है। उससे क्रिया अन्तर, अन्तर अर्थात् अन्य, विकल्प की। विकल्प विकल्प है।

ऐसी शुद्ध ज्ञानचेतना से अन्य-कर्म के उदय अशुद्ध परिणति, उसमें विभावरूप

परिणमता है जीव, उससे... 'निवृत्त' रहित ऐसी है ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति जिसकी, ऐसा हूँ। क्या कहा? किया तो ली। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानचेतना में परिणमता है, वह क्रिया, शुद्ध ज्ञान की क्रिया। समझ में आया? जिसके अन्तर अर्थात् अन्य। शुद्ध आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु, निर्मलाननद का अन्तर में एकाग्ररूप शुद्ध ज्ञानचेतनारूपी क्रिया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शान्तिरूपी क्रिया। उससे अन्य क्रिया, यह विकल्प आदि भी अन्य क्रिया। समझ में आया? उसमें विहार से निवृत्ति है प्रवृत्ति, उसमें परिणति जाये, उससे निवृत्ति है परिणति, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

विहार करती राग में। विहार करते हैं या नहीं? वे राग में, पुण्य-पाप में विहार करती परिणति, वह अब मैं ज्ञानानन्द चैतन्य भगवान आत्मा हूँ, उसमें प्रवर्तता और इस विहार से निवृर्तता हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन, भाई! यह निवृत्ति और प्रवृत्ति सब अन्दर में रखी। शुभाशुभ विकल्पों की, विकार की प्रवृत्तिरूप विहार से निवृतत्त हुई है मेरी क्रिया—ज्ञानानन्द की क्रिया। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञानचेतना जो मेरी क्रिया, उससे अन्य क्रिया जो अशुद्ध अनन्त परिणति। **उसमें विभावरूप परिणमता है जीव,...** वह उसका विहार कहलाता है। विभाव में जाना, वह विहार; उससे निवृत्त ऐसी है **ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति....** लो! क्रिया तो है। यह ज्ञानानन्द में परिणमना, वह मेरी ज्ञानप्रवृत्तिरूपी क्रिया है। आहाहा! समझ में आया? अब, ऐसा तो कुछ सुनने को मिलता नहीं, उसमें उसे यहाँ समझना किस प्रकार? ऐसा आत्मा इतना बड़ा होगा, उसे बैठना कठिन पड़े। समझ में आया? भाई! तेरा आत्मा तो परमात्मस्वरूप है, उसे अन्दर खबर नहीं। ऐसी भगवान आत्मा की महिमा की दृष्टि और स्थिरता में जमते धर्मात्मा को ऐसा भाव होता है कि क्रिया से अन्य क्रिया से निवृत्तरूप मेरा परिणाम प्रवृत्तिरूप है। शुद्ध ज्ञानानन्द में प्रवृत्ति और राग से निवृत्तरूप मेरी ज्ञानक्रिया, उसका नाम मुक्ति का मार्ग और चारित्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सातवें में भले हो, उसका कुछ (नहीं)। छठवें में हो तो विकल्प है। यह शुद्धउपयोग की विशेष बात है। परन्तु वह भावना तो पहले से यही

होती है। चारित्रकाल में या सम्यक् काल में विकल्प से तो निवृत्त ही है परन्तु जितनी अस्थिरता है, उसे अब छोड़कर ऐसे जाती थी उसे ऐसे आता हूँ, ऐसी विशेष भावना करता है। समझ में आया?

'**वृत्तेः**' '**वृत्तेः**' कहा, देखो न? '**वृत्तेः**' का अर्थ यह **ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति...** लो! यह '**वृत्तेः**' परिणति। वस्तु है न, वस्तु? महान पदार्थ है या नहीं? चैतन्य अनन्त गुण का दल... दल... दल... अरूपी परन्तु पदार्थ है या नहीं? वह अनन्त गुण का दल भगवान आत्मा, वह दल। कहो, समझे न? यह दल के लड्डू नहीं होते? वे धूल के दल के लड्डू हैं। यह अनन्त गुण का दल भगवान आत्मा स्थित है अन्दर। पिण्ड... पिण्ड... पिण्ड... सत्त्व पूरा पिण्ड अनन्त गुण का विशाल। परन्तु वस्तु है वह किसे कहना? वस्तु किसे कहना? द्रव्य किसे कहना? पदार्थ किसे कहना? समझ में आया? आहाहा! ऐसे बाह्य पदार्थ की जिसे महिमा आ जाये, इतना बड़ा, यह और यह। परन्तु यह तू कितना बड़ा है, तुझे खबर है? आहाहा!

अनन्त गुण का पिण्ड भगवान आत्मा जिसमें जहाँ एकाकार हुआ (तो) मेरी क्रिया मेरे शुद्ध चैतन्य की परिणतिरूप है। रागादि की क्रिया से निवृत्तरूप मेरा भाव है। पर का विहार छोड़कर स्व में विहार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। विहार का अर्थ क्या? उस राग में परिणमना, वह विहार, हों! वह विहार अब शुद्धज्ञान में विहार करता है, अर्थात् परिणमता है। आहाहा! अरे! इसे यह वस्तु क्या है, इसकी श्रद्धा और ज्ञान में न मिले, वह स्थिरता का प्रयत्न कब करे? कहाँ स्थिर होना है, उस चीज़ की खबर नहीं होती। कहाँ लीन होना है, वह क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। और खबर पड़ने के उपाय की खबर नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे मार्ग कब निकले? अनन्त काल हैरान होकर मर गया। समझ में आया? पुण्य-पाप के परिणाम कर-करके हैरान हो गया। क्रियाकाण्ड के विहार में रहकर भगवान शुद्ध चेतना की परिणति छोड़ दी।

यह कहते हैं कि मैं शुद्ध चेतना की परिणति में परिणमता हुआ विहार करता हुआ रागादि विकल्प की परिणति के विहार से छूट जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

'ऐसा मैं।' ऐसा मैं हूँ। ज्ञानमात्र चैतन्य शुद्ध परिणतिमात्र, वह मैं हूँ। समझ में आया? **किस कारण से ऐसा हूँ?** क्या कारण है? '**निःशेषकर्मफलसंन्यसनात्**' अब, वह आया, अकेले फल की बात लेते हैं। पहले दोनों से ली थी न उस अर्थ में, पहले में लिया था न दोनों में? भाई! '**एवं**' दोनों डाले थे पूरा करके। क्या कहलाता है वह? यह अब उपसंहार है, इसलिए ये डाला। '**निःशेष**' समस्म '**कर्म**' ज्ञानावरणादि के फल के अर्थात् संसार सम्बन्धी सुख-दुःख के... कर्मफल लिया। मेरी प्रकृति में साथ में सम्बन्धरूप से चाहे जो प्रकृति पड़ी हो, उसके फल से सबसे। ज्ञानावरण आदि दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोह, नाम, गोत्र, अन्तराय इत्यादि। **संसार सम्बन्धी सुख-दुःख के 'संन्यसनात्' स्वामित्वपने के त्याग के कारण।** उसके स्वामित्व का मुझे त्याग है। यह दया-दान के विकल्प के स्वामित्व का त्याग है। आहाहा! स्वामित्व का त्याग तो सम्यग्दर्शन से था। यह तो चारित्र में परिणमन में अब उसका त्याग हो गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! अध्यात्म चैतन्य तत्त्व है। तत्त्व अध्यात्म में तो आत्मतत्त्व है। टोडरमलजी ने नहीं लिखा? अभी तो अध्यात्म आत्मतत्त्व है। भगवान केवली तो अभी रहे नहीं। तत्त्व है भगवान अन्तर में, उसे समझना, अनुभव करने का प्रयत्न करो। समझ में आया? वह कौन है, कितना है, कैसे है, इसका ख्याल करके उसका अनुभव करो।

यहाँ कहते हैं, मैं '**संन्यसनात्**'। '**संन्यसनात्**' का अर्थ किया त्याग। परन्तु त्याग का अर्थ किया मैंपने का त्याग, मैंपने का (त्याग)। मैं उसमें नहीं, मैं उसमें नहीं। मैं यहाँ हूँ। मैं मेरे ज्ञानानन्दस्वभाव में हूँ, मैं उसमें नहीं। अस्थिरतारूप से भी अब नहीं, ऐसा। स्वामीपना तो नहीं, परन्तु अस्थिरतापना भी अब नहीं।

और कैसा हूँ? 'भृशं आत्मतत्त्वं भजतः' 'भृशं' का अर्थ किया **निरन्तर.... आत्मतत्त्व का अर्थात् शुद्ध चैतन्य वस्तु का...** आत्मतत्त्व अर्थात् शुद्ध चैतन्यवस्तु। आत्मतत्त्व शुद्ध चैतन्यपदार्थ, भगवान शुद्ध चैतन्यवस्तु। पुण्य-पाप के विकल्प और हर्ष-शोक से रहित अकेली शुद्ध चैतन्यवस्तु चैतन्य पदार्थ। '**भजतः**' वह इसे भजनेवाला। भजनेवाला अर्थात् अनुभव। यह इसका नाम भजन। यह आत्मा का भजन। अर्थात्

अनुभव है जिसको,... ऐसा। भजना अर्थात् अनुभव, वह भजन। भगवान शुद्ध आनन्दस्वरूप के अन्तर में एकाकार होकर मैं आत्मा को भजता हूँ अर्थात् कि आत्मा के आनन्द का अनुभव करता हूँ। कठिन भाई! भजन। यह आत्मा का भजन।

मुमुक्षु : निरन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर, आत्मा निरन्तर है, दृष्टि पड़ी है निरन्तर में (इसलिए) निरन्तर उसका भजन है। आहाहा! शब्द भी कैसे रचे हैं न! अर्थ भी ऐसे किये हैं, हों! गजब अर्थ! '**भजतः**' का अर्थ अनुभव करता है। वह कहे, भजता है न ....

भगवान आत्मा... आहाहा! इस नरक में सातवें नरक में जीव पड़ा (हो) परन्तु जहाँ यह आत्मज्ञान पाता है, वहाँ वह संयोग और दुःख स्वीकार नहीं करता। जरा असह्य वेदना में असह्यपने का विकल्प है, (परन्तु उसका) स्वीकार नहीं है। समझ में आया? सह्यपने का जो अस्थिरता का विकल्प है, स्वभाव में स्वीकार नहीं है। यहाँ तो असहनपने का भाव है, वह भी है नहीं। यहाँ चारित्र की बात लेनी है न? आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानी को जरा सहनशक्ति की निर्बलता के कारण रागभाव आवे, द्वेष आवे, उसका यहाँ अहंपना अर्थात् कि उसमें मैं हूँ—ऐसा नहीं है, वह मुझमें है—ऐसा नहीं है, वह मुझे—आत्मतत्त्व को होता है—ऐसा नहीं है। परन्तु निर्बलता के जोर में जो आ जाता है, वह यहाँ छूट जाता है। यहाँ अभी ऐसा कहना है। चारित्र के वैभव में यह विकल्प जो निर्बलता का है, उसे छोड़कर आत्मा को अनुभव करता हूँ, ऐसा कहना है। पहला अकेला आत्मा का था परन्तु तो भी अस्थिरता के भाव थे। समझ में आया? मैं तो अब, शुद्ध चैतन्य वस्तु को भजता हूँ। यह विकल्प की वृत्तियाँ जो अस्थिरता की थी, उस विहार से परिणति छूट गयी। भगवान आत्मा के धाम में नजर डालकर पड़ा है, ऐसे आत्मा को अनुभव करता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य वस्तु का अनुभव है जिसको, ऐसा हूँ। ऐसा हूँ। बस! अर्थात् खबर पड़ गयी ऐसी? नहीं तो खबर न पड़े, (ऐसा अज्ञानी) कहते हैं। अरे! भगवान! जगा आत्मा की खबर न पड़े, तब अन्धे को खबर पड़ती होगी? समझना तो किस प्रकार?

आहा! **कैसा है आत्मतत्त्व? 'चैतन्यलक्षणं'** कि जिसका चैतन्य ही लक्षण है। यहाँ तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। लक्ष्य-लक्षण का भेद नहीं करते। **शुद्ध ज्ञानस्वरूप है।** ऐसा कर दिया, देखा? समझ में आया? अकेला शुद्ध ज्ञान, शुद्ध ज्ञान, चैतन्यबिम्ब, चैतन्य सूर्य, चैतन्य निर्मल प्रकाश का सूर्य वह मैं आत्मा हूँ। इसके अतिरिक्त कोई चीज़ मुझमें नहीं है।

कैसा है आत्मतत्त्व? 'चैतन्यलक्ष्म' शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। और कैसा है? 'अचलस्य' आगामी अनन्त काल तक स्वरूप से अमिट है। ऐसी की ऐसी दशा अब ऐसे मेरी रहनेवाली है। स्थिरता हो गयी है न! अचल, अमिट। अब, यह स्वरूप की स्थिरता की चारित्र वैभव ज्ञान की शुद्धता की विशेष प्रगट हुई (दशा) अचल (रहेगी), हटे ऐसा नहीं। फिर से उसे अवतार हो, राग हो और अवतार लेना पड़े, भव-बव उसे है नहीं। समझ में आया? **आगामी अनन्त काल...** तक। भविष्य में अनन्त काल तक स्वरूप से अमिट, अपने स्वरूप से मिटे नहीं ऐसा। स्वरूप मिटे नहीं, स्वरूप मिटता होगा? अखण्ड आनन्द की दशा की परिणति हो गयी, पर से छूट गया, वह रहा अपने में। स्वयं है वहाँ है, स्वयं ऐसा का ऐसा। अमिट है, द्रव्य अमिट है, वैसे उसकी पर्याय भी अमिट—न मिटे—ऐसी हो गयी। उसका नाम चारित्र अथवा उसका नाम मुक्ति कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अब, यह बात लेते हैं।

कलश - २३२

(वसन्ततिलका)

य: पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृ:।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं स: ।।४०-२३२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'य: खलु पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां फलानि न भुंक्ते' [य:] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव, [खलु] सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना, [पूर्वभाव] मिथ्यात्वभाव के द्वारा, [कृत] उपार्जित [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूपी [विषद्रुम] चैतन्य प्राणघातक विषवृक्ष के, [फलानि] संसारसम्बन्धी सुख-दु:ख को [न भुंक्ते] नहीं भोगता है। भावार्थ इस प्रकार है कि सुख-दु:ख का ज्ञायकमात्र है परन्तु पर-द्रव्यरूप जानकर, रंजक नहीं है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'स्वत: एव तृप्त:' शुद्धस्वरूप के अनुभवनेपर होता है अतीन्द्रिय सुख, उससे तृप्त अर्थात् समाधानरूप है। 'स: दशान्तरं एति' [स:] वह सम्यग्दृष्टि जीव, [दशान्तरं] नि:कर्म अवस्थारूप निर्वाणपद को [एति] प्राप्त करता है। कैसी है दशान्तर (दशा)? 'आपातकालरमणीयं' वर्तमान काल में अनन्त सुखरूप विराजमान है। 'उदर्करम्यं' आगामी अनन्त काल तक सुखरूप है। और कैसी है अवस्थान्तर (दशा)? 'नि:कर्मशर्ममयं' सकलकर्म का विनाश होने पर, प्रगट होता है जो द्रव्य का सहजभूत अतीन्द्रिय अनन्त सुख, उसमय है—उससे एक सत्तारूप है।।४०-२३२।।

कलश - २३२ पर प्रवचन

य: पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृ:।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं स: ।।४०-२३२।।

पहला जो २३० में आया था '**कर्म विषतरुफलानि**' वह थी सब कर्म की प्रकृति की बात। समझ में आया? इसमें जो आया '**पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां फलानि**' इतना अन्तर है। समझ में आया? पहले में ऐसा आया था कि यह आत्मा आनन्द, ज्ञान का भान और अनुभव होने पर और उसमें चारित्र की स्थिरता की वैभव दशा प्रगट होने पर कर्म की १४८ प्रकृति के फल को मुझे भोगना नहीं, इतना था। यहाँ है वह सम्यग्दर्शन से पहले जो बाँधे हुए कर्म के फल, अब मैं भोगता नहीं। यहाँ से शुरु किया है। समझ में आया?

जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव... धर्मात्मा अपने शुद्ध चैतन्य अनाकुल आनन्द का अनुभव हुआ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव। **सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना...** सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पहले **मिथ्यात्वभाव के द्वारा उपार्जित...** ऐसा लिया है न? समझ में आया? मिथ्यात्वभाव के द्वारा उपार्जित। पहले में १४८ समुच्चय थी, उसमें कुछ मिथ्यात्वभाव से सब उपार्जित नहीं थी। किसी समय सम्यग्दर्शन के समय उपार्जित तीर्थंकरप्रकृति हो, सम्यग्दर्शन में आहारकशरीर उपार्जित किया हो, ऐसे अंगोपांग आदि हों। समझ में आया? १४८ में पहले जो कही उसमें। उसमें यह नहीं होता। मिथ्यात्वभाव से उपार्जित में तीर्थंकर और आहारकशरीर, यह नहीं होते। समझ में आया?

यह **सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना मिथ्यात्वभाव के द्वारा उपार्जित ज्ञानावरणादि पुद्‌गलपिण्डरूपी 'विषद्रुम' चैतन्य प्राणघातक विषवृक्ष...** है। एक ओर अमृत का वृक्ष भगवान, एक ओर जहर के वृक्ष कर्म—ऐसे दोनों पड़ें हैं, कहते हैं। भगवान अमृत का वृक्ष, यह कर्म का वृक्ष। अमृत के वृक्ष का अनुभवी (भावना भाता है कि) मुझे कर्म के वृक्ष और फल भोगना नहीं। इसकी विशेष बात कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल १, बुधवार, दिनांक-२४-११-१९६५, कलश-२३२, २३३, प्रवचन-२४९

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलशटीका, (२३२ कलश)। पहले से देखो! **जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव...** है? **'यः' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव...** २०८ पृष्ठ है, पहली लाईन। **सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना...** अर्थात् क्या कहा? आत्मा का शुद्ध चैतन्य स्वरूप आनन्द है, ऐसा अन्तर भान हुआ और ज्ञाता-दृष्टापने का भाव प्रगट हुआ, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, उसे समकित होने से पहले **मिथ्यात्वभाव द्वारा...** मिथ्या अर्थात् उल्टी श्रद्धा द्वारा, अज्ञान द्वारा **उपार्जित ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूपी...** देखो! पुद्गलपिण्ड यह रजकण के पिण्ड हैं, पिण्ड हैं, जत्था बड़ा जत्था-पिण्ड। जैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, वैसे कर्म भी अनन्त रजकण का पिण्ड है। आत्मा एक द्रव्य है, वे अनन्त द्रव्य हैं। ऐसे आत्मा का सम्यक् अनुभव आत्मा का धर्म ऐसा सम्यग्दर्शन, उसके धर्म के भान से पहले जो अज्ञान से उपार्जित पुद्गलपिण्डरूपी कैसे हैं?

चैतन्य प्राणघातक विषवृक्ष.... है। वे कर्म बाँधे हुए, वे विष के वृक्ष हैं। विष के वृक्ष। जहर... जहर। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत की मूर्ति आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप ऐसा आत्मा का अन्तर सम्यग्दर्शन, भान होने पर अज्ञानरूप से बाँधे हुए कर्म जो जहर के वृक्ष हैं। इसलिए उसे कहा कि चैतन्यप्राणघातक जहर। उस कर्म के फल में जुड़ान करने से आत्मा के आनन्द के प्राण को घात करनेवाले हैं। आठों कर्मों का फल आत्मा के चैतन्यप्राण को घात करनेवाला है। आठों का (फल यह है)। समझ में आया? कहो! उसमें साता अनुकूल हो तो ठीक पड़े या नहीं उसमें? कहो, समझ में आया?

यह आत्मा अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसका अन्तर भान होना, वह सम्यग्दर्शन। अन्तर में पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध पुण्य-पाप के राग और कर्म तथा शरीररहित मेरा तत्त्व है, ऐसा अन्दर में भान होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म की पहली दशा। उस धर्म काल में, अधर्म काल में बाँधे हुए कर्म, जब आत्मा का भान नहीं था और मिथ्यात्वभाव में बँधे हुए कर्म, उसे

सम्यग्दृष्टि जीव प्राणघातक समझता है। समझ में आया? ज्ञान, आनन्द, दर्शन का घात करनेवाले हैं। उस ओर का सम्बन्ध करना वह आत्मा की शान्ति को घात करनेवाला है।

ऐसे **संसारसम्बन्धी सुख-दुःख को (सम्यग्दृष्टि) नहीं भोगता है।** यहाँ तो विशेष चारित्र सहित की बात ली है न! पहली भी सम्यग्दृष्टि के काल में भी हर्ष-शोक की वृत्ति है, उसका मुख्यरूप से वेदन नहीं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा अतीन्द्रिय शान्त (स्वरूप है), ऐसा सम्यग्दर्शन में धर्मी को पुण्य-पाप के भाव का भी भोगना होता नहीं। समझ में आया? यहाँ तो चैतन्य की शुद्धता में आनन्द में रमणता में उसके स्वरूप सन्मुख की बहुत ही सावधानी में कर्म की ओर की सावधानी बिल्कुल है नहीं। ऐसे **सुख-दुःख को नहीं भोगता है।** क्यों?

भावार्थ इस प्रकार है कि सुख-दुःख का ज्ञायकमात्र है... वह धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री हो, पुरुष हो, देव हो, देवी हो या नारकी हो। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी यदि सम्यग्दृष्टि हो तो वह ज्ञायकमात्र (रहती है)। सुख-दुःख की कल्पना और कर्म के फल का जाननेवाला-देखनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञायक, सुख-दुःख का ज्ञायक, कल्पना और संयोग का जाननेवाला है। मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, उसमें आठ वर्ष की बालिका को यदि सम्यक्त्व हुआ हो, सातवें नरक के नारकी को सम्यग्दर्शन है और व्यन्तर-भूत को किसी को भी जीव को सम्यग्दर्शन है। वैमानिक देवों में तो बहुतों को है, पशु में होता है, वह भी अन्दर में उस कर्म का जड़ उदय और विकार का विपरीतपना—विभाव, उसका धर्मी ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया?

परन्तु परद्रव्यरूप जानकर रंजक नहीं है। यह साता के उदय से प्राप्त चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र के भोग, उन्हें परद्रव्यस्वरूप जानकर सम्यग्दृष्टि राग—एकत्वरूप से प्रेम नहीं करता, रँगाता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **परद्रव्यरूप जानकर....** यह पूर्व के पुण्य के उदय या पाप के उदय हों, दोनों, हों! अकेला नहीं। प्रतिकूल सामग्री हो या अनुकूल सामग्री के ढ़ेर हों, परन्तु परद्रव्य जानकर उसमें उनकी रुचि और रंगपना, रंजितपना नहीं होता। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जिसने अनुभव

किया है, और आनन्द आया करता है। आहाहा! समझ में आया? उसे यह पुण्य-पाप के विकल्प, हर्ष-शोक की वृत्ति, यह अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, उसमें रँगाता नहीं है। रंग लगा चैतन्य का, वह राग में रँगाता नहीं। रंग लगा आत्मा का, वह परद्रव्य में रँगाता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'स्वतः एव तृप्तः' शुद्ध स्वरूप के अनुभवने पर होता है अतीन्द्रिय सुख, उससे तृप्त अर्थात् समाधानरूप (तृप्त) है। आहाहा! सम्यगदर्शन अर्थात् आत्मा अखण्ड आनन्द का, अखण्ड का अनुभव और प्रतीति (हुई) ऐसे आनन्द के भान में सम्यग्दृष्टि अपने सुख से ही तृप्त है। समझ में आया? समाधान किया है न अन्दर? समाधान है। तृप्ति... तृप्ति ऐसे लड्डू खाकर तृप्ति नहीं होती इसे? इसी प्रकार इसे आनन्द से तृप्ति है। अतीन्द्रिय आनन्द, अपना शान्तरस, उससे इसे समाधान वर्तता है, सुख वर्तता है, सुख वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! है न?

'**तृप्त**' शब्द पड़ा है न? '**स्वतः एव तृप्तः**' अपने से समाधानरूप है, ऐसा कहते हैं। आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरसस्वरूप के भान से समकिती तृप्त है। उसे किसी परपदार्थ का भान तृप्ति नहीं उत्पन्न कर सकता, समाधान नहीं कर सकता, उसमें सुख मान नहीं सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

शुद्ध स्वरूप के अनुभवने पर होता है... क्या? भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्दस्वरूप पदार्थ ही ऐसा है। उसे अनुसरकर आत्मा के आनन्द को अनुसरता भाव अनुभव, ऐसा होता है, उससे क्या होता है? अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय सुख। **अर्थात् समाधानरूप है।** समाधान है। पुण्य-पाप के भाव और कर्म के फल में जिसका जुड़ान परमार्थ से है ही नहीं। समझ में आया?

'**सः दशान्तरं एति**' अब, आगे बढ़कर **वह सम्यग्दृष्टि जीव....** अपने अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करता हुआ, अनुभवता हुआ शुद्ध आनन्द के अनुभव में रमता हुआ, रमते-रमते दशान्तर को प्राप्त हो जाता है। दशान्तर अर्थात् सिद्धदशा को केवलज्ञान को पा जाता है। समझ में आया? उसे यह कष्ट सहन करना पड़े और व्रत ले और यह विकल्प भले बीच में आवे, परन्तु उसका आदर नहीं करता। व्रतादि के विकल्प वे तो

बन्ध का कारण है, दु:खरूप है। आहाहा! जगत को तत्त्व की (खबर नहीं है)। भगवान! वह तो कर्मचेतना में गया। विकल्प उठे पुण्य का दया, दान, व्रत का, वह तो शुभराग की कर्मचेतना दु:खचेतना में गया; वह आनन्दचेतना में नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द में रमता-रमता केवलज्ञान लेता है, ऐसा कहते हैं। उसे दु:ख सहन करना पड़े और यह सहन करे, ऐसा नहीं होता। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय का कन्द पिण्ड प्रभु है। अरे! यह वस्तु किसे कहना? इसे खबर नहीं होती, महिमा का भान (नहीं)। उसकी झांईं क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहा! एक समय का अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! पुंज-पुंज अनन्त गुण का पुंज प्रभु। पुण्य-पाप के विकार, वे तो आस्रवतत्त्व में जाते हैं। कर्म, शरीर अजीव में जाते हैं। आत्मतत्त्व में वे नहीं हैं। ऐसे आत्मतत्त्व का सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से होने पर... समझ में आया? वह अतीन्द्रिय सुख को ही अनुभव करता हुआ, आनन्द लेता हुआ, बढ़ता हुआ उसमें दशान्तर (पाता है)। वापस बात इकट्ठी कर डाली। केवलज्ञान को प्राप्त करने का उपाय क्या? कि उस आनन्द में रमते-रमते स्थिर होते... होते... होते... केवलज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

गजब बात। जगत को मूल परमार्थ तत्त्व की खबर नहीं होती और बाहर से फांफा मारकर कहीं से धर्म खोजना और मानो बाहर से मिल जायेगा। समझ में आया? भीखाभाई! भीख माँगना बाहर में। चक्रवर्ती राजा पर के समक्ष भीख माँगे। आया नहीं? उसमें नहीं (आया)? मूर्ति के पास जाकर क्या कहा? चक्रवर्ती योगसार, योगसार में आया नहीं? 'भिक्षार्थे भ्रमे' 'राजा भिक्षार्थे भ्रमे ऐसी जन को टेव।' आहाहा! समझ में आया? यह प्रभु भिक्षार्थ भ्रमे। मूर्ति के पास जाकर (कहे), हे भगवान! मुझे आनन्द देना। (मानो) भगवान के पास आनन्द पड़ा है, भाई! प्रभु भिक्षार्थ भ्रमे। समझ में आया? अरे! यहाँ तो कहते हैं कि शुभ का, पुण्य का राग हो, वहाँ माँगे, वह भिखारी है, ऐसा कहते हैं। वहाँ कहाँ सुख और धर्म था उसमें? आहाहा! अनन्त गुण का प्रभु, अनन्त शान्तरस और अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा का जहाँ अनुभव, सम्यग्दर्शन

हुआ, उसका अनुभव बढ़ते-बढ़ते स्थिरता हुई, वह चारित्र हुआ, उसका अनुभव बढ़ने पर केवलज्ञान हो गया, उसका नाम मुक्ति कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

दशान्तर। **निःकर्म अवस्थारूप निर्वाणपद को प्राप्त करता है।** लो! यहाँ निर्वाण अभी नहीं, इसलिए दूसरा उपाय होगा? नहीं, नहीं करके जगत ने ऐसा हीन कर दिया। परन्तु वस्तु है या नहीं पूरी? अखण्डानन्द पूर्ण। ऐसी निर्वाण की पर्याय ऐसी तो अनन्त पर्यायें तेरे पेट में ध्रुव में पड़ी है। नहीं क्या परन्तु? समझ में आया? ऐसा निर्वाणस्वरूप ही भगवान आत्मा है, उसका अन्तर में अनुभव सम्यग्दर्शन से हुआ, उसमें से एकाग्र करते-करते चारित्र हो जाता है। विशेष एकाग्रता होने पर दशान्तर केवलज्ञान पा जाता है, ऐसा कहते हैं। वह सब व्यवहार कहाँ गया? लोगों को वह अवरोध है। कहते हैं न, बीच में व्यवहार विकल्प हो, उसका जाननेवाला रहता है,उसमें रमनेवाला नहीं। कहो, समझ में आया? दशान्तर। **निःकर्म अवस्थारूप निर्वाणपद को प्राप्त करता है।** सिद्धपद को प्राप्त दशान्तर होकर, संसार अवस्था का अभाव होकर निर्वाण-मोक्षदशा पा जाता है। वर्तमान दशा से अन्य दशा—सिद्धदशा को पाता है।

कैसी है दशान्तर? 'आपातकालरमणीयं' वर्तमान काल में अनन्त सुख विराजमान है। भगवान आत्मा... अरे! इसकी महिमा की खबर नहीं होती, इसके अनुभव की खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाये, (ऐसा) तीन काल में धर्म है नहीं। समझ में आया? भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसका अन्तर में अनुभव प्रतीति और ज्ञान (होना) उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। उसमें रमने से चारित्र विशेष हो, वह विशेष मोक्षमार्ग है। पूर्ण एकाग्र होने से उस दशा में रमने से (पूर्ण दशा हो जाती है)। 'अनुभव चिन्तामणिरत्न अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप।' व्यवहार बीच में आवे सही, पूर्ण न हो, वहाँ (आवे) परन्तु वह व्यवहार ज्ञातारूप से जानकर, उसका स्वामी नहीं होकर, उसका मुख्यरूप से अनुभव नहीं परन्तु वेदन शान्ति और आनन्द का वेदन वेदता हुआ, उसका स्वामी अर्थात् अहम्पने न जानता हुआ आगे बढ़कर स्थिरता करके मोक्ष को पाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छिपा है अन्दर। भान कहाँ है अभी तो? अभी तो इस प्रकाश को कुछ ठीक हो तो मुझे ठीक हो। इस प्रकाश को ठीक हो तो नहीं। वहाँ मिथ्यात्व की गाँठ लगी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का भी कब था लड़का? कहाँ आत्मा, कहाँ रजकण! तीन काल-तीन लोक में परद्रव्य के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। किसका हो गया लड़का और किसकी हो गयी स्त्री? धूल में भी नहीं। स्त्री स्त्री में रह गया उसका आत्मा, उसके रजकण उसके रजकण में रहे, धूल धूल में रही, आत्मा आत्मा में (रहा है)। आहाहा! कहीं तीन काल में कोई स्वप्न में भी सम्बन्ध नहीं। माना है कि यह मेरा पुत्र और ऐसा हो तो ठीक हो, यह हो तो ठीक है। परन्तु मुझे कैसे ठीक हो, ऐसा देखे बिना हैरान हो-होकर उसमें काल गंवाया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मेरा क्या होगा? मैं कौन हूँ? यहाँ आया अकेला और अकेला जानेवाला है, कोई धूल भी साथ आया नहीं। यह शरीर भी नहीं और पूर्व के बाँधे हुए कर्म बदल जाये और दूसरे साथ आयेंगे, वे पररूप से, पररूप से (आयेंगे), कहीं तेरेरूप से नहीं आयेंगे। परन्तु है क्या? इज्जत सम्हालना, पुत्र सम्हालना, सब व्यवस्थित सम्हालना। महापाप को सम्हाला है। यह रहे, धूल रहे, स्त्री रहे, पुत्र और यह पैसा पाँच-पचास (लाख) धूल (रहे)। वह तो जड़, मिट्टी, धूल है, रजकण है। वे कहाँ तेरे आत्मा में आ गये और वे आत्मा के हैं? समझ में आया? जेचन्दभाई! कहाँ गये सेवंतीभाई! परन्तु चैन नहीं आता। या तो शरीर में ऐसा हो तो ठीक या तो स्त्री में ऐसा (हो तो) ठीक या तो पुत्र में ऐसा (हो तो) ठीक या तो मकान में हो तो ठीक या तो गहने में हो तो ठीक, या तो वस्त्र में हो तो ठीक। सबमें ठीक... ठीक (करने जाता है) परन्तु तुझमें ठीक हो, वह तो कर। आहाहा! मिथ्यादर्शन और श्रद्धा का लक्षण जगत के परपदार्थ को अपने में मनवाकर उसके लिये भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... (सेवन करता है)। समझ में आया?

कौन जागरण करे और कौन आश्वासन धूल भी देता नहीं। मूढ़ व्यर्थ का भ्रमणा से मानकर बैठा है। ऐई! नेमिदासभाई! परन्तु दो व्यक्ति हों तो आश्वासन कौन दे

दूसरा ? आहाहा! वह भी कोई दे नहीं सकता वहाँ। अन्दर भगवान आत्मा ज्ञानानन्द का नाथ स्वयं पड़ा है। यह आत्मा यह मुझे और राग को सम्बन्ध नहीं। और शरीर तथा स्त्री-पुत्र कहाँ गये ? धूल में भी (सम्बन्ध) नहीं। अनन्त बार ऐसे संयोग आये और अनन्त बार गये थे। नये कहाँ थे उसमें ? समझ में आया ? आहाहा! काल में काम नहीं किया और फिर पुकारे, दुःख के काल में पुकार की, हाय.. हाय! अरे! ऐसा कहाँ बाँधा होगा ? अरे! क्या होगा ? परन्तु वास्तविक अवसर—काल में तो काम लिया नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान राग और शरीर से भिन्न है। अरे! दया, दान का राग उत्पन्न हो, उससे तेरी चीज़ भिन्न है। राग तो आस्रवतत्त्व है, भगवान तो चिदानन्दतत्त्व है। उसके भान बिना राग की सम्हाल की, शरीर की सम्हाल की, धूल की सम्हाल (की)। पापपरिणाम से सम्हाल करके हैरान होकर गया नरक और निगोद। समझ में आया ? कठिन बात, भाई!

मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है न ? क्रोध, मान, माया, लोभ का। ऐसे प्रकार लिये कि, क्रोध होता है। एक तो उपाय विचारे कैसे इसका ऐसा करना ? इतने से न रहे तो वाणी से वर्ते—गाली देना। उससे न वर्ते तो विष आदि करके मर जाये। ऐसे मान, माया, लोभ। आहाहा! क्रम रखा है न, भाई! भारी क्रम रखा है। पहले तीन रखे और फिर तीन रखे। यह उपाय है, वाणी से ऐसा कहना चाहे और शरीर से ऐसा करे। वह दुःखी तो स्वयं से होता है, फिर वाणी से ऐसा हाय... हाय...! पश्चात् विष पीकर मर जाता है। समझ में आया ? विष खाकर। ओहोहो! मोक्षमार्गप्रकाशक भी गजब! क्रम से ऐसा सरस लिया है! अब, उसकी महत्ता लोगों को नहीं रही। उसकी एकाग्रता का क्रम भारी है। यह क्रमसर बात उठायी है, भाई! तूने मिथ्यात्व में उल्टी मान्यता में तूने उपाय दूसरे किये और उस उपाय में फल कुछ आया नहीं। सुल्टा नहीं आया, उल्टा आया। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं, सम्यग्दृष्टि एक विकल्प हो, उसका स्वामी नहीं होता, मेरा नहीं। देह और स्त्री, पुत्र कहीं रह गये। आहाहा! यह आठ वर्ष की बालिका समकित पावे और फिर बीस वर्ष की हो और विवाह करे। हराम उसमें उसे स्वामित्व हो तो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस राग में स्वामित्व नहीं और पति में स्वामित्व नहीं। यह

मार्ग धर्म का मार्ग, यह पहेली अलग प्रकार की है। यह अन्तर के हल बिना इस मार्ग की खबर पड़े, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि बाह्य स्त्री को छोड़े, बालब्रह्मचारी रहे, मन में अभिप्राय में ऐसा है कि मैंने यह काया की क्रिया की नहीं, मैंने यह छोड़ दिया, मैंने यह राग घटाया, उसमें मुझे धर्म हुआ। मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? वस्तु देखी नहीं, इसलिए उसकी भावना नहीं। जिसने देखी है, उसकी भावना किया करता है। सम्यग्दृष्टि ने आत्मा को देखा है, ज्ञान में जाना है, अनुभव किया है (तो) उसकी भावना हटती नहीं। अज्ञानी ने यह देखा, राग, पुण्य और विकल्प तथा संयोग देखे हैं, उनकी भावना हटती नहीं, उनकी प्रीति-रुचि हटती नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा अपनी चैतन्य सम्पदा की ऋद्धि का स्वामी होने पर वह पुण्य-पाप और शरीर का स्वामित्व अन्दर से छोड़ देने पर, जिसके फलरूप से निर्वाणपद की प्राप्ति होती है। आहाहा! वह सिद्ध—तीन लोक का नाथ सिद्ध होकर रहता है, कहते हैं। और यह दूसरे का स्वामित्व राग का और शरीर का और धूल का स्वामित्व करने से वह हल्की दशा हुई और दूसरे जीव हैं या नहीं स्वीकार के काल में भी उसके पास रहते नहीं। इसे खबर नहीं रहती कि अरे! हम आत्मा हैं। समझ में आया? पुण्य-पाप के राग और उसके फल और सामग्री का स्वामी होने पर मूढ़पना प्रगट होने से चैतन्य का स्वामीपना छोड़कर जिसकी ज्ञानदशा में हीनदशा होकर एक शरीर में अनन्त जीव (रहते हैं)। वहाँ चला जाता है। समझ में आया? जिसे बड़े क्षेत्र की भी आवश्यकता नहीं। आहाहा! क्षेत्र इतना छोटा है, उसमें समा गया।

यहाँ कहते हैं, अरे! सबका स्वामीपना धर्मी ने छोड़ दिया। आहाहा! मैं भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ, उसके भान में चैतन्य का स्वामी सम्यग्दृष्टि हुआ और रागादि का स्वामीपना अन्तर में से गया। वह स्वामी होकर सिद्ध होगा वह, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा के आनन्द का स्वामी अनुभवी, वह सिद्धपद को प्राप्त करेगा। समझ में आया?

वर्तमान काल में अनन्त सुख विराजमान है। दशान्तर हो गयी, पूर्णानन्ददशा (हो

गयी)। वस्तु को... वस्तु को सच्चिदानन्द प्रभु के आनन्द के अतीन्द्रिय स्वाद को स्वादता हुआ, वह आगे बढ़कर दशान्तर—सिद्धदशा हो गयी। वर्तमान आनन्द और **'उदर्करम्यं' आगामी अनन्त काल तक सुखरूप है।** जिसका परिणाम भी वर्तमान आनन्द और भविष्य में (भी) ऐसा का ऐसा आनन्द, आनन्द और आनन्द, आनन्द, आनन्द और आनन्द (रहता है)। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि में पुण्य-पाप मेरे, शरीर मेरा (मानकर) वर्तमान में दुःखी और जिसके परिणाम भी नरक, निगोद आदि में जाना, वह दुःखी है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

'उदर्करम्यं' उसका भविष्यकाल का परिणाम। अनन्त काल एकरूप आनन्द रहेगा, कहते हैं। वर्तमान आनन्द, भविष्य अनन्त काल ऐसा का ऐसा आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! यह सम्यग्दर्शन के अनुभव के स्वस्वामीपने के परिणामरूप सिद्धपद को प्राप्त होता है। समझ में आाय? आहाहा!

ऐसा कर-करके खो बैठेगा। यह राग और पुण्य और पाप और फल को कहते हैं, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का अनुभव तो भगवान तू खो जायेगा, हों! इस चौरासी के अवतार में खो जायेगा। कहीं यह मेरे माँ-बाप ऐसा तुझे खोजने वहाँ कोई नहीं आयेगा। आहाहा! आयेगा कोई? धर्मचन्दभाई! क्या होगा? नहीं आयेंगे? परन्तु जिनके लिये पाप किये हों, वे तो आयेंगे या नहीं? आहाहा! कहा नहीं था? शास्त्र में दृष्टान्त आता है। छोटे भाई को रोग हुआ और बड़ा भाई बहुत माँस लाया, वह लाया। छोटे को खबर नहीं। रोग दो, चार, छह महीने चला। माँस, शराब यह और गुप्तरूप से खिलाया। उसे कहे नहीं कि यह माँस है। वह खिलानेवाला मरकर गया नरक में और वह जो है उसे कुछ परिणाम ठीक रहे, वहाँ गया परमाधामी में। वह परमाधामी उसे मारता है। उसमें कुछ जातिस्मरण हुआ, पूर्व का स्मरण होता है न? कोई अज्ञानी को। अरे! भाई! परन्तु मैंने तेरे लिये पाप किये, तुझे खबर किये बिना और तू मुझे अभी मारता है? किसने कहा तुझे? ऐ... नेमिदासभाई! वह खिलानेवाला गया नरक में, गुप्तरूप से गुप्तरूप से माँस, शराब और अण्डा खिलाया। वह मरनेवाला देव हुआ। यहाँ परमाधामी हुआ। मारफाड़ (करे)। अरे! परन्तु भाई! तू तो भाई था न? मैंने तो तेरे

लिये (किया था)। मेरे लिये कब था? यहाँ तेरा-मेरा है ही कहाँ? जयचन्दभाई! यह क्या करना परन्तु? पर्दा गिरा वहाँ हो गया। वह हुआ दुश्मन और वह हुआ उसका दुश्मन। मारा-मारी। अरे! भाईसाहब! मैंने तेरे लिये पाप (किये)। भाई! मेरा और तेरा कब था? हम तो जेलर हैं, परमाधामी हैं, मारेंगे। हमारा कर्तव्य है, मारेंगे, काटो। क्या करेगा वहाँ? वहाँ आवे या नहीं मदद करने? इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्व तत्त्व का सेवन किया, वह मरकर निगोद में जाये। कोई शरण नहीं, बापू! वहाँ कोई शरण नहीं और ऐसे सम्यग्दर्शन के सेवन में सिद्धपद हो, अनन्त शरण अपने में है। आहाहा! समझ में आया?...

और कैसी है अवस्थान्तर? कैसी दशा को पाता है सम्यग्दृष्टि **'निःकर्मशर्ममयं' सकलकर्म का विनाश होने पर प्रगट होता है...** निष्कर्म, ऐसा। परन्तु **'शर्ममयम्'।** कैसी दशा प्रगट होती है? आत्मा शुद्ध चैतन्य का अनुभव सम्यक् (हुआ)। दूसरा भले कुछ न आता हो। समझ में आया? यह लोक में भी कहा जाता है मूर्ख, लोक में ऐसा होता है। इसे तो लौकिक में कुछ आता नहीं, बोलना भी नहीं आता। समझ में आया? व्यवस्था ऐसे करना, अमुक करना, ऐसी होशियारी (करना), ऐसा कुछ नहीं आता। कहते हैं कि वह निष्कर्म दशा को प्राप्त करनेवाला है। आहाहा! ऐ... भीखाभाई! क्या करना इसमें? हीराभाई का करना या चूड़ी का करना या किसका करना इसमें? आहाहा!

भाई! काल आया, आया न प्रभु! अरे! भव के अभाव करने का भव मिला, उसमें भव की वृद्धि करके जाये, वह तो कहीं काल है? आहाहा! वस्तु... वस्तु... वस्तु... ऐसा वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसी प्रतीति होकर भान हुआ। अर्थात् कि स्वरूप यह है कि आनन्द मुझमें है, मेरा आनन्द पर में नहीं। अर्थात् मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसी वस्तु है, ऐसा भान हुआ। इसलिए राग में और पर में आनन्द है नहीं, उस वस्तु में आनन्द है ही नहीं। इसलिए आनन्द में आत्मभान होने पर, उसमें एकाग्र होते-होते कर्मरहित अवस्था (प्राप्त करता है)। कर्मरहित अवस्था में ही यह सम्यग्दर्शन में भान हुआ है परन्तु उसका भान होने पर निष्कर्मअवस्था (होती है), परन्तु कैसी? वह तो निष्कर्म इतना कहा।

द्रव्य का सहजभूत अतीन्द्रिय अनन्त सुख,... ऐसा। द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान आत्मा का सहजभूत, अन्तर में ही भरा हुआ आनन्द, सहज—साथ में रहा हुआ आनन्द, द्रव्य अर्थात् पदार्थ के साथ रहा हुआ आनन्द, ऐसा ही अतीन्द्रिय अनन्त सुख प्रगट हो गया। समझ में आया? यहाँ तो यह संयोग इतने हों तो ठीक और इतने हों तो ठीक। धूल में भी संयोग में सुख नहीं, मर गया अनन्त काल से।

द्रव्य सहज निष्कर्म दशा होकर दशान्तर होकर सम्यग्दृष्टि को अल्प काल में दशान्तर हो गयी। समझ में आया? और निष्कर्म होने पर हुआ क्या? वह तो कर्मरहित हो गया, यह तो नास्ति हुई। '**शर्ममयम्**' अतीन्द्रिय सहज आनन्दमय। **द्रव्य के सहजभूत...** देखो! यह वस्तु भगवान आत्मा का स्वाभाविकभूत स्वभावरूप अतीन्द्रिय अनन्त सुख प्रगट हो गया। जो द्रव्य का स्वभाव था, वह पर्याय में प्रगट हो गया।

सुख, उसमय है... है न? '**शर्ममयम्**' '**मयम्**' अर्थात् उसमय है। **उससे एक सत्तारूप है।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! विभाव के विकल्प कर्म की सत्ता तो स्वभाव चैतन्य से भिन्न सत्ता है। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प चैतन्य से भिन्न सत्ता है। कर्म, शरीर, स्त्री, पुत्र की भिन्न सत्ता है। परन्तु अभिन्न चैतन्यस्वभाव की अन्तर दृष्टि अनुभव करने से निष्कर्म दशा होकर अभिन्न सत्तावाली आनन्द दशा प्रगट हुई। समझ में आया? अरे! भाषा कैसी की है देखो न! '**निःकर्मशर्ममयं**' '**शर्ममयम्**' ऐसा कहा न? मय। एक सत्ता हो गयी। एक ही सत्ता है। द्रव्य, गुण और आनन्द। अन्तर निर्मल अनुभव होते-होते उसका आनन्द प्रगट हुआ कि मय—आनन्दमय अर्थात् एक सत्ता हुई। एक सत्ता है। द्रव्य में आनन्द, गुण में आनन्द और (पर्याय में) आनन्द। ऐसी अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा, वह सम्यग्दृष्टि सिद्धदशा को मापता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

भगवान आत्मा कर्म की भिन्न सत्ता के संयोग को स्वीकारकर रहा तो उसके पुण्य-पाप के संयोगी भाव को स्वीकारकर रहा तो संयोगी चीज़ें रहीं, उनमें तो कहीं सुख है नहीं। एक सत्ता का सुख उनमें नहीं। भिन्न सत्ता में माना हुआ सुख, वह सुख है नहीं। आहाहा! उन भिन्न सत्तावाले पदार्थों में सुख माना, वह मान्यता मिथ्या और

उनमें सुख नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा इस धूल से भिन्न है, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है। ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड कन्द ध्रुव गुण है। उसका जहाँ अन्तर अनुभव में स्वीकार होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आनन्द का वेदन हुआ, कहते हैं कि वेदते... वेदते... वेदते... वेदते... कर्मरहित आनन्द की एक सत्तारूप अवस्था हो गयी। आनन्द की एकरूप सत्ता हो जायेगी, एक सत्तारूप आनन्द रहेगा। आहाहा! समझ में आया?

परिणम गयी है, ऐसा है न? अन्तिम गाथा में, ४१५। समयसार। परिणमित हो गयी, सुखरूप हो गयी। सुख होगा, आयेगा, कहाँ से आवे? आवे कहाँ से? स्वयं सुखरूप परिणम जायेगा। एक सत्तारूप से (परिणम जायेगा)। द्रव्य में सुख, गुण में सुख, पर्याय में सेख। वह पूर्ण सुख। अपूर्ण आनन्द से अनुभव करते-करते पूर्ण आनन्द जो पड़ा है, वह पर्याय में पूर्ण आनन्दमय एक सत्तारूप दशा हो जायेगी, एक सत्तारूप। उसका नाम निष्कर्म सिद्धदशा है। आहाहा! कथन की पद्धति भी (ऐसी), टीका करनेवाले की भी (पद्धति भी ऐसी)। समझ में आया?

'**निःकर्मशर्ममयं**' आचार्य के शब्द हैं न अन्दर? यह तो भिन्न सत्ता में खोज रहा है, धूल में। पुण्य-पाप के परिणाम वे विभाव सत्ता है, वे स्वभाव सत्ता नहीं। वहाँ खोजता है सुख। मिथ्यादृष्टि पुण्य-पाप में सुख खोजता है, उसके फल में सुख—यह विषकर्म कर्मफल कहते हैं न? उसमें सुख खोजता है। धूल में भी नहीं। हैरान होकर मिथ्यात्व के परिणमन से हीन दशा का (परिणमन होगा)। ऐसे मिथ्यात्व में रमते-रमते हीनदशा का परिणमन हो जायेगा। समझ में आया? तथापि उस दुःख की दशारूप स्वभाव नहीं। पर्याय में तन्मय भले हुआ, द्रव्य-गुण में नहीं। और यह तो पर्याय भी अनन्त आनन्दमय, चैतन्यमय हो गयी, ऐसा कहते हैं। एक धारा हो गयी, एक प्रवाह हो गया। वस्तु जैसी अनन्त गुण आनन्द का कन्द था, आत्मा आनन्द गुण था, उसका अन्तर अनुभव, सम्यग्दर्शन प्रगट करके उसमें रमते-रमते '**शर्ममयम्**' हो गया। अकेला एक सत्ता का आनन्द प्रगट हो गया, एक सत्तारूप आनन्द हो गया। समझ में आया? आहाहा!

इसने आत्मा कैसा और कैसे है, ऐसा इसने अन्दर में प्रेम से सुना नहीं। समझ में

आया ? उसकी कीमत कोड़ी जैसी जाने और यहाँ कहीं मिले, वहाँ... आहाहा ! हर्ष... हर्ष... हर्ष... हर्ष... एक लड़के का विवाह करे और प्रीतिभोज हो और उसमें पाँच लाख खर्च करना हो, दो करोड़ की, पाँच करोड़ की पूँजी हो... देखो मैं चौड़ा और गली सकड़ी। फूला समाये नहीं, फूला समाये नहीं। समझ में आया ? उसमें पाँच-दस लाख का मकान बनाया और उसमें राजा को भोजन कराया हो, खुल्ले में भोजन करते हों, पाँच हजार तो लोग इकट्ठे हों और सोने की थालियाँ सबको। क्या है परन्तु ? वास्तु किया मिथ्यात्व का। भ्रमणा में भ्रमा भगवान। भ्रमा, वह तो कैसे उत्साह से वापस ऐसे। उत्साह करके पड़ा, ऐसे अन्दर से कूदे। आहाहा ! आता है न ? इन्द्र भी विषयों में रमते हैं। विषय की इच्छावाले भोग की भावना में आनन्द को नहीं देखते फू... फू... होकर गिरते हैं। माँस और हड्डियाँ और चमड़ी, पैसा और धूल धमाका। जीवन गँवा डालते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं इस जीवन के लेखे किया। यह जीवन ऐसा हो गया, कर्म बिना की शर्म अर्थात् आनन्ददशा (हो गयी)। निष्कर्म कर्म, कर्म और शर्म दो शब्द समान आये। कर्म-शर्म। कर्म बिना का शर्ममय। समझ में आया ? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर रुचि दृष्टि के अनुभव से बढ़ते-बढ़ते कर्म बिना का शर्मवाला हो गया। शर्म अर्थात् आनन्द। शर्म अर्थात् यह शरम नहीं, हों ! कर्मरहित और शर्मसहित। शर्म अर्थात् क्या ? आनन्द। शर्म अर्थात् सुख होता है। बिल्कुल कर्मरहित और पूर्ण आनन्दसहित। आहाहा ! अशर्म अर्थात् दुःख। कर्म अर्थात् दुःख कहो या अशर्म कहो या दुःख कहो, सब एक ही है। समझ में आया ? आहाहा !

उसमय है.... इसकी व्याख्या की। **उससे एक सत्तारूप है।** उसमय की व्याख्या की। उसके साथ एकसत्तारूप है। भगवान आत्मा अपने द्रव्य-गुण के अनुभव की पर्याय प्रगट की और वह पर्याय—दशा ऐसी हो गयी, अकेले आनन्दमय, एक सत्तारूप हो गयी। इसका नाम मुक्ति और इसका नाम सिद्धपद कहा जाता है। समझ में आया ? ४० (कलश पूरा) हुआ। अब, कहते हैं कि अरे ! ऐसे आनन्द को सर्वकाल पीवो। ऐसा जिसने पुरुषार्थ करके परमात्मदशा प्रगट की, ऐसे शान्तरस को अब अनन्त काल पीओ।

कलश - २३३

(स्रग्धरा)

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ।।४१-२३३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'इतः प्रशमरसं सर्वकालं पिवन्तु' [इतः] यहाँ से लेकर, [सर्वकालं] आगामी अनन्त कालपर्यन्त, [प्रशमरसं पिवन्तु] अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो। वे कौन? 'स्वां ज्ञानसञ्चेतनां सानन्दं नाटयन्तः' [स्वां] आपसम्बन्धी है जो [ज्ञानसञ्चेतनां] शुद्धज्ञानमात्र परिणति, उसको [सानन्दं नाटयन्तः] आनन्दसहित नचाते हैं अर्थात् अतीन्द्रिय-सुखसहित, ज्ञानचेतनारूप परिणमते हैं, ऐसे हैं जो जीव। क्या करके? 'स्वभावं पूर्णं कृत्वा' [स्वभावं] केवल ज्ञान, उसको [पूर्ण कृत्वा] आवरणसहित था, सो निरावरण किया। कैसा है स्वभाव? 'स्वरसपरिगतं' चेतनारस का निधान है। और क्या करके? 'कर्मणः च तत्फलात् अत्यन्तं विरतिं भावयित्वा' [कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्म से [च] और [तत्फलात्] कर्म के फल, सुख-दुःख से [अत्यन्तं] अतिशयरूप से [विरतिं] शुद्धस्वरूप से भिन्न है—ऐसा अनुभव होनेपर, स्वामित्वपने के त्याग को [भावयित्वा] भाकर अर्थात् ऐसा सर्वथा निश्चय करके, 'अविरतं' जिस प्रकार एक समयमात्र खण्ड न होवे, उस प्रकार सर्व काल। और क्या करके? 'अखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा' सर्व मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति का भले प्रकार विनाश करके। भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष-परिणति विनशती है; शुद्धज्ञानचेतना प्रगट होती है; अतीन्द्रियसुखरूप, जीव परिणमता है। इतना कार्य जब होता है, तब एक ही साथ होता है।।४१-२३३।।

कलश - २३३ पर प्रवचन

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ।।४१-२३३।।

उस आनन्द का पीवो, शान्तरस को पीवो, कहते हैं। यह क्या होगा? आहाहा! यह भगवान आत्मा में शान्तरस पड़ा है। उसका अनुभव करके अब सदाकाल शान्तरस को पीओ। पीओ अर्थात् अनुभव करो, ऐसा। प्यास लगी हो और फिर मौसम्बी का पानी और उसमें डाली हो बर्फ, मौसम्बी का पानी और उसमें डाली बर्फ। थोड़े काल बाद न करे। सेर-दो सेर दबा के पीना, सेर-दो सेर दबा के पीवे फिर कहे, अब नहीं। क्यों कहता था न मजा है? कहते हैं कि यह आत्मा का आनन्द शान्तरस सदाकाल रहेगा, पीओ। उसमें कभी अतृप्ति नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? संसार में चाहे जैसे कल्पना के सुख (होवें), परन्तु अब नहीं, ऐसा होता है या नहीं? अब नहीं, अब नहीं। शरीर सड़ा, वृद्धावस्था हुई अब तो छोड़। सुख था न? सुख छोड़ा जाता है? मूढ़ ने माना था, था कब धूल में? कहते हैं कि आनन्द जो आत्मा का शान्त अकषायस्वभाव, वह अन्तर स्वभाव है, ऐसा भान होकर प्रगट हुआ।

'इतः प्रशमरसं सर्वकालं पिबन्तु' अरे! **यहाँ से लेकर...** ऐसा भगवान अकषाय वीतरागस्वरूप। अपना स्वरूप ही शान्तरस का पिण्ड है। 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के किन्तु कायर को प्रतिकूल' प्रशमरस शान्त.... शान्त.... शान्त.... भगवान आत्मा अकषायरस से भरपूर शान्तरस है। उसे अनुभव करके सम्यग्दर्शन से चारित्र प्रगट करके जो शान्तरस प्रगट हुआ... आहाहा! निर्वाणपद शान्तरस, वह जब से प्रगट हुआ तब से **आगामी अनन्त काल पर्यन्त...** आहाहा! अनन्त काल। संसार की पर्याय का काल थोड़ा, मोक्ष की पर्याय का काल अनन्त गुना। समझ में आया? स्वभाव शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसकी दृष्टि के अनुभव में मोक्ष का काल हो तो

असंख्य काल, असंख्य समय चाहिए। उसके फलरूप से कहते हैं कि आगामी अनन्त काल पीओ अब। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? समझ में नहीं आया?....

आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प को मेरा मानकर अनन्त काल भटका। अनन्त काल से दु:ख हुआ, उसकी पर्याय थोड़ी और मुक्ति की पर्याय उससे अनन्तगुणी, परन्तु वह पर्याय प्राप्त (करने) के लिये आत्मा के अनुभव का काल ही असंख्य समय का है। समझ में आया? उसे साधने के लिये अनन्त काल नहीं लगता, सिद्धपद को साधने के लिये अनन्त काल नहीं लगता।

यहाँ कहते हैं कि अहो! यह बड़ा काम किया, भाई! अब, सर्व काल, आगामी अनन्त काल। त्रिकालवर्ती। त्रिकालवर्ती नहीं (ऐसा कोई) कहता है। यह सर्वज्ञ त्रिकालवर्ती नहीं। उसमें भी आता है, हों! मोक्षमार्गप्रकाशक में। सर्वज्ञ हों वे त्रिकालवर्ती जाने, ऐसा उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। त्रिकालवर्ती को जाने, त्रिकालवर्ती। सर्वज्ञ त्रिकालवर्ती शब्द लिया। यह सर्व काल—भविष्य की बात है। समझ में आया? त्रिकालवर्ती में तीनों काल आ जाते हैं।

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने आनन्द के प्रेम बिना इसने पुण्य-पाप और शरीर के प्रेम से मिथ्यात्व से दु:ख की दशा का अनन्त काल व्यतीत किया है। इस आत्मा के अनुभव के काल की दृष्टि हुई, वस्तु का भान हुआ और भान होकर केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये मात्र इसे असंख्य समय ही अनुभव के लिये चाहिए। अब, उसके फलरूप से... समझ में आया?

अनन्त काल पर्यन्त 'प्रशमरसं पिवन्तु' अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो। आहाहा! 'आशा औरन की क्या कीजे' आता है न आनन्दघनजी में? 'ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे' ज्ञान सुधारस—चैतन्य का आनन्द सुधा अमृत रस, उसे पीओ। इसके अतिरिक्त कहीं सुख है नहीं। आहाहा! कहते हैं, **'प्रशमरसं पिबन्तु'** इस प्रशम का अर्थ अकषाय परिणाम न करके अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो। चारित्र अकषाय शान्तरस जो परिणमित हुआ है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द साथ में है। समझ में आया?

आत्मा के अन्तर में अकषाय रस है, वह शान्तरस है। आनन्द है, वह सुख है।

जब आत्मा अपने अकषाय स्वभाव और आनन्द स्वभाव में प्रतीति और अनुभव में रमने से जब अकषाय स्वभाव पूर्ण हुआ अर्थात् शान्तरस पूर्ण हो गया और उसके साथ आनन्द भी पूर्ण हो गया। समझ में आया?

यहाँ साठ वर्ष का, अस्सी वर्ष का आयुष्य। दृष्टान्त। अब अस्सी वर्ष में वापस चालीस वर्ष तो नींद में जाये। चालीस रहे, उसमें कुछ रोग में और कमाने में और उसमें जाये, बीस वर्ष रहे, उसमें भी कुछ वापस किसी के साथ बातें अब, उसमें भोग भोगने का काल तो इसे बहुत थोड़ा। समझ में आया? इस भगवान आत्मा के अनुभव की दृष्टि, कहते हैं कि असंख्य समय का साधक यदि हो (तो) भविष्य का अनन्त काल आनन्द रहे, ऐसा उसका फल है। कहो, समझ में आया इसमें?

आगामी अननत काल पर्यन्त... अनन्त काल तक। फिर अन्त आता होगा न अनन्त काल पर्यन्त है इसलिए? अनन्त काल पर्यन्त अर्थात् अनन्त काल तक ऐसा का ऐसा। '**प्रशमरसं पिबन्तु**' अहो! भगवान! यह तूने आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की खान का अनुभव किया। अब उसके परिणाम में अतीन्द्रिय आनन्द को पीओ, अनुभव करो। आहाहा! कितना काल? कि अनन्त काल। आहाहा! कभी द्रव्य कम पड़े तो आनन्द की पर्याय कम पड़े। भविष्य इतना... नजरें जहाँ पहुँचे नहीं, इतना रहनेवाला द्रव्य, नजरें जहाँ पहुँचे नहीं, उतना रहनेवाला काल। ऐसा पर्याय का, हों! ऐसे सम्यग्दर्शन के अनुभव में फल! समझ में आया? परमात्मप्रकाश में आया और अष्टपाहुड़ की गाथा— समकित से परिणमता परिणमता ही आठ कर्म का नाश कर डालता है, सिद्ध हो जाता है। समझ में आया?

कहते हैं **अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो।** ऐसा भगवान महिमावन्त पदार्थ को तूने अनुभव किया, उस अनुभव के फल में अनन्त काल आनन्द का अनुभव कर, यह उसका फल है, कहते हैं। '**स्वां ज्ञानसञ्चेतनां सानन्दं नाटयन्तः**' '**स्वां' आप सम्बन्धी है जो शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति....** समझ में आया? आत्मा वस्तु ज्ञानानन्द, उसकी जो ज्ञानचेतना प्रगट की, वह ज्ञानचेतना अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द आदि, वह सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ज्ञानचेतना प्रगट हुई, इसलिए साथ ही आनन्द प्रगट हुआ।

शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति... वह आत्मवस्तु की जो शुद्ध निर्मल परिणति। **'ज्ञानसञ्चेतनां'** यह ज्ञान की व्याख्या की। शुद्ध ज्ञानमात्र **'सञ्चेतनां'** परिणति, परिणमना, शुद्ध ज्ञानरूप परिणमना। **उसको 'सानन्दं नाटयन्तः' आनन्दसहित नचाते (परिणमाता) है...** समझ में आया?

कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन आनन्दसहित परिणमता है। यह पुण्य-पाप का परिणमन दुःखसहित परिणमता है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यज्योति, उसकी ज्ञानचेतना शुद्ध ज्ञान का वेदन (होने पर) कहते हैं कि **'सानन्दं नाटयन्तः' आनन्दसहित नचाते है...** परिणमता है, ऐसा। वस्तु... वस्तु.... भगवान आत्मा उसका जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह ज्ञानचेतना, अपने सम्बन्धी ज्ञानचेतना, वह परिणति कैसी हुई? कि आनन्दसहित परिणम रहा है। अतीन्द्रिय आनन्द के साथ रहकर ज्ञान परिणमता है।

अर्थात् अतीन्द्रिय सुखसहित ज्ञानचेतनारूप परिणमते हैं,... लो! समझ में आया? अपने आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान सुखरूप से ज्ञान परिणमा, आनन्दरूप से परिणमा। समझ में आया? यह कोई रात्रि में सोये, तब कहते हैं न? शुभरात्रि। सुना है? सो जा, ऐसा नहीं कहते। शुभरात्रि। सुना है या नहीं? यहाँ तो बहुत अधिक हमारे है। हमारे दामोदर सेठ थे न? एक घण्टे चर्चा हो, फिर उठे तब बोले, शुभरात्रि। घण्टे भर चर्चा हो। है तुम्हारे? है या नहीं कहीं? नहीं होगा? होगा तो सही कहीं, खबर नहीं होगी। शुभरात्रि। ऐई! सो जा कदाचित् मर जाये और ऐसा नहीं कहा जाता, शुभरात्रि, ऐसा कहते हैं। मीठी भाषा। इसी प्रकार आत्मा में सुखानन्द की दशा परिणमती है, कहते हैं। जागती परिणमती है, उस रात्रि में सुख करो, ऐसा अज्ञान में कहते हैं। आत्मा अपने आनन्द के ज्ञान से परिणमता, जागता हुआ सिद्धदशा पाता है। उसका सम्यग्दर्शन और ज्ञान का परिणाम का यह फल है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक-२५-११-१९६५, कलश-२३३, २३४, प्रवचन-२५०

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार कलशटीका, ४१ कलश। शुरुआत फिर से, देखो!

'इतः प्रशरमसं सर्वकालं पिवन्तु' यहाँ से लेकर... अर्थात् क्या कहा? जिसने आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वभाव को संचेतन करके ज्ञानचेतना प्रगट की है और अज्ञानचेतना अर्थात् पुण्य-पाप के भाव और हर्ष-शोक के भाव, ऐसी दो अज्ञान चेतना हैं, उनका जिसने नाश किया है। अन्दर अन्त में आयेगा। **'अखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः प्रलयनं'** आत्मा अनादि से पुण्य-पाप के रागरूपी आकुलता और उसका वेदन—हर्ष-शोक का वेदन, यह अनादि से अज्ञान का वेदन उसे था। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु उसे वेदन यह था। पर का वेदन नहीं, स्वभाव का नहीं। समझ में आया? मात्र यह शुभ-अशुभभाव और हर्ष-शोक का वेदन, बस! यह इसने संसार में अनादि से आकुलता का कार्य करके आकुलता को वेदन किया है। उस अज्ञानचेतना को ज्ञानचेतना द्वारा नाश करके। अरे! मैं आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति हूँ। मेरा आनन्द शुद्धस्वभाव त्रिकाल... त्रिकाल ऐसा का ऐसा है, ऐसा अन्तर का भान करके आनन्द और ज्ञानचेतना को प्रगटाकर, उस अज्ञानचेतना का नाश किया है।

कहते हैं **यहाँ से लेकर 'सर्वकालं' आगामी अनन्त कालपर्यन्त 'प्रशमरसं पिवन्तु' अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो।** अब उसे आस्वाद रहा अनुभव अतीन्द्रिय आनन्द का। समझ में आया? जो वेदन था अज्ञान में पुण्य-पाप और हर्ष-शोक का, वह भान (हुआ कि) आत्मा चिदानन्द सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानचेतना जगी और उसकी ज्ञानचेतना का विशेष घोलन करते हुए सर्वथा राग-द्वेष का नाश हुआ।

अब, आगामी अनन्त काल—भविष्य का अनन्त काल **'प्रशमरसं पिबन्तु'** यह आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दरस (पीता है)। जो आकुलता का रस था, वह अनुभवता (था), उसका अभाव (किया)। स्वभाव के भान द्वारा प्रगट करके स्वभाव का (वेदन प्रगट किया)। अब ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन (हुआ), अनादि का संसार का अज्ञान वेदन शान्त हो गया और आत्मा का भान होकर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन शुरु

होकर अनन्त काल रहनेवाला है। समझ में आया? क्या इसमें करने का आया? यह आत्मा करता क्या है? कहा न पहले। करता है क्या यह अनादि का? यह शुभ-अशुभभाव और हर्ष-शोक का भाव करे और वेदे, यह इसने किया है। दूसरा कुछ एक छिलका बदला नहीं। कहो, होगा? क्या होगा?

काटे, धूल में भी काटता नहीं। परद्रव्य को करे क्या? रजकण, पुद्‌गल, परमाणु यह मिट्टी है, जगत का तत्त्व है। वे तत्त्व अपना अस्तित्व रखकर बदलाव होता है। यह तो उसके कारण से होता है। आत्मा उसे करे, यह तीन काल—तीन लोक में नहीं होता। ऐसा अभिमान किया, वह तो कर्मचेतना कही। मैंने यह किया और मैंने यह भोगा, ऐसी मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मोह का राग-द्वेषभाव इसने किया और उसे इसने वेदन किया। यह दु:खी हो रहा है। जमुभाई! क्या किया होगा? यह पुस्तकें बनाकर यह सब प्रकाशित की और बाहर प्रसिद्ध की न? यहाँ बड़ा लट्ठ जैसा शरीर हो न, और ऐसा... हो जाये। घड़ीक में ऐसा हो जाये। यह तो जड़ की अवस्था है। क्या आत्मा उसे करता है? और आत्मा उसे रखता है? और आत्मा की सम्हाल से रहता है? कैसे होगा डॉक्टर? यह दवा देकर रखते नहीं? तो किसलिए आते हो वहाँ से? आहाहा!

यह तो जड़ के पोटले परमाणु के हैं। परमाणु का पोटला मिट्टी और यह सब बाहर दिखाई दे, इतने सब रजकण के पोटले, सब धूल है। इस जगत के अजीवतत्त्व हैं, और अजीवतत्त्व में रहा हुआ यह दूसरा शरीर में आत्मा हो, वह जीवतत्त्व है। वह सब आत्मा के अतिरिक्त अनन्त तत्त्व जीव और उससे अनन्तगुणे रजकण, उसकी कोई भी अवस्था जीव तीन काल में करे, यह तीन काल में नहीं होता। आहाहा! इसने अभिमान किया (कि) मैंने यह किया, मैंने यह नहीं किया, उसने यह किया, ऐसे राग और द्वेष करे और मिथ्यात्व तथा उसके फलरूप से उसी क्षण दु:ख की आकुलता को वेदता है। बस! यह एक इसकी दशा। इसके अतिरिक्त इसने अनन्त काल में कुछ किया नहीं। बस! दो करे, भाव को किया। आहाहा! है न? अन्त में आयेगा। '**अखिलाज्ञान-सञ्चेतनायाः प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा**' उसमें है। यह तो उसके साथ मिलान किया न कि अब यह यहाँ से लेकर। परन्तु यहाँ से क्या हुआ? समझ में आया?

जब से आत्मा (जाना कि) अहो! मेरा स्वरूप आनन्दस्वरूप है। मुझे किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तीन काल, तीन लोक में किसी रजकण के साथ सम्बन्ध नहीं और यह पुण्य-पाप के विकल्पों का सम्बन्ध एक समय का था, वह भी मेरे आनन्द के स्वरूप के भान द्वारा वह मेरा स्वरूप नहीं, ऐसा जाना। समझ में आया? आहाहा! शरीर, कर्म दूसरे के साथ तो एक समय भी सम्बन्ध नहीं। अस्तित्व में रहा हुआ वह। उसके अस्तित्व में उत्पन्न हुई विकारी दशा अर्थात् एक समय का सम्बन्ध पर्याय में सम्बन्ध था, वस्तु स्वभाव की दृष्टि से देखने पर वह भी स्वभाव में सम्बन्ध नहीं है। आनन्द, ज्ञानानन्द की मूर्ति प्रभु गुणस्वरूप से भगवान, वह गुणस्वरूप त्रिकाल, उसमें उस विकार का सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? पर के सम्बन्ध की तो कहाँ बात करना? ओहोहो!

चौबीस घण्टे भी सुलग उठा हो। यह किया और यह छोड़ा और यह दिया और यह लिया, उसने मेरा बुरा किया, उसने मेरा भला किया और मैंने उसका बुरा किया। कर सका नहीं कुछ, उससे तुझमें वह कुछ हुआ नहीं। चिन्ता खड़ी की और राग-द्वेष को करे और हर्ष-शोक को भोगे। बस! यह इसने अनादिकाल से एक समय के विरह विना, एक समय का अन्तराल पड़े बिना ऐसा अनन्त काल से करता है। करता क्या है? भाव ही किया करता है मुफ्त का। यह जबड़ा हल्का या ऐसा होना, वह कहीं आत्मा के अधिकार की बात है? वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। उसे कैसे रहना, वह उसकी पर्याय से वह रहता है। उसका परिणमन उसका स्वकाल है, उसके प्रमाण रहता है। मात्र अन्दर परिणाम में घालमेल किया कि मैंने इसे ऐसा रखा, मैंने इसे नहीं रखा, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, उसका ऐसा किया, उससे ऐसा हुआ, मैंने ऐसा किया और उससे यहाँ हुआ, ऐसे मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या, (अर्थात्) स्वभाव में नहीं है, ऐसे विचार की वृत्तियों को कर्ता और भोक्ता अनन्त काल निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु ने यह किया है।

अब गुलाँट खाता है। अब सादि अनन्त सिद्धपद की प्राप्ति यह भणकार बजे। पहले तो आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ और शुद्ध चैतन्य हूँ। उसका अन्तर में ज्ञान और भान में

स्वभाव का स्वामी हुआ। विकार और दुःख के वेदन का स्वामी गया अर्थात् उसमें एकपना गया। स्वभाव शुद्ध चैतन्य के साथ एकपना हुआ। एकपने को घोंटने, रटन करते-करते वह अज्ञान, अर्थात् राग-द्वेष की अस्थिरता और सुख-दुःख बिल्कुल नाश हो गये। आहाहा!

अब, **आगामी अनन्त काल पर्यन्त अतीन्द्रिय सुख को आस्वादो।** बस! यह तेरी दशा। वह सिद्धदशा अर्थात् यह। अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा का अनुभव करना, वह सिद्धदशा। समझ में आया? **वे कौन? 'स्वां ज्ञानसञ्चेतनां सानन्दं नाटयन्तः'** देखो! **आपसम्बन्धी है जो 'ज्ञानसञ्चेतनां' शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति...'** ज्ञान का ज्ञान में वेदन। भगवान ज्ञानमूर्ति जिसका स्वरूप ही ज्ञान का पुंज, उस ज्ञान के पुंज का एकाग्रपने का वेदन, उसका नाम ज्ञानसंचेतन कहा जाता है। ज्ञान का सम्यक् प्रकार से अनुभव। वह सम्यग्दर्शन से शुरु होता है। समझ में आया? यहाँ तो पूरे की बात की है। समझ में आया?

अनादिकाल से वेदन (राग-द्वेष का था), अब जब आत्मभान हुआ, तब आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी ज्ञानचेतना अपूर्ण प्रगट हुई। साथ में थोड़ा राग-द्वेष और हर्ष-शोक का विकल्प रहो, परन्तु उसका मैंपना उसमें रहा नहीं। वह भी स्वरूप के मैंपने के स्वरूप में स्थिर होते-होते वह सब गया और अकेला अतीन्द्रिय आनन्द रह गया, इसका नाम संचेतना—ज्ञान का अनुभव, इसका नाम मुक्ति कही जाती है। गजब व्याख्या, भाई! परन्तु यह क्या किया तब अभी तक वहाँ मुम्बई? पर में तो किया नहीं, भाव में किया। आहाहा!

अब तो कहते हैं कि जो पर विकार दुःख था, वह स्वस्वभाव नहीं था। स्व **आप सम्बन्धी है जो शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति,...** भगवान आत्मा अपना निधान चिदानन्द भगवान, उसमें एकाग्र होकर शान्ति और ज्ञान की शुद्ध परिणति प्रगट करके। परिणति अर्थात् पर्याय। शुद्ध अर्थात् निर्मल। ज्ञान के आनन्द की दशा, ज्ञान के आनन्द की दशा स्वभाव में प्रगट की। **उसको आनन्दसहित नचाते हैं,...** उसे आनन्दसहित ज्ञान का परिणमन होता है। समझ में आया? **अतीन्द्रिय सुखसहित ज्ञानचेतनारूप परिणमते**

हैं,... कल यहाँ तक आया था। आहाहा!

भगवान बड़ा बादशाह अनन्त आनन्द का कन्द है, वह क्या, इसे बैठता नहीं। ऐसे कुछ बाहर में देखे न यह... यह... यह... इन सबके अस्तित्व को स्वीकार करनेवाले का अस्तित्व महान है (उसे देखता नहीं)। महान पदार्थ, महान पदार्थ। ओहोहो! जिसमें केवलज्ञान की पर्याय इतनी भरी हैं, ऐसा महान पदार्थ दृष्टि में-अनुभव में आया, बस! तब से धर्म की शुरुआत हुई। वह होने पर जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हो गयी, अकेली ज्ञान की परिणति आनन्दसहित नाचती है, नाचती है अर्थात् परिणमती है। ज्ञान आनन्दसहित परिणमता है। अनादि का ऐसा ज्ञान पर को जानते हुए एकमेक होकर राग-द्वेष और सुख-दुःखरूप परिणमता था। वह ज्ञान स्व को जानता हुआ आनन्दमय है, इसलिए ज्ञान का परिणमन आनन्दसहित परिणमता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : महान अस्तित्व है, वह छिपा कैसे रह गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु महान अस्तित्व है, परन्तु स्वयं देखे तब न! नजर किये बिना (दिखता है)? नजर नहीं करता। उसे अभी वस्तु क्या है, कितनी, कैसे है, इसकी कोई कीमत नहीं है। क्योंकि जो ज्ञान की वर्तमान अवस्था है, वह ऐसे इन्द्रियों की ओर अनादि से झुक गयी है। ऐसा देखने को प्रयासरत हुआ, इसलिए यह चीज़ क्या है इसने कभी देखी नहीं। श्रद्धा में ली नहीं, प्रतीति में ली नहीं, उसकी महत्ता की महंतता इसे जँची नहीं। आहाहा!

ऐसे हैं जो जीव। क्या करके ? भगवान आत्मा अपने चिदानन्दघन में एकाकार होकर रमते हुए '**स्वभावं पूर्ण कृत्वा**' पहले स्वभाव चैतन्य द्रव्य ज्ञायक चिदानन्द आनन्द की मूर्ति प्रभु है, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के अंश में उसका भान हुआ। वह रमते-रमते, अन्दर में रमते-रमते। आया था या नहीं ऊपर? समझ में आया? '**दशान्तरं एति**' आया था न उसमें? '**सः दशान्तरं एति**' उसमें रमते-रमते, आनन्द में रमते-रमते, '**दशान्तरं एति**' सिद्धदशा को पा जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि '**स्वभावं पूर्ण कृत्वा' स्वभाव अर्थात् केवलज्ञान उसको, आवरण**

सहित था,... देखो! विशिष्टता क्या कहते हैं? पाठ तो '**पूर्ण कृत्वा**' है, परन्तु '**कृत्वा**' है न, किया तब कुछ किया, ऐसा सही न? जो ज्ञान आवरणसहित था, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प में अटकता था, निमित्त का आवरण बाहर का (था)। **सो निरावरण किया।** अनादि का भगवान ज्ञान महिमावन्त प्रभु! उसका ज्ञान राग-द्वेष, हर्ष-शोक में अटकता था, जानकर अटकता था। वह भगवान का आत्मा का ज्ञान अन्तर में झुककर पूर्ण निरावरण किया। वह अटकना छूट गया। ज्ञान ज्ञान में अटका तो केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इन सबको शुभ उपयोग से कुछ हो (यह नहीं कहते) इसके लिये खलबलाहट हो गयी है। वे कहे, चौथे से बारहवें तक शुभउपयोग ही है। हराम पहले शुद्धोपयोग हो तो। पहले शुद्धोपयोग नहीं। शुभ उपयोग चौथे से बारहवें तक है। (शुद्ध) उपयोग तो बारहवें, तेरहवें (होता है)।

मुमुक्षु : वह बारह तक आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बारह तक आया। वह तो उसे कहाँ दिमाग है। जिस ओर चला, वह चला। अब लोग ऐसा कहते हैं, शुभ उपयोग दया, विशुद्ध धर्म है। ऐसे ऐसे पाठ हैं, तुम क्या लिखते हो? कैलाशचन्दजी कहे, तुम ऐसो को, तुम मदद देते हो, उसका क्या अर्थ? ऐसे धर्म के पाठ हैं, उसे वह कहते हैं कि धर्म नहीं। क्या करना? समझ में आया? हमको तो आश्चर्य होता है कि इस प्रकार से कैसे? और वह वे स्वयं कानजीस्वामी तो भद्रिक हैं। परन्तु ऐसे विद्वानों को धँसाकर सहारा दिया, इसलिए उन्हें... ऐ हिम्मतभाई! ठीक! ऐसा करके लिखा है, हों! ऐसा लिखा है उसमें। भद्रिक हैं परन्तु मेरा तुमको उल्टे विद्वानों को सहारा देकर यह सब हैरान कर डाले। अरे! भगवान! आहाहा! समझ में आया?

ऐसा लिखा है अन्दर, हों! क्या कहलाता है? जैनगजट। 'गलत मान्यता को प्रसार का समर्थन करते हैं, सिद्धान्तिक ज्ञान का अपमान करते हैं, समाज को असत् प्रदर्शन करते हैं। इतना नहीं, अपितु जो भद्र परिणामी श्री कानजीस्वामी का भी बहुत भारी अहित करते हैं।' और तुम हाँ करते हो? अरे! भगवान! क्या करे?

जो वस्तु आत्मा शुद्ध आनन्दघन है, उसके भान बिना शुभ क्रियाकाण्ड करके

मर जाये नहीं। वह कहाँ इसके घर की चीज़ है? आहाहा! व्यवहार धर्म कहा है दया, दान आदि राग मन्द। परन्तु किसे? शुद्ध का भान और अनुभव दृष्टि-स्थिरता हुई, वहाँ उसको व्यवहार कहा है, व्यवहार धर्म उसे होता है न? होता है न? आहाहा! कहो, भाई! इस प्रकार पहले से मनवा लिया गया है, परन्तु इन विद्वानों को वापस सहारा दिया। ऐ... राजमलजी! ठीक न? यह भी सहारा देते हैं। एल.एल.बी. हुए, लो! आहाहा!

कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा! आत्मा अकेला ज्ञानमूर्ति का अन्दर भान करके जो आवरण टालकर निरावरण केवलज्ञान प्रगट किया। कहते हैं, वह **आवरण सहित था सो निरावरण किया। कैसा है स्वभाव?** कैसा स्वभाव प्रगट किया? वह '**स्वरसपरिगतं**' अपने आनन्दरस में पर्याय व्याप्त हो गयी। जो वर्तमान दशा विकार और दुःख की दशा में व्याप्त थी, वह दशा—पर्याय आनन्द में व्याप्त हो गयी। समझ में आया? अकेला स्वरसम, स्वरस अर्थात् ज्ञान का आनन्दरस और चैतन्य की निर्मल पर्याय ऐसा रस, उसमें व्याप्त हो गयी। पर्याय आनन्द में व्याप्त हो गयी। आहाहा! जो पर्याय अनादि से दुःख और राग-द्वेष में व्याप्त थी, उस व्याप्त को छोड़कर भगवान आत्मा अपने ज्ञानानन्द स्वरूप में परिणमता हुआ उसकी पर्याय में आनन्द और ज्ञान व्याप्त हो गया, ऐसा कहते हैं। अभेद हो गयी। समझ में आया? इसका क्या अर्थ किया?

चेतनारस का निधान है। उसकी पर्याय को चेतनरस का निधान है, ऐसा कहा है। आहाहा! भगवान आत्मा स्वयं तो चेतनारस का निधान त्रिकाली अखण्ड आनन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, परन्तु उसमें ज्ञानचेतना जो पूर्ण प्रगट की, अन्तर में एकाग्र होकर विकार का नाश करके वस्तु शुद्ध चिदानन्द के प्रवाह में से पूर्ण ज्ञान, आनन्द और चेतना प्रगट की, वह चेतना भी परिपूर्ण निधान है, कहते हैं। **चेतनारस का निधान है।** यह पर्याय में भी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता आदि अनन्त भरा है। आहाहा! क्या कहा? किसकी बात चलती है यह, भीखाभाई? गुण की? पर्याय की? वह पर्याय अनन्त चेतना का निधान है। चेतनरस का अनन्त निधान है। क्योंकि चेतना ऐसी निर्मल पर्याय प्रगट होने पर उस निर्मल में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसे अनन्त गुण की निर्मल दशा अनन्त-अनन्त परिपूर्ण साथ में प्रगट हुई। ओहोहो! समझ में

आया? यह धूल के निधान गिनना हो तो अच्छा लगे, लों! हें? पाँच लाख और दस लाख और धूल लाख जो मिली हो न! धूल अर्थात् पचास या करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ धूल। मूढ़ मेरा वहाँ मानो... आहाहा! आहाहा! क्या करता है यह? पागल है?

दुनिया ऐसा कहती है, भाई! पैसेवाले के पुत्र हों मूर्ख तो भी चतुर कहलाये। निर्धन का लड़का हो चतुर तो भी (मूर्ख कहलाये)। बाहर में इज्जत बहुत न हो और बोले, इसलिए बहुत उसकी कीमत नहीं होती, ऐसा मूढ़ लोग माने। ऐ... धर्मचन्दजी!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा... ओहोहो! जिसके स्वभाव में तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक-एक गुण में अनन्त, अनन्त की शक्ति का निधान भरा है। उसमें तो एक-एक गुण का अनन्त-अनन्त निधान पड़ा है। एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का निधान। परन्तु यहाँ पर्याय प्रगट हुई, उसमें भी अनन्त निधान हैं। आहाहा! समझ में आया? एक समय की केवल दशा अन्तर अनुभव के रटन से प्रगट हुआ कार्य। वह कार्य स्वभाव पूर्ण चेतनारस का निधान। वह सब चेतना की पर्याय के रस का निधान है। आहाहा! समझ में आया? इतना आत्मा उसे अभी ऐसा जाने यह मैं? परन्तु यह दूसरे की महत्ता देनी हो तो सीधे होशियार लगे। अपनी महत्ता (का भान नहीं होता)। इतना होगा? इतना होगा?

कहते हैं, अहो! '**स्वरसपरिगतं**' स्वरस में परिगत हो गया, पर्याय व्याप गयी, एकाकार हो गयी। निधान... निधान... निधान। **और क्या करके? 'कर्मणः च तत्फलात् अत्यन्तं विरतिं भावयित्वा' ज्ञानावरणादि कर्म से...** समझ में आया? **और कर्म के फल सुख-दुःख से...** यह राग-द्वेष आदि कार्य और उसका फल सुख-दुःख। **अतिशयरूप से...** अत्यन्त है न? **अतिशयरूप से विरति को...** भगवान आत्मा जो बाहरचला (बहिर्मुख) होकर राग, द्वेष और हर्ष-शोक में भ्रमता (था), उसे भगवान आत्मा के घर में उस परिणति को झुकाया। समझ में आया? आहाहा! घर में आया घर में। चिदानन्द का निधान उसने घर में जाकर परिणमा, वह परिणति हो गयी निधानमय। क्या करके? ज्ञानावरणादि आठ कर्म का निमित्त का अभाव अथवा पुण्य-पाप के कार्य का अभाव और उसके फल का—सुख-दुःख की कल्पना का भी अभाव (करके)।

अतिशयरूप से... अत्यन्त विरति। यहाँ तो पूर्ण लेना है न? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में उसकी विरति है। पुण्य-पाप की, कर्म के फल की विरति है, (परन्तु) अत्यन्त विरति नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में शुद्ध चैतन्यस्वभाव का आदर होकर निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हुई, इस अपेक्षा से पुण्य-पाप और हर्ष-शोक को कर्म की विरति है, निवृत्ति है, स्वभाव में वह नहीं परन्तु अभी अस्थिरता में थोड़ा विकल्प आदि भाग रह गया और निमित्तपना कर्म का रहा, वह अत्यन्त विरति करके एकदम स्वभाव में समाकर। **शुद्धस्वरूप से भिन्न है...** विरति, विरति की व्याख्या यह वापस।

शुद्धस्वरूप से भिन्न है ऐसा अनुभव होने पर स्वामित्वपने के त्याग को... आंशिक भी राग उसे रहा नहीं। उसका स्वामित्व, अहंपना उसमें रहा नहीं। '**भावयित्वा**' इस प्रकार **भाकर...** राग-द्वेष के विकल्प में अहंपने का अभाव भाकर, अहंपने का अभाव भाकर **अर्थात् ऐसा सर्वथा निश्चय करके...** ऐसा। भाकर का अर्थ ऐसा है। भाकर अर्थात् निर्णयरूप स्थिर होकर। ओहोहो! समझ में आया? '**अविरतं**' '**अविरतं**' अन्तर बिना निरन्तर, ऐसा। **जिस प्रकार एक समयमात्र खण्डित होवे उस प्रकार सर्व काल।** निरन्तर। '**अविरतं**' का अर्थ निरन्तर। अर्थात्? आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप में अकेला रमते-रमते लीन होने से जो परमात्मदशा प्रगट हुई, वह निरन्तर एक समय के खण्ड बिना वह परिणति चालू रहती है। समझ में आया?

संसारदशा में भगवान आत्मा की परिणति विकार और वेदन बिना की एक समयमात्र रही नहीं। चिदानन्द भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसने पुण्य-पाप और हर्ष-शोक का स्वामित्व होकर उसका वेदन किया, उसमें एक समय का विरह पड़ा नहीं था। यहाँ एक समय का विरह पाड़ता नहीं अब। भगवान ज्ञानानन्द प्रभु, अनाकुल नाथ चैतन्य प्रभु की शुद्धपरिणति करके, विकार से अत्यन्त विरति करके, उससे छूटकर, उससे भिन्न होकर अपना अनुभव पूर्ण करके '**अविरतं**' एक समय का भी खण्ड न पड़े, वैसी निरन्तर धारा परिणति की बहती है, ऐसा कहते हैं। सिद्ध परमात्मा को केवलज्ञान की पर्याय निरन्तर... निरन्तर प्रत्येक गुण की पर्याय, ऐसी धारा बहती है। आहाहा! समझ में आया?

एक समयमात्र खण्डित होवे उस प्रकार सर्व काल। एक काल में एक समय भी खण्ड नहीं पड़ता। अखण्डधारा से केवलज्ञान, केवलदर्शन, स्वच्छता, प्रभुता, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, ऐसा जो निधान, एक समय की शक्ति व्यक्ति हो गयी। निरन्तर उसमें कहीं खण्ड (नहीं), कम नहीं, खण्ड नहीं, अन्तराल नहीं। उस पूर्ण दशा में कम नहीं, अन्तराल नहीं। पूरा और ऐसा का ऐसा निरन्तर। देखो! यह सिद्धदशा की स्थिति। आहाहा! समझ में आया? **सर्व काल।** सर्व काल अर्थात् आगे का सर्व काल, ऐसा।

और क्या करके? 'अखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा' अर्थ ऐसा किया है। **सर्व मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति का भले प्रकार विनाश करके।** इसका अर्थ वह अज्ञान संचेतना। अर्थात् कर्म—राग-द्वेष के परिणाम कर्म, वह अज्ञानचेतना है और हर्ष-शोक वह ज्ञान के चैतन्य के अंश के अभावरूप है। क्या कहा? भगवान आत्मा चैतन्य का नूर, तेज प्रभु चैतन्य सूर्य, उसमें जो पुण्य-पाप के परिणाम (होते हैं), वे ज्ञान के तेज के प्रकाश के अभावरूप है। पुण्य-पाप के भाव, वे ज्ञान के चैतन्य के प्रकाश के अभावरूप है और हर्ष-शोक का भाव, वह ज्ञान के आनन्द के प्रकाश के अभावरूप है। समझ में आया? उसे नाश करके। अकेला चैतन्य प्रकाश रह गया, बस!

जो अन्दर राग-द्वेष और हर्ष-शोक के परिणाम थे, उनमें एकत्वबुद्धि थी, वह पहले टाली, पश्चात् उसमें जो राग में अस्थिरता थी, वह अज्ञान था अर्थात् उसमें ज्ञान के प्रकाश का अभाव था। उस स्वरूप में स्थिर होकर उसे टाला। अखिल अज्ञानचेतना, ऐसा। इसलिए उसका अर्थ अखिल का अर्थ सर्व किया। समझ में आया? अज्ञानचेतना का अर्थ मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति किया। समझ में आया इसमें? यह बहुत सरस टीका है। लोगों का भाग्य अभी कि यह वस्तु बाहर आयी। समझ में आया? ऐसी घरेलू भाषा में ऐसे शास्त्र बाहर आये। समझ में आया? जगत के निधान मिलना सरल है, बापू! परन्तु यह मिलना महा दुर्लभ है। इसका श्रवण और साधन मिलना भी महा दुर्लभ है। आहाहा!

अकेला '**अखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः प्रलयनं प्रस्पष्टं**' ऐसा। विशेष में लय करके

'**प्रस्पष्टं नाटयित्वा**' प्रगट आत्मा को परिणमाकर। उसका नाश परिणमाकर, आत्मा के स्वभाव की परिणति को परिणमाकर। समझ में आया? '**प्रस्पष्टं नाटयित्वा**' ऐसा। नाश का अर्थ परिणमन करके। पुण्य-पाप को हर्ष-शोक के विकार अज्ञान चेतना की '**प्रलयनम् प्रस्पष्टं नाटयित्वा**' उसका नाश स्पष्ट करके परिणमाकर... आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष-परिणति विनशती है,... अर्थात् कि भगवान आत्मा जो हर्ष-शोक और राग-द्वेष के परिणाम का स्वामी होकर अहंपने वर्तता था, वह स्वयं स्वभाव का स्वामी होकर अहंरूप से अपने स्वभाव में वर्ता (तो) हर्ष-शोक और पुण्य-पाप का नाश होता है। समझ में आया? यह सब अन्दर की क्रीड़ा है। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह सब गोला बाहर के, कर्म के रजकण और शरीर के गोला सब बाहर परिणमे, उनके कारण से परिणम रहे हैं, भगवान को (और) उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **मोह-राग-द्वेष-परिणति विनशती है,...** अर्थात् कि विकार का अभाव हो सकता है और हो जाता है। और **शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट होती है,...** उत्पाद और व्यय कहा। क्या कहा? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति ध्रुव। उसे यह विकार, हर्ष-शोक और पुण्य-पाप के परिणाम का अहंपना नाश पाता है और वह परिणति विनाश हो जाती है। भगवान आत्मा ध्रुवरूप से कायम रहता है और उसके आश्रय से शुद्ध परिणति का उत्पाद हो सकता है, ऐसा कहते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव। क्या होगा उत्पाद, व्यय और ध्रुव? समझ में आया?

शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट होती है,... अशुद्ध चेतना नाश होती है। **अतीन्द्रिय सुखरूप जीव परिणमता है।** शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट हुई अर्थात् क्या हुआ? ज्ञान अकेला प्रगट हुआ? यह शुद्ध ज्ञान प्रगट हुआ अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय सुखरूप परिणम गया। पुण्य-पाप और हर्ष-शोक का परिणमन था, वह दुःखरूप था; ज्ञान था, वह उसकी ओर के लक्ष्यवाला था, वह अज्ञानचेतना (थी)। भगवान आत्मा शुद्ध घन ज्ञानस्वरूप है।

देखो न! सवेरे तो बड़ा आया था, जिसमें भावलिंग भी नहीं। भावलिंग एक

कृत्रिम क्षणिक है, अधूरा भाव है और पूरा भाव भी एक क्षणिक पर्याय है, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं, सिद्धपर्याय वह कहीं उसका द्रव्यस्वरूप नहीं। ओहोहो! ऐ..ई! इसके बदले यह तो फिर कुछ मेरा स्वरूप (मानता है)। लो! शरीर मेरा और स्त्री मेरी और पुत्र मेरे और कर्म मेरे और राग-द्वेष मेरे। परन्तु कितने में घुस गया? मान्यता से, हों! महान बादशाह! अन्दर आत्मा में समाज पड़ा है। आहाहा!

मैसूर न? नहीं कितने कमरों में और अलग-अलग चीज़ें भरी हैं? उसे क्या कहते हैं? मैसूर? हैदराबाद में, हैदराबाद में। मैसूर नहीं। निजाम में। अलग-अलग में। एक में कुछ और एक में कुछ और एक में कुछ और एक में कुछ। मैसूर में यह नहीं। यह निजाम का है। देखे गये थे नहीं? तलवारें और अमुक और अमुक कुछ चौके और वह सब। जानवर की बात नहीं। परन्तु वे भी अलग-अलग हैं। यहाँ तो एक समय की पर्याय में सब निधान भरा है। यहाँ तो भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्दघन का अनुभव करके पूर्ण पर्याय प्रगट करे तो उसकी पर्याय में इतने अनन्त कमरे पड़े हैं। भिन्न-भिन्न एक ज्ञान और एक दर्शन, आनन्द और जिसमें अनन्त-अनन्त ऋद्धि पड़ी है। ऐसा आत्मा अनन्त आनन्दरूप परिणम जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अतीन्द्रिय सुखरूप जीव परिणमता है। ऐसा कहते हैं। परिणम जाता है, ऐसा। सुख कुछ आता नहीं, कहीं से ऐसे लाना नहीं। यह बाहर का सुख भी कहीं बाहर से नहीं आता। मानता है। यह धूल में सुख है, यह स्त्री में सुख है, यह होली में सुख है। यह होली, यह शरीर आदि सब। ऐसी एक कल्पना करता है। वह कल्पना कहीं बाहर से नहीं आती और वह सुख भी बाहर से कल्पित नहीं है, इसने माना है अन्दर में, मान्यता खड़ी की है। बराबर होगा यह? भगवानजीभाई! ऐ... प्राणभाई! क्या होगा यह? अच्छे लड़के हों और उसमें आमदनी अच्छी होती हो न भाई! कलेजा शान्त हो या नहीं? होली सुलगती है, कलेजा कहाँ शान्त होता था वहाँ? राग-द्वेष की होली सुलगती है, कहते हैं। आहाहा! कहते हैं इसके खेल खेलने में देखो तो अकेली कषाय की अग्नि भरी है। यह भगवान आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान से परिणमता-परिणमता स्थिरता करता हुआ पूर्णानन्द की पर्याय का नाथ पूर्णानन्द हो गया। अतीन्द्रिय आनन्द से स्थिर

हो गया। कहते हैं वह स्वयं स्थिर हुआ। अतीन्द्रिय आनन्दरूप हो गया, वह परिणम गया।

इतना कार्य जब होता है, तब एक ही साथ होता है। यह सब जो कहा न ऊपर? नाश करता है और उत्पन्न करता है और अतीन्द्रियरूप से परिणमता है, वह सब एक समय में होता है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं बड़ा बादशाह है न! परन्तु उसकी इसे खबर नहीं, स्वयं की स्वयं को कीमत नहीं होती। एक व्यक्ति कहता था मुझे तो इसने पहिचान करायी। मुझे मेरी खबर नहीं। ऐसा कि मैं कुछ जानता हूँ और मुझे कुछ आता है, यह तो लोगों ने मुझे बतलाया। आवे तो यह लौकिक का, हों! कुछ भान नहीं होता। यह तो आत्मा स्वयं अपने को पहिचाना कि, अरे! यह इतना! यह..! जिसकी खान में अनन्त परमात्मा, जिसे परमात्मा पेट में-ध्रुव में स्थित हैं। एक गुण में अनन्त परमात्मा, हों! एक ज्ञानगुण में अनन्त परमात्मा। क्या होगा यह?

मुमुक्षु : एक ज्ञानगुण की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। यह तो ज्ञानगुण में अनन्त परमात्मा कहे। एक समय में अभी। एक ज्ञानगुण अन्दर शक्ति से है न? उसमें अनन्त केवलज्ञान की पर्याय है। ऐसे अनन्त परमात्मा एक गुण में हैं। ऐसे एक दर्शन में आये, एक आनन्द में आये। एक स्वच्छता में (आये)। ऐसे अनन्त परमात्मा की पूरी खान स्वयं है। आहाहा! यह तो एक समय का परमात्मा प्रगट हुआ, उसकी यह अभी तो बात चलती है। और वह प्रवाह वापस ऐसा कहते हैं न, सर्व काल चाले ही है वह प्रवाह, हुआ ही करता है, उसमें से हुआ ही करता है। अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन धाम चैतन्यरस वह समय... समय... समय... समय... हुआ ही करता है। बड़ी खान भगवान प्रवाह चला ही करता है। कहो, समझ में आया?

देखो न! वे कहते हैं न, हमको ऐसा मिला है कि सौ पीढ़ियाँ खाये तो भी कम न हो, कहते हैं। यह बातें करते हैं अभी। परन्तु किसे पीढ़ी? तू कहाँ रहता था वहाँ? समझ में आया? वह जमीन मिली है न भाई को? गोवा। शान्तिलाल खुशालदास ऐसी बातें करे। हमारे सौ पीढ़ी (व्यतीत हो तो भी कम नहीं पड़े)। क्योंकि प्रतिदिन एक-एक लाख की आमदनी। प्रतिदिन एक लाख की आमदनी। चालीस करोड़ तो अभी हो

गये। अभी कितने होंगे। दशाश्रीमाली बनिया। इसलिए हमारे तो परिवार... घर की जमीन सब, बीस मील। अब मर जायेगा या ले जायेगा, किसे खबर है ? क्या हुआ ? तू कहाँ यहाँ रहनेवाला है ! कम नहीं हो, ऐसा निधान मिल गया है। प्रतिदिन लाख की आमदनी, प्रतिदिन लाख की आमदनी... कितनी जमीन बाईस मील में। कितने मील की ? अधिक कहते थे। निकला ही करे। मैंगनीज कहलाता है न, क्या कहलाता है ? हाँ, ऐसा निकला ही करे। यह धूल निकला करे, उसमें कम नहीं हो। कहते हैं।

यह आत्मा में आनन्द निकला ही करे, अनन्त काल कम नहीं हो, ऐसी यह खान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? सर्व काल, कहा न ? देखो न ! पहले से शुरु किया है, **'सर्वकालं पिवन्तु'। इतना कार्य जब होता है, तब एक ही साथ होता है।** आहाहा ! ऐसे आत्मद्रव्य की कीमत नहीं, उसके अंक-अंक अमूल्यांक, जिसका मूल्य नहीं, उसका मूल्य करना नहीं और राग-द्वेष, पुण्य-पाप धूल और बाहर के कुछ पाँच-पचास लाख धूल और शरीर सुन्दर और यह स्त्री और यह उसका मूल्यांकन, उसके मूल का अंकन करना। यह बहुत अच्छा, यह बहुत अच्छा। समझ में आया ? मूढ़ता के लक्षण कोई अलग होंगे ?

सब जाति के होते हैं। पागल के अस्पताल में सब पागल ही होते हैं। इकट्ठे हों और जलसा उड़ावे न ! आहाहा ! उसमें पचास-पचास करोड़ की पूँजी और उसमें लाख-लाख की आमदनी हो और आहाहा ! ओहो.. बापू ! तुम तो भाग्यशाली, बापू ! तुम। धूल में भाग्यशाली। समझ में आया ? आहाहा ! तेरा निधान तुझे खबर पड़े नहीं। उसे उलेचा करे तो कम नहीं हो, ऐसा है वह। अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन है, वह अनन्त काल कम नहीं हो, कहते हैं। ऐसे निधान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान किये नहीं और उसमें रमणता की नहीं तो यह भटक रहा है। समझ में आया ? आहा ! ४१ (कलश पूरा हुआ)। ऐसे धारावाही २३३ हुए। ४२, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार का ४२ कलश।

कलश - २३४

(वंशस्थ)

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्-
बिना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत्।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्-
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ।।४२-२३४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'इतः इह ज्ञानं अवतिष्ठते' [इतः] अज्ञानचेतना के विनाश होने के उपरान्त, [इह] आगामी सर्व काल [ज्ञानं] शुद्धज्ञानमात्र जीववस्तु, [अवतिष्ठते] विराजमान प्रवर्तती है। कैसा है ज्ञान (ज्ञानमात्र जीववस्तु)? 'विवेचितं' सर्व काल, समस्त परद्रव्य से भिन्न है। किस कारण से ऐसा जाना? 'समस्तवस्तु-व्यतिरेकनिश्चयात्' [समस्तवस्तु] जितनी परद्रव्य की उपाधि है, उससे [व्यतिरेक] सर्वथा भिन्नरूप, ऐसी है [निश्चयात्] अवश्य द्रव्य की शक्ति, उसके कारण। कैसा है ज्ञान? 'एकं' समस्त भेद-विकल्प से रहित है। और कैसा है? 'अनाकुलं' अनाकुलत्वलक्षण है अतीन्द्रिय सुख उससे विराजमान है। और कैसा है? 'ज्वलत्' सर्व काल प्रकाशमान है। ऐसा क्यों है? 'पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना' [पदार्थ] जितने विषय, उनका [प्रथना] विस्तार—पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध, आठ स्पर्श, शरीर-मन-वचन, सुख-दुःख इत्यादि-उसका [अवगुण्ठनात्] मालारूप गूँथना, उससे [विना] रहित है अर्थात् सर्व माला से भिन्न है जीववस्तु। कैसी है विषयमाला? 'कृतेः' पुद्गलद्रव्य की पर्यायरूप है।।४२-२३४।।

कलश - २३४ पर प्रवचन

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्-
बिना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत्।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्-
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ।।४२-२३४।।

यह वे बोल हैं न, उनका है। ज्ञान, वह आत्मा, इसका उपोद्घात है, यह उपोद्घात की बात है। समझ में आया?

'इतः इह ज्ञानं अवतिष्ठते' अज्ञानचेतना के विनाश होने के उपरान्त... क्या अज्ञानचेतना? इसके बहुत बोल हैं। पन्द्रह गाथा अपने लिखा गया है न? क्या कहलाती है वह? भेद... भेदविज्ञान (सार) पुस्तक प्रकाशित हो गयी है। यह श्रुत, वह ज्ञान नहीं है, यह पृष्ठ ज्ञान—आत्मा नहीं है। यह शब्द, ज्ञान नहीं है। समझ में आया? कहाँ आया? **'पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद् विना' जितने विषय उनका विस्तार—पाँच वर्ण...** है न, उसमें लिखा है, देखो! नीचे है। देखो! यह शास्त्र, ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है। आहाहा! यह शब्द, ज्ञान नहीं है। यह तो वाणी जड़-मिट्टी है। ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है। समझ में आया? इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, वह आत्मा नहीं है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, वह जड़ है, वह आत्मा नहीं, ज्ञान नहीं—ऐसा यहाँ तो कहना है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। **पाँच वर्ण,...** काला, सफेद आदि, **पाँच रस,...** मीठा, कड़वा (आदि) वह ज्ञान नहीं है, वह ज्ञान नहीं है, आत्मा नहीं है। **दो गन्ध,...** वह आत्मा नहीं है, वह ज्ञान नहीं है। सुगन्ध, दुर्गन्ध तो जड़, मिट्टी की है, वह आत्मा नहीं है। **आठ स्पर्श,...** ठण्डा, गर्म, कोमल (आदि) वे सब जड़ हैं, वे आत्मा नहीं, ज्ञान नहीं। ज्ञान कहो या आत्मा कहो।

शरीर-मन-वचन... वह आत्मा नहीं। वह तो धूल है, शरीर तो मिट्टी है, अजीव तत्त्व है। पुद्गल... पुद्गल... पुद्गल... माँस का पिण्ड जड़, वह आत्मा नहीं; आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति, वह आत्मा है। वाणी, वह आत्मा नहीं, भगवान ज्ञानमूर्ति, वह आत्मा है। यह मन आत्मा नहीं। यह विचार करने का यहाँ मन है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसे **सुख-दुःख इत्यादि...** समझ में आया? सुख-दुःख की कल्पना, वह भी आत्मा नहीं।

अज्ञानचेतना का विनाश... यह मेरे... मेरे... ऐसा जो अज्ञानभाव, उसका नाश करके। उपरान्त क्या हुआ? कहते हैं। 'उपरान्त' शब्द आया था न? उपरान्त आया था, पहले आया था। **आगामी सर्व काल शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु....** आगामी सर्व काल शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु। यह सम्यग्दर्शन, वह आत्मा; सम्यग्ज्ञान, वह आत्मा। यह सूत्र

और अंग, वह आत्मा। ऐसी आत्मा की पर्याय में वह आत्मा है। यह शास्त्र-बास्त्र का ज्ञान वह (आत्मा) नहीं। वह अन्तर में उघड़ा हुआ आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्ज्ञान, वह आत्मा। आहाहा! ... समझ में आया?

वहाँ तो पुण्य-पाप को आत्मा कहा। अपेक्षा से कहा है? इसकी पर्याय में पुण्य-पाप वर्तते हैं न? वे कहीं जड़ में नहीं हैं। इतनी अपेक्षा वर्णन कर बात है। समझ में आया? अध्यवसाय आदि आत्मा नहीं। आत्मा तो ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु आत्मा। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, वह आत्मा। उसकी रमणता—स्थिरता, वह चारित्र और प्रव्रज्या। प्रव्रज्या—दीक्षा, वह आत्मा। परन्तु कौन सी दीक्षा? भगवान आत्मा अपने आनन्द का परिणमन करने की जो दशा, उसका नाम प्रव्रज्या, उसका नाम दीक्षा है। समझ में आया? बाहर से शरीर मुंडाना, वह दीक्षा नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! प्रव्रज्या और संयम के दो भेद किये हैं।

भगवान आत्मा में पाँच इन्द्रिय, मन और छह काय से रहित आत्मा की शुद्ध परिणति वह संयम, वह आत्मा। यह संयम आत्मा की पर्याय से एक प्रदेश में एक समय भी पृथक् नहीं होता। समझ में आया? ऐसे अनन्त पदार्थों से भिन्न और अपने अनन्त गुणों की पर्यायों से अभिन्न। '**व्यतिरेक**' ऐसा कहा है न इसमें? फिर आयेगा न? इसमें ही आता है न, '**समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयात्**' पर से भिन्न और अपने से एकमेक—अभेद। ऐसे पर से भिन्न के भाव को अपना माना, उसके भाव का नाश (किया)।

आगामी सर्व काल शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु... अकेला ज्ञानस्वरूपी चैतन्य प्रभु! अनन्त-अनन्त निर्मल पर्यायों की किरण से शोभित आत्मा। समझ में आया? '**अवतिष्ठते**' **विराजमान प्रवर्तती है।** लो! क्या प्रवर्तती है? वस्तु। कौन सी वस्तु? जीववस्तु। भगवान आत्मा जीव पदार्थ, जीव पदार्थ। जीव जिसे कहते हैं, जिसे आत्मा कहते हैं, उसमें अनन्त-अनन्त गुणों का भण्डार भगवान आत्मा, उसका अन्तर में अनुभव करके धर्म प्रगट किया और विशेष स्थिरता हुई और पूर्ण दशा प्रगट की (तो) कहते हैं, ऐसी वस्तु अपनी पर्याय की निर्मलता से विराजमान है। उसे मुक्त कहते हैं, उसे धर्मी के धर्म का परिणाम कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

ऐसी **जीववस्तु विराजमान प्रवर्तती है।** किसमें ? शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु अज्ञान, रागादि का नाश करके आगामी सर्व काल जीववस्तु प्रवर्तती है। अपने शुद्ध आनन्द में आत्मा प्रवर्त रहा है, उसका नाम मोक्ष और सिद्धपद कहा जाता है। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है या नहीं ? कौन जाने क्या होगा ? कुछ खबर नहीं होती। हाँक रखते हैं गाड़ियाँ। 'लोगस्स उज्जोअगरे... सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।' हे सिद्ध भगवान! हमारा पद हमें दिखाओ। यह केवलज्ञान बिना न दिखाई दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उस केवलज्ञान से विराजमान वस्तु सर्व काल ऐसी की ऐसी वर्तती है।

कैसा है ज्ञान (ज्ञानमात्र जीववस्तु) ? 'विवेचितं' सर्वकाल समस्त परद्रव्य से भिन्न है। 'विवेचितं' है न पुण्य अलग। सर्व काल आत्मा का पूर्ण स्वभाव द्रव्य तो सर्व काल शुद्ध भिन्न ही है, परन्तु यहाँ पर्याय निर्मल होने पर सर्व काल पर से भिन्न वर्तती है। पर्याय अर्थात् हालत, हालत अर्थात् दशा। समझ में आया ?

ऐसे धूल उखेड़ते हुए जहाँ नीचे से हीरा निकले न तो यह कितना प्रसन्न होता होगा ? कहीं गया हो खेत में ऐसे जरा (उखाड़कर देखे तो) यह क्या ? यह क्या ? ऐसा जहाँ उखाड़ने जाये, वहाँ तो बड़ा कलश का कलश (दिखाई दे)। हर्ष समाये नहीं, हों! या तो पागल हो जाये। यह क्या ? क्या देखता हूँ यह ? ऐसे कोई पड़े हों, कोई राजा-महाराजा के पड़े हों न ऐसे के ऐसे खेत में दबा दिये गये हों। और कुछ धूल उड़ते-उड़ते निकलते, निकलते... रह गया हो और वहाँ देखने पर ऐसा करे तो... यह! सर्वत्र हीरा।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में एक राग की एकत्वबुद्धि को टालकर देखे तो सब हीरा ही भरे हैं, कहते हैं। मात्र राग की एकता की बुद्धि पड़ी है, धूल आड़े (पड़ी है)। आहाहा! वह कितना हर्ष पावे ? उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, उसकी एकता टूटने पर, हीरा देखने से आनन्द पावे। और वह आनन्द की परिणति जहाँ पूर्ण हो गयी (वह) ऐसी की ऐसी रहेगी। सर्व काल समस्त परद्रव्य से भिन्न रहेगी। भगवान आत्मा की परिणति.... आहाहा! पर्याय सर्व काल '**विवेचितं**' अर्थात् पृथक्। परद्रव्य से अत्यन्त पृथक् / भिन्न रहेगी।

किस कारण से ऐसा जाना? 'समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयात्' देखो! आया। **जितनी परद्रव्य की उपाधि है....** जितने शरीर, शब्द, वाणी, मन, वाणी, देह, कर्म, राग-द्वेष आदि सब। **उससे सर्वथा भिन्नरूप ऐसी है....** वस्तु सर्वथा भिन्नरूप। भगवान आत्मा पुण्य, पाप, विकल्प, देह, वाणी, मन से सर्वथा सर्वथा (भिन्न)। कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, ऐसा अनेकान्त करना पड़ेगा या नहीं इसमें? सर्वथा भिन्न। भगवान आत्मा यह रागादि, देहादि से सर्वथा भिन्न ऐसा है।

कहते हैं, **'निश्चयात्' अवश्य द्रव्य की शक्ति उसके कारण।** यह द्रव्य की शक्ति ही ऐसी है। समझ में आया? भगवान आत्मा की शक्ति ही ऐसी है कि पर्याय पर से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! वह अपनी शक्ति के कारण से भगवान आत्मा ज्ञानानन्द आनन्द आदि की परिणति पर से अत्यन्त व्यतिरेक—अत्यन्त भिन्न है। **अवश्य द्रव्य की शक्ति उसके कारण। कैसा है ज्ञान? 'एकम्' समस्त भेद-विकल्प से रहित है।** कैसा है आत्मा का ज्ञान पूर्ण हुआ वह? निश्चय से भी आत्मा का स्वभाव हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान, सब विकल्प से पूर्ण भिन्न ही है, परन्तु वह तो पूर्ण स्वभाव जहाँ प्रगट हुआ, अकेला पूर्ण हुआ। समझ में आया? वह **समस्त भेद-विकल्प से रहित है।** भेद-बेद, विकल्प-बिकल्प वस्तु में नहीं है। ऐसी द्रव्य शक्ति का सत्त्व है। पर्याय प्रगटे, तब भी ऐसी प्रगटे। अब कैसा आनन्द साथ में है, इतनी बात विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक-२६-११-१९६५, कलश-२३४, २३५, प्रवचन-२५१

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, समयसार कलश, ४२वाँ (कलश) चलता है। क्या बताते हैं ? कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह सब परद्रव्य से भिन्न है। **जितनी परद्रव्य की उपाधि है, उससे सर्वथा भिन्नरूप...** ऐसा आत्मा है। शरीर, वाणी, मन, कर्म, पुण्य-पाप के विकल्प, राग आदि जितने परद्रव्य की उपाधि, उनसे सर्वथा भिन्नरूप ऐसी **अवश्य द्रव्य की शक्ति उसके कारण।** प्रगटरूप दशा भी ऐसी है। समझ में आया ? द्रव्य आत्मा चैतन्य ध्रुव वस्तु परद्रव्य की अनेक विकल्प रागादि की अवस्था से व्यतिरेक; व्यतिरेक अर्थात् भिन्न। है न 'व्यतिरेक' शब्द अन्दर ? और एक समस्त भेद विकल्प से रहित। भगवान आत्मा वर्तमान अन्तर उसका स्वरूप पुण्य-पाप के शरीर, वाणी, मन, कर्म से रहित और एक ज्ञानस्वरूप है। भेद के विकल्प से भी रहित है। समझ में आया ? इसका नाम आत्मा अनुभव किया और आत्मा जाना, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ?

समस्त भेद-विकल्प से रहित है। 'एकम्' है न ? एकरूप चैतन्य तत्त्व ज्ञायक -स्वभावरूप एक है और रागादि से अत्यन्त अनेक स्थिति भिन्न है और स्वरूप से वह राग से भिन्न एकरूप है। समझ में आया ? आहाहा! **और कैसा है ? 'अनाकुलं' अनाकुलत्वलक्षण है अतीन्द्रिय सुख, उससे विराजमान है।** भगवान आत्मा अपना ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप पर से पृथक् व्यतिरेक भिन्न करके और अपने ज्ञान, आनन्दरूप परिणमा, वह ज्ञान और आनन्द के लक्षण से परिणमित हुआ, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्य तो कभी परिणमता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह द्रव्य की बात है अभी यहाँ पर्यायसहित की, परिणाम की बात है। वर्तमान आत्मा वस्तुरूप से अन्दर एकरूप ध्रुव चिदानन्दस्वरूप है, परन्तु उसकी पर्याय में जो राग और शरीर और कर्म का सम्बन्ध दिखता है, उससे भिन्न, पृथक् और अपने ज्ञान-आनन्दस्वभाव से अभिन्न है, ऐसा कहना है। समझ में आया ? यहाँ वर्तमान पर्याय में प्रगट स्वसंवेदन की अपेक्षा की बात है। क्या कहा ?

यह चैतन्य वस्तु ज्ञानमूर्ति त्रिकाल चैतन्य ज्ञायक ज्योति है। उसकी वर्तमान दशा में पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, मन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि सब आ गया है, पहले कह गये थे। समझ में आया? शरीर, मन, वचन, सुख, दु:ख, कल्पना, वह कल कहा गया है, उससे भिन्न करके अपने ज्ञानानन्द और अतीन्द्रिय आनन्द से अभिन्न ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसे अन्तर में पर से भिन्न करके आत्मा में आनन्द और ज्ञान से उसका वेदन करना, इसका नाम स्वसंवेदन आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ तो निर्मल वीतरागी पर्यायसहित का आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह दूसरी बात है, यह तो द्रवय यहाँ कहना है। ऐसा हुआ।

यहाँ तो वर्तमान में वस्तु जो ज्ञान चिदानन्दस्वरूप है ज्ञान की ज्योति, प्रकाश की मूर्ति, वह पर से भिन्न करते हुए अपने स्वभाव—स्वरूप से अभिन्न है, ऐसा अन्तर में भान होना, उसे ज्ञान का—आत्मा का स्वसंवेदन, आत्मा के आनन्द का अनुभव उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया इसमें?

अनाकुलत्वलक्षण है अतीन्द्रिय सुख, उससे विराजमान है। और कैसा है? 'ज्वलत्' सर्व काल प्रकाशमान है। वर्तमान प्रगट जैसा ज्ञान हुआ, वैसा ही सर्व काल प्रकाशमान है। अब वह वापस हटेगा नहीं। समझ में आया? यह मार्ग बहुत उग्र पुरुषार्थ की क्रिया का है। यह कहीं साधारण बाहर की बात नहीं और बाहर का भी कहाँ कर सकता था यह? धूल में यह परमाणु को बदल सकता नहीं, आँख की पलक का घूमना या नहीं घूमना, जड़ का कार्य है। अन्दर जो मेरे और तेरे ऐसे विकल्पों की खलबलाहट (चलती है), उसमें भिन्न-भिन्न चीज़ और भिन्न-भिन्न विकल्प से मेरे मानता था वह विकल्परहित चैतन्य हूँ। अनेक प्रकार के वर्णन किये हैं न? पन्द्रह बोल। '....' अपने आया है, भेदविज्ञान(सार) पुस्तक प्रकाशित हो गयी है। शास्त्र कुछ जानता नहीं कि जो शास्त्र आत्मा में हो। यहाँ विवाद निकाले। उसके घर में रहा। विवाद कहाँ था यहाँ?

भगवान आत्मा ज्ञान से छलाछल भरपूर पदार्थ का परिणमन अकेला ज्ञानमय है। उसके शास्त्र से ज्ञान है और शास्त्र, वह ज्ञान है—ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा! इसीलिए तो सब बड़ी पन्द्रह गाथायें ली हैं। पढ़ा है या नहीं? भेदविज्ञान (सार) नहीं?

यह क्या कुण्डला से प्रकाशित हुआ है न? जगजीवन बावचंद। यह ग्यारह गाथाओं का यह श्लोक उपोद्घात है।

भगवान आत्मा जैसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान के चारित्र में भासित हुआ और राग आदि से भिन्न भासित हुआ, ऐसा प्रगट हुआ ऐसा आत्मा ऐसा का ऐसा सदा काल रहता है। द्रव्य जैसे सदाकाल एकरूप रहनेवाला है, वैसे राग और विकल्प से एकरूप उसकी दशा निर्मल प्रगट हुई परन्तु एकरूप रहनेवाली है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? ऐसा भी देखो न '**अवगुण्ठनात्**' आया था न? क्या कहा वहाँ?

पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना' यह आयेगा, देखो! '**जितने विषय, उतना विस्तार... '**प्रथना**' है न? भगवान आत्मा एकरूप आनन्द, ज्ञान और अनेक प्रकार के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, जड़, शरीर, वाणी, मन, कर्म, यह वह, यह वह, यह वह, विकल्प, पुण्य, पाप, अध्यवसाय—ऐसा जो विस्तार, पदार्थ की विस्तारदशा, उस बिना का आत्मा है। **उसका मालारूप गूँथना,...** देखो! '**अवगुण्ठनात्**' इस पदार्थ की, विकल्प की माला उससे मानो गुँथा हुआ हो, ऐसा दिखता है, ऐसा है नहीं।

यह **गूँथना, उससे 'विना' रहित है...** चैतन्य ज्योति, चैतन्य सूर्य भगवान आत्मा अनेक पदार्थ को विकल्प जाल और जल के साथ मानो गुँथा हुआ एकमेक हो, ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। यह भगवान चिदानन्दस्वरूप सचित स्वरूप चैतन्य, वह पर से बिल्कुल निराला, अकेले ज्ञान से, आनन्द से गुँथा हुआ ऐसा उसका स्वभाव है, वह पर से भिन्न त्रिकाल है। समझ में आया?

उससे रहित है अर्थात् सर्वमाला से भिन्न है... देखो! भगवान चैतन्य ज्योति, वह गुण-गुणी का भेद ऐसा राग भी जिसमें नहीं। समझ में आया? **जीववस्तु, सर्व माला से भिन्न है जीववस्तु। कैसी है विषयमाला?** यह लक्ष्य करने की माला। अर्थात् अनेक धारा-श्रेणी। '**कृतेः**' यह **पुद्गल द्रव्य की पर्यायरूप है।** यह शास्त्र, विकल्प, दया, दान, राग, शरीर, वाणी, मन, यह सब पुद्गलद्रव्य जड़ की पर्याय है, यह भगवान आत्मा की नहीं। आहाहा! सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न? अकेला ज्ञान का पिण्ड परिणति निर्मलवाला वह आत्मा है। समझ में आया?

विषयमाला सब पुद्गलद्रव्य की पर्यायें हैं। भगवान चिदानन्दस्वरूप सचेत ज्योति, सचेत ज्योति, वह अचेत प्रकार की विषयमाला इससे अत्यन्त भिन्न है। क्या समझ में आया इसमें? कभी इसने अभ्यास किया नहीं। क्योंकि वस्तु पूरी महान पदार्थ और अनादि से उसका इन्द्रियवाला ज्ञान और इन्द्रिय से देखने पर तो रूपी दिखाई दे। इसलिए वह ऐसा ही माने कि, यह इन्द्रियाँ मेरे अवयव हैं। इन्द्रियाँ मेरे अंग है और उन अंगों द्वारा मैं यह सब देखने का काम करता हूँ। बस! इतना मैं। परन्तु भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय है, इन्द्रिय ग्राह्य नहीं, राग से ग्राह्य नहीं। समझ में आया?

यह अन्तर में ज्ञान की दशा द्वारा चैतन्य भगवान ज्ञात होता है, वेदन में आता है ऐसा यह आत्मा है। इन्द्रिय से, विकल्प से, ज्ञात हो ऐसा नहीं है और अनादि से अभ्यास यह किया है। यह ज्ञान की प्रगट पर्याय वह इन्द्रियों पर लक्ष्य करके यह ऐसे काम किये। पूरा भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ अकेला केवलज्ञान का सूर्य है। उसके सामने कभी नजर नहीं की, देखा नहीं, उसे अनुभव में लिया नहीं। यह सब, यह सब होली। राग, द्वेष, पुण्य, पाप, संकल्प, विकल्प से बाहर लक्ष्य करके इन सबमें मानों मैं गुँथ गया होऊँ। डोरी में डोरी गुँथते हैं ऐसी सब? बुन जाती है न साथ में? इसी प्रकार भगवान आत्मा मानो विकल्प, राग, शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियाँ, जड़ के साथ गुँथ गया हो, बुन गया हो, ऐसा अनादि से पर्याय अंश दृष्टिवाले को अथवा बहिर्बुद्धिवाले को उससे गुँथा हुआ भासित होता है।

यहाँ कहते हैं '**अवगुण्ठनात्**' रहित। अकेला ज्ञानमय भगवान आत्मा सबके भेद से, विकल्प से, पर से अत्यन्त रहित भिन्न है, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया यहाँ? और यह आत्मा की दशा पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी सदा काल रहती है, इसका नाम मोक्ष कहा जाता है। इसमें ४३ (कलश) आया न?

कलश - २३५

(शार्दूलविक्रीडित)

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुर:
शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।।४३-२३५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एतत् ज्ञानं तथा अवस्थितं यथा अस्य महिमा नित्योदित: तिष्ठति' [एतत् ज्ञानं] शुद्धज्ञान [तथा अवस्थितं] उस प्रकार प्रगट हुआ, [यथा अस्य महिमा] जिस प्रकार शुद्धज्ञान का प्रकाश, [नित्योदित: तिष्ठति] आगामी अनन्त कालपर्यन्त अविनश्वर जैसा है, वैसा ही रहेगा। कैसा है ज्ञान? 'अमलं'; ज्ञानावरण (आदि) कर्ममल से रहित है। और कैसा है ज्ञान? 'आदानोज्झनशून्यं' [आदान] परद्रव्य का ग्रहण (और) [उज्झन] स्वरूप का त्याग, उनसे [शून्यं] रहित है। और कैसा है ज्ञान? 'पृथक् वस्तुतां विभ्रत' सकल परद्रव्य से भिन्न सत्तारूप है। और कैसा है? 'अन्येभ्य: व्यतिरिक्तं' कर्म के उदय से हैं जितने भाव, उनसे भिन्न है। और कैसा है? 'आत्मनियतं' अपने स्वरूप से अमिट है। कैसी है ज्ञान की महिमा? 'मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभासुर:' [मध्य] वर्तमान-[आदि] पहला-[अन्त] आगामी, ऐसे [विभाग] भेद से [मुक्त] रहित, [सहज] स्वभावरूप [स्फारप्रभा] अनन्त ज्ञानशक्ति से [भासुर:] साक्षात् प्रकाशमान है। और कैसा है? 'शुद्धज्ञानघन:' चेतना का समूह है।।४३-२३५।।

कलश - २३५ पर प्रवचन

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुर:
शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।।४३-२३५।।

'एतत् ज्ञानं तथा अवस्थितं यथा अस्य महिमा नित्योदितः तिष्ठति' भगवान आत्मा **शुद्ध ज्ञान 'एतत् ज्ञानं' 'एतत् ज्ञानं'** यह शुद्ध ज्ञान चैतन्यमूर्ति भगवान। **'शुद्ध ज्ञान'** शब्द से जो आत्मा वर्णन किया वह। **'तथा अवस्थितम्' उस प्रकार प्रगट हुआ...** जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... प्रकाश सूर्य ऐसा पर्याय में ऐसा ही प्रगट हुआ। जैसा चैतन्य सूर्य स्वभावमय था, वस्तुरूप से पूरा चैतन्य का नूर तेजरूप आत्मा था, वह पर्याय में वैसा प्रगट ज्ञानरूप से प्रगट हुआ। समझ में आया? **उस प्रकार प्रगट हुआ...** जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। पुण्य-पापसहित कर्मवाला नहीं था। समझ में आया? दया, दान, काम, क्रोध, विकल्प, शरीर, कर्मवाला नहीं था; वह था शुद्ध ज्ञानमय, वैसा ही अन्दर में पर से पृथक् करके अपने स्वभाव के वेदन से आत्मा जैसा था, वैसा प्रगट पर्याय में आया। मैं ज्ञानानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। समझ में आया?

'तथा अवस्थितम्' उस प्रकार प्रगट हुआ... जैसा अन्दर शुद्ध ज्ञानघन है, वैसा ही अन्तर्दृष्टि में एकाग्र होने पर ऐसा है, ऐसा ज्ञानमय प्रगट हुआ। लो! इसका नाम धर्मपर्याय, ज्ञानपर्याय और धर्मपर्याय कहा जाता है। **'यथा अस्य महिमा' जिस प्रकार शुद्ध ज्ञान का प्रकाश...** देखो! महिमा का अर्थ प्रकाश किया। **'यथा अस्य'** जिस प्रकार से **'यथा'** शुद्ध ज्ञान का प्रकाश—महिमा। उसकी—ज्ञान की जो महिमा है, कहते हैं। उस ज्ञान का प्रकाशित होना शक्तिरूप से था, उसका निर्मलरूप से प्रकाशित होना, वही उसका प्रकाश और उसकी महिमा है। रागादि, पुण्य-पाप आदि का प्रगट होना, वह कहीं आत्मा का महिमा नहीं। समझ में आया?

'यथा अस्य महिमा' 'यथा' जैसी है, वैसी उसकी महिमा अर्थात् प्रकाश। **जिस प्रकार शुद्ध ज्ञान का प्रकाश...** इसका नाम यहाँ महिमा कहा है। इस प्रकाश को ही महिमा कहा। भगवान आत्मा की महिमा अर्थात् क्या? इस ज्ञानमूर्ति चैतन्य का अनुभव होने पर जो ज्ञान प्रगट हुआ, दर्शन प्रगट हुआ, शान्ति प्रगट हुई, वह प्रकाश, ज्ञान का ही प्रकाश है। यह रागादि, पुण्य-पाप नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान चैतन्य-सूर्य का प्रकाश प्रगट हुआ, वही उसकी महिमा है। महिमा कहो या उसका स्वरूप कहो या वह प्रकाश, वह उसका भाव है। उसकी महिमा कहीं शरीर से रहना, पुण्य-

पाप से (रहना), वह कहीं उसकी महिमा नहीं है, वह तो अमहिमा है। आहाहा! समझ में आया?

जैसा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का नाथ ऐसा ही अन्तर पर्याय में, पर्याय में परिणमन पर से भिन्न करके प्रगट हुआ, वही उसकी महिमा है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! दुनिया में तो कुछ महिमा लगती है, भाई! स्त्री, पुत्र, पैसा मिले, मकान मिले तो ओहोहो! चलो देखने, चलो देखने... महिमा (आवे)। मकान-बकान अच्छा बनावे तो देखने आवे या नहीं? वास्तु-बास्तु लेना हो तो यह सेठिया सबको बुलावे। भगवान आत्मा की महिमा—प्रकाश की महिमा है, कहते हैं। वह प्रकाश का पुंज प्रभु चैतन्य नूर है, यह उसकी पर्याय में ऐसा है, ऐसे प्रकाश का पुंज प्रगट हुआ। शक्ति में से व्यक्त होने पर पर्याय में (प्रगट हुआ), यही उसकी महिमा और यह उसका स्वरूप और यह उसका प्रकाश है। नहीं समझ में आया यह? यह बाहर का प्रकाश नहीं।

'**नित्योदितः तिष्ठति**' भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्य की ज्योति है। उसे अन्तर से राग और पुण्य से भिन्न करके अनुभव किया, वह जैसा उसका स्वभाव था, वैसा उसकी पर्याय में, दशा में ज्ञान का प्रकाश, ज्ञान का नूर, ज्ञान का तेज प्रगट हुआ। वह प्रगट हुआ, वह उसकी महिमा है। वह आत्मा की महिमा कहो, वह आत्मा की ऋद्धि कहो, वह आत्मा की लक्ष्मी कहो, वह आत्मा की सम्पदा कहो। यह धूल-बूल, यह पैसा-बैसा धूल और पुण्य-पाप वह उसकी महिमा नहीं, वह उसकी सम्पदा नहीं, उसकी लक्ष्मी नहीं, उसकी ऋद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **शुद्ध ज्ञान का प्रकाश...** महिमा। विशुद्ध है न? सर्वविशुद्ध ज्ञान। इस प्रकार से **आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर जैसा है, वैसा ही रहेगा।** भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा अन्दर में से पर्याय में प्रगट हुआ, ऐसा का ऐसा सदाकाल रहता है, उसका नाम मोक्षदशा और सिद्धदशा और मुक्तदशा कहते हैं। कहो, समझ में आया? जैसे द्रव्य वैसा का वैसा रहता है, वस्तु वैसी की वैसी अनादि है, शाश्वत् चिद् सत् चिदानन्द आत्मा वस्तु, वह वस्तु पर से भिन्नपने का भान होकर

शक्ति में से प्रगट ज्ञान और आनन्द जो प्रगट हुआ, ऐसी की ऐसी दशा (रहे), उस दशा को प्रकाश कहते हैं, उसकी महिमा कहते हैं, उसकी सम्पदा कहते हैं, उसकी ऋद्धि कहते हैं। वह सर्व काल रहेगी, यह उसकी स्थिरता हुई। वह दशा सदाकाल आनन्दमय रहेगी। कहो, समझ में आया इसमें?

जैसी अविनश्वर वस्तु है, पदार्थ है आत्मा वह कहीं घढ़ा हुआ है, किया हुआ है, किसी ने बनाया हुआ है? वस्तु सत् बिम्ब है, सत् का बिम्ब है, सत् बिम्ब शाश्वत् है। अकृत्रिम अविनाशी सत् बिम्ब ऐसा ध्रुवस्वरूप है। वह अविनश्वर है, ऐसा जिसका भान होकर दशा (प्रगट हुई), शुद्ध चैतन्य का ज्ञान और आनन्द की दशा वीतरागी प्रगट हुई, (वह) अविनश्वर रहेगी। यह है, ऐसी वह रहेगी, कहते हैं। यह चार गति में भटका करता है, परिभ्रमण (करता है)। मनुष्य में और देह में और ढोर में और स्वर्ग में भटकाभटक (करता है)। यह सब इसे मिटकर भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द का अनुभव पर से भिन्न पड़कर एकाकार होकर जो दशा प्रगट (वह) अविनश्वर (रहेगी)। वस्तु जैसी अविनश्वर, पर्याय भी—अवस्था भी नाश न हो, ऐसी हो जायेगी। समझ में आया? बात समझना कठिन पड़े। वार्ता हो तो कुछ समझ में आये। यह वार्ता क्या कहते हैं? यह तो कहते हैं, क्या (यह) कुछ समझ में नहीं आता।

यह तो समझ में आये ऐसी तो बात कही जाती है। क्यों जेचन्दभाई! समझ में आता है या नहीं? वह प्रकाश–ब्रकाश नहीं, ऐसा आया। वह प्रकाश मेरा, इसने जीव में कहाँ अन्धकार, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप, शरीर और वाणी, यह धूल–मिट्टी भगवान चैतन्यसूर्य विराजमान परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यसूर्य है। उसमें यह मेरे ऐसा मानकर किया अन्धकार। उस अन्धकार का निषेध करके चैतन्य प्रकाश का तेज दशा में प्रगट होना, इसका नाम प्रकाश और आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? 'अमलं' देखो! यह मल, मल आया न? यह **ज्ञानावरण कर्ममल से रहित है।** भगवान आत्मा...! समझ में आया? ज्ञानावरणीय आदि जो कर्म जड़ मिट्टी है, उनसे यह भिन्न है। चैतन्यतत्त्व जो है आत्मा, जिसे चैतन्यतत्त्व, ज्ञानानन्द तत्त्व कहते

हैं, ऐसा जो यह आत्मा वह कर्म के, जड़ के सम्बन्ध में, मैल के सम्बन्ध में था, मैल के सम्बन्ध में था, पुण्य-पाप के विकार भी मैल है, उनके सम्बन्ध में था, उसे ऐसे पृथक् करके भेदज्ञान करके चैतन्य के तेज—नूरवाला मैं आत्मा हूँ, ऐसे अन्तर में भान करके जो आत्मा शुद्ध आनन्दरूप से प्रगट हुआ, वह कर्म के मल और पुण्य-पाप के मैल से रहित प्रगट हुआ। इसलिए उसे अमल कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है ज्ञान? 'आदानोज्झनशून्यं' क्या कहते हैं? कि यह **परद्रव्य का ग्रहण स्वरूप का त्याग, उनसे रहित है।** इसके आत्मा में स्वभाव कैसा है? कि राग का, परपदार्थ का ग्रहण करना और परपदार्थ का छोड़ना, इसके स्वरूप में नहीं। समझ में आया? यह विभाव की व्याख्या है न अन्दर? वह है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह परवस्तु को ज्ञान के सामर्थ्य द्वारा भी ग्रहण या त्याग नहीं कर सकता। परन्तु उसमें विभाव हो कदाचित् विकल्प, राग (हो), उस राग से भी परद्रव्य को ग्रहण और त्याग कर सकने की उसमें शक्ति नहीं है। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्यबिम्ब प्रभु! आत्मा अर्थात् चैतन्य के प्रकाश का नूर—तेज। वह आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वभाव से भरपूर प्रभु। उस ज्ञानस्वभाव में ऐसी शक्ति है कि पर एक रजकण को भी ग्रहण करे या छोड़े, ऐसा उसमें गुण है नहीं। ओहोहो! समझ में आया? उसकी वर्तमान पर्याय में भले विकाररूप परिणमे, परन्तु पर को स्वयं ग्रहण कर सके या छोड़ सके, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है। अब वह विकाररूप परिणमे, उससे भिन्न किया यहाँ तो। इसलिए विकार का भी ग्रहण करना या छोड़ना, उसके स्वरूप में है नहीं। आहा! समझ में आया? कठिन बात, भाई! मोक्ष के मार्ग की बात बारीक और सूक्ष्म बहुत। (यह) किये बिना छूटकारा नहीं है। यह करे तो उसका... यह छप्पनीया के (अकाल के काल में) पशुओं को सांगडा (सहारा) डालकर खड़ा करे परन्तु कस नहीं होता तो गिरते थे। खबर नहीं? यह तो अपने आप कस आवे तब खड़े हों, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। किसी का लिया-दिया काम आवे, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं न, देखो! क्या कहते है? यह आत्मा का स्वभाव ही भगवान

आत्मा का ऐसा है कि एक भी शरीर, वाणी, मन, कर्म, रजकण को ग्रहण करना या उन्हें छोड़ना, इसके स्वरूप में तीन काल में नहीं है। ऐसे स्वरूप का इसने भान किया नहीं। हाँ, उसकी दशा में विकल्प का विकार भले परिणमे, जो कि इसका स्वरूप नहीं, परन्तु उस विकाररूप परिणमे शुभाशुभराग हो, इससे वह परवस्तु को ले सके, छोड़ सके, करे, ऐसा विकार की शक्ति में भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह ग्रहण-त्याग न करे, फिर करे क्या? धूल करे।

इसमें चैतन्यतत्त्व के नूर और प्रकाश क्या स्वभाव है, उसकी कभी इसने कसौटी की ही नहीं। जगत के पदार्थ की कसौटिया की, परन्तु धूल की कसौटी करके मर गया, ऐसा का ऐसा अनन्त काल से। 'परख्या माणेक मोतीया, परख्या हेम-कपूर, एक न परख्यो आत्मा' यह वह क्या चीज़ है? वहाँ मूढ... मूढ... मूढ... मूढ... मानो कुछ (खबर नहीं पड़ती)। किसकी बात चलती है? किसकी बात चलती है? यह वह क्या है यह? जमुभाई! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन ज्ञान का पिण्ड अकेला आत्मा वह ज्ञान का सूर्य और आनन्द का कन्द सच्चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत् अस्तित्व। ज्ञान और आनन्द का अस्तित्व उसमें है। जानना और आनन्द का अस्तित्व सत् चिद् में आत्मा में है। वह वस्तु है, उस वस्तु में कोई भी जगत की कोई चीज़ उठाना, लेना, ग्रहण करना, छोड़ना उसकी कोई द्रव्य-गुण की शक्ति में कोई गुण नहीं है। समझ में आया? परन्तु उसकी वर्तमान दशा में वीर्य प्रगट हो, ज्ञान प्रकाश का नूर प्रगट हो तो भी उसके बल से किसी वस्तु को ले—उठाये, ग्रहण-त्याग करे, पर का कर्ता हो, यह उसके स्वरूप में द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम।

यह विकाररूप परिणमे भले, तो भी वह परवस्तु के रजकण शरीर, वाणी, मन के या परपदार्थ के काम कर सके, उठाकर रखे और उठाकर छोड़े, ऐसी उसकी वर्तमान विकारी पर्याय में भी सामर्थ्य नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कभी इसकी विकारी अवस्था निर्विकारी दशा, निर्विकारी गुण और उसका पिण्ड द्रव्य, उसका कितना सामर्थ्य

और कितनी मर्यादा है, उसकी इसने कभी कीमत नहीं की। उसका मूल्यांकन तूने कभी नहीं किया। मूल्य आँका ही नहीं कभी। ऐसे का ऐसे मूढ़ होकर (भटकता है)। समझ में आया? विचार ही नहीं किया इसने, चलता ही गया मूढ़ की (भाँति)। भगवान अन्तर चैतन्य हीरा है। कहो, समझ में आया?

आज आया है न कहीं? उसमें कहीं आया था। बताता था न भाई, कहाँ गया? अपना प्रदीप आया था। रत्न की खान निकली है। ऐसा अखबार लाया था। रत्न के थर पड़े हैं, कहते हैं। वह लाया था। वे तो पड़े हों, ऐसी निकलने की शक्ति (हो), तो उसमें क्या? यहाँ अरबों-अरबों रुपयों की खान बड़े भण्डार भरे हैं। लाया था वह क्या नाम? 'फूलछाब' न? लाया था। रत्न की खान निकली। मैंने कहा, बात तो सच्ची। सवेरे कहने का था कि धूल ऐसे हटावे तो रत्न निकले। उसमें तो बहुत लिखा है। 'फूलछाब' है न? जम्मू में रत्नों की खान। नयी दिल्ली, 'जम्मू' की 'तीरतवार' टेकरियों में अखूट प्रमाण में रत्न भण्डार पड़े हैं। उसमें विस्तार में ताजेतर में पूरा करने में आया हुआ भूस्तर शास्त्र परीक्षण आया, उसमें बतलाया है। उसमें टु बी और सर्फ टाईम प्रकार के रत्नों के थर होने का निर्देश हुआ है। थर होने का। रत्नों के थर पड़े हैं यहाँ आत्मा में, हों! अपने धूल का कुछ काम नहीं। यह तो बाहर का दृष्टान्त है।

'थर' शब्द पड़ा था न! भगवान आत्मा। वह रत्न की खान धूल की। वह तो निकले, अनन्त बार आकर गयी। उसमें आत्मा को कुछ है नहीं। धूल भी लाभ नहीं। व्यर्थ का हैरान होकर मर जाता है। अरबों के थर अन्दर पड़े हैं, हों! कहते हैं, उसमें लिखा है। शब्द पड़ा है न? उन रजकणों का परिणमन धूल का परमाणु का ऐसा हुआ हो। बड़ा-बड़ा मील-मील, दो-दो मील में हो। उसमें क्या? भण्डार कम नहीं हो।

यह तो बड़ा आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द का नाथ अनन्त रत्न की खान के थर पड़े हैं इसमें। समझ में आया? जिसे अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प रहित, पर के ग्रहण-त्याग बिना का मैं आत्मा हूँ। पर के ग्रहण-त्याग बिना का। मेरे स्वरूप में अखण्डानन्द अनन्त चैतन्य रत्न, आनन्द रत्न, ज्ञान रत्न, श्रद्धा रत्न, शान्ति रत्न, चारित्र रत्न, प्रभुता रत्न, स्वच्छता रत्न, विभूता रत्न, कर्ता रत्न, कर्म रत्न—

ऐसे अनन्त गुण के रत्न के थर एक समय में साथ में पड़े हैं। वे तो एक के बाद एक हों, यह तो एक साथ है। समझ में आया?

ऐसी रत्न की खान निकले तो ऐसा हो जाये, ओहोहो! ऐसा कहेंगे, देखो! शास्त्री के समय में रत्न की खान निकली। भाग्यशाली, ऐसा करके बातें करेंगे। समझ में आया? परन्तु यह रत्न की खान भगवान! तुझमें है। परन्तु उन सबका ज्ञान करनेवाला कौन? इतने रत्न ऐसे एक मील में ऐसा कि गहरे-गहरे रत्न भरे हैं। उसका ज्ञान करनेवाला कौन, इसे खबर है? यह जाननेवाला तो यह चैतन्य रत्न है। इस चैतन्य रत्न में एक-एक गुण की, एक-एक शक्ति अनन्त रत्न के सामर्थ्य से भरपूर है। खबर नहीं होती, चैतन्य हीरा वह कौन है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ भगवान को तीन काल, तीन लोक का ज्ञान हुआ। (उनकी) वाणी में आया कि अरे! आत्मा! तू कौन है? भाई! एक रजकण को ऐसे ऊँचा करना या लेना या देना, वह तेरी कोई द्रव्य, गुण और पर्याय में अवस्था की शक्ति में सामर्थ्य नहीं। आहाहा! तेरी पर्याय की सामर्थ्य सब तीन काल, तीन लोक को जानने की सामर्थ्य है, जानने की सामर्थ्य है। समझ में आया? यह कर्तृत्वबुद्धि के अभिमान हैं न? हमने यह किया, हमने यह किया, हमने यह किया। धूल में कर सकता है? अहंकार कर सकता है।

वह कहता है कि अहंकार (न हो,) इसलिए ना किया है (बाकी) कर तो सकता है। अरे! भगवान! क्या कहता है तू? मैं कर सकता हूँ, अहं—मैं कर सकूँ, इसका नाम अहंकार है। कर सकता नहीं और कर सकना मानता है। उसमें आया है। यह बन्ध के अधिकार में आता है न? दूसरे को जिला सकता हूँ। यह तो अहंकार का त्याग कराया है। कर सकता नहीं, ऐसा नहीं। गजब के अर्थ करनेवाले हैं। उल्टे वे उल्टे। भाई! तुझे खबर नहीं। यह शरीर पंगु हो जाये और पक्षघात आवे (तो) ऐ... ऐ... ऐ... (हो जाता है)। कुछ है नहीं अब। कर न! तू आत्मा तो वह का वह है अन्दर। ऐसे जागता खबर है इसके कि, यह... यह... यह... यह... अंग ऐसा हो गया, ऐसा बोले वापस। वह यह अंग जम गया। यह क्या हुआ? क्या कहलाता है? ब्लडप्रेशर हो न बहुत? ऐसे जम

गया। अब यह अँगुली ऐसे होती नहीं। क्यों कर न! तू तो है न आत्मा अन्दर। हो गया, पुद्गल की पर्याय का वह कार्य है, तेरा है ही नहीं। आहा! परन्तु इसे बैठे कैसे?

मुमुक्षु : मेरा जोर बढ़े तो मेरा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जोर धूल में कहाँ का? इस जोर बढ़े तो ज्ञाता-दृष्टा में जोड़ बढ़े। अधिक जानने का बढ़े। वह जोर बढ़े तो कर सकता नहीं। कैसे होगा? भीखाभाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं), **'आदानोज्झनशून्यं'** अर्थ चलता है। भगवानमूर्ति चैतन्य का नूर देहदेवल के रजकण मिट्टी में भिन्न प्रभु आत्मा (विराजता है)। यह तो मिट्टी के-धूल के पिण्ड हैं, पुद्गल की जड़ दशा जो दाल, भात, रोटी से बनी और वापस राख होकर श्मशान में फू होकर उड़ जानेवाली है। वह कहीं आत्मा-बात्मा नहीं है।

भगवान अन्दर आत्मा जो चैतन्य के नूर से भरपूर प्रकाशमूर्ति प्रभु, वह सत् है, सत् अर्थात् शाश्वत् सत्, शाश्वत् सत्। शाश्वत् अनन्त सत्। उसका अन्त नहीं। शाश्वत् का अन्त क्या? उसमें अन्दर एक ज्ञान प्रकाश, आनन्द प्रकाश, शान्ति प्रकाश ऐसे अनन्त गुण से भरपूर भगवान की वर्तमान दशा की अवस्था परिणमने की होती है, बदलती है, परन्तु उस अवस्था की सामर्थ्य नहीं कि वह हाथ ऊँचा करे या छोड़े, ग्रास ले या छोड़े। यह आत्मा की पर्याय की शक्ति का सामर्थ्य ही नहीं है। कहो, गोकलदासभाई! क्या होगा यह? अभिमान भी पर का अभिमान घुस गया हो, उसे बैठे? उसमें जवान शरीर हो जरा २०-२५ वर्ष का, सांढडा जैसा शरीर। सांढडा को ऐसे सींग की वह होती है न? अणी पकड़कर ऐसे खड़ा रखे (तो) ऐसा हो जाये। वह वापस मरने के समय हें.... हें.... हो गया है। धूल में भी नहीं। तेरी शक्ति कहाँ (थी) ? तेरी शक्ति तो आत्मा के क्षेत्र में, आत्मा के गुण की अवस्था में तेरी शक्ति रहती है। क्या तेरी शक्ति पर में घुस जाती है? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्य सूर्य प्रभु ऐसा उसका स्वभाव है। भान हुआ इसलिए ऐसा प्रगट हुआ। अब परवस्तु को ग्रहण करना या छोड़ना (ऐसा रहा नहीं)। पहले भी उसे ग्रहण-छोड़ सकता नहीं था परन्तु मान्यता में भ्रम में—भ्रमणा में प्रेरित,

यह सब काम करता हूँ और यह करता हूँ और यह करूँ और बड़े पर्वत तोड़ता हूँ और अमुक काम करता हूँ, दुकान की थैलियाँ बदलता हूँ। थैलियाँ को क्या कहते हैं? कोथलियाँ। नहीं, नहीं। यह तो जिसे अनाज का व्यापार हो न। थैलियाँ बदले, ऐसे से ऐसे बदले और ऐसे से ऐसे (बदले)। कौन बदले? सुन न! तुझे खबर नहीं। वह धूल का थैला उसके कारण से बदलता है, तेरे कारण से नहीं। आहाहा!

यह थप्पियाँ हुई, थप्पियों के कारण से, ऐसा यहाँ कहते हैं। तेरी सामर्थ्य नहीं कि तू थप्पी कर सके, ऐसा यहाँ कहते हैं। नोट होते हैं न ऐसे? एक हजार के, दो हजार के, तीन हजार के, कहते हैं कि यह ऐसे करना या ऐसे लेना, ऐसी तेरी कोई द्रव्य-गुण में तो सामर्थ्य नहीं, परन्तु तेरी अवस्था में सामर्थ्य नहीं। वह अज्ञानी ने भ्रम से माना है। विकार अवस्था में वह सामर्थ्य नहीं, यह तो कहा न पहले? भले रागरूप हो, विकल्परूप परिणमे, परन्तु उस विकल्प की, राग की सामर्थ्य नहीं कि परचीज़ को ऊँची—नीची करे और ग्रहे और कर्ता हो, तीन काल में नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया? पर के लिये पंगु, अपने में पुरुषार्थ से शूरवीर पूरा। कर्म कुछ पंगु नहीं, कर्म उसके घर में रहा। यह तो बात हो गयी न अपने? पंगु की आ गयी थी न? आयी थी? कहाँ? इसे खबर नहीं, यह उलझ जाता है। परमात्मप्रकाश में।

कहते हैं कि प्रभु! तू कौन है? भाई! आत्मा... आत्मा। यह शरीर की पसलियाँ, यह क्षय में हो और फिर टूटे अन्दर (पीड़ा) होती है और यह महीना-महीना, पन्द्रह दिन-पन्द्रह दिन तक ऐसे (रखे)। डॉक्टर कहे, ऐसे पड़े रहना, हों! यदि ऐसे हिलोगे तो टाँके टूट जायेंगे। एक तो महामुश्किल हो, उसमें पन्द्रह दिन निकालना हो ऐसे के ऐसे। रात्रि में नींद न आवे, वहाँ पीव होती हो। यदि हिलोगे तो वापस (टाँके टूटेंगे)। ऐसा का ऐसा रहना तो कदाचित् घाव भरने का प्रसंग है। हें? कहाँ तक? भाई! मेल नहीं। पाँच-दस दिन भी निकाले। ऐसे के ऐसे? हाय... हाय! यों भी कहाँ वह घुमा सकता था? पैर घूमता नहीं तो चैन नहीं आता इसे। भीखाभाई! ऐसे पसली ऐसे फिरे इसे चैन आवे। यह फिरे उसके कारण से, हों! और यह मानता है कि हा... श, घूमा, इसलिए ठीक हुआ। अरे! परन्तु क्या हुआ तुझे? समझ में आया?

बापू! चैतन्य की सत्ता के सामर्थ्य का ज्ञान वह अलौकिक है। भगवान आत्मा परवस्तु के एक भी रजकण आदि के भाव को, किसी भी रजकण को, एक रजकण यह थूक आया, उसे थू करने की शक्ति आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो जड़ की अवस्था रूपान्तर होकर वह कार्य जड़ में होता है। भगवान आत्मा उसका जाननेवाला-देखनेवाला है। ऐसा जाननेवाला-देखनेवाला, (इसके) उपरान्त घुसावे कि मैंने यह किया, यह मिथ्या भ्रमणा पाप सेवन करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

'आदानोज्झनशून्यं' कठिन बात, भाई! अरे! प्रभु! तू कौन है? भाई! ऐसा इसे निर्णय करे फिर भले विकल्प आवे तो उससे भी ग्रहण-त्याग नहीं। तो भी विकल्प, वह मेरा स्वरूप नहीं। जब मैं पर को छोड़ूँ, ग्रहण की ही मेरी (शक्ति नहीं)। शुद्धि प्रगटे तो भी ग्रहण-त्याग की शक्ति नहीं। छोड़ूँ या लूँ। और अशुद्धि प्रगट कर तो भी परवस्तु को ग्रहण और त्याग करे, यह तुझमें शक्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य का ग्रहण, स्वरूप का त्याग, उससे रहित है। अपना त्याग है, वह उससे रहित है। यहाँ तो उस विकल्प का बताया वापस। पहले में तो ऐसा कहा, परद्रव्य का ग्रहण-त्याग। परन्तु यहाँ से विशेष कहा कि, पर में ग्रहण करना और स्वरूप का त्याग उसमें नहीं है, ऐसी शैली ली है। क्या समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा अपने स्वरूप को छोड़े और पर को ग्रहण करे, ऐसा कभी तीन काल में होता नहीं। पहली बात तो ऐसी कही, परद्रव्य के त्याग-ग्रहण की। अब इसका स्वभाव अपने ज्ञानानन्दस्वरूप को छोड़े और पर को ग्रहण करे, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! स्वरूप छोड़े कोई? अपनी जाति को छोड़े? अपनी भात को छोड़े? चैतन्यबिम्ब भगवान आत्मा ज्ञान का सूर्य प्रभु, वह अपने स्वभाव को छोड़े? स्वभाव छोड़े, तब तो वस्तु (का) अभाव हो जाये। समझ में आया? यह चैतन्यस्वभाव स्वयं अपने स्वरूप को कभी छोड़ता नहीं और कभी उसने राग को, पर को वास्तव में ग्रहण किया नहीं। आहाहा! ऐसे स्वरूप का अन्दर पर से भिन्न होकर भान करना और वेदन करना, वह इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है ज्ञान? अर्थात् आत्मा। ज्ञान कहो या आत्मा। चैतन्य प्रकाश है न

उसका? उस प्रकाश को ही आत्मा कहा है, बस! मिठास को जैसे गुण कहना, मिठास को गुण कहना, वैसे ज्ञान को आत्मा (कहो)। प्रकाश जो है, ऐसा जानता है सबको यह... यह... है... यह है... यह है... यह है... यह है... ऐसी जो जानने की सत्ता, जानने के अस्तित्व में जो यह सब ज्ञात होता है, वह जानने का अस्तित्व, वह जानना, वही आत्मा है। समझ में आया?

एक लड़का नहीं था? छह वर्ष का न? सात वर्ष का। जामनगर में सात वर्ष का लड़का था, फिर यहाँ व्याख्यान में सुनने बैठा। फिर खड़ा होकर उसने पूछा, प्रभु! आत्मा देखो, ऐसा कहते हो, परन्तु यहाँ आँख बन्द करें तो अन्धकार दिखता है। बाहर देखें तो यह दिखता है, तो आत्मा कहाँ देखना? ऐसा बेचारे ने प्रश्न किया था। ऐ...ई...! आत्मा है या नहीं? पूछने का प्रश्न उठा ऐसा, लो! सात वर्ष का नहीं? सात वर्ष का न? यह तुम कहते हो कि आत्मा ऐसा, आत्मा ऐसा, आत्मा को देखो। आँख बन्द करते हैं तो अन्दर अन्धकार दिखता है। बाहर देखते हैं तो यह दिखता है। अब आत्मा देखना कहाँ? बालक को क्या कहना?

भाई! यह अन्धकार दिखता है, किसमें दिखता है? अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है? अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है? या चैतन्यप्रकाश में प्रकाश में यह अन्धेरा दिखता है? परन्तु कभी विचार किया नहीं। प्रकाश में यह अन्धकार दिखता है। चैतन्य के नूर प्रकाश में यह अन्धकार (है, ऐसा ज्ञात होता है)। ऐसे आँख बन्द करें तो अन्धेरा लगे न सब? .... परन्तु यह देखनेवाला स्वयं अन्धकारस्वरूप नहीं है। यह दिखता है, ऐसा जो अन्दर यह (अन्धेरा), वह ज्ञानस्वरूप की सत्ता होने में सब दिखता है। आहाहा! जो बड़े बैरिस्टर हुए हों तो उसने कहाँ विचार किया है ऐसा अन्दर? एक व्यक्ति फिर पूछता था कि ऐसा तो लड़का पूछता है। हमारे प्रश्न ही ऐसे सब हैं।

यह चैतन्य अर्थात् आत्मा, अर्थात् ज्ञान प्रकाश का नूर। चैतन्य किस प्रकार से ऐसे देखना? यह देखे तो यह बाहर का दिखता है, आँख (बन्द करे तो) अन्धकार (दिखता है)। परन्तु अन्धकार को देखनेवाला कौन? अन्धकार को देखनेवाला काला अन्धेरा है? अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है? आहाहा! यह चैतन्य के प्रकाश की सत्ता में

वह अन्धेरा दिखता है। यह चैतन्य का प्रकाश, वह आत्मा और वह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु कभी उस ओर का विचार किया नहीं। सम्प्रदाय में बातें चले तो यह करो और यह छोड़ो, यह लो और यह करो। इसमें मर गया मिथ्यात्व भ्रमणा में। वस्तु की चीज़ यह वह कौन है? परन्तु यह क्या है? नजर डालने से जिसमें नजर टिके ऐसा टिकता तत्त्व क्या है कि जिसमें टिकने से स्थिर हो जाये? समझ में आया?

यह नजर कुछ काम करे वहाँ? यह तो हड्डियाँ और मिट्टी है। ऐसे देखे तो यह सब धूल दिखती है। देखनेवाला स्वयं परन्तु दिखती है यह। देखनेवाला स्वयं। उसकी सत्ता में यह दिखता है, ऐसा मानता है, दिखती है वास्तव में ज्ञान की पर्याय। ज्ञान की अवस्था दिखती है परन्तु मानता क्या है कि यह परपदार्थ दिखता है। ऐसा मानता है, हों! है नहीं। अपनी ज्ञानदशा दिखती है, उस सत्ता के सामने देखे तो खबर पड़े न! समझ में आया?

कोई कहे कि भाई! तू आत्मा कौन है, उसे समझे बिना चौरासी लाख में मरकर मर गया। कहीं तेरा अन्त नहीं आया। दुनिया का अभ्यास और दुनिया की चतुराई और सब खोटा कर-करके मर गया।

कहते हैं, कैसा है भगवान स्वरूप आत्मा का ज्ञान? **'पृथक् वस्तुतां विभ्रत्' सकल परद्रव्य से भिन्न सत्तारूप है।** सभी परवस्तु जो है, उसके अस्तित्वपने से भगवान चैतन्य भिन्न सत्ता है, अस्तिवाली चीज़ है, अस्तिवाली चीज़ है। जिसकी मुख्यता न हो तो यह चीज़ है, ऐसा किसमें जाना? जिसकी सत्ता की मुख्यता न हो, जिसके अस्तित्व की मुख्यता न हो तो यह शरीर यह... यह... यह... यह... ऐसा जाना किसने? वह जाननेवाला भगवान चैतन्यसत्ता पर से भिन्न है। कहो, समझ में आया इसमें? अरे! यह किस प्रकार की आत्मा की बात है? कहो, जेचन्दभाई! यह विचार नहीं किया। नहीं तो निवृत्ति का समय बहुत है अभी, लो! व्यापार-धन्धा बन्धा कुछ नहीं होता। शरीर ने अटका दिया सब करने का भाव था तो भी। परन्तु मानता था न ऐसा किया हमने। हमने किया। अमेरिका गये थे और होली में गये थे। धूल में भी गये नहीं, कहते हैं। ऐसा यहाँ

कहते हैं। तू तेरी पर्याय से, अवस्था से एक क्षेत्र में, एक प्रदेश में बाहर निकला नहीं। आहाहा! परन्तु यह इसे खबर कहाँ है? कहो, समझ में आया इसमें?

'पृथक् वस्तुतां विभ्रत्' सकल परद्रव्य से भिन्न सत्तारूप है। और कैसा है? 'अन्येभ्यः व्यतिरिक्तं' कर्म के उदय से हैं, जितने भाव उनसे भिन्न है। जितने कर्म के उदय से विकल्प आदि उठते हैं, सब विकार से भी भगवान चैतन्य की सत्ता भिन्न है, ऐसे आत्मा का पर से भिन्न भान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म कहलाता है।

यह लड़की जिसे देखने आया हों, इस लड़की यह सब बहुत देखने आये हों, देखो! यह राजुल। जिसे जातिस्मरण हुआ है। खड़ी करो, खड़ी करो। खड़ी हुई, बस! देखो! इसे यह पाँच वर्ष की उम्र है अभी। यह जूनागढ़ में लुहार की पुत्री थी। गीता नाम की। यह सब इसने याद किया है अपने आप। अभी पाँच वर्ष की है परन्तु ढाई वर्ष की उम्र से इसने सब याद किया। यह हमारे सब होशियार पण्डित वहाँ जाकर हिम्मतलाल पण्डित हैं न अपने यहाँ के? यह है इसके पिताश्री, पिता है। सबने जाकर निर्णय किया। यह ढाई वर्ष में स्वयं कहे, मैं गीता हूँ। जूनागढ़ की रहनेवाली हूँ। मेरे जूनागढ़ घर है, मकान है, ऐसे बाईस मुद्दे कहे थे। सब बात सच्ची निकली। यह ढाई वर्ष में कहे, यह गीता। पूर्व भव की गीता, इस भव की राजुल। यह समाचारपत्र में आया है, यह सब। समाचारपत्र में है न?

यह राजुल देखो! यह अखबार में है राजुल कहती है कि ऐसा तो सबको याद हो। यह अखबार आता है। तीन बार आया। यह स्वयं लड़की ऐसा कहती है कि तुम क्या पूछ-पूछ करते हो मुझे? यह तो तुमको सबको खबर है कि कहाँ से आयी? बालक है न, उसे कुछ खबर नहीं होती कि यह सबको (याद) नहीं होती। है न? यह सब आया, देखो! यह बात सत्य सच्ची निकली। हाँ ढाई वर्ष की गुजर गयी है। यहाँ बोली थी कि मुझे बुखार आया, उसमें गुजर गयी हूँ। वह सब बोली थी वहाँ। वहाँ जाकर सब निर्णय करके आये। उस पर भव में से यहाँ आयी, लड़की मरकर लड़की हुई सीधी। यह प्रत्यक्ष जिसे न बैठता हो, उसे यह प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। क्या समझ में आया?

कोई आये थे न देखने? कौन? पाँच वर्ष हुए न? कितने हुए? सवा पाँच वर्ष हुए हैं। यह ढाई वर्ष की थी तब सब बोलती है। ढाई वर्ष की उम्र में, वहाँ ढाई वर्ष की गुजर गयी। जूनागढ़ में गोकुलदास लुहार की पुत्री। उसकी माँ का नाम कान्ता है। यह वहाँ जा आये, सब निर्णय किया। यह मेरी पुत्री गीता थी और पाँच वर्ष पहले गुजर गयी है। यह नाम ठाम सब यह जो कहती थी, वह सब वहाँ निकला। दो कमरे थे, मेरे यहाँ यह था। समझे न? मेरे इतना दूध आता था, इतना रखते थे, मेरे काका पेड़ा देते थे। वहाँ मेरी माँ थी। उसकी माँ को कहे कि माँ! तुम्हारे जैसी हमारी भाभी वहाँ थी, भाभी कहते न? माँ को भाभी कहे। यह सब बातें इस लड़की ने (कही)। यह समाचार में तीन बार आ गया है। यह तीसरी बार का है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ४, शनिवार, दिनांक-२७-११-१९६५, कलश-२३५ से २३७, प्रवचन-२५२

कलश टीका। यहाँ तक आया, देखो! यह आत्मा ज्ञानानन्द इसका शुद्धस्वरूप है, ऐसा भान होने पर इसके स्वरूप में परद्रव्य को ग्रहण करना या पर को छोड़ना इसके स्वरूप में नहीं है अथवा यह आत्मा अपना जो स्वभाव शुद्ध ज्ञानानन्द है, उसे कभी नहीं छोड़ता और रागादि को तथा शरीरादि को कभी ग्रहण नहीं करता, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? यह चैतन्य का पुंज प्रभु वस्तु निर्मल पर्यायसहित, रागादि से पृथक् हुआ और अपने शुद्धस्वभाव से अपृथक् अभेद हुआ, वह आत्मा पर को ग्रहण नहीं करता, स्व को नहीं छोड़ता और अपने अतिरिक्त पर को छोड़ता भी नहीं। ग्रहण नहीं करता, इसलिए छोड़ता नहीं। समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? अर्थात् आत्मा शुद्धपरिणमन हुआ, उसकी बात है, हों! अभी। **'पृथक् वस्तुतां विभ्रत्' सकल परद्रव्य से भिन्न सत्तारूप है।** भगवान आत्मा ज्ञान—दर्शनस्वभाव से भरपूर पदार्थ, वह राग-द्वेष और पर से तो अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? कर्म और शरीर से भिन्न तथा पुण्य-पाप के राग से भी पृथक्, उसे आत्मा कहते हैं न! वह आत्मा अपनी शुद्धपरिणतिवाला भले हो, परन्तु वह तो अपन निर्मल परिणति की अवस्था है, परन्तु विकार और संयोगवाला वह आत्मा नहीं है, उसे आत्मा नहीं कहते। ऐसा आत्मा... आत्मा करे परन्तु कहते हैं, इसमें धर्म क्या आया? यह आत्मा वस्तु है, वह शरीर, वाणी, मन से पृथक् है—ऐसा अन्तर में भान होना और पुण्य-पाप के राग से रहित ऐसी स्थिरता होना, इसका नाम ही धर्म है, धर्म कोई दूसरी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **'पृथक् वस्तुतां विभ्रत्' सकल परद्रव्य से भिन्न....** भगवान आत्मा की सत्ता है। रजकण से लेकर राग के अंश से भी वह भगवान चैतन्य भिन्न है। ऐसा उसका द्रव्य-गुण और पर्याय का परिणमन (हो), उसे आत्मा कहने में आता है। समझ में आया? उसने आत्मा जाना, उसने सब जाना। ऐसा आत्मा जाना, उसने जगत के विकार आदि, शरीर आदि क्या है, वह भी जाना और जगत के दूसरे पदार्थ भिन्न हैं, उनका भी ज्ञान हो गया।

मेरे स्वरूप में यह है और परवस्तु उसमें नहीं—ऐसा भान होने पर पूरा परिपूर्ण प्रभु चैतन्य परमात्मा का स्वभाव, वही मैं हूँ—ऐसी निर्मल दशा की श्रद्धा-ज्ञान की परिणति द्वारा परिणमा, इसलिए पर से भिन्न और अपने से अभिन्न हो गया। यह इसका नाम आत्मकल्याण और मोक्षमार्ग कहा जाता है।

और कैसा है? 'अन्येभ्यः व्यतिरिक्तं' कर्म के उदय से हैं जितने भाव, उनसे भिन्न है। लो! पहले परद्रव्य से भिन्न कहा, अब आत्मा-वस्तु में कर्म के संग से पुण्य और पाप, दया और दान के विकल्प-आस्रव उठे, उससे भी भिन्न है। स्वयं भी भिन्न है तो भास क्यों दिखाई नहीं देता? परन्तु माने पर में, ऐसा किस प्रकार दिखाई दे इसे? छोटाभाई! शरीर मैं, वाण मैं, इसमें कुछ होवे तो मुझे कुछ होता है। अब, ऐसी इसकी भ्रम की मान्यता (हो वहाँ) आत्मा उससे भिन्न कैसे इसे जँचे? तथा पुण्य और पाप के भाव होने पर उनमें आकुलता है, वह इसे भासित नहीं होती। वह दुःखरूप दशा है, शुभाशुभराग वह दुःखरूप (दशा है), आनन्दस्वरूप भगवान से विरुद्ध भाव है, ऐसा भासित न हो, तब तक आत्मा किस प्रकार भासित हो? समझ में आया? इसलिए यहाँ कहा, परद्रव्य से भिन्न, उसे परद्रव्यवाला मानना, उसको परद्रव्य से भिन्न जान किस प्रकार सकेगा? कर्म के उदय से भिन्न, उसे आकुलतावाला मानना, उसको आकुलतारहित आत्मा भासित कैसे होगा? बराबर है?

भिन्न सत्तारूप है। **सकल कर्म के उदय से हैं जितने भाव, उनसे भिन्न है।** देखो! दो बातें लीं। वस्तु भगवान आत्मा क्यों भासित नहीं होती? कि इसके अतिरिक्त कर्म, शरीर आदि जड़ पदार्थ, उसमें-उसमें कुछ ठीक न हो, वहाँ मुझे ठीक नहीं है; इसलिए इसका अर्थ कि इस शरीर को ही अपना मानता है। अब उसे जहाँ माने कि यह एक पूरा पदार्थ जड़ से भिन्न है, उसे कैसे भासे अन्दर? समझ में आया? परद्रव्य की सुविधा-असुविधा में अपना हीनपना-अधिकपना जहाँ कल्पित करे, उसे परद्रव्य से भिन्न माने किस प्रकार? नहीं समझ में आया? भीखाभाई! क्या कहा?

आत्मा के अतिरिक्त शरीर, कर्म, वाणी, यह पैसा, लक्ष्मी की अनुकूलता से मुझे ठीक और प्रतिकूलता से-इसकी प्रतिकूलता से मुझे ठीक नहीं। अब, ऐसा माननेवाले

को उससे भिन्न भासे किस प्रकार? पर के कारण अनिष्टपना या इष्टपना जीव में है ही नहीं। कोई वस्तु इष्ट-अनिष्ट है नहीं। जगत की चीज़ है। शरीर, वाणी वह तो जाननेयोग्य है। उसमें यह होवे तो ठीक और ऐसा न होवे तो ठीक नहीं, ऐसा वस्तु में तो है नहीं। समझ में आया? फिर शरीर निरोग होवे तो ठीक, इसका अर्थ क्या? मोहनभाई! क्या कहना इसका अर्थ? परन्तु सम्बन्ध क्या है कि निरोग होवे तो ठीक? वह तो जड़ है और सरोग होवे तो ठीक नहीं। वह तो जड़ है। जड़ में रोग की दशा (होवे) उसमें जीव को अठीक, ऐसा आया कहाँ से?

मुमुक्षु : बेभान अवस्था....

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं होता। अब भान नहीं होता, तब आत्मा है—ऐसा भासित कहाँ से हो? जहाँ बेभान पड़ा है ऐसा... ऐसा... ऐसा... आहाहा! पूरा बड़ा पोटला शरीर, वाणी आदि संयोग किंचित् अनुकूलता वह ठीक और प्रतिकूल (अठीक), ऐसा जहाँ शोधने जाए, वहाँ उसका अर्थ ही पर में अपना अस्तित्व मानता है। भिन्न हूँ, वह तो उसे खबर नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ **सकल कर्म के उदय से हैं जितने भाव, उनसे भिन्न है।** दूसरा बोल लिया न? फिर हुए अन्दर विकल्प शुभ और अशुभभाव। उन शुभ-अशुभभाव में शुभ, वह ठीक और अशुभ, वह ठीक नहीं—इसमें जो पड़ा हो, उसे आत्मा इनसे रहित कैसे भासित हो? समझ में आया? भगवान आत्मा तो कर्म के निमित्त के, संग के विकल्पों से भी भिन्न है। अब उस विकल्प में जहाँ अटका कि यह... यह... यह ठीक, यह ठीक नहीं और यह ठीक, यह ठीक नहीं और यह ठीक। विकल्प में अटका। उनसे तो भिन्न है। अब जहाँ अटका, उनसे भिन्न इसे कैसे भासित हो? समझ में आया? वह इसे करे तो हो, सुनने से नहीं। यह सुनने से नहीं और राग से भी नहीं और विकल्प से भी नहीं।

यह वहाँ (विकल्प में) घुसने से नहीं होता। वहाँ ज्ञान की पर्याय परिणमती है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! वह परलक्ष्यी ज्ञान, उसे भी जब तक अपना माने, तब तक पृथक् पड़ने का प्रयास नहीं करेगा। आहाहा! समझ में आया? यह तो फिर दो बोल में समाहित किया। और वापस तीसरा आया। समझ में आया इसमें?

इसके ज्ञान का अस्तित्व तो स्व को जानने की पर्यायरूप परिणमे, वह इसका अस्तित्व है। उसके बदले इसका अस्तित्व इस संयोग से या इस विकल्प से और या उसके परलक्ष्यी उघाड़ के भाव से कुछ मुझे आत्मा ज्ञात हुआ, ऐसा हुआ, यह बात ही मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह परलक्ष्यी ज्ञान का उघाड़, वह वास्तविक आत्मा की पर्याय ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उसकी यदि यथार्थ (पर्याय) होवे तो फिर घटे कैसे? नाश कैसे हो? फिर निगोद में चला जाता है, इसका अर्थ क्या? छोटाभाई! आहा! उसका कण अन्दर जगे, यह स्वरूप चिदानन्द प्रभु, उसकी अन्तर की दृष्टि, अन्तर का ज्ञान और उसकी स्वरूपाचरण की दशा (हो), वह आत्मा। वह आत्मा हुआ, वह आत्मा ऐसा का ऐसा रहनेवाला है। समझ में आया? यहाँ गिरने-पड़ने की बात नहीं है।

इसलिए कहते हैं कि कर्म के उदय से जितने भाव, करे भले स्वयं, परन्तु वे विकल्प हैं, वे मूल तत्त्व चैतन्य की गुण, द्रव्य, पर्याय है ही नहीं वे। समझ में आया? आहाहा! **और कैसा है? 'आत्मनियतं' अपने स्वरूप से अमिट (अटल) है।** देखो! कैसा है भगवान? अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र के पर्याय से प्रगट हुआ अमिट है—वह मिटे, ऐसा नहीं है। अन्य सब तो मिट जाए ऐसा है। समझ में आया इसमें? चैतन्य ज्ञायकस्वरूप हूँ, ऐसा जहाँ परलक्ष्य को छोड़कर स्वलक्ष्य से श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति हुए (तो) कहते हैं कि जैसे द्रव्य अमिट है, (वैसे) अब वह पर्याय अमिट हो गयी। वह पर्याय मिटती नहीं, मिटती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'आत्मनियतं' 'नियतं' कहा, देखा? **अपने स्वरूप से अमिट (अटल) है।** शरीर, कर्म, राग से भिन्न जो भगवान; ऐसा भिन्न जाना, तब पर्याय में परिणमन हुआ या नहीं? पर्याय में श्रद्धा, ज्ञान आदि परिणमे (कि) यह आत्मा, यह आत्मा। ऐसे शरीरादि हूँ, वाणी हूँ—ऐसा जो परिणमता वह मिथ्यात्वरूपी परिणमन था। यह आत्मा ज्ञायक चैतन्य ध्रुव है, ऐसी दृष्टि, ज्ञान होने पर उसका परिणमन दर्शन, ज्ञान, चारित्र का होना। द्रव्य और पर्याय अभेद हो गये, अमिट हैं, वह पर्याय अब मिटेगी नहीं। वह आत्मा होकर जागृत हुआ। आहाहा! समझ में आया?

कैसी है ज्ञान की महिमा? यह प्रगट हुआ। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा तो द्रव्य-

गुण से तो अभिन्न है परन्तु उसका भान पर से भिन्न जहाँ किया, **'मध्याद्यन्तविभागमुक्त-सहजस्फारप्रभासुरः' वर्तमान पहला, आगामी ऐसे विभाग से अर्थात् भेद से रहित...** शुद्ध ज्ञानघन चैतन्य प्रभु! वस्तु... वस्तु... वस्तु... महा। समझ में आया? जैसे वज्र को मिटाने से मिटता नहीं, तथापि वह अनित्य वस्तु है। यह भगवान आत्मा... कहते हैं कि शाश्वत् चैतन्य जहाँ अन्तर्दृष्टि में पर से पृथक् जाना, उसे आदि क्या? मध्य क्या? और अन्त क्या? जो है, वह है वह। समझ में आया? आहाहा!

चक्रवर्ती चक्र साधते हैं न? पश्चात् वहाँ पर्वत पर लिखते हैं। कौन सा पर्वत? हैं? वह पर्वत है वेचाक के उस ओर? छह खण्ड साधते हैं। नाम लिखते हैं। इतने चक्रवर्ती हो गये तो नाम लिखने की जगह रही नहीं। वज्र के मणिरत्न से लिखे हुए, हों! मणिरत्न की एक हजार देव सेवा करते हैं। एक मणिरत्न एक हो, उसकी हजार देव सेवा करे। वह चक्रवर्ती जब छह खण्ड साधकर जो सोलह हजार देव और ऐसा लिखे। मैं इसका पुत्र और मैंने छह खण्ड साधे हैं। मैं चक्रवर्ती महाराजा। मैंने मेरी भुजा से छह खण्ड में रहे हुए, देव, देवियाँ, मनुष्य सबको साधा है। यह सब मेरे सेवक हैं, मैं उनका स्वामी हूँ। यह जहाँ बाद के चक्रवर्ती हों, वे पहले को मिटाते हैं। कहाँ इतने कहाँ लिखे जाएँ....? ....आहाहा! यह मिटता नहीं, ऐसी चीज़ है। समझ में आया? अपना ज्ञानानन्दस्वरूप वज्रमय चैतन्य प्रभु की अन्तर में राग और विकल्प से भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न का भान हुआ, कहते हैं कि आदि-मध्य-अन्त में जो है, वह है वह तो। समझ में आया?

(भेद से) **रहित स्वभावरूप अनन्त ज्ञानशक्ति से साक्षात् प्रकाशमान है।** यहाँ अन्तिम बात फिर की न? केवलज्ञान आदि **स्वभावरूप... 'स्फारप्रभा'** प्रगट हो गयी है प्रभा जिसकी, शक्ति जिसकी। केवलज्ञानमय ज्योति प्रगट हो गयी है। असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य उग गये। अनन्त ज्ञानशक्ति अनन्त। परन्तु वह वस्तु अनन्त महापदार्थ जिसके पदार्थ की (महिमा) वाणी से पूरी न पड़े, विकल्प से पूरा न पड़े, ऐसी वह जाति है। उसकी महिमा अन्तर्मुख में आने पर कहते हैं कि वह क्रम-क्रम से जहाँ केवल (ज्ञान) प्राप्त हुआ (तो) सर्व से रहित हो गया। समाप्त! अनन्त ज्ञानशक्ति **'स्फार'** है न? **'स्फारप्रभा'**। **'स्फारप्रभा'** का क्या किया है? **'स्फार'** का अर्थ अनन्त? **'स्फार'**

अर्थात् अनन्त, ऐसा। बेहद स्वभाव ऐसा केवलज्ञान आदि पर्याय प्रगट हुई।

'भासुरः' साक्षात् प्रकाशमान है। और कैसा है? 'शुद्धज्ञानघनः' चेतना का समूह है। वह चेतना का समूह भगवान पर्याय से परिणमकर अकेला चेतना... चेतना... चेतना... चेतना का समूह। राग का सम्बन्ध विकार और फिकार कुछ रहा नहीं। ऐसे भान से वह परमात्मा प्रगट हुआ, वह ऐसा का ऐसा अनन्त काल रहेगा। उसे फिर से वापस गिरना नहीं है। यहाँ भिखारी कल्पित किया और रंक कल्पित किया, रंक। एक जरा सी बीड़ी ठीक से पीने में आवे, वहाँ कौन जाने अन्दर क्या हो जाता होगा? महिलाओं को एक कण्डे का पिण्ड ठीक से मिला हो और एक भैंस निकली हो और एक क्या कहलाता है? टोकरा भराये ऐसा, पूरा टोकरा भराये ऐसा पोहटा (मिले तो) ओहोहो! (हो जाता है)। क्या है परन्तु यह सब? और पकाना-बकाना ठीक हुआ और यह कपड़े-बपड़े और लड़के को ऐसे मलमल के ऐसे और ऐसे। परन्तु क्या है? यह सब वेश जड़ के। उनकी महिमा और इस चैतन्य प्रभु की महिमा नहीं। उसने अब अन्दर से वीतरागपने का वेश धारण किया। मोक्ष भी, पर्याय भी वेश है। हों! पर्याय है न? आहाहा! भगवान ज्ञानरूपी द्रव्य-गुण, उसका परिणमन देकर ज्ञान का वेश सादि-अनन्त भासुरमान प्रगट हुआ। ऐसे आत्मा को आत्मारूप से कहने में आवे और उसे केवलज्ञानरूप से प्रकाशवान हुआ आत्मा पूर्णता को प्राप्त हुआ। कहो, समझ में आया?

कलश - २३६

(उपजाति)

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्
तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः
पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ।।४४-२३६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'यत् आत्मनः इह आत्मनि सन्धारणं' [यत्] जो, [आत्मनः] अपने जीव का, [इह आत्मनि] अपने स्वरूप में [सन्धारणं] स्थिर होना है, 'तत्' एतावन्मात्र समस्त 'उन्मोच्यं उन्मुक्तं' जितना हेयरूप से छोड़ना था, छूटा। 'अशेषतः' कुछ छोड़ने के लिए बाकी नहीं रहा। 'तथा तत् आदेयं अशेषतः आत्तं' [तथा] उसी प्रकार [तत् आदेयं] जो कुछ ग्रहण करने के लिए था; [अशेषतः आत्तं] सो समस्त ग्रहण किया। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप का अनुभव, सर्व कार्यसिद्धि। कैसा है आत्मा? 'संहृतसर्वशक्तेः' [संहृत] विभावरूप परिणमे थे, वे ही हुए हैं स्वभावरूप-ऐसे हैं [सर्वशक्तिः] अनन्त गुण जिसके, ऐसा है। और कैसा है? 'पूर्णस्य' जैसा था, वैसा प्रगट हुआ।।४४-२३६।।

कलश - २३६ पर प्रवचन

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्
तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः
पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ।।४४-२३६।।

४४, बहुत संक्षिप्त श्लोक में संक्षिप्त सार, बहुत संक्षिप्त है न। यह है भी संक्षिप्त, बहुत थोड़ा; थोड़ा अर्थात् थोड़े काल में प्राप्त हो ऐसा, ऐसा। समझ में आया? थोड़े अक्षर में समझ में आये ऐसा, थोड़े भाव से समझ में आये ऐसा बड़ा।

'यत् आत्मनः इह आत्मनि सन्धारणं' जो अपनी जीव का.... ज्ञानानन्द भगवान! समझ में आया? **अपने स्वरूप में 'सन्धारणं' स्थिर होना है...** देखो! अनादि से जो विकल्प और दया, दान, पुण्य-पाप की अस्थिरता में, राग में स्थिर था, उसे भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्द ज्योति में स्थिर किया। उस आत्मा ने आत्मा का '**सन्धारणं**' किया। '**सन्धारणं**' क्या आता है बाहर में? '**सन्धारणं**' लोक में प्रयुक्त होता है न प्रश्न ऐसा? समझ में आया? स्थिर होना। '**सन्धारणं**' ... या पूरा शब्द है? **सम्** '**सन्धारणं**' सम्यक् प्रकार से, ऐसा। सम्यक् प्रकार से। क्या कहा?

भगवान आत्मा... यह अन्तिम श्लोक है न? इसलिए इसका रूप प्रगटरूप से पूर्ण, उसकी विशेष व्याख्या की है। शक्तिरूप तो वस्तु पूर्ण ही है परन्तु उसका अन्तर पर से पृथक् होकर भान हुआ, भान अर्थात् वह स्वयं अपने को '**सन्धारणं**' स्वयं अपने आप ऐसे बराबर स्थिररूप से धार रखा। समझ में आया? **अपने जीव का अपने स्वरूप में स्थिर होना है... 'तत्' एतावन्मात्र....** बस! कहते हैं, वह सब '**उन्मोच्यम् उन्मुक्तम्**' **जितना हेयरूप से छोड़ना था सो छूटा।** है? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन के स्वभाव में स्थिर होने से स्वयं अपने स्वरूप में—स्वरूप में, स्वभाव में, ध्रुवता में स्थिर होने से कहते हैं कि जो कुछ छोड़नेयोग्य था, वह छूट गया। रागादि, विकल्प आदि छोड़नेयोग्य वस्तु छूट गयी। समझ में आया?

'**उन्मोच्यम् उन्मुक्तम्**' ऐसा। '**उन्मोच्यम् उन्मुक्तम्**' अर्थात् छूटनेयोग्य छूट गया, ऐसा कहते हैं। दो शब्द हैं न? छूटनेयोग्य छूट गया, रहनेयोग्य रह गया। समझ में आया इसमें? भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु! उसका अन्तर में एकाकार होने से आत्मा ने आत्मा को '**सन्धारणं**' अन्दर में स्थिर किया। स्वरूप में, स्वरूप में स्थिर किया। यह चारित्र की व्याख्या सहित की सब व्याख्या है न यहाँ? बड़ी बातें। इस जगत की मिठास में कहीं पड़ा अब, उसे सूझ, सूझ नहीं पड़ती अन्दर। है, इतना का इतना अनादि का ऐसा का ऐसा है। सातवें नरक में गया या निगोद में रहा, वह ऐसा भगवान परिपूर्ण अनन्त गुण की खान, खान, वह खजाना ऐसा का ऐसा है। उस अन्तर्मुख की दृष्टि और ज्ञान में स्वयं अपने को स्थिर किया, स्वयं अपने को धारण किया, स्वयं अपने में स्थिर हुआ, बस! हो गया, कहते हैं। यह छूटनेयोग्य छूट गया।

'**उन्मोच्यम्**' अर्थात् जो छूटनेयोग्य था रागादि, विकल्पादि '**उन्मुक्तम्**' छूट गया। '**अशेषतः**' **कुछ छोड़ने के लिये बाकी नहीं रहा।** समझ में आया? अपने शुद्धस्वरूप में स्थिर होने से स्वयं अपने में स्वयं ठहरने से, छूटनेयोग्य विकल्प छूट गये, अल्पज्ञपना छूट गया। अब, अशेष कुछ भी छोड़ने को बाकी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**तथा तत् आदेयम् अशेषतः आत्तम्**' लो! '**तथा तत् आदेयम् अशेषतः आत्तम्**' समझ में आया? आत्म। क्या कहा? देखो! दोनों आमने-सामने कहे। वस्तु भगवान पूर्णानन्द का प्रभु, उसके अन्तर में दृष्टि ज्ञान करके स्थिर हुआ, कहते हैं कि स्वयं अपने में स्थिर हुआ, स्वयं अपने में स्थिर हुआ। जो कुछ छूटने का था, वह छूट गया और जो रहने का था, वह रह गया। **जो कुछ ग्रहण करने के लिये था, सो समस्त ग्रहण किया।** क्या? अपना पवित्र शुद्धस्वरूप जो ज्ञान और दृष्टि में ग्रहण किया; पूर्ण ग्रहण किया, वह ग्रहण किया। ग्रहण करनेयोग्य, वह ग्रहण किया और छोड़नेयोग्य, वह छूट गया। समझ में आया? भारी संक्षिप्त बातें।

यह परवस्तु छोड़ना और ग्रहण करना कब होगा आत्मा में? उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। समझ में आया? अन्दर में विकल्प आदि और अल्पज्ञता जो थी, (वह छूट गयी)। पूर्ण प्रभु का अन्तर आश्रय करके दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता हुई, इसलिए आत्मा आत्मा में रहा। छूटने का जो छूट गया, ग्रहण करने का वह पूरा ग्रहण हो गया। पूर्ण भगवान आत्मा था, वह दृष्टि-ज्ञान में स्थिरता में ग्रहण योग्य वह ग्रहण हो गया। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त भाषा और भाव की बड़ी महिमा।

उसी प्रकार... उसी प्रकार से अर्थात्? जो छूटने का था, वह छूटा ऐसा **जो कुछ ग्रहण करने के लिये था सो समस्त ग्रहण किया।** अब, कुछ ग्रहण करने का बाकी रहा नहीं और छोड़ने का कुछ बाकी रहा नहीं। यह आत्मा का अनुभव स्थिर होने पर अब कहते हैं कि जो कुछ आया, वह आया और गया, वह गया, समाप्त। समझ में आया इसमें? जहाँ परमात्मा की भेंट हुई, एक समय का भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता में भेंट हुई, वह हुई सो हुई कहते हैं। ग्रहण करने का था वह पूरा ग्रहण हो गया और छोड़ने का था, वह सब छूट गया। अब ग्रहण-त्याग कुछ रहा नहीं।

समझ में आया ? आहाहा ! बाहर की बात नहीं, हों ! मात्र विकल्प आदि, अल्पज्ञपना आदि छूट गया और पूर्णानन्द का जो नाथ है, वह ग्रहण योग्य पूर्ण ग्रहण हो गया, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। बाहर का ग्रहण-त्याग स्वरूप में है ही नहीं। उपादान, त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। समझ में आया ? **समस्त ग्रहण किया।**

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव सर्व कार्यसिद्धि। देखो ! देखो ! देखो ! यहाँ आया वापस। क्या कहा ? इस **शुद्ध स्वरूप का अनुभव सर्व कार्यसिद्धि।** बराबर रचा है न ! चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का प्रभु वह जहाँ अनुभव में—अन्तर में अनुभव में आया, (वहाँ) सर्व कार्य सिद्धि (हो गयी)। समझ में आया ? वह कृतकृत्य हो गया, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भीखाभाई ! यह देखो ! ... डालकर वापस यहाँ डाला। देखो ! यह वस्तु ही है, हों ! ऐसा ही कहा है यहाँ। कहने का यही आशय है यहाँ। ऐसा परमानन्द का नाथ अनन्त गुण चैतन्यरत्नाकर एक-एक गुण की अनन्त सामर्थ्य शक्तिवाला पूरा तत्त्व, जहाँ ऐसा सम्यग्दर्शन के अनुभव में बैठा, बैठा कि यह आत्मा निर्विकल्प आनन्द प्रभु है। ऐसा शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ। पूरा। सर्व कार्यसिद्धि (हो गयी)। यह सर्व कार्यसिद्धि मुक्त हो गया, मुक्त—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

पूर्ण है, वह तो मुक्त है पर्याय में, यह तो यह जहाँ शुद्धस्वरूप का अनुभव (हुआ)। विकल्प आदि का ज्ञान रह गया, ज्ञान का ग्रहण हो गया और विकल्प आदि के त्याग का त्याग ज्ञान में रह गया। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! **शुद्ध स्वरूप का अनुभव सर्व कार्यसिद्धि।** भगवान आत्मा परमानन्द का नाथ शुद्धस्वरूप, उसे अनुसरण कर अन्तर में अनुभव दशा हुई (तो) सर्व कार्य सिद्धि (हुई)। समझ में आया ? अब कार्य कुछ करने का बाकी नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। भगवान मिलने के बाद क्या काम बाकी होगा उसे ?

मुमुक्षु : बहुत अधिक काम करने होते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सिद्ध हो गये। आत्मा के करने के, बाहर के कहाँ करने के धूल के (करने के) थे। व्यर्थ का मूढ़ होकर मानता है। यह किया और यह किया और यह किया। अब हम वृद्ध हो गये। बहुत काम किये। बापू ! किसके धूल के किये ? मूढ़ता के किये। वे मूढ़ता के किये, सब कार्य बाकी रह गये। यहाँ तो यह भान के काम

किये (तो) सब कार्य सिद्ध हो गये। समझ में आया? जड़ को कौन करता था? यह किये और यह किये और मोटर में गये और अमुक में गये और धूल में गये और कहीं गया नहीं। तीन काल में कहीं, अपने पर्याय को छोड़कर कहीं गया नहीं। मूढ़ता में था। उसमें सब काम, कुछ किये नहीं इसने। करने के थे, वे किये नहीं और नहीं करने के माने और मूढ़ता की है, ऐसा यह कहते हैं। यह जो करने का था किया, हो गया, जाओ!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का अनुभव। वस्तु का, गुण का, गुण का, वस्तु का, वस्तु महान प्रभु का अनुभव (हुआ, वहाँ) हो गया। सब छूट गया, छूटने का छूटा और ग्रहण करने का ग्रहण हो गया, यह सर्व कार्यसिद्धि इसमें हुई। समझ में आया? यह करने का यह है। क्या होगा यह सब? तुम तो वहाँ बहुत काम करते हो। संस्थाएँ निभाना चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो! कलकत्ता में भी करते थे, यहाँ करते और वापस पोरबन्दर में। तीन जगह करते हैं, लो!

.... वापस वहाँ ऐसा कहते हैं, देखो! वापस कर्म भी उस प्रकार का वहाँ हो और खिर जाए। कर्म भी वहाँ खिर जाए। ऐसे रोग हो, ऐसे रोग की दवा करे तो असाता भी खिरी। उसके कारण असाता खिरती होगी? भारी गप्प लगायी है न! असातावेदनीय का उदय हो और यदि रोग में दवा-बवा लावे... क्या टुकड़े हो गये हैं कर्ज के? कर्ज दे दिया गया। वह माँगता था पाँच हजार, ले जा। वैसे ही आयुष्य के परमाणु की स्थिति पूरी हो गयी, उसका नाम टूटा कहलाता है, बाकी आगे-पीछे हो—(ऐसा है नहीं)। आहाहा! परन्तु भारी। अभी औषध से देह की अवस्था पलटानी है और देह की अवस्था पलटने से असातावेदनीय के रजकण खिरा डालने हैं। ऐसा मिथ्यात्वरूप से, विभावरूप से परिणमन का कार्य उसका था, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कैसे होगा? देवशीभाई! तुम तो बहुत कमरे बनाकर तोड़ते हो और फोड़ते हो और बहुत करते हो या नहीं? ऐसा करते होंगे या नहीं? यहाँ एक ओर बड़ा ऊँचा किया है। लम्बा होवे तो और वापस टूटा। कहा, कुछ हुआ और वापस। हमारे तो जंगल जाना होता है न वहाँ, इसलिए प्रतिदिन दिखता है। यह तो उसके काल में टूटने का ही था, हों! उसमें किसी ने तोड़ा-फोड़ा नहीं। उसके परमाणु का काल कार्य का ऐसा ही ऊँचा होने का था और गिरने के काल में उसी प्रकार की वही दशा होनी थी। कोई देवजीभाई के कारण से हो,

मगनभाई के कारण से हो, हराम बात पर में होवे तो, कहते हैं। देवजीभाई!

यहाँ तो इतना कहा, देखो! क्या कहा? '**संहृत**' की व्याख्या क्या की? '**संहृतसर्वशक्तेः**' **विभावरूप परिणमे थे....** वह स्वयं स्वभावरूप अनन्त शक्तिरूप परिणम गया। **अनन्त गुण जिसके, ऐसा है।** अनन्त-अनन्त गुण का विपरीत परिणमन उसमें जितना, कितना ही था, सब गुण का तो कहाँ है? समझ में आया? आत्मद्रव्य में अनन्त गुण है, उन अनन्त गुणों के कितने ही (गुण का) विकाररूप परिणमन था। पर के अभिमान के कार्य का भाव, विभावरूप भाव। विकल्प पुण्य-पाप के भावरूप परिणमन जो था, वह विभावरूप परिणमन था, वह गया। वह स्वभावरूप हो गया। विभावरूप गया और पर्याय में स्वभावरूप हो गया। समझ में आया? भारी बातें यह।

'**सर्वशक्तेः**' **अनन्त गुण जिसके,....** अर्थात् क्या कहा? जितने गुण हैं, वे सब स्वभावरूप परिणम गये, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भाई! विभावरूप तो अमुक परिणमे थे। समझ में आया? भगवान अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, उसमें विकाररूप तो अमुक गुण ही थे, कहीं सब गुण विकाररूप नहीं थे। परन्तु जो विकाररूप अभिमान में अज्ञानरूप से, राग-द्वेषरूप से विभाव, विकार था, वह भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि और अनुभव करने से जितने गुण हैं, उतने सब स्वभावरूप परिणम गये। समझ में आया?

तब सम्यग्दर्शन को ऐसा कहा न? 'सर्वगुणांश वह समकित' उसमें हेतु है न? द्रव्य है या नहीं वस्तु? द्रव्य है या नहीं वस्तु? तो द्रव्य है, उसका परिणमन होने से; द्रव्य है, उसके अनन्त गुण जो हैं, उनके सम्यक्‌रूप से परिणमन होने पर अनन्त गुणों का परिणमन सम्यक् हो गया है। समझ में आया? पूरी चीज़ है या नहीं? उसमें संख्या से अनन्त गुण पड़े हैं। ऐसे द्रव्य की प्रतीति और अनुभव होने पर अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं जो है, वे सब गुण सम्यक्‌रूप से, शुद्धरूप से परिणमे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो द्रव्य का, वस्तु का अनन्त-गुणस्वरूप था प्रभु आत्मा का, (उसका) अन्तर अनुभव होने पर, अन्तर के ज्ञान और आनन्द में उसकी दृष्टि में स्थिर होने पर अनन्त गुण, कितने ही विभावरूप थे, भले समुच्चय बात ली है, परन्तु वे वहीं के वहीं उसी

जगह अनन्त गुण स्वभावरूप परिणम गये। समझ में आया?

और कैसा है? 'पूर्णस्य' जैसा था वैसा प्रगट हुआ। ऐसा कहते हैं। पूर्ण अर्थात् था न पूर्ण? पूर्ण था, वैसा दशा में पूर्ण हुआ, वह अन्दर पूर्ण हो गया। आहाहा! क्या कहते हैं? इसमें कहीं अता-पता सूझता नहीं। लोगों को भगवान आत्मा का अभ्यास ही घट गया है। जो हिन्दुस्तान की मूल विद्या है। आर्य विद्या—अध्यात्म विद्या। जो अध्यात्म विद्या मूल विद्या, मूल शिक्षा। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त-अनन्त गुणराशि एक आत्मा, वह स्वयं भूला और विकारी कार्य में परिणमित हुआ था, बस! इतनी दशा थी, दूसरा कुछ नहीं था। उस स्वभाव के अन्तर स्वरूप की भेंट होने पर विभाव परिणमन था, वह स्वभावरूप हो गया। अर्थात् परिणमन में स्वभाव आ गया। समझ में आया?

अनन्त गुण जिसके, ऐसा है। 'पूर्णस्य' जैसा था वैसा प्रगट हुआ। जैसी वस्तु थी, भगवान वस्तु द्रव्य, द्रव्य तत्त्व अनन्त गुण रत्नाकर, वह अनन्त गुण रत्नाकर, आत्मा अनन्त गुण रत्नाकर जैसा था, वैसा पर्याय में अनन्त गुणरूप पूर्ण परिणम गया। कहो, समझ में आया? आहाहा! इस सम्यग्दर्शन में वह पूर्ण, उस जाति की पर्याय पूरी, पूरी हुई। भले पर्याय हीन है परन्तु अनन्त गुण का परिणमन पूरा हुआ है, इस प्रकार से तो पूर्ण ही है। पर्याय अधूरी (है), पूरी होकर रहेगी। समझ में आया? **जैसा था वैसा प्रगट हुआ।** वह विकल्परूप नहीं था, पुण्य-पाप के विभावरूप नहीं था। अकेला स्वभाव का पिण्ड था। ऐसा भगवान आत्मा का अनुभव करने से, उसके सन्मुख देखकर स्थिर होने से जैसा स्वभाव है, वैसी पर्याय में पूर्णता हो जाए, इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग और इसका नाम मोक्ष। लो! समझ में आया?

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

समझ में आया? आहाहा! ४४ श्लोक हुए। सब छोटे-छोटे हैं, हों! यह सब बहुत छोटे। पश्चात् स्याद्वाद (अधिकार के) बड़े आयेंगे। यह थोड़ा, थोड़ा है या नहीं?

गाथा - २३७

(अनुष्टुप्)

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेयं ज्ञानमवस्थितम्।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शंक्यते।।४५-२३७।।*

श्लोकार्थ— 'एवं' इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से), 'ज्ञानं परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं' ज्ञान, परद्रव्य से पृथक् अवस्थित (निश्चल रहा हुआ) है; 'तत्' (ज्ञान), 'आहारकं' आहारक (अर्थात् कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला) 'कथं स्यात्' कैसे हो सकता है 'येन' कि जिससे 'अस्य देहः शंक्यते' उसके, देह की शंका की जा सके? (ज्ञान के, देह हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके, कर्म-नोकर्मरूप आहार ही नहीं है।)।।४५-२३७।।

कलश - २३७ पर प्रवचन

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेयं ज्ञानमवस्थितम्।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शंक्यते।।४५-२३७।।

अन्तिम गाथाएँ हैं न यह? ४०६ का गया। विभाव हो तथापि ग्रहण नहीं कर सकता। उसमें इसमें था, नीचे आ गया। समझ में आया?

श्लोकार्थ :- 'एवं' इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) 'ज्ञानं परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं' भगवान आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति, वह **ज्ञान परद्रव्य से पृथक् अवस्थित (निश्चल रहा हुआ) है;...** भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान पुण्य-पाप के विकल्प के विभाव से, शरीर से, कर्म से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान अकेला ज्ञान स्वयं परद्रव्य से भिन्न सिद्ध हुआ। ज्ञान, ज्ञान में स्थित हुआ। समझ में आया? ज्ञान अर्थात् आत्मा, हों! वहाँ ज्ञान अर्थात् आत्मा।

'ज्ञानं परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं' ज्ञान अर्थात् भगवान आत्मा। राग, शरीर, कर्म आदि से भिन्न करके—भेदज्ञान करके, पर से भेदज्ञान करके भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु वह पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, कर्म, अस्ति से भिन्न हूँ। ऐसा अन्दर

में स्वरूप में पर से भिन्न करके ज्ञान, ज्ञान में अवस्थितपने को प्राप्त हुआ, इसका नाम आत्मा और इसका नाम धर्म और मोक्ष कहा जाता है। आहाहा! भारी व्याख्या, भाई! समझ में आया? **पूर्वोक्त रीति से...** ऐसा कहा है न? ऐसा। '**एवं**' लगा है न? उसके साथ लगाया। '**एवं**' '**परद्रव्यादेवं**' ऐसा है न? बीच में, दूसरे शब्द में।

इस प्रकार से भगवान आत्मा '**परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं**' वस्तु, वस्तु भगवान शाश्वत् अनन्त चैतन्य ज्योति ऐसा आत्मा शरीर, वाणी, मन से भिन्न पड़कर, जो उसमें नहीं था, उसमें से निकलकर तथा पुण्य-पाप के भाव भी विकारी हैं, उनसे पृथक् पड़कर स्वयं वस्तु, वस्तु में स्थिर हुआ, उसे आत्मा की मुक्ति और आत्मा का धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

(-निश्चल रहा हुआ) है;... 'तत्' वह (ज्ञान)... 'आहारकं' आहारक (अर्थात् कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला)... 'कथं स्यात्' ओहो! क्या कहते हैं? भगवान! तू चैतन्यमूर्ति प्रभु! निराहारी, रागरहित चीज़ है। ऐसी चीज़ को आहार करना या न करना, यह वस्तु में है कहाँ? आहार तो जड़ है, मिट्टी धूल है। ऐई! डॉक्टर! क्या होगा यह? मौसम्बी और आहार और दाल-भात तथा सब्जी, रोटी और रोटी... कहते हैं कि वह तो मिट्टी, जड़ धूल है। भगवान आत्मा को आहार कैसा? आहाहा! गजब बात, भाई! तब कहे, आहार करता है न यह? आहार कौन करता है? वह तो जड़ की अवस्था है। अज्ञानी को विकल्प होने पर ऐसा मानता है कि मैं आहार करता हूँ। आहार तो रजकणों की, मिट्टी की दशा है। मिट्टी के ग्रास, धूल के ग्रास, दाल, भात, रोटी, सब्जी, मौसम्बी पानी, लड्डू दाल, वह मिट्टी है और उसका परिणमना पुद्गल है। पूरण और गलन ऐसी दशा उसके स्वभाव से होती है। मूढ़ वहाँ विकल्प करके ऐसा मानता है कि मैं आहार करता हूँ। आहार तो मिट्टी, जड़ है और भगवान आत्मा तो अरूपी है। वह अरूपी, रूपी को खाता होगा? घुस गया है अन्दर में? क्या है? जैचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : लड्डू खाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन खाये? लड्डू अर्थात् क्या? और आत्मा अर्थात् क्या? इसका कभी विचार किया है? आत्मा अर्थात् क्या और लड्डू अर्थात् क्या? भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन, जिसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श का अभाव है। जिसमें राग

और विकल्प विकारी पर्याय का अभाव। सिद्ध को नहीं, यों ही अज्ञानी को भी आहार नहीं। परन्तु यहाँ तो कहना है कि ज्ञानस्वरूप का भान होने पर उसे आहार का विकल्प भी उसके नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु आहार तो खाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाता है। होली करता है, खाता क्या है?

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण तो करना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह? उस समय मूढ़ होकर मैं एक अरूपी आनन्दकन्द ज्ञानानन्द हूँ, उसे भूलकर जड़ की क्रिया होती है, उसे मैं करता हूँ, ऐसा मूढ़ मानता है।

मुमुक्षु : आपके सब तर्क बराबर हैं परन्तु कल खाना या नहीं खाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाये और कौन न खाये? आहाहा! समझ में आया? यह तो, बापू! दूसरा प्रकार है।

चैतन्य भगवान आत्मा रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ है। आत्मा में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं। वह तो अरूपी, परन्तु वस्तु है या नहीं? अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। उस आत्मा को आहार कैसा? ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहार तो क्या, परन्तु आहार का विकल्प भी उसे नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! शुद्ध को और यह विकल्प कैसा? और आहार कैसा? इस अज्ञानी ने अनादि से चैतन्य की जाति आनन्दकन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे यह आहार की क्रिया मुझसे होती है और मैं करता हूँ, वह मूढ़ भ्रम में, मिथ्याभ्रम में मान बैठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : आनन्द आता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल में आनन्द आता होगा वहाँ? भैंस के घी में आता होगा आनन्द? भाई! कोई कहता था, बात करता था, हों! कोई कहता था। गाँव में सेठिया व्यक्ति। भैंस आवे और बढ़िया कुड़िया जैसा घी आवे। उसे छोड़कर यहाँ नहीं आते, ऐसा कहता था। अब और यहाँ पड़े हैं। कोई कहता था, हों! चाहे जैसे। कोई कहता हो, वह हमने सुना। हम कहाँ देखने गये हैं तुम्हारे घर में? घी तो होता है। यों

भी पोरबन्दर का घी बहुत महिमावाला है। धूल में घी तो मिट्टी, यह मिट्टी है, मिट्टी-धूल और वह घी यहाँ मुँह में डालो, यह तुरन्त ही उसकी लार होती है। लार होने के बाद पेट में नीचे उतरती है। नहीं तो देखना किसी दिन मुख में देखना होवे तो। समझ में आया? यह मावा का जामुन होता है, परन्तु वह यहाँ पड़े तब कहीं पूरा गिरेगा? थूक छुए, लार हो, श्वान की जूठन, हों! ऐसे मुँह में देखे तो खबर पड़े कि यह क्या उतारता हूँ नीचे? परन्तु मूढ़ को भ्रमणा का प्रेम है न! यह ऐसी कोमल चीज़ मैं खाता हूँ, ऐसा मानता है। अन्दर उतरे, तब तो श्वान की जूठन है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू तो चैतन्य है न! तुझे आहार के रजकणों की क्रिया, वह तुझे कहा से आयी? यह तो ठीक, परन्तु आहार का विकल्प भी तेरे अन्दर कहाँ है? अनाहारक आनन्दकन्द में वह कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **'आहारकं' कर्म-नोकर्म...** देखा न! आठ कर्म का और नौ कर्म का, इन दोनों का कहते हैं, हों! देखो! भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का जहाँ राग से, पर से भिन्न का भान भगवान आत्मा है, ऐसा भान (हुआ, वहाँ) अब कर्म का ग्रहण करना, ऐसा विकल्प भी कहाँ और कर्म ग्रहण करे, ऐसा स्वभाव भी कहाँ रहा? और आहार ग्रहण करने का विकल्प नहीं तो आहार का ग्रहण करना तो उसके स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

अरे! धर्मात्मा को तो चैतन्य के आनन्द के अनुभव का आहार होता है, ऐसा कहते हैं। उसे फिर यह आहार की खुराक (कैसी)? वह खाता नहीं, वह देखता है कि यह खाता है। आहाहा! अमृतभोजी! वह पर को जानता है, वह स्वयं खाता नहीं। इस अज्ञानी को भ्रमणा छुड़ाने के लिये बात की है न! (अज्ञानी) आहार की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसा मानता है। बापू! तू तो अरूपी है न भाई! अखण्डानन्द प्रभु, उसे अज्ञानरूप से राग हो, परन्तु वस्तु में आहार खाना और छोड़ना, यह वस्तु में कहाँ है? वह तो जड़ की क्रिया है। ऐसा जिसे अन्तर में भान होता है, उसे आहार का विकल्प होने पर भी वह अनाहारी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह इसका नाम आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति कही जाती है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ५, रविवार, दिनांक-२८-११-१९६५, कलश-२३७ से २३९, प्रवचन-२५३

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, ४५ कलश है, इसका अर्थ नहीं हो, ऐसा न? राजमलजी की टीका में (नहीं)। ऐसा? देखो! क्या कहते हैं? '**एवं**' **इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) ज्ञान....** यह ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञानस्वरूप ऐसा चिद्घन आत्मा वह '**परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं**' वह परवस्तु से भिन्न निश्चल रहा है। वह आत्मा... इसमें है न? इसके ऊपर में ही सब गाथायें हैं न? समझ में आया?

यह आत्मा है, वह परद्रव्य को ग्रहण, छोड़ नहीं सकता। आत्म पदार्थ वह भिन्न पदार्थ आत्मा से भिन्न जो हैं; कर्म हो, शरीर हो, वाणी हो, लड्डू, दाल, भात, सब्जी बाहर की चीज़ कोई भी मकान, पत्थर, गहने, वस्त्र... दागीना समझते हैं? जेवर, जेवर। उन सब चीज़ों को आत्मा ग्रहण नहीं कर सकता, छोड़ नहीं सकता, उठा नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता, रख नहीं सकता। क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण करना या छोड़ना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आत्मा में वह शक्ति ही नहीं है। कदाचित् आत्मा राग और द्वेषरूप हो, इच्छारूप परिणमे, परन्तु इच्छा के कारण से परद्रव्य ग्रहण कर सके या उठा सके ऐसा नहीं है। समझ में आया? इच्छा हुई कि तलवार लूँ तो इच्छा हुई, इसलिए तलवार ले सकता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ले तो सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ले सकता ही नहीं, ऐसा कहा है। यहाँ इच्छा है, वह विभावरूप परिणमन है, परन्तु वह तलवार ले या हाथ ऊँचा करे, यह आत्मा की इच्छा में वह ताकत नहीं है। परद्रव्य को ग्रहण करना-छोड़ना, वह आत्मा के विकार परिणाम में भी नहीं और आत्मा शुद्ध स्वभाव से शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्दरूप हो तो भी परद्रव्य को उठाये, ग्रहण करे, छोड़े, यह उसकी पर्याय में भी है नहीं। समझ में आया? लो! यह कुछ कर नहीं सकता? यह ग्रास उठा सकता है या नहीं ऐसे? हाथ कर सकता है या नहीं ऐसे? नहीं। वह जड़ परमाणु की पर्याय का स्वकाल उसके कारण से ऊँचा-नीचा होता है। आत्मा की इच्छा के कारण से होता है, यह बात तीन काल—तीन लोक में है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हिले। यों भी चले तब कहाँ उससे चलता है? चले तब उसके कारण चलता है। यह आत्मा के कारण है ही नहीं, बिल्कुल तीन काल में ऐसा नहीं है। विभावरूप आत्मा परिणमे या स्वभावरूप जीव हो, परन्तु परवस्तु को ग्रहण करना, छोड़ना, छोड़ना, रक्षा करना, तोड़ना, वह तो तीन काल में कर नहीं सकता, कहो, बराबर होगा यह? इच्छा होवे तो इंजेक्शन ले सकता है या नहीं? प्रत्यक्ष होता है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। एक तिनके के दो टुकड़े करने की आत्मा में, विकार में या स्वभाव में शक्ति है ही नहीं। जगत के पदार्थ उनके कारण से परिणमकर बदलें उन्हें आत्मा करे यह मान्यता उसके मिथ्याभ्रम अज्ञानी की है। समझ में आया? स्वभाव शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्द के अनन्त बलरूप से आत्मा की पर्याय हो, तो भी उसमें वह शक्ति नहीं होती कि परपदार्थ को स्वयं स्वभाव में बहु बलवन्त हुआ, इसलिए परपदार्थ को तोड़े, फोड़े, टाले, ऐसा नहीं हो सकता।

एक व्यक्ति यह कहता है कि आत्मा में शक्ति है, अनन्त शक्तियाँ हैं परन्तु सर्व शक्ति नहीं। ऐई! लेख आया था अभी। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ सही, सर्व शक्ति नहीं। यदि सर्व शक्ति हो तो जड़ का काम कर सकना चाहिए। समझे न? भगवान में यदि सर्व शक्ति हो तो दूसरे के कर्म तोड़ डालना चाहिए। धर्मचन्दजी! हाय... हाय..! ऐसे के ऐसे ये ऐसे तर्कवाले उल्टे निकले हैं न! भगवान को सर्व शक्तिमान नहीं कहेंगे, अनन्त शक्तिमान कहेंगे। लेख आया है न? दिल्ली से। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा सर्व शक्तिमान अनन्त बल है आत्मा में, उस अनन्त बल के परिणमनरूप से आत्मा परिणमा, अनन्त बलरूप से (परिणमा), तथापि उसमें हाथ ऊँचा कर सके, वह सामर्थ्य उसके अनन्त बल में अन्दर है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यदि पर का करे और दूसरे के कर्म को तोड़े तो भगवान सर्व शक्तिमान कहलाये। आहाहा! धूल में भी सर्व शक्तिमान उसे कहते ही नहीं। सर्व शक्ति अर्थात्

अनन्त स्वरूप शुद्ध की रचना करे, ऐसा आत्मा में... समझ में आया ? बल पड़ा है। अपने शुद्धस्वरूप की पर्याय को परिणमे, परन्तु दूसरे के एक रजकण को भी छोड़े—ग्रहे ऐसी शक्ति आत्मा में है नहीं। समझ में आया ? कठिन बात है या नहीं ?

(-निश्चल रहा हुआ)... यह तो ज्ञान से पर पृथक् वस्तु जो है, उससे पृथक्, परन्तु वह अपने में निश्चल रहा है। बस ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन हो या मिथ्यादर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो या मिथ्याज्ञान हो, सम्यक्चारित्र हो या मिथ्याचारित्र हो। परन्तु रजकण, आत्मा के अतिरिक्त किसी परपदार्थ की आत्मा क्रिया—ग्रहण-त्याग करे, यह है नहीं। यह मुँह ऐसे हिलना, यह आत्मा की क्रिया नहीं, आत्मा कर नहीं सकता—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : भगवान बोल सके ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल नहीं सकता भगवान। भगवान बोले ? भाषा बोले, भगवान क्या बोले। भगवान भाषा की पर्याय करने के लिये शक्तिमान नहीं। योग आती है भाषा। पाठ में तो ऐसा आता है, ३७२ में। समझ में आया ? (समयसार) ३७२ (गाथा में) आता है न ? उसमें तो ऐसा है कि अयोग्य है, आत्मा अयोग्य है, पर के लिये अयोग्य है। समझ में आया ? देखो !

और भी ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि परद्रव्य जीव को रागादि उत्पन्न करते हैं, क्योंकि अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुणों को उत्पन्न करने की अयोग्यता है.... अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुणों का उत्पाद करने की अयोग्यता है। अर्थात् ? सर्वज्ञ परमात्मा भी भाषा की पर्याय उत्पन्न करे, ऐसी भगवान में अयोग्यता है। भगवान को अयोग्यता कहलाये ? अयोग्यता, ऐसे मनुष्य को लगे। क्या आया यह देखो ! **अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुणों को उत्पन्न...** अर्थात् पर्याय करने की किसी द्रव्य में योग्यता नहीं है। भगवान भी वाणी कर सके, ऐसी आत्मा की अनन्त वीर्य में भी योग्यता नहीं है। आहाहा ! यह नहीं। यह करे, करे, ऐसा कहे। समझ में आया ?

क्योंकि सर्व द्रव्यों का स्वभाव से ही उत्पाद होता है। सिद्धान्त यह है पूरा। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु वर्तमान उसकी पर्याय के उत्पादरूप से परिणमता है, उसे

दूसरा द्रव्य उसका उत्पाद करे, ऐसी किसी द्रव्य में उसकी योग्यता नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा राग करे तो भी कर्म की पर्याय को उत्पन्न करे, ऐसी आत्मा में योग्यता है ही नहीं। आहाहा! आत्मा दया का शुभभाव करे, इससे वह परजीव के शरीर और आत्मा को योग रख सके, ऐसी आत्मा में योग्यता है ही नहीं। आहाहा! भारी कठिन! भगवान ने दया कही है। अरे! सुन न! वह तो शुभभाव की दया का भाव कहा है। दूसरे जीव को न मारने का अहिंसा का शुभभाव विकल्प व्यवहार होता है, परन्तु इससे परजीव को बचा सके, ऐसी योग्यता आत्मा में आवे, यह तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : कर तो सकता है परन्तु अहंकार नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यह बात खोटी, बचा क्या धूल सकता है? अहंकार नहीं करना। परन्तु कर सकता नहीं, फिर और अहंकार कहाँ से आया? कर सकता नहीं न! आसक्ति रखे बिना दूसरे के काम करना, यह बात ही मिथ्या है। समझ में आया? बड़ा विवाद है। शशीभाई! अनासक्ति योग है न? नहीं। अनासक्ति का अर्थ तो आत्मा में पुण्य और पाप न हो और निर्मल श्रद्धा-ज्ञान हो, उसका नाम अनासक्ति। परन्तु अनासक्ति द्वारा पर के कार्य कर सकता है, यह तीन काल में द्रव्य के अन्दर में वस्तु में लायकात—योग्यता है नहीं। उल्टी मान्यता (करे)। समझ में आया इसमें?

तो कहते हैं '**आहारक (अर्थात् कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला) कैसे हो सकता है...** तो भगवान आत्मा शरीर को और कर्म को ला सके, कर्म को बाँध सके, कर्म का आहार ले और नोकर्म ग्रास, दाल, भात, पानी ले, यह तीन काल में होता नहीं। मूढ़ जीव ने मिथ्यादृष्टि में मिथ्यात्वभाव से मान रखा है। खबर नहीं होती कुछ तत्त्व (क्या है)। वाड़ा में जन्मे, हम जैन हैं, वे कहें, हम अन्य हैं। समझ में आया? परन्तु वस्तु की योग्यता की सीमा, सीमा उसकी मर्यादा कैसे है और दूसरे तत्त्व की सीमा उसके उत्पाद के काल में उसकी मर्यादा उसमें है। दूसरा द्रव्य उसकी सीमा से आगे जाकर दूसरे द्रव्य की उत्पादरूपी दशा को करे, यह योग्यता किसी द्रव्य में नहीं हो सकती। केवलज्ञानी में भी यह योग्यता नहीं। आहाहा! केवलज्ञानी में योग्यता नहीं?

अरे! भगवान! अनन्त वीर्य के धनी, वे स्वयं न करे? करे किसका? स्वयं का। अपनी पर्याय का परिणमन करे परन्तु पर का कुछ कर दे (नहीं)। दूसरे को तिरा देने की केवलज्ञानी में भी योग्यता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! भीखाभाई!

भगवान आत्मा अपने अनन्त गुण का परिणमन करने की उसमें योग्यता है, परन्तु दूसरे द्रव्य की किसी की पर्याय कर दे—ऐसी योग्यता किसी द्रव्य में निगोद से लेकर सिद्ध या केवलज्ञानी तीन काल में किसी की योग्यता है नहीं। सब पदार्थ वर्तमान अपनी पर्याय से उत्पाद होते देखने में आते हैं। पर से उत्पाद हो, यह देखने में आता नहीं।

मुमुक्षु : भगवान के भामण्डल में सात भव दिखलाने की सामर्थ्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसकी योग्यता हो तो देखता है। वहाँ भामण्डल क्या करे? वहाँ ऐसा हो वह वहाँ उपस्थित हो, दूसरा हो किसका वहाँ? ठीक कहते हैं ये। भगवान का भामण्डल होता है न! तेज। केवलज्ञान हो। उसके सामने अन्दर देखे वहाँ सात भव दिखे। परन्तु यह खड़ा हो, यह योग्य (हो), जिसकी देखने की योग्यता क्षयोपशमभाव हो, वह देखे। वह भामण्डल में योग्यता नहीं कि उसके सात भव दिखला दे। समझ में आया? आहाहा! बड़ा विवाद, मूल तत्त्व का ही पूरा विवाद।

कहते हैं, भगवान आत्मा वह तो चिद्घन, ज्ञानघन है न! यहाँ तो विकाररहित ही सिद्ध करना है। समझ में आया? उसे आहार और कर्म का भी विकल्प उसे है नहीं। वह वस्तु में है ही नहीं। इसलिए कहते हैं कि यह **कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला कैसे हो सकता है...** आत्मा आहार करे, (ऐसा) कैसे बने? दूध पीवे, कैसे बने? चाय पीवे, कैसे बने? ऐसा कहते हैं। क्या होगा? वकील! ऐ जेचन्दभाई! यह ठीक आया। यह इसकी देखत भूल है। मूढ़रूप से मानता है कि मैं इसका कर दूँ, हाथ का कर दूँ, पैर का कर दूँ, पैर का कर दूँ और इसका कर दूँ।

कहते हैं कि हाथ के हिलाने की आत्मा में केवली की और किसी आत्मा की योग्यता है ही नहीं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न है, उसका भिन्न-भिन्न वर्तमान उसका उत्पादरूपी कार्य हुआ करता है। उस कार्य को दूसरा करे, यह तीन काल में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया इसमें? आहार करते नहीं। आहार नहीं अर्थात् शरीर

नहीं, ऐसा सिद्ध करना है, हों! शरीर ही नहीं, वहाँ फिर आहार कैसा? समझ में आया? शरीर बिना की चीज़ आत्मा। शरीर को धारे और बाँधे, यह आत्मा में है नहीं।

कैसे हो सकता है 'येन' कि जिससे 'अस्य देहः शंक्यते' उसके देह की शंका की जा सके? देखो! आहार ही ग्रहण कर सकने की योग्यता नहीं तो आहार का पिण्ड ऐसा जो शरीर, उसे कैसे हो सकता है? आत्मा को शरीर ही नहीं। आहाहा! सवेरे पूछा था, हों! यह जो देह और आत्मा एक है या नहीं? जरा विचार किया था। शरीर और आत्मा भिन्न है। खबर नहीं वहाँ आत्मा था। वह शरीर जल गया और यह यहाँ आया है। आत्मा भिन्न है, और यह तो दूसरी खोली है—दूसरी देह की खोली वहाँ जल गयी। यह खोली नयी हुई। आत्मा नया हुआ है? आत्मा वहाँ था, वह यहाँ है। आत्मा क्या करे? कहते हैं कि आत्मा को देह ही नहीं। देह नहीं तो परमाणु को ग्रहण करके देह का पिण्ड हो, वह आत्मा को नहीं हो सकता।

ज्ञान के देह हो ही नहीं सकता,... लो! यह तो कहे, निश्चय से यह बात है। परन्तु गोम्मटसार में दूसरा आवे कि आत्मा को तीन शरीर होते हैं, उसको दो शरीर होते हैं, किसी को पाँच होते हैं, ऐसा आता है न? वह तो निमित्त कैसा है, उसके पास, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? शास्त्र में ऐसा आवे या नहीं? नारकी को वैक्रियक, तैजस और कार्मण तीन शरीर होते हैं। आता है? किसमें आता है? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (में आता है)। और देव को भी वैक्रियक, तैजस और कार्मण तथा मनुष्य को औदारिक, तैजस और कार्मण। यह तो जड़ सम्बन्धरूप से बताया है, आत्मा में यह है नहीं, आत्मा को देह नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? यह देह, देह में है परन्तु साथ में आत्मा है, उसे निमित्तरूप से कहते हैं कि ऐसे आत्मा को ऐसे सम्बन्ध में संयोग हो, परन्तु वह संयोग में संयोग है, आत्मा में नहीं। आत्मा को देह नहीं और देह में आत्मा नहीं। आत्मा, आत्मा में और देह, देह में है। समझ में आया?

ज्ञान के देह हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके... यह लोगों को (नहीं बैठता)। निश्चय सत्य, निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार के कथन असत्य अर्थात् निमित्त का ज्ञान

कराने के हैं। यह वस्तु ऐसा कहता है, ऐसी वस्तु नहीं है। यह महा सिद्धान्त है। परन्तु अभिमान... अभिमान। धवल का ज्ञान हुआ, इसलिए हमको, धवल, परन्तु यह समयसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, सर्वार्थसिद्धि यह सब शास्त्र थे या नहीं? उसमें नहीं थी बात? उनसे विरुद्ध उनमें होगी? तत्त्वार्थसार। यह शास्त्र हैं या नहीं? सैकड़ों शास्त्र हैं। सर्वार्थसिद्धि, द्रव्यसंग्रह, यह क्या? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा। अनेक ग्रन्थ हैं। गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार सब शास्त्र नहीं? इस शास्त्र में कुछ होगा और उस शास्त्र में दूसरा होगा, ऐसा है? कैसे होगा? आहाहा! इतने सब शास्त्र में यह नहीं, उससे यह दूसरी बात करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो तीन काल में एक ही सिद्धान्त है कि आत्मा भगवान शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसे शरीर ग्रहण करना या छोड़ना, वह वस्तु में है नहीं। इसलिए उसे आहार नहीं हो सकता।

कलश - २३८

(अनुष्टुप्)

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ।।४६-२३८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'ततः देहमयं लिङ्गं ज्ञातुः मोक्षकारणं न' [ततः] तिस कारण से, [देहमयं लिङ्गं] द्रव्यक्रियारूप यतिपना अथवा गृहस्थपना, [ज्ञातुः] जीव के, [मोक्षकारणं न] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष का कारण तो नहीं है। किस कारण से? कारण कि 'एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य' पूर्वोक्त प्रकार से साधा है जो शुद्धस्वरूप जीव, उसके 'देह एव न विद्यते' शरीर ही नहीं है अर्थात् शरीर है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्यक्रिया को मोक्ष का कारण मानता है, उसे समझाया है।।४६-२३८।।

कलश - २३८ पर प्रवचन

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ।।४६-२३८।।

यह अब आया। **'ततः देहमयं लिंगं ज्ञातुः मोक्षकारणं न' तिस कारण से...** भगवान आत्मा को देह ही नहीं तो देह के वेश वे आत्मा को हैं ही नहीं। नग्नपना या कोपिनपना और स्त्री के, यह पुरुष का और मुनि का। यहाँ यह बात है। यह लिंग-बिंग वेश, वह आत्मा को नहीं है। समझ में आया? निमित्तरूप से मुनि को नग्न देह ही होती है। मुनिदशा सच्ची हो, उसे तो नग्नपना ही होता है परन्तु नग्नपना वह लिंग, वह मुनिपना नहीं। समझ में आया? क्षुल्लक हो, भावलिंगी क्षुल्लक, हों! सम्यक् अनुभव दृष्टिसहित (हो) तो उसे कोपिन लंगोटी और मोरपिच्छी इत्यादि। परन्तु वह कहीं आत्मा नहीं और वह आत्मा में नहीं। ऐसा निमित्तपना हो, उसका ज्ञान कराने के लिये क्षुल्लक को लंगोटी आदि कही जाती है, परन्तु वह वेश कहीं आत्मा का नहीं है। समझ में आया?

तिस कारण से द्रव्यक्रियारूप यतिपना... देखो ! यहाँ तो अन्दर का विकल्प उठता है न ! अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प जो है, पंच महाव्रत का अहिंसा आदि विकल्प जो है, वह **द्रव्यक्रियारूप यतिपना...** वह आत्मा नहीं, मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा ! **अथवा गृहस्थपना...** और गृहस्थ के बारह व्रत के विकल्प और लंगोटी आदि, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष का कारण भगवान आत्मा की निर्मल पर्याय है। समझ में आया इसमें ? सवेरे तो बहुत आ गया है।

द्रव्यक्रियारूप यतिपना... 'देहमयं लिंगं' यह देहमय लिंग, हों ! देह का लिंग और व्रतादि की क्रिया, रागादि, वह सब ही बन्ध का कारण है। वह आत्मा को मोक्ष की क्रिया नहीं। ऐसा गृहस्थ को बारह व्रत के विकल्प दया, दान, भक्ति के, पूजा के परिणाम, वह उसका व्यवहार लिंग है। वह मुक्ति का कारण नहीं है। दोनों बातें हैं, हों ! गृहस्थ और मुनि दोनों। ऐसा नहीं कि मुनि के लिये यह और गृहस्थ के लिये दूसरा मार्ग होगा। इसलिए दो बात है। पाठ में है मूल, उसमें से उतारा है न ? गृहि लिंगो, पाषंडी लिंगो। दो हैं न ? श्रावक हो या मुनि हो, अन्तर में जिसे आत्मा का अनुभव है, शुद्ध चिदानन्द का अनुभव निर्विकल्प वीतराग दशा है, वह मुक्ति का कारण है।

जितने अंश में... समझ में आया ? श्रावक को जितने अंश में वीतरागदशा हुई है, उतना ही मुक्ति का और संवर-निर्जरा का कारण है। मुनि को भी जितनी आत्मा के आश्रय से शुद्ध चिदानन्द श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागता निर्दोष पर्याय, निर्विकल्प, निर्वद्य पर्याय हुई है, उतना ही मोक्ष का कारण है। जितना अन्दर शुभराग का विकल्प उठता है, और देह की क्रिया (होती है), दोनों मोक्ष का कारण है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? कोई कहता है कि वह तो मोक्ष का कारण वह नहीं, अर्थात् कि जब ऊपर जाये तब मोक्ष का कारण शुद्ध है। परन्तु नीचे तो है न ? उसके लिये तो यह गृहस्थपना लिया है। समझ में आया ?

पहले से सत् चैतन्यमूर्ति भगवान अन्दर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान और निर्विकल्प स्वरूप की रमणता का जितना अंश है, वही संवर और निर्जरास्वरूप है। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त मोक्ष का कारण कोई है नहीं। बड़ा विवाद अभी यह है। पुस्तक कहाँ से आयी ? आयी कहाँ से ?

द्रव्यक्रियारूप यतिपना अथवा गृहस्थपना... समझ में आया? **जीव के सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष का कारण तो नहीं है...** सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष का कारण तो नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! यहाँ श्रावक के बारह व्रत (पाले), सम्यग्दर्शन का भान न हो, उसके बारह व्रत मुक्ति का कारण (माने)। ऐ... छोटाभाई! नहीं? यह सब चलाया है न सबने? क्यों, अमुलखभाई! खोटा इतना चले या नहीं साहूकार के घर में? नहीं चलता? खोटे रुपये के लकड़े देते होंगे? नहीं देते। अरे! वास्तविक सेठिया तो वहाँ चिपका दे। भटकने न दे। चौखट में चिपका दे, चौखट में। दूसरे घर में चलने न दे। छोड़ दे यहाँ। वह इनकार करे तो पुलिस को कह दे, खोटा रुपया है। पहले साहूकार की ऐसी पद्धति थी, हों! उसके चौखट में दो-चार-पाँच ऐसे खोटे पड़े ही हों। उंबरा समझे? लकड़े को क्या कहा जाता है। क्या कहते हैं? चौखट नहीं समझते? यह दरवाजे में जो लकड़े के नीचे (होता है वह)। उसे चौखट कहते हैं। साहूकार के घर में यह बहुत देखे हैं, हों! वहाँ चिपकाये ही होते हैं, चलने न दे। बहुत देखे हैं न! साहूकार का व्यापार जिसे हो न बड़ा जवाहरात का या ऐसा... बाहर चलने न दे। वह इनकार करे जरा... साधारण... चलने नहीं दे। चिपका दे। जा फरियाद करनी हो तो सरकार में पुलिस में। खोटा रुपया है, चलना दूँगा यहाँ? चिपका दे, मार कीली लकड़े में। समझ में आया ऐसा?

इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं कि आत्मा शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के अतिरिक्त का राग से मुक्ति माने (वह) खोटा रुपया है, चिपका दे। निषेध कर कि बन्ध का कारण है। समझ में आया? कोई उसे मोक्ष का कारण कहता हो तो वह है नहीं।

किस कारण से? सकलकर्मक्षयलक्षण। सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्ष है, ऐसा। परन्तु थोड़े कर्म का क्षयलक्षण हो... यह सकल का अर्थ शुद्धता से विरुद्ध भाव है, वह बिल्कुल राग के क्षय का कारण नहीं। और शुद्धस्वरूप श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह सर्वथा जितने अंश में शुद्धता, उतनी सर्व अंश में राग के नाश का ही वह कारण है। समझ में आया?

'एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य' पूर्वोक्त प्रकार से साधा है जो शुद्धस्वरूप जीव... भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा को **'देह एव न विद्यते' शरीर ही नहीं है अर्थात् शरीर है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं है।** तो फिर शरीर की क्रिया और राग की क्रिया, वह जीव का स्वरूप है नहीं। आस्रवतत्त्व हुआ। रागादि की क्रिया तो आस्रवतत्त्व है, शरीर की क्रिया तो अजीवतत्त्व है, दोनों मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष का कारण चिदानन्द का स्वभाव परिणमन... स्वभाव परिणमन... स्वभाव परिणमन है। शुद्ध आनन्दकन्द की परिणति निर्मल, निर्दोष वीतरागी परिणति एक ही मोक्ष का कारण है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' दूसरा कोई पन्थ नहीं हो सकता। यह घर का उल्टा डाले, वे पूरे जैनदर्शन को बदलना चाहे, उनकी दृष्टि फिरकर निगोद में जायेंगे। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। यहाँ किसी की लाज रखने की चीज़ है? ओहोहो!

शरीर है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं है। आस्रव है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं। वह तो दोनों बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण है नहीं। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यक्रिया को मोक्ष का कारण मानता है, उसे समझाया है।** लो! मिथ्यादृष्टि जीव वह शुभभाव आदि आस्रव की क्रिया और अजीव की जड़ की पर्याय को मोक्ष का कारण माने, उसे समझाया है। ओहोहो! प्रवचनसार में अधिकार लिया है। देखो! केवली को उदयभाव जड़ की पर्याय मोक्ष का कारण होती है। कहो, ऐई! मणिभाई के घर में थे, तब ऊपर मैंने यह वाँचन कराया था। वहाँ यह अखबार आया था। यह दो में ऐसा लिखते हैं। प्रवचनसार का आधार है। यह एक ४५वीं गाथा है न, कितनी है? उदय का क्षायिक। देखो! जड़ की पर्याय केवली को क्षायिक का कारण है, इसलिए जड़ की पर्याय मोक्ष का कारण है। अरे! भगवान! तूने गजब बात की! प्रवचनसार में ऐसा आता है, वह तो दूसरी बात है कि जितनी देह की क्रिया है, वह सब खिर जाती है अब। वह उदय भी इतना खिर जाता है, क्षायिक हो जाता है। खिरकर क्षायिक होता है। क्षायिक अर्थात् इस कारण से क्षायिक नहीं। टल जाता है, इसलिए क्षायिक होता है।

जड़ की क्रिया भी मोक्ष का कारण होता है, यह बात सिद्ध की थी और जड़ की

क्रिया भी बन्ध का कारण होता है, यह चरणानुयोग में से सिद्ध किया था। आहाहा! है न यह? चरणानुयोग में नहीं (आता)? मुनि चलते प्रमत्तभाव है, तथापि अप्रयत्न नहीं। प्रयत्न है बराबर, तथापि शरीर से कुछ हो जाये अन्दर तो उसका भी उन्हें आलोचन करना, आलोचन करना तब कहे, देखो! आलोचन किया न! तब उन्हें दोष हुआ न? इसलिए वह दोष हुआ, वह बन्ध का कारण है। ऐसा है ही नहीं। उसके परिणाम शुभाशुभ (हो), वह बन्ध का कारण है। शुद्ध परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का कारण है। इसके अतिरिक्त तीन काल में दूसरी बात है नहीं। यह तो वह निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराया है।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यक्रिया अर्थात् पुण्य की क्रिया और शरीर की क्रिया। कहो, यह भगवान के पास जाये और यह हाथ जोड़े और ऐसे-ऐसे? वह मोक्ष का कारण होता है या नहीं? भगवानभाई! आज तक होता था, कहते हैं। पहले मानते थे, ऐसा कहो। होता नहीं था, मानते थे। 'कायं पाणं झाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसरी' ऐसे शरीर ऐसा हो तो वह मोक्ष का कारण। यह तो जड़ है। हिम्मतभाई नहीं आये? समझ में आया? यहाँ तक 'कायं ठाणेणं माणेणं वचन जाणेणं—मन-भाव कायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं' मन, वचन और काया तीन जड़ को स्थिर रखना। वे आत्मा से स्थिर रह सकते हैं? स्थिर रखना पड़ता है या नहीं? जड़ को स्थिर रख सकता होगा आत्मा?

मुमुक्षु : गजब की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं यहाँ। 'तस्सूतरी' आता है। प्रवीणभाई नहीं सीखे होंगे। कहाँ सीखे? समझ में आया? दूसरे आवे। सामायिक पाठ सीखे हों और उसमें आवे। तस्सूतरी करणेणं कार्यसूत्र करणेणं तावकायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं, यह शरीर स्थिर हुआ, इसे हिलने देना नहीं। इसे हिलने नहीं देना, इसका नाम कायोत्सर्ग। प्रवीणभाई! परन्तु देह हिले, न हिले उसके साथ आत्मा ऐसा करे, यह कहाँ आत्मा की क्रिया थी? ऐ... मोहनभाई! कहा था या नहीं कितनी बार? अभिमान। हिलने देना नहीं। कहते हैं हिलना, न हिलना जड़ की क्रिया। वह तो निमित्त से बात है। विकल्प होने देना नहीं। अन्दर अस्थिरता का राग होने देना नहीं, बात ऐसी है। उसके बदले कहे, इसे

हिलने देना नहीं। देखो! इसका अभिमान। समझ में आया? जो कोई अज्ञानी ऐसी क्रिया को धर्म का कारण मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को मोक्ष का कारण उसे समझाया है, उसे समझाया है कि भाई! यह देह की क्रिया, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है।

आता है न? ऐसा आता है। इसमें होगा या नहीं? ऐसा कि देह जाये तो भले जाये, परन्तु मन जाने देना नहीं। समझे न? ऐसा करके देह से पाप लगता है। देह वहाँ अटकायेगा तो पाप नहीं लगेगा, ऐसा। देह को अटकायेगा तो पाप नहीं लगेगा। परन्तु देह को अटकाना, छोड़ना आत्मा के अधिकार की बात ही कहाँ है। भारी जगत को कठिन! यह परमाणु के पिण्ड जड़ हैं, उनका हिलना, ऐसा होना (वह) क्रियावतीशक्ति से उसकी पर्याय होती है। आत्मा उसे क्या करे? पक्षघात के समय खबर नहीं पड़ती? उसे इच्छा हो तो भी चलता है? चल सकता है? तब पहले चलता था, वह स्वयं इच्छा से चलता था? एकदम खोटी बात है। क्यों हरिभाई! कैसे होगा? यह वैद्य कर देते होंगे या नहीं शरीर का? नहीं?

मुमुक्षु : दवा देकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : किया। जो कोई असत्य दृष्टि, पाप दृष्टि द्रव्यक्रिया को मोक्ष का कारण संवर-निर्जरा मानता है, ऐसा। मोक्ष का कारण अर्थात् संवर और निर्जरा मानता है, उसे समझाया है। द्रव्यक्रिया, संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण है नहीं। क्या समझ में आया? अब, आया ४७ (कलश)।

कलश - २३९

(अनुष्टुप्)

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ।।४७-२३९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'मुमुक्षुणा एक एव मोक्षमार्गः सदा सेव्यः' [मुमुक्षुणा] मोक्ष को उपादेय अनुभवता है–ऐसा जो पुरुष, उसके द्वारा [एक एव] शुद्धस्वरूप का अनुभव, [मोक्षमार्गः] सकल कर्मों के विनाश का कारण है–ऐसा जानकर, [सदा सेव्यः] निरन्तर अनुभव करनेयोग्य है। वह मोक्षमार्ग क्या है? 'आत्मनः तत्त्वं' शुद्धजीव का स्वरूप है। और कैसा है आत्मतत्त्व? 'दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र, उन तीन स्वरूप की एक सत्ता है आत्मा (सर्वस्व) जिसका, ऐसा है।।४७-२३९।।

कलश - २३९ पर प्रवचन

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ।।४७-२३९।।

यहाँ तो मानो पहला 'मुमुक्षु' शब्द प्रयोग किया है। अर्थात् मुमुक्षु के लिये आठवें से लागू पड़े, ऐसा नहीं है। पहला शब्द यहाँ से उठाया है, यहाँ अन्तिम से। मुमुक्षु वह आठवें से लागू पड़े और चौथे से लागू न पड़े, ऐसा नहीं है। **'मुमुक्षुणा', 'मुमुक्षुणा'** देखो! शब्द भी पहला पड़ा है इसमें—शब्दार्थ में। **'मुमुक्षुणा एक एव मोक्षमार्गः सदा सेव्यः' मोक्ष को उपादेय अनुभवता है ऐसा जो पुरुष,...** जिसने आत्मा (की) परमानन्द की पूर्ण दशा की प्राप्ति उसका नाम मोक्ष। मोक्ष अर्थात्? आत्मा में जो अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसके पूर्ण आनन्द की प्रगट पर्याय में प्राप्ति का नाम मोक्ष। समझ में आया?

'मोक्ष कहा निज शुद्धता वह पावे सो पंथ,
समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रंथ।'

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर ने निर्ग्रन्थ आत्मा ने 'मोक्ष कहा निज शुद्धता।' मोक्ष अर्थात् क्या? संसार अर्थात् क्या? संसार अर्थात् मिथ्यादृष्टि सहित की राग-द्वेष की दशा, उसे संसार कहते हैं। संसार कोई स्त्री, पुत्र, पैसे में नहीं रहता। भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध, उसकी मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष के परिणाम को भगवान संसार कहते हैं, कि जो शुद्धस्वभाव में से संसरी—हटकर मिथ्या मान्यता और राग-द्वेष में टिका, उसे संसार कहते हैं।

मोक्ष अर्थात् आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा। मिथ्यात्वरहित, समकित; राग-द्वेष रहित वीतरागता। ऐसी पूर्ण सम्यग्दर्शन सहित की पूर्ण आनन्द की, चारित्र की दशा की रमणता को भगवान मोक्ष कहते हैं। समझ में आया? मोक्ष अर्थात् कि पर से छूटना। अपनी निर्मल पूर्ण दशा हुई, उसका नाम मुक्ति। अल्पज्ञ से पूर्ण हो गया, रागरहित होकर वीतराग हो गया। वह पूर्ण दशा आत्मा की मुक्ति है।

ऐसे **मोक्ष को उपादेय अनुभवता है....** देखो! ऐसी मोक्ष की निर्मल पूर्ण पर्याय वह प्रगट करनेयोग्य है, ऐसा जो अनुभव करता है, ऐसे जो पुरुष। मुमुक्षु की व्याख्या की। आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा, शुद्ध वीतरागी केवलज्ञान आदि दशा प्रगट करने का कामी है, वह मोक्ष को उपादेय अनुभव करता है, ऐसा पुरुष। समझ में आया? जो विकल्प आदि राग को उपादेयरूप से वर्तमान में स्वीकार नहीं करता। पूर्ण परमानन्द की दशा उपादेय अर्थात् प्रगट करनेयोग्य है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह वर्तमान में ही पुण्य-पाप के राग को मोक्ष के कारण में स्वीकार नहीं करता। समझ में आया इसमें?

मोक्ष को उपादेय अनुभवता है... वह आदरणीय है, अर्थात् कि बन्धभाव आदरणीय नहीं, निमित्त भी आदरणीय नहीं। पूर्णानन्द का स्वभाव प्रगट करना, वह आदरणीय है—ऐसा जो अनुभव करता है। इसका अर्थ कि स्वभाव की शक्ति में से प्रगट पूर्ण पर्याय प्रगट करने का अभिलाषी है, वह पूर्ण स्वभाव सन्मुख के अनुभव की दृष्टि में पड़ा हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निरन्तर?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर। देखो न! **मोक्ष को उपादेय अनुभवता है ऐसा जो**

पुरुष,... उसमें कहीं किसी को बन्ध को अनुभवता पुरुष, बन्ध को आदरणीय मानता, अनुभवता पुरुष, ऐसा आता है किसी समय?

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, महा चैतन्य रत्नाकर नाथ, उसकी पूर्ण शक्ति पड़ी है, मुक्तस्वरूप उसकी, उसे पर्याय में पूर्ण प्रगट करने का अभिलाषी अनुभवी जीव। अर्थात् कि पूर्ण प्रगट करना है अर्थात् पूर्ण द्रव्यस्वभाव की उसकी दृष्टि का अनुभव है, उसे राग और पुण्य के विकल्प का आदर नहीं है। कठिन बात, भाई! समझ में आया? आहाहा! आठ-आठ वर्ष के बालक केवलज्ञान प्राप्त करते होंगे! हें! आहाहा! राजा के कुंवर, हों! ऐसे चक्रवर्ती के राजकुमार, लो!

मुमुक्षु : गरीब के पुत्र न निकलें?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब के पुत्र तो निकले, उसकी क्या बात? यह तो ऐसा कि, लोग ओहोहो! गरीब भिखारी आठ वर्ष के बालक निकलकर लकड़हारा के पुत्र केवल(ज्ञान) पावे। आत्मा कहाँ गरीब और धनवान है? समझ में आया? कल का लकड़हारा आठ आना लेकर आया हो, घर में लड़का रोटी और दाल खाता हो। वह लड़का अन्दर से प्रस्फुटित होकर अन्दर आया हो, ऐसे सन्त के पास गया। आहाहा! अरे! तेरा निधान तो अन्दर है न, भाई! अखण्डानन्द प्रभु केवलज्ञान का कन्द पड़ा है न! सुना, साथ में अन्दर उतरा! एकदम बिजली अन्दर (पड़ी)! दृष्टि पड़ी अन्दर चैतन्य में, भगवान के समीप क्षायिक समकित प्रगट किया, एकदम! समझ में आया? आहाहा! और केवल (ज्ञान) लेने को अन्तर्मुहूर्त। ऐसे घोलन... घोलन... घोलन... घोलन... घोलन... घोलन... ऐसे अमृत के-अमृत के झरने पड़े हैं पूरे भगवान आत्मा में। अतीन्द्रिय दृष्टि और एकाग्रता मेरी है। अन्तर्मुहूर्त में केवल (प्राप्त करे)। आता है या नहीं? उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में। आठ वर्ष में, सब अवसर आ गया है। आठ वर्ष में मोक्ष जाये। अनादि निगोद का निकला, कभी निगोद से निकला न हो और पहले पहले ही मनुष्य हुआ हो। आता है या नहीं? आठ वर्ष। भले एकाध भव कोई भी (हुआ हो)। वह आठ वर्ष की उम्र में ऐसा होता है। कभी उसने देवपना, नरकपना देखा न हो। आत्मा है न अन्दर! आहाहा! यह बिजली का झपकारा जैसे पड़े, वैसे भगवान अन्दर उतरा अन्दर एकदम अन्दर से। समझ में आया?

शून्य... शून्य... शून्य... पर से शून्य, अपने से पूरा। ऐसी वस्तु की दृष्टि में गया और स्थिरता में जमा। स्थिर होने पर अन्तर्मुहूर्त में केवल(ज्ञान प्राप्त हुआ)। और कदाचित् देह की स्थिति थोड़ी हो तो वहाँ देह छूट जाये। आठ वर्ष में मोक्ष, आठ वर्ष पहले निगोद, बीच का इतना इतना आठ वर्ष का काल। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनादि कभी मनुष्य नहीं हुआ। उसमें आठ वर्ष में मनुष्य होकर, यह भव करके अन्दर (उतर गया)। नहीं आता? भरत चक्रवर्ती के आते हैं न कितने? दस हजार, दस हजार। दस हजार राजकुमार। भरत के राजकुमार। पुण्य के पोटले। इतना अधिक पुण्य कहाँ? शुभभाव है, वह चाहे जहाँ बाँधे। निगोद में नहीं बाँध सकता? उसमें शुभभाव है, उस शुभभाव का .... बोले नहीं, बोले नहीं। हों!

ऋषभदेव भगवान पधारे और समवसरण में गये। चक्रवर्ती और रानियाँ और कुँवर। भरत पूछते हैं, प्रभु! यह रत्न जैसे लड़के यह मेरे घर में पुण्यवन्त होकर आये। ये बोलते क्यों नहीं? भगवान की दिव्यध्वनि में आता है कि अभी बोलेंगे। यह अभी बोलेंगे और अभी मुनिपना लेंगे, बोलेंगे और मुनिपना लेंगे। आहाहा! समझ में आया? भाषा नहीं होती। आहाहा! राजकुंवर चक्रवर्ती के घर में अवतरित! इतनी तैयारी, बोले ही नहीं। बोलते नहीं, प्रभु! भगवान कहते हैं, अभी बोलेंगे। वहीं खड़े हुए। प्रभु! हमको दिगम्बर दीक्षा दो। बोले तब यह! बोले तब यह (बोले)। समझ में आया? मोक्ष ही अन्दर पड़ा है। उसकी दृष्टि हुई तो मुक्त ही है आत्मा। पर्याय से मुक्त होने में थोड़ी देर लगे, उसकी कुछ (गिनती) नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसे पूर्णानन्द का नाथ (विराजता है)। बोले तो ऐसा बोले, प्रभु! आप जो निधान बताते हो, वह निधान लेने के लिये आप दिगम्बर दीक्षा दो। स्वयं ग्रहण करे, अपने आप ग्रहण करे। वे अन्दर उतरते हैं, एकदम अन्दर! केवल(ज्ञान) होकर मोक्ष (प्राप्त करते हैं)। उसी भव में केवल(ज्ञान) होकर मोक्ष! आहाहा! आत्मा में पुरुषार्थ की कहाँ कचास है कि उसे कहीं खोजने जाना पड़े, ऐसा है। परन्तु... पामर होकर... आहाहा! वह मैं इतना? मैं इतना? ऐसा? इतना का इतना तू स्वयं है, सुन न! पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण बल, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्थिरता, पूर्ण वीर्य, पूर्ण प्रभुता, वह सब तुझमें पड़ी है। ऐसे तालाब में जैसे पानी भरा हो न? तालाब में पानी (भर गया हो)

अब, किसकी ओर निकालना ? बहुत पानी भरे तब ऐसा हो न ? इस ओर गाँव की ओर न आवे। उस ओर मनुष्य दौड़कर जाये लाईन करे। जाये पानी उस ओर चला। इसी प्रकार अन्दर छलाछल ज्ञानानन्द, वीर्य पड़ा है। एकाग्रता की लाईन कर तो प्रवाह टूटे, ऐसा नहीं। परन्तु उसे इसकी प्रतीति (नहीं)। ऐसा मेरा द्रव्य है, ऐसा मैं उसकी प्रतीति नहीं। उसे तो कुछ किसी का कर दूँ और इसका यह कर दूँ और या तो राग करूँ और या तो धूल करूँ और या तो पाप करूँ और या तो पुण्य करूँ.... समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, अहो ! यह व्याख्या चलती है—'**मुमुक्षुणा। मोक्ष को उपादेय अनुभवता है, ऐसा जो पुरुष,...** आहाहा ! यह मुमुक्षु की व्याख्या। इसमें भी विवाद करते हैं। यह मुमुक्षु और दूसरे अमुमुक्षु होंगे ? अरे ! भगवान ! सुन न, भाई ! जो परमानन्द की पूर्ण पवित्र दशा को आदरणीय मानकर पुरुषार्थ करे, वह मुमुक्षु कहने में आता है। उसका विवाद करते हैं। वह तो विवाद करनेवाले किया ही करेंगे।

कहते हैं, अहो ! अनन्त आनन्द के चैतन्य का पिण्ड प्रभु भगवान अन्दर पूरा है, जिसे शरीर और कर्म स्पर्शे ही नहीं। तीन काल में शरीर और कर्म आत्मद्रव्य के पिण्ड को स्पर्शे ही नहीं। स्पर्शे समझे ? छुआ नहीं। छुआ नहीं है। भाषा हमारी गुजराती है। छुआ ही नहीं है। जड़ को आत्मा कभी स्पर्शा ही नहीं और वह जड़ आत्मा को स्पर्शा नहीं। मात्र उसकी विकल्प की दशा में विकार की उत्पत्ति की और उसमें हित है, ऐसा मिथ्यारूप से माने, बस ! इतनी बात। वह ऐसे गुलांट खाता है तब... ओहो ! यह तो पूर्ण शुद्ध प्रगट करने का यह धाम है। पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट करने का यह स्थान है। ऐसे मोक्ष को उपादेयरूप से अंगीकार करने, प्रगट करने के कामी को मुमुक्षु कहा जाता है। समझ में आया ?

'**एकः एव**' देखो ! शुद्धस्वरूप। एक की व्याख्या की। एक की व्याख्या शुद्धस्वरूप का अनुभव। विकार आदि अनेक हैं न ? विकल्प आदि अनेक हैं, इसलिए ऐसे शुद्ध वस्तु एक शुद्ध '**एव**'। ऐसा तो कहना है '**एकः एव मोक्षमार्गः**'। पाठ तो '**एकः एव मोक्षमार्गः**' शब्द है। भाई ! ऐई ! '**एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा**' अन्तिम शब्द ऐसा है। एक प्रकार से ही मोक्ष का मार्ग मुमुक्षु को सेवन करना। परन्तु व्याख्या ऐसी की है कि '**एकः एव**' अर्थात् **शुद्धस्वरूप का अनुभव...** यही, ऐसा।

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, पवित्र धाम, उसका अनुभव उसे '**एकः एव**' कहा। अर्थात् उसका अनुभव वही एक मोक्ष का मार्ग है। एक की व्याख्या करने का हेतु शुद्ध स्वरूप का अनुभव वह मोक्ष का मार्ग है। इसका अर्थ किया कि '**एकः एव**' अर्थात् शुद्ध स्वरूप का अनुभव, वह मोक्ष का मार्ग है। शशीभाई! समझ में आया?

'**एकः एव**' समझ में आया? अर्थात् किसलिए कहा? कि आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य की अन्तर की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह शुद्धता है। वह शुद्धता अभेद एकरूप है। वह शुद्धता, वस्तु द्रव्य एकरूप है, ऐसी अन्तर की अभेदता एकरूप है। वह एकरूप ऐसा जो शुद्ध अनुभव, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहा है। अनेक प्रकार के वे विकल्प भिन्न... भिन्न... भिन्न... काल में उठते हैं न? यहाँ तो एक ही प्रकार के शुद्धस्वभाव की एकता की शुद्धता, वही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

वस्तु शुद्ध का पिण्ड प्रभु, उसकी सन्मुख की एकता, वह एकता यह एक ही शुद्धरूप दशा है। भले शुद्धता के अंश (हों), परन्तु वह शुद्धरूप एकपना है। वही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। पुण्य के विकल्प आदि को अशुद्ध गिनकर, अनेक गिनकर अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न अवस्था वह बन्ध के विकार हैं न? एक प्रकार का विकार नहीं होता, भिन्न... भिन्न... भिन्न... अनेक हैं, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। एक भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान की मूर्ति प्रभु की सेवा अर्थात् एकाग्रता, वही शुद्ध स्वरूप का अनुभव, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं। दो मोक्ष के मार्ग नहीं। आहाहा! (एक होय) तीन काल में परमार्थ का पंथ, कहो मोक्ष का पंथ कहो।

शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है अर्थात् सकल कर्मों के विनाश का कारण है... है न? शुद्धस्वरूप का अनुभव, वह सकल कर्मों के नाश का कारण है। (यह) सिद्धान्त (हुआ)। मोक्षमार्ग, वह शुद्ध स्वरूप का अनुभव, वह सकल कर्मों के नाश का कारण। बीच में कोई भी विकल्प उठे, (वह) अंश भी राग के नाश का कारण है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **सकल कर्मों के विनाश का कारण है, ऐसा जानकर 'सदा सेव्यः'** देखा? **निरन्तर अनुभव करनेयोग्य है।** निरन्तर एक ही अनुभव करनेयोग्य है।

आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसका ही अन्तर अनुभव, उसको अवलम्बकर एक ही अनुभव करनेयोग्य है, और वह एक ही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई संवर-निर्जरा (मार्ग) है नहीं। समझ में आया?

'**सदा सेव्यः**' क्यों कहा? किसी समय और थोड़े अनेक ऐसे विकल्प को भी सेवन करना, (ऐसा नहीं है)। मुख्य की निश्चयता, मुख्य का निश्चय कायम रहे। वस्तु... वस्तु... वस्तु... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अखण्ड आनन्द। यह मुख्य, वह निश्चय और उसका निर्णय किया, उसका ज्ञान किया, उसकी स्थिरता की, वह निरन्तर एक ही सेवनयोग्य है। दृष्टि में से उसकी मुख्यता का निश्चय तत्त्व है, वह कभी हटता नहीं। अर्थात् उसकी एकाग्रता में मुख्यपना कभी हटता नहीं और विकल्प के आदि की मुख्यता कभी उसकी दृष्टि में आती नहीं। इसलिए कहा कि '**सदा सेव्यः**'। तो **सदा** यह आठवें गुणस्थान से '**सदा सेव्यः**' की बात है? सकल कर्म का क्षय, वह वहाँ होता है और नीचे कम, इसलिए (नीचे के गुणस्थान में) दूसरी रीति है। नीचे शुद्ध भगवान आत्मा जो शुद्ध की एकता का अनुभव अर्थात् आंशिक वह सकल कर्म जितना कर्म का उदय अमुक है, उसे वह क्षय ही करता है। समझ में आया?

दर्शनमोह और रागादि, भगवान आत्मा के शुद्धस्वरूप की अनुभव दृष्टि, अनुभव स्थिरता अर्थात् आंशिक तो जो अंश कर्म के आदि राग, उसका क्षय ही करता है। आगे बढ़ते हुए पूर्ण एकाग्रता होने से, पूर्ण नाश कर डालता है। शुरुआत यहाँ से होती है, ऐसा कहकर सकल कर्मों का विनाश (इस प्रकार से होता है, ऐसा कहते हैं)। राग की मन्दता, वह कारण नहीं परन्तु राग का अभाव होना, वह कारण है, इसलिए उसमें सकल नाश हो गया, इसका अर्थ ऐसा (हुआ)। समझ में आया? पहले से, हों!

एक ही यह मार्ग, ऐसा वापस। शुद्ध चिदानन्द भगवान पर दृष्टि डालकर जो एकाग्र ज्ञान किया और स्थिरता की, वह एक ही शुद्धता, वह एक ही प्रकार का मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग धर्मी को सेवनयोग्य है नहीं। समझ में आया इसमें?

'**सदा सेव्यः**' '**सेव्यः**' की व्याख्या **अनुभव करनेयोग्य है।** ऐसा। सेवनयोग्य है अर्थात् क्यों? सेवनयोग्य है अर्थात् क्या? कि आत्मा शुद्ध चिदानन्द की सेवा करनेयोग्य

है, अर्थात् उसका अनुभव करनेयोग्य है। अनादि से राग और पुण्य की सेवा करता था। पुण्य और पाप के भाव की सेवा करता था अर्थात् अनुभव करता था। पुण्य और पाप के विकल्पों को सेवन करता था अर्थात् अनुभव करता था, वह बन्धमार्ग है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चिदानन्द को एकरूप से सेवन करना, सदा एकरूप से सेवन करना। उस सेवन की और आत्मा में भी सेवा होती होगी? या पर की सेवा? समझ में आया इसमें? पर भगवान की सेवा इसमें नहीं कही।

मुमुक्षु : सेवा की व्याख्या की है कि सेवन करना अर्थात् अनुभव।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस सेवन का अर्थ ही यह है। आत्मा की सेवा अर्थात् अरागी परिणति हो, वह (सेवा)। समझ में आया? **ऐसा जानकर निरन्तर अनुभव करनेयोग्य है।** अब, मोक्षमार्ग कैसा है, उसका थोड़ा स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक-२९-११-१९६५, कलश-२३९, २४०, प्रवचन-२५४

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार ४७वाँ कलश चलता है। ऐसा २३९ है। देखो! **वह मोक्षमार्ग क्या है?** यहाँ से शुरु करते हैं, देखो! पहले कहा न कि मुमुक्षु को शुद्धस्वरूप का अनुभव (ऐसा) मोक्षमार्ग सकल कर्मों के नाश का कारण जानकर निरन्तर सेवन करना, ऐसा आया था। वह मोक्षमार्ग है क्या? मोक्षमार्ग कहना किसे? ऐसा प्रश्न उठा। **'आत्मनः तत्त्वम्'** देखो! मोक्ष का मार्ग, वह आत्मा का स्वरूप है। **शुद्ध जीव का स्वरूप है।** समझ में आया इसमें? मोक्ष का मार्ग, वह आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु की अन्तर में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन—श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह जीव का शुद्धस्वरूप, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

और कैसा है आत्मतत्त्व? कि **'दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा'** सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्‌चारित्र इन तीनों स्वरूप की एक सत्ता है आत्मा। देखो! यह मोक्षमार्ग। आत्मा... वह विकल्प है, वह कहीं आत्मा नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। व्यवहारमोक्षमार्ग जिसे कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत आदि के शुभभाव और शास्त्र सम्बन्धी का ज्ञान, वह परावलम्बी वस्तु है, वह आत्मा का तत्त्व नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। यह परमात्मप्रकाश में अपने आ गया है। समझ में आया? ऐ... छोटाभाई! यह आत्मतत्त्व नहीं। आत्मा का स्वभावभाव, पर्याय, हों! अभी पर्याय की बात चलती है। यह पर्याय की बात है, आत्मद्रव्य की बात नहीं। द्रव्य तो शुद्ध चिदानन्दस्वरूप ज्ञायक है, वह तो वस्तु, उसकी यह बात नहीं है।

यहाँ तो मोक्ष का मार्ग क्या है? कि, शुद्ध जो आत्मा ज्ञान, चैतन्य, द्रव्य वस्तु, उसकी शुद्ध निर्मल पर्याय—वीतरागी पर्याय, वह आत्मतत्त्व—वह आत्मा का स्वरूप, वह आत्मा की निर्मल पर्याय, वही मोक्ष का मार्ग है। कहो, छोटाभाई! है इसमें? देखो! देखो! वह विकल्प व्यवहार-ब्यवहार मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा इसमें कहा। नहीं लिखा? ऐ..ई! देवानुप्रिया! यह है, इसका अर्थ नहीं आया कि दूसरा नहीं है। ऐसा आया या नहीं इसमें?

आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दकन्दस्वरूप है। वस्तु—ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड आत्मा वस्तु। उस वस्तु की सम्मुख के शुद्ध सम्यग्दर्शन—निर्विकल्प श्रद्धा

वीतरागी पर्याय, निर्विकल्प आत्मा का स्वसंवेदन, स्वसंवेदन ज्ञान और उस आत्मा में स्वरूप की आचरणरूप स्थिरता—वीतरागी पर्याय, ये तीन, वह आत्मतत्त्व है और वह आत्मतत्त्व अर्थात् स्वरूप, वही मोक्ष का मार्ग है। कहो, उसमें आया या नहीं संस्कृत प्रमाण? छोटाभाई! यह संस्कृत में पढ़े हुए को हो न, उसके साथ है या नहीं? भाई! उसमें है, देखो!

वह मोक्षमार्ग क्या है? ऐसा शब्द है। पहला शब्द। पहला तो कह दिया '**मुमुक्षुणा एकः एव मोक्षमार्गः सदा सेव्यः**' यह। अब पहली लाईन का अर्थ होता है। दूसरी (लाईन) पहली कह दी। तब कहा कि '**दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः**'। भगवान आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु की निर्विकल्प शुद्ध, शुद्ध वीतरागी सम्यग्दर्शन की पर्याय, शुद्ध वीतरागी सम्यक् चैतन्य का स्वसंवेदनज्ञान और शुद्ध रागरहित स्वरूप का आचरणरूप चारित्र—ये तीन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र '**त्रयात्मा**'। इन **तीन स्वरूप की एक सत्ता है...** तीन का एकरूप ऐसा जो आत्मा, ऐसा जो आत्मा अर्थात् इस आत्मा का जो तत्त्व, ऐसी जो शुद्ध स्वरूप की पर्याय, वह **जिसका, ऐसा है।** वह मोक्ष का मार्ग है। कहो, जमुभाई! है?

इसमें आया, यह क्या कहा? **वह मोक्षमार्ग क्या है?** इसी और इसी में प्रश्न उठाया कि, '**आत्मनः तत्त्वम्**' भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द वस्तु की सन्मुख की शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र अर्थात् वीतराग परिणति, वे तीनों शुद्ध, वे शुद्ध वह दर्शन, ज्ञान, चारित्रमय—आत्मा तीन स्वरूप। वह आत्मा का स्वरूप, वह आत्मा का तत्त्व, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? कोई दूसरी शरीर-बरीर की क्रिया या अन्दर दया, दान के विकल्प शुभराग, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! है या नहीं? यह है तो दूसरा मार्ग नहीं, ऐसा इसमें आ गया या नहीं? स्पष्ट ही आ गया। यही मार्ग है, फिर प्रश्न कहाँ आया? समझ में आया? आहाहा!

मोक्षस्वरूप ऐसा आत्मा, वस्तु वह मोक्षस्वरूप ही है वस्तु, उसकी निर्मल पर्याय, वह वर्तमान पूर्ण व्यक्त मोक्ष का कारण है। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान, ज्ञान का—ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ज्ञानपुंज प्रभु, चैतन्यसूर्य अकेला आत्मा आनन्दकन्द वह शुद्ध वस्तु। उस शुद्ध का पर्याय में—अवस्था में मोक्ष होना, उसका

कारण कौन पर्याय में? पर्याय में। पर्याय की बात चलती है न यह? कि जो पर्याय— अवस्था शुद्ध आत्मा को अवलम्बकर निर्विकारी पर के आश्रय बिना की शुद्ध सम्यक्, निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध निर्विकल्प श्रद्धा, निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान और निर्विकल्प स्वरूप में रमणता, वह मुक्तस्वरूप द्रव्य की यह निर्मल शुद्ध वीतरागी पर्याय, वह पूर्ण व्यक्त मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया इसमें? गोपालदासभाई! कठिन लगे।... परन्तु यह तो उसके घर की बात है यह। कहो, धर्मचन्दजी! आहाहा!

यह बड़ा महाप्रभु चैतन्य है, वह तो अनन्त गुण का सागर, ऐसे गुण के सागर का शुद्धरूप परिणमन होना, वीतराग पर्यायरूप से होना, निर्दोष दशारूप से श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति का होना, उसे यहाँ आत्मतत्त्व कहा जाता है। द्रव्य नहीं, उसकी शुद्धपर्याय, उसे आत्मतत्त्व कहा जाता है। तत्त्व अर्थात् उसका भाव, भाव। यह भाव, वह पूर्ण मोक्षदशा जो प्रगट हो, उसका यह कारण है। कहो, गोकुलदासभाई! है इसमें? देखो! इसमें है। आहाहा!

उसमें वापस दो मोक्षमार्ग है, चौथे में दूसरा मार्ग है और आठवें में दूसरा है, ऐसा नहीं है। इसीलिए तो भाई ने स्पष्टीकरण किया है न टोडरमलजी ने। एक निश्चय मोक्षमार्ग है और एक व्यवहार, ऐसा शब्द प्रयोग किया है, उसमें एक निश्चय मोक्षमार्ग है और एक व्यवहार मोक्षमार्ग है, ऐसा (शब्द) प्रयोग किया है। एक-एक क्यों प्रयोग किया कि एक मोक्षमार्ग दूसरा और एक निश्चय मोक्षमार्ग दूसरा, ऐसे दो नहीं हैं। है न उसमें यह? एक-एक, हों! शब्द प्रयोग किया है। कारण से प्रयोग किया है। यह सब घोटाला करेंगे। (दो मोक्षमार्ग है), ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसलिए निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना। ऐसा है न? परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है। तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग तथा एक (निश्चय) मोक्षमार्ग, ऐसा। ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। यह इसमें निरूपण में यह आया है न? कहीं अपने .... निरूपण आया था न? इसमें समयसार में, कलश-टीका में, समझ में आया? आहाहा! 'निरूपण' शब्द प्रयोग किया है न? यह ४१२ गाथा का पूरा सार कहा है। '**मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि**' आता है न? यह उसकी यह बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु—वस्तु जो पूरी शुद्धस्वरूप, उसके शुद्ध का परिणमन, शुद्ध की पर्याय, शुद्ध द्रव्य का शुद्ध परिणमन कि जो आत्मतत्त्व उसे कहा जाता है। कि

जो निश्चय सम्यग्दर्शन; निश्चय अर्थात् स्वतत्त्व का स्वआश्रय हुआ सत्य निश्चय सम्यग्दर्शन पर्याय, उसे स्वतत्त्व के आश्रय से हुआ स्वसंवेदन निश्चय सत् सम्यग्ज्ञान और उसमें स्वरूप में रमणता—लीनता, वह आत्मतत्त्व, आत्मभाव, आत्मस्वरूप, शुद्धस्वरूप का परिणमन उसे आत्मस्वरूप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

पहले तो कहा, एक शुद्धस्वरूप का अनुभव सकल कर्म के विनाश का कारण है। तब अब शुद्धस्वरूप अर्थात् क्या? यह मोक्षमार्ग क्या? **आत्मा का तत्त्व अर्थात् शुद्ध जीव का स्वरूप है।** ऐसा कहा न? शुद्धस्वरूप का अनुभव अर्थात् यहाँ कहा शुद्ध जीव का स्वरूप है। कौन? **'आत्मनः तत्त्वम्'** शुद्ध जीव का स्वरूप है वह। विकल्प उठता है जो राग, वह शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है। समझ में आया? शुद्ध जीव स्वरूप आया।

और कैसा है आत्मतत्त्व? 'दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा'। सम्यग्दर्शन। देखो! यह निश्चय सम्यग्दर्शन। व्यवहार-फ्यवहार सम्यग्दर्शन है ही नहीं, वह तो विकल्प-राग है। निश्चय सम्यग्ज्ञान। यह किसकी व्याख्या चलती है? शुद्ध जीव के स्वरूप की और **सम्यक्चारित्र उन तीन स्वरूप की... 'त्रयात्मा' 'त्रयात्मा' एक सत्ता है...** देखा? **'त्रयात्मा'** अर्थात् तीन स्वरूप, तीन स्वरूप, ऐसा न? **'त्रयात्मा'** है न? **'त्रयात्मा'** अर्थात् त्रयस्वरूप। उनका तीन का एक स्वरूप, तीन का एक स्वरूप। समझ में आया? तीन का एकरूप। शुद्ध चैतन्य द्रव्य परमात्मा स्वयं स्वरूप की निर्विकल्प श्रद्धा, वीतराग श्रद्धा—सम्यग्दर्शन। अर्थात् वस्तु की श्रद्धा, वस्तु का सम्यग्ज्ञान वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान और वस्तु में रमणता, यह वीतरागी चारित्र, इन त्रयस्वरूप, ऐसा। त्रयस्वरूप, वह आत्मतत्त्व, वह मोक्ष का मार्ग है। कहो! इसमें कुछ दूसरा अवकाश नहीं, इसमें दूसरा कुछ रहने का।

वह यह मोक्षमार्ग, यह शुद्धपर्याय वह। उसमें विकल्प आवे सही। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, तत्त्व.... उसका विकल्प आवे। वह उसका शुद्ध स्वरूप नहीं और शुद्ध स्वरूप नहीं, इसलिए वह मोक्षमार्ग नहीं। मात्र आरोप से निरूपण के कथन में निमित्त की ऐसी व्यवहार से अनुकूलता देखकर आरोप से कथन किया है, वस्तु वह नहीं है। समझ में आया? वे तो कहें, चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) व्यहार दर्शन, ज्ञान और चारित्र। क्योंकि तत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन, वह व्यवहार है। और व्यवहार दर्शन है, वहाँ चारित्र निश्चय कैसे होगा? इसलिए व्यवहार चारित्र। आहाहा! जो

अशुद्ध तत्त्व है, जो आत्मा का स्वरूप नहीं, उसे मोक्षमार्ग सिद्ध करना है। आहाहा! गजब भाई! उसे आत्मा की महिमा ही आती नहीं। समझ में आया? राग की महिमा आती है, राग... राग... राग... राग... राग...

तथापि उसे पहले विश्वास (आना चाहिए)। ऐसा भगवान महान प्रभु वह स्वयं परिणमकर ऐसे झरे। वस्तु... वस्तु... वस्तु... शुद्धरूप से (परिणमे)। पराश्रय का विकल्प तो पर में गया, वह तो पर में (गया)। समझ में आया? पूर्णानन्द प्रभु आत्मा का परिणमन शुद्ध का परिणमना, शुद्ध का शुद्धरूप से पर्याय में होना, वही आत्मतत्त्व अथवा त्रय एकरूप दर्शन, ज्ञान, चारित्र का एकरूप, एक सत्ता, वह आत्मा। **(-सर्वसव) जिसका, ऐसा है।** है न, वापस लिखा है, वह आत्मा अर्थात् सर्वस्व। अर्थात् वस्तुस्वरूप। वह जिसका सर्वस्व। तीन का एक ही सर्वस्व है। दूसरा विकल्प-फिकल्प और निमित्त-फिमित्त उसमें है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? इसने भी कभी आत्मा की क्या चीज़ है, कैसे आत्मा किसे कहना कभी इसने विचारा-मनन किया नहीं और यह बाहर से यह थोथा किया और यह किया और वह किया। भक्ति, दया, दान, व्रत पालो, यह करो वह मुक्ति का मार्ग। अब वह तो राग है। शुभराग है, पुण्य बाँधे, मिथ्यात्वसहित।

मुमुक्षु : फिर क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भव भले धूल का, यह सेठिया का, देव का। जन्म-मरण का अन्त आवे नहीं। समझ में आया? बहुत सरस श्लोक है, देखो न! ओहोहो!

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ।।४७-२३९।।

ओहोहो! एक ही यह है, भाई! भगवान आत्मा महान चैतन्य का महा प्रभु पड़ा है वह, चैतन्य प्रभु है। उसकी सामर्थ्यता शक्ति में ईश्वरता, चैतन्य की ईश्वरता है उसमें। राग और पुण्य में ईश्वरता नहीं। ऐसे भगवान आत्मा के अन्तर्मुख होकर शुद्ध परिणमन की पर्याय (हो), वही एक निश्चय, वही एक सत्य और वही एक मोक्ष का मार्ग। यह ४७ (कलश) हुआ। ४७ हुआ न?

कलश - २४०

(शार्दूलविक्रीडित)

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विरहति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ।।४८-२४०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'स: नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विन्दति' [स:] ऐसा है जो सम्यग्दृष्टि जीव, वह [नित्योदयं] नित्य उदयरूप [समयस्य सारं] सकल कर्म का विनाशकर प्रगट हुआ है जो शुद्धचैतन्यमात्र, उसको [अचिरात्] अति ही थोड़े काल में, [अवश्यं विन्दति] सर्वथा आस्वादता है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाणपद को प्राप्त होता है। कैसा है? 'य: तत्र एव स्थितिं एति' [य:] जो सम्यग्दृष्टि जीव, [तत्र] शुद्धचैतन्यमात्र वस्तु में [एव] एकाग्र होकर, [स्थितिं एति] स्थिरता करता है; 'च तं अनिशं ध्यायेत्' [च] तथा [तं] शुद्धचिद्रूप को [अनिशं ध्यायेत्] निरन्तर अनुभवता है; 'च तं चेतति' [तं चेतति] बार-बार उस शुद्धस्वरूप का स्मरण करता है [च] और 'तस्मिन् एव निरन्तरं विहरति' [तस्मिन्] शुद्धचिद्रूप में [एव] एकाग्र होकर, [निरन्तरं विहरति] अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है। कैसा होता हुआ? 'द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्' जितनी कर्म के उदय से नाना प्रकार की अशुद्धपरिणति, उसको सर्वथा छोड़ता हुआ। वह चिद्रूप कौन है? 'य: एष: दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मक:' [य: एष:] जो यह ज्ञान के प्रत्यक्ष है, [दृग्] दर्शन-[ज्ञप्ति] ज्ञान-[वृत्त] चारित्र, वही है [आत्मक:] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'मोक्षपथ:' जिसके शुद्धस्वरूप परिणमनेपर, सकल कर्मों का क्षय होता है। और कैसा है? 'एक:' समस्त विकल्प से रहित है। और कैसा है? 'नियतं' द्रव्यार्थिकदृष्टि से देखनेपर, जैसा है, वैसा है; उससे हीनरूप नहीं है, अधिक नहीं है।।४८-२४०।।

कलश - २४० पर प्रवचन

अब, ४८।

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक–
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विरहति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ।।४८–२४०।।

यह है न ४१२वीं? (समयसार) ४१२ (गाथा) है न? (४७वाँ कलश) उसके ऊपर का था और यह बाद का है। यह सब पाठ ही यह है न! यह ४१२ (गाथा) का सब पाठ है। देखो! '**मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि**' है न? (४७ में) कहा, यह उसके ऊपर का उपोद्घात था। यह है, वह इसके बाद का है। यह शब्द इसमें लिये।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहिं तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु॥४१२॥

आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य क्या है, उसे अन्तर में दृष्टि में, अनुभव में लेना चाहिए। थोड़ा भले, लम्बा मोटा कुछ नहीं। समझ में आया? थोड़ा अर्थात् यह शुद्ध चैतन्य द्रव्य है, उसे दृष्टि में लेना, यह थोड़ा। दूसरे भेद न आवे, दूसरे शास्त्र की खबर न हो तो बहुत खबर न हो, लो! समझ में आया? ऐसा कहते हैं।

'सः नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विंदति' ऐसा है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह... देखो! **ऐसा है जो... 'सः' 'सः'** कहा न? **'सः'** (अर्थात्) वह। वह कौन? कि आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु, उसकी जहाँ अन्तर में दृष्टि हुई है, शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, ऐसा अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ है। समझ में आया? ओहो! कहा नहीं? छोटी उम्र की बात नहीं की थी? हमारे यहाँ एक ब्राह्मण रहते थे। छोटी उम्र में। हमेशा बोलते थे, दस वर्ष की उम्र की खबर है, हों! बहुत छोटी उम्र में। 'भूंभली' के ब्राह्मण थे। वे नहावे, फिर इतना बोलते हैं...

अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,
भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे।

ऐसा कहते। यह तो ६५ वर्ष, ६६ वर्ष पहले की बात है। यह वह 'उजमबा हॉल' है न? भाई! वे वहाँ रहते थे। यह जन्मस्थान में है, वहाँ रहते थे, 'उजमबा हॉल' में वे रहते थे। हम यहाँ रहते थे इस ओर। परन्तु हमारी माँ का (गाँव था तो हमारा) ननिहाल था। 'भूंभली' और भूंभली के तो मूलजी भट्ट। उतारा में नौकरी थी। उनकी पत्नी-स्त्री बाहर रहती थी, यहाँ कभी आवे परन्तु वे स्वयं हमेशा रहते थे। परन्तु हमेशा नहावे तब ऐसा बोले। यह खाळ है, पहले खाळ थी। 'अनुभवीने एटलुं रे आनंद...' समझ में नहीं कुछ, हों! यह तो बात शब्द की यह तो अभी लगती है। परन्तु इतना बोलते, तब ख्याल सही मेरा कि यह कुछ बोलते हैं, कहा यह क्या बोलते हैं? समझ में आया?

अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,
भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे।

ऐसा बोले। उनकी वह ऊन की होती है न? कम्बल पहनने की। वह पहने और बोलते जाये। फिर कमरे में घुस जाये। उमराला में यह उजमबा हॉल है न? वे वहाँ रहते थे, हम ऐसे रहते थे। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि वह **सम्यग्दृष्टि जीव वह, नित्य उदयरूप समयसार...** देखो! **सकल कर्म का विनाशकर प्रगट हुआ है जो शुद्ध चैतन्यमात्र उसको अति ही थोड़े काल में सर्वथा आस्वादता है।** क्या कहते हैं? धर्मी जीव आत्मा भगवान पूर्णानन्द पर जहाँ अनुभव की दृष्टि पड़ी है, भगवान आत्मा, यह पुण्य और पाप के विकार का जो अनुभव है अनादि का, वह दुःख दायक अनुभव है, और वह संसार के परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया? दूसरा तो अनुभव वह करता नहीं कहीं देह, वाणी, हड्डी, लकड़ी, लड्डू का (अनुभव कर सकता नहीं)। या राग और द्वेष का करे, या वीतरागी अनुभव करे, बस! इसके अतिरिक्त वह दूसरा कर नहीं सकता।

यहाँ कहते हैं कि **सम्यग्दृष्टि जीव वह, नित्य उदयरूप सकल कर्म का विनाशकर**

प्रगट हुआ है जो शुद्ध चैतन्यमात्र उसको अति ही थोड़े काल में... 'अचिरात्' अल्प काल में **सर्वथा आस्वादता है।** अवश्य आस्वादता है। अवश्य पूर्णपद को प्राप्त करेंगे। कौन? यह बाद में कहेंगे। सम्यग्दृष्टि जीव। '**अवश्यं विन्दति**' सर्वथा (आस्वादता है)। देखा? अल्प काल में उसे केवलज्ञान की प्राप्ति होने की, निर्वाणपद की प्राप्ति होने की है और वह '**अवश्यं विन्दति**' '**विन्दति**' की व्याख्या वापस। आत्मा की पूर्ण आनन्ददशारूपी मुक्ति। पूर्णानन्द की दशा पूर्णइदम् आत्मा है, उसकी दशा में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट हो जाना, उसका नाम मुक्ति, मुक्ति कोई दूसरी चीज़ नहीं है। आनन्दमूर्ति भगवान की पर्याय—अवस्था में पूर्णानन्द पूर्ण केवलज्ञान और आनन्द की दशा (प्रगट हो), उसे '**विन्दति**' कहते हैं। देखो? सर्व '**विन्दति**' अर्थात् **सर्वथा आस्वादता है।** पूर्ण आनन्द और अनुभव अल्पकाल में है। कौन? सम्यग्दृष्टि। क्या करके? यह अब कहेंगे। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाणपद को प्राप्त होता है। अल्प काल में मोक्ष को प्राप्त करेगा। कौन? सम्यग्दृष्टि। **कैसा है?** ऐसा कहते हैं अब। '**अवश्यं विन्दति**' की व्याख्या तो देखो! '**अवश्यं विन्दति**' अवश्य जानेगा, ऐसा चाहिए है नहीं तो... है। अवश्य जानेगा। '**अचिरात्**' तो ठीक अब। '**अवश्यं**' अर्थात् सर्वथा '**विन्दति**' अर्थात् आस्वादेगा। भाषा देखो! भाषा तो इसका अर्थ (करते हैं)। '**अवश्यं**' '**अवश्यं**' अर्थात् सर्वथा। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु! उसकी मुक्तदशा सम्यग्दृष्टि को होगी। कैसी? कि सर्वथा पूर्ण आनन्द का अनुभव, ऐसा। सर्वथा (कहा)। थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख, ऐसा नहीं होगा? अनेकान्त नहीं होगा? अनेकान्त। मुक्त परमात्मदशा आत्मा की हो, तब थोड़ा आनन्द अतीन्द्रिय आत्मा का और थोड़ा दुःख, ऐसा (नहीं होता)। अकेला भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द जहाँ परिणमकर पूर्णानन्द की दशा प्रगट की, उन्हें तो सर्वथा अकेला आनन्द ही है। अकेला पूर्ण आनन्द का अनुभव, उसका नाम सिद्धपद, मुक्तपद कहा जाता है। आहाहा! उसे मुक्ति कहते हैं। मुक्ति कोई बाहर की चीज़ नहीं। समझ में आया? 'मोक्ष कहा निज शुद्धता' भाषा ऐसी ली है। इसका अर्थ कि सर्वथा आनन्द का अनुभव, वह शुद्धता, वह निज शुद्धता।

'कैसा है ? 'यः तत्र एव स्थितिं एति' जो सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु में एकाग्र होकर स्थिरता करता है,... कौन ? कि जो सम्यग्दृष्टि, उसे पूर्ण अवश्य सर्वथा आनन्द की पूर्ण मुक्तदशा होगी। किसे ? कि जो सम्यग्दृष्टि, शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य धातु, शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसमें—उस वस्तु में '**एव**' एव अर्थात् निश्चय इसके बदले **एकाग्र होकर...** भाषा देखो! '**तत्र**' अर्थात् इस वस्तु में। शुद्ध चैतन्य पदार्थ महान आनन्दकन्द प्रभु! '**एव' एकाग्र होकर...** निश्चय से अर्थात् **एकाग्र होकर स्थिरता करता है...** भगवान शुद्धस्वरूप में अन्तर स्थिरता करता है, वह अल्पकाल में पूर्णानन्द को सर्वथा आनन्द को आस्वादेगा। पूर्ण आनन्द का अनुभव उसकी पर्याय में प्रगट होगा। समझ में आया ? उसमें उसकी स्थिरता करेगा, ऐसा कहते हैं, देखो! रागादि, विकल्प आदि नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध प्रभु में अन्तर की दृष्टि करके उसमें स्थिरता... स्थिरता... स्थिरता... शुद्ध चैतन्य पदार्थ में स्थिरता पायेगा, स्थिरता करेगा, '**एति**' स्थिरता करता है, ऐसा वापस। वह स्थिरता स्वयं करता है। फिर कर्म-फर्मा मार्ग दे और स्थिरता (करे), ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

'**वस्तु तत्र एव स्थितिं एति**' भगवान आत्मा '**तत्थेव**' '**तत्थेव**' ऐसा शब्द है न मूल में ? उसमें से यह निकाला। शुद्ध चैतन्य प्रभु, महापदार्थ भगवान में निश्चय से अर्थात् कि एकाग्र होकर। यह निश्चय कहलाता है। '**एव**' अर्थात् एकाग्र। उसका नाम निश्चय। वह विकल्प है, वह निश्चय नहीं। अर्थात् कि एकाग्रता अन्दर की नहीं। समझ में आया ? शब्दार्थ भी किया है न देखे ऐसा वहाँ, हों! भारी गजब बात! कलशटीका तो कोई अलौकिक टीका बाहर आयी है। यह भगवान ऐसा है यह। आहाहा! अनन्त... अनन्त आनन्द जिसके पेट में—ध्रुवपने में पड़ा है। जिसके सत्त्व में सत्त्व... सत्त्व... सत्त्व... सत्त्व... सत्त्व... बेहद शान्ति, बेहद आनन्द, बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद स्थिरता, ऐसा उसका स्वरूप है। उसमें रमेगा, ऐसा कहते हैं। यह पर्याय है, वह तो स्वरूप है। ऐसी शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु '**एव**' उसमें एकाग्र होगा, उसमें एकाग्र होगा अर्थात् स्थिरता करेगा। '**च तं अनिशं ध्यायेत्**' एक बोल हुआ।

दूसरा बोल। **तथा 'तं' शुद्ध चिद्रूप को निरन्तर अनुभवता है,...** यह दूसरा बोल। बात तो इसी और इसी की है। अब निरन्तर अनुभवता है। यह शब्द है न ? सब ४१२

में है न! भगवान शुद्ध स्वरूप परमानन्द की मूर्ति आत्मा स्तम्भ, ध्रुव स्तम्भ, नित्यानन्द ध्रुव स्तम्भ सत् ऐसा भगवान, उसमें शुद्ध चिद्रूप अर्थात् वस्तु, निरन्तर अनुभव करता है, वह पर्याय। '**अनिशं, अनिशं**' निरन्तर अनुभवता है, ध्याता है, ध्याता है, ध्यान करता है। वह शुद्ध स्वरूप का ध्यान करता है, ऐसी पर्याय। समझ में आया?

'च तं चेतति' बार बार उस शुद्धस्वरूप का स्मरण करता है... चेतता है, स्मरण करता है। अर्थात् उसे और उसे याद करके स्थिर होता है। यह आनन्द... यह आनन्द... यह आनन्द... यह अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा करके उसमें स्थिर होता है, इसका नाम स्मरण, हों! स्मरण अर्थात् उसमें याद करके स्थिर होना। समझ में आया? कठिन बात, भाई! 'व्यवहारे लक्ष जे लहे तेना भेद अनेक रहे, परमार्थ पंथ जो कहे ते रंजे एक तंत रे...' ओहो! 'प्रभु सर्व वाते पूरा' आया नहीं? भजन में आता था कहीं। 'कई बाते अधूरो...' शब्द आते थे। प्रभु तुम सर्व बातें पूरा। समझ में आया? यह आत्मा सर्व बातें पूरा है, प्रभु! परन्तु उसकी इसे खबर नहीं होती। यह रजकण धूल मिट्टी है। कर्म धूल है, अन्दर वह एक प्रारब्ध है। पुण्य-पाप के विकल्प, वे तो अनात्मस्वरूप हैं, वे कहीं आत्मा नहीं। उनमें स्वरूप में शुद्ध चिदानन्द मूर्ति में '**अनिशं ध्यायेत्**' और उसे याद करके ऐसा आत्मा आनन्द का अनुभव किया है, अनुभव किया है, ऐसा याद करके अनुभव करता है। उसे स्मरण में लेता है। लो! यह स्मरण। ऐई! '**चेतति**' लो! यह स्मरण। क्या (कहा)?

बार बार उस शुद्धस्वरूप का स्मरण करता है... अर्थात् यह आत्मा आनन्द है, ऐसा निश्चय अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा करके निश्चय किया है न? अनुभव किया है न? यह आत्मा अवग्रह—पकड़कर, अवाय करके, निर्णय करके धारा है कि यह आत्मा आनन्दमय है। आनन्दमय। आनन्द के अंश द्वारा आनन्दमय है, ऐसा जो धारा है, उसी और उसी को बारम्बार याद करके स्थिर होता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें आता है न? चिट्ठी में नहीं? आगम से, अनुमान से, स्मृति से उसमें स्थिर होता है। ऐसा आता है न? चिट्ठी में। स्मृति करके, ... समझ में आया? वस्तु जो ज्ञान में, भान में आयी थी (कि) यह वस्तु, यह वस्तु, उसकी बारम्बार स्मृति करता है, स्थिर

होता है। वहाँ परोक्षपना बताते हैं न? वहाँ (रहस्यपूर्ण) चिट्ठी में। समझ में आया? बारम्बार भगवान आत्मा में उसका स्मरण करे। देखो! यह स्मृति।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा के शिखर पर जल्दी होता है। सवेरे आया था, नहीं? गुण स्मरण। वह तो पर गुण स्मरण का आया था। यह तो तीर्थ से पुरुष जो मोक्ष पधारे, वहाँ ऐसी परमात्म दशा यहाँ पाये, उनके गुण का स्मरण, वह तो विकल्प है। परलक्ष्यी (विकल्प है)। यह स्मरण तो निर्विकल्प है।

मुमुक्षु : .... 'तव गुण लब्धये' ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें... 'तव गुण लब्धये'। यह तो बात करे कि हमारे तो यह प्राप्ति (करने की भावना है)। परन्तु उसके विकल्प से वह प्राप्ति होती है? आहाहा!

यह भगवान के गुण जो अनन्त शान्त, आनन्द आदि जो सम्यग्ज्ञान में ज्ञात हुए हैं, अनन्त गुण के अंश जो पर्याय में परिणमित हुए हैं, उनसे यह आत्मा ऐसी स्मृति करके उसमें स्थिर होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। वह स्मृति अन्दर की, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? यह जाति की स्मृति करने से वह स्मृति मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अरे! इसने अपने माहात्म्य को (किया नहीं)। भाव में इसने माहात्म्य कभी किया नहीं। अनुभव की बात एक ओर रही परन्तु यह क्या चीज़ है? वीर्य के उल्लास द्वारा यह भगवान परमात्मा जिसके पक्ष में चढ़ने से आनन्द आवे और जिसके पक्ष से— राग और द्वेष से हटे, वहाँ आनन्द आवे। उसमें कुछ नहीं कहते? जिसकी बात कहने में भी आनन्द आवे। आता है, अनुभव प्रकाश में आता है। जिसकी बात करने से आनन्द आवे, ऐसा भगवान आत्मा। जैसे शक्कर का नाम सुनने से जैसे आता है न मस्तिष्क में? पानी छूटता है या नहीं? यह आत्मा। कहते हैं कि यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, जो अनुभव में लिया, उसका स्मरण करते ही आनन्द आवे। आहाहा! कठिन बातें! समझ में आया?

'तस्मिन् एव निरन्तरं विहरति' ऐसा जो भगवान आत्मा वह विकार करे, विहार। विहार अर्थात् विचरना। किसमें विचरना? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है। **'तस्मिन्' शुद्ध चिद्रूप में... 'एव' एकाग्र होकर...** लो! यहाँ वापस ऐसा आया। देखा? (पहले) **'एव'** को एकाग्र कहा, यहाँ **'एव'** को एकाग्र किया। निश्चय है न? शुद्ध चिद्रूप में निश्चय से। निश्चय अर्थात् ही उसमें एकाग्र, उसका नाम निश्चय है, ऐसा। आहाहा! इसका अर्थ ही यह है। **'एव'** का अर्थ निश्चय। निश्चय अर्थात् कि शुद्धस्वरूप में एकाग्रता। समझ में आया? राग में एकाग्रता, वह पर व्यवहार है। अन्दर में एकाग्रता, वह निश्चय है, ऐसा कहना है। आहाहा!

शुद्ध चिद्रूप में एकाग्र होकर... 'निरन्तरं विहरति' अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है। निरन्तर। निरन्तर की व्याख्या—अखण्ड। और **'विहरति'** अर्थात् धाराप्रवाहरूप अखण्ड धारा पूरा और **'विहरति'** अर्थात् प्रवर्तता है। वस्तु अखण्ड प्रभु आत्मा वस्तु है। देखो न! यहाँ आया था न? जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य। कोने में है न, कोने में श्रीमद् का वाक्य।

यह **अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है।** यह पर्याय की बात है। वह द्रव्य की बात है। भगवान आत्मा एक समय का पहला ज्ञान में, आनन्द में, भान में लिया था, उसे अखण्ड धाराप्रवाह... देखो! जिसकी धारा वस्तु की ओर की एकाग्रता की अखण्ड धारा, जिसमें खण्ड न पड़े, जिसमें विकल्प आवे नहीं। आहाहा! शुद्ध चैतन्य प्रभु पूर्ण ज्ञान और आनन्द। उसकी परिणति अखण्ड धारा, एकरूप धारा, खण्ड बिना की धारा। प्रवाह धारा चले अन्दर में, उसमें प्रवर्तना, यह इसका नाम आत्मा में विचरना कहा जाता है। लो! यह सब विचरते हैं न देश-परदेश जाते हैं और यहाँ भटकते हैं और यहाँ भटकते हैं। पुण्य-पाप के भाव में भटकते हैं, वे विभाव में भटकते हैं, ऐसा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के भाव में यह परदेश में विभाव में—परदेश में गया वह। भगवान आत्मा के शुद्ध स्वभाव में आवे, उसे अखण्ड धारा के आत्मा में उसने विहार किया। प्रवर्तता तो है न? विहार तो करता है न अनादि से? पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ राग। यह शुभ किया और अशुभ किया, शुभ किया और अशुभ किया, उसमें विचरता

है। छोड़ (उसमें) विचरना, अब यहाँ आत्मा के भगवान स्वभाव में विचर, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो विचरता है और आस्वाद पाता है, कौन? कि ऐसे, ऐसा। ऐसे को पूर्ण अवश्य मुक्ति की दशा होती है। सर्वथा आस्वादता, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? **शुद्ध चिद्रूप में एकाग्र होकर 'निरन्तरं विहरति' अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है।** ओहोहो! एक धारारूप प्रवर्तता है। अर्थात् कि अन्तर में दृष्टि देकर जो स्थिरता एकरूप द्रव्य के आधार से, द्रव्य के अवलम्बन से, वस्तु के अवलम्बन से एकरूप धारा बहती है, वह आत्मा आत्मा में प्रवर्तता है। समझ में आया? **कैसा होता हुआ? 'द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्'** नकार से आया। **'द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्' जितनी कर्म के उदय से नाना प्रकार की अशुद्ध परिणति...** देखो! अशुद्ध परिणति विकल्प। यह शुभराग आदि व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा, वह अशुद्ध परिणति है। आहाहा!

'द्रव्यान्तराणि' 'द्रव्यान्तराणि' स्वद्रव्य से अन्य, स्ववस्तु से अन्य। **'द्रव्यान्तराणि'** है न? अन्य कौन? कि शुभ-अशुभ पर्याय। यह शुभ राग-द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प, वह **'द्रव्यान्तराणि'** वह द्रव्य से अन्य विकारी पर्याय है। वह **'अशुद्ध परिणति उसको सर्वथा छोड़ता हुआ। 'द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्'** है न? स्पर्शता नहीं, उसे स्पर्शता नहीं अर्थात् उसे छूता नहीं। समझ में आया? यह सब भाई! ऐसा एकान्त लगे, हों! एकान्त लगे। भाई! इस एकान्त का अर्थ यह ही है और राग से—व्यवहार से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से मोक्षमार्ग होता है, निश्चय से तो कथन में यह कहा जाता है। वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! पुकार... पुकार... भगवान के सामने पुकार कर, भाई! ऐ भीखाभाई! क्या करना इसमें?

कैसा होता हुआ? 'द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्' भाषा क्या है? यह आत्मा शुद्ध स्वरूप भगवान की परिणति—अवस्था, वह स्वद्रव्य की परिणति है और अशुद्ध रागादि विकल्प दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प उठता है, वह इस द्रव्य से अन्य अशुद्ध परिणति है, अशुद्ध दशा है। उसे **सर्वथा छोड़ता हुआ।** उसे नहीं स्पर्शता का अर्थ किया। **'अस्पृशन्' 'द्रव्यान्तराणि'** की व्याख्या अशुद्ध परिणति ले ली। अस्पर्श का अर्थ

सर्वथा छोड़ता हुआ। अर्थात् कि उसे स्पर्शता ही नहीं। विकल्प जो शुभ आवे, उसे अन्दर स्पर्शता नहीं, छूता नहीं। भगवान शुद्ध आत्मा को स्पर्शता—परिणति करता हुआ मोक्षपने को पाता है। समझ में आता है? थोड़ी-थोड़ी गुजराती... आहाहा! इन्हें फिर खोटा सिद्ध करते हैं। राजमलजी की टीका। अरे! भाई! बापू! आहाहा!

कर्म के उदय से नाना प्रकार की अशुद्ध परिणति... शुभ विकल्प है न राग, वह कर्म के निमित्त की उपाधि की पर्याय है, स्वभाव की निरुपाधि पर्याय कहाँ है वह? समझ में आया? जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वह उपाधिभाव है। वह आत्मा के द्रव्य से अन्य कर्म के कारण से उत्पन्न हुआ विकल्प है। रहा हुआ है इसकी पर्याय में, परन्तु वह द्रव्य का स्वभाव नहीं, वह तो उपाधिभाव है। उस उपाधिभाव को धर्मी जीव मोक्ष पाने के योग्य अर्थात् पंथ में प्रवर्तता हुआ अपने द्रव्य शुद्धस्वभाव को स्पर्शता हुआ, उसे नहीं (स्पर्शता हुआ), सर्वथा छोड़ता हुआ। छोड़ता अर्थात् इस ओर है, इसलिए वहाँ स्पर्शता नहीं। उसके वेदन में आता नहीं, इसलिए सर्वथा छोड़ता हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

छोड़ता हुआ। अर्थात् यह छोड़ूँ, ऐसा नहीं। वह तो कथन की शैली क्या कहे? '**अस्पृशन्**' अर्थात् स्वरूप के शुद्धस्वरूप को स्पर्शता, अनुभवता हुआ राग को स्पर्शता नहीं, इसका नाम सर्वथा छोड़ता है, ऐसा कहने में आता है। लिखे अर्थ के वापस ऐसे अर्थ करना पड़ेंगे। पाठ तो **सर्वथा छोड़ता हुआ...** यह छोड़ता है, ऐसा होगा? परन्तु वस्तु चिदानन्द भगवान के अन्तर में आनन्द में एकाग्र हुआ है, इसलिए जो कुछ विकल्प है, उसे उत्पन्न नहीं होते, इसलिए उन्हें स्पर्शता नहीं और छोड़ देता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **सर्वथा छोड़ता हुआ...** कथंचित् छोड़ता और कथंचित्, ऐसा नहीं होगा? सर्वथा तो जिनमार्ग में नहीं, कोई ऐसा कहता है। अनेकान्त है। ऐई!

मुमुक्षु : अनेकान्त किस प्रकार हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें ही आया सर्वथा। स्वद्रव्य को सर्वथा स्पर्श करता है और विकल्प को सर्वथा स्पर्शता नहीं। आहाहा! **छोड़ता हुआ।** '**सर्वथा**' दो बार आया

न ? पहला **सर्वथा आस्वादता है।** ऐसा वहाँ आया था न ? 'आस्वादता हुआ' वहाँ आया था। वहाँ सर्वथा आया था। यहाँ सर्वथा **छोड़ता हुआ।** (आया)। पूर्णानन्द की पर्याय केवलज्ञान परमानन्द प्राप्त करनी है, इसलिए पूर्णानन्द को स्पर्शता—सर्वथा स्पर्शता हुआ आस्वादता हुआ आस्वादता है। कौन ? कि ऐसा जीव। वह पहला यहाँ सर्वथा छोड़ता हुआ और सर्वथा आत्मा की शान्ति को वेदता हुआ, ऐसा।

वह चिद्रूप कौन है ? वे तीन डालने हैं वापस ? वे। '**यः एषः दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः**' आहाहा! यह तो अमृत की कथा है। आत्मा कहो, अमृत कहो, मोक्ष को अमृत कहने में आता है। मोक्ष, वह अमृत है, वस्तु भी अमृत है और उसका मोक्ष का मार्ग भी अमृत है। समझ में आया ?

कहते हैं, अहो! '**यः एषः दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः**' **जो यह ज्ञान के प्रत्यक्ष है,... जो यह ज्ञान के प्रत्यक्ष है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही है सर्वस्व जिसका,...** यह ज्ञान का प्रत्यक्ष। '**एषः**' कहा न ? यह। यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान का यह प्रत्यक्षपना पर्याय में हो गया है। आहाहा! समझ में आया ? **जो ज्ञान के प्रत्यक्ष है,...** ज्ञान को प्रत्यक्ष ही, पर्याय प्रत्यक्ष स्वआश्रय हो गयी है। कौन ? कि **दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही है सर्वस्व जिसका,...** जो ज्ञान का ही प्रत्यक्षपना। अकेला भगवान चैतन्य प्रकाश, उसकी प्रत्यक्ष पर्याय हुई। क्या (पर्याय हुई) ? दृग्, ज्ञान और चारित्र। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही है सर्वस्व जिसका,...** यह सब है, यह पर्याय, वह सर्वस्व है। कौन सी पर्याय ? यह निर्मल शुद्ध ज्ञान प्रत्यक्ष हुई। ज्ञान में प्रत्यक्ष, वेदन में प्रत्यक्ष है न ? ऐसा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। **वह ही है। 'आत्मकः' 'आत्मकः'** अर्थात् **सर्वस्व....** अर्थात् आत्मक अर्थात् स्वरूपरूप। जिसका सर्वस्व वह है।

ऐसा **चिद्रूप कौन है ?** ऐसा। **चिद्रूप कौन है ?** कि जिसका ज्ञान प्रत्यक्ष है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसका सर्वस्व है, ऐसी जिसकी पर्याय प्रगट हुई है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। समझ में आया ? **और कैसा है ? 'मोक्षपथः'** आहाहा! **जिसके शुद्धस्वरूप परिणमने पर सकल कर्मों का क्षय होता है।** बात तो '**मोक्षपथः**' कहा है न ? मोक्ष का पथ, मोक्ष का पथ, पंथ, पंथ—कारण। कि **जिसके शुद्धस्वरूप परिणमने**

पर... भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु, वह शुद्धरूप से परिणमने पर **सकल कर्मों का क्षय होता है।** परन्तु यह तो सकल कर्म के क्षय की बात की। सर्वथा उसकी परन्तु? नीचे की? यह नीचे की ही बात है सर्वत्र से। समझ में आया? आहाहा!

जिसके शुद्धस्वरूप परिणमने पर... भाषा देखो! **'यः एषः दृग्ज्ञप्तिवृत्त स्वरूप'** भगवान प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति उसकी पर्याय में दृग, ज्ञान (प्रगट हुए हैं)। प्रत्यक्ष अर्थात् वही हो गया। शुद्धपने का दृग, ज्ञान और आत्मा शान्तिरूप परिणमित हुआ। वह शुद्धस्वरूप का परिणमन होने पर **सकल कर्मों का क्षय होता है।** भगवान आत्मा को उस शुद्ध भगवान आत्मा का शुद्ध परिणमन होने से (सकल कर्मों का क्षय होता है)। यह तो इसी और इसी की भाषा में सब प्रकार भिन्न-भिन्न वर्णन किये हैं, हों! यह मोक्षमार्ग कहो, शुद्ध परिणमन कहो, वहाँ विहार कहो, उसका ध्यान कहो, उसका अनुभव कहो, उसका स्मरण कहो। समझ में आया?

और कैसा है? 'एकः' समझ में आया? **समस्त विकल्प से रहित है।** यह मोक्षपथ ही सकल विकल्प से रहित है। सकल कर्म-कर्म, विकल्प-विकल्प। सकल विकल्प की वृत्तियों से रहित भगवान का—आत्मा का मोक्षपंथ है। भिन्न-भिन्न से निर्विकल्प पर्याय ली, विकल्प से रहित है। **'एकः' 'एकः'** की व्याख्या की। **'एकः'** अर्थात् निर्विकल्प दशा, ऐसा। विकल्प तो अनेक प्रकार के होते हैं न? समस्त विकल्प अर्थात् राग से रहित है। विकल्प अर्थात् शुभ विकल्प, गुण-गुणी का भेद ऐसा भी विकल्प जहाँ नहीं, ऐसी जो आत्मा की अन्तर अनुभव दशा। कहो, समझ में आया? यह मोक्षमार्ग है। **और कैसा है?** यह तो और आत्मा का वर्णन किया। समझ में आया?

'नियतः' नियत है, नियत। यह **द्रव्यार्थिकदृष्टि से देखने पर जैसा है, वैसा ही है,...** भगवान वस्तु तो जैसी है, वैसी है। द्रव्यार्थिक—द्रव्य का—वस्तु का प्रयोजन उसमें है, ऐसा देखें तो वह भगवान सर्वथा विकल्परहित जैसा है, वैसा है। कहो, समझ में आया इसमें? नियत... नियत... नियत... यह नियत, क्रमबद्ध में विवाद उठा न? यहाँ तो कहते हैं, नियत ही जैसा है, वैसा है, ऐसा। यह वहाँ भी नियत जैसी है, वैसी अवस्था होती है। यहाँ नियत वस्तु है, वैसी है। समझ में आया?

'मोक्षपथः' जिसके शुद्धस्वरूप परिणमने पर सकल कर्मों का क्षय होता है। ऐसे शुद्ध द्रव्य का आत्मनम्। यह भगवान आत्मा पंथ ऐसा और वस्तु भी ऐसी। द्रव्यार्थिकदृष्टि से देखने पर जैसा है, वैसा भगवान ऐसा का ऐसा है ऐसा। टंकोत्कीर्ण चिद्घन आत्मा, उसके आश्रय का परिणमन, वही मोक्ष का कारण है। **उससे हीनरूप नहीं है, अधिक नहीं है।** वस्तु तो वस्तुरूप है, उसमें हीनपना, अधिकपना है नहीं। ऐसे चिद्रूप का अन्तर शुद्ध का परिणमन, अन्तर की रमणता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की (होना), वही मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई है नहीं।

कहो, अब इतनी तो मोक्ष की व्याख्या (की है)। अब इसमें व्यवहार मोक्ष कहाँ आया इसमें? ऐ... धर्मचन्दजी! श्लोक में तो कितना स्पष्टीकरण (किया है)! **'एको मोक्षपथो'** ऐसा लिया है या नहीं? **'एको मोक्षपथो'** कहाँ आया? **'एकः'** की व्याख्या **'एकः'** यह देखो! **'एकः' समस्त विकल्प रहित....** आया। वहाँ अन्तिम आया। एक की व्याख्या की। नहीं तो **'एको मोक्षपथो'** है। एक मोक्षपंथ है, एक मोक्षपंथ, हों! समझ में आया? अन्तिम शब्द है न? **'एकः'** वहाँ उसकी ऐसी व्याख्या। नहीं तो उसमें पहले लिखे **'एको मोक्षपथो य एष नियतो दग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-'** लो! समझ में आया? एक मोक्ष का पंथ अर्थात् भेद बिना का, समस्त विकल्परहित आत्मा की दशा, वह एक ही मोक्ष का पंथ है, ऐसा कहते है। समझ में आया? आहाहा! अभी मार्ग कैसा है, यह कहाँ (खबर है)। भगवानजीभाई! सुना नहीं था वहाँ भावनगर में।

मुमुक्षु : मार्ग सुना नहीं था परन्तु चलते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टे, उल्टे मार्ग में चलते थे और मानते थे कि मोक्षमार्ग में हैं, धर्म में हैं, ऐसा। जाव तावकायाणं .... लो! आसन झटकाकर चलो सामायिक, प्रौषध हो गये। अरे! सामायिक, प्रौषध किसे कहना? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम है, यह उसे अन्तर में शुद्ध परिणमन में अन्तर निर्विकल्प होना, जिसमें भेद ही नहीं, ऐसा कहते हैं, एक अर्थात्। ऐसा अभेद मोक्ष का मार्ग एक ही है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहाहा! एक व्यवहारमोक्षमार्ग और एक निश्चयमोक्षमार्ग। यहाँ कहते हैं, एक ही निश्चयमोक्षमार्ग, दूसरा कोई है ही नहीं। और, दूसरा एक व्यवहारमोक्षमार्ग। दूसरे

काल में दूसरा एक, बाद के काल में दूसरा एक। इसीलिए तो दो, ऐसा लिया। एक मोक्षमार्ग एक, एक व्यवहारमार्ग। ऐसे दो। यह तो साथ-साथ में निमित्त का कथन किया है। एक यहाँ और एक यहाँ, ऐसा नहीं है। इतना तो स्पष्ट कहा है।

यहाँ यह कहा है '**एकः**' अन्तिम शब्द लिया। पहला था न यहाँ? '**एको मोक्षपथो**' एक (अर्थात्) समस्त विकल्परहित निर्विकल्प वीतराग परिणति। द्रव्यार्थिक—द्रव्य अर्थात वस्तु उसकी दृष्टि को देखो (तो) जैसा है, वैसा वस्तु और उसकी परिणति ऐसी की ऐसी हो गयी। उसमें से निर्विकल्प में हीनाधिकता नहीं और वस्तु में भी कुछ हीनाधिकता नहीं है। ऐसी वस्तु के स्वभाव के अवलम्बन का शुद्ध परिणमन—वीतरागी दशा, वह निश्चयमोक्षमार्ग, वह एक ही मोक्षमार्ग है। उससे पूर्णानन्द का—मोक्ष का अनुभव होता है, दूसरा कोई (मार्ग) है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक-३०-११-१९६५, कलश-२४०, २४१, प्रवचन-२५५

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। ऐसे ४८ वाँ कलश है न? पूरा हुआ। उसका एक शब्द का विस्तार रह गया है। वहाँ **'अचिरात्'** शब्द है न? देखो! चौथी लाईन है। ४८ कलश है न? ऐसे धारावाही २४० (कलश है)। **'अचिरात्'** शब्द है न? **अति ही थोड़े काल में सर्वथा आस्वादता है।** क्या है इसका अर्थ? देखो! जरा उस समय विस्तार ख्याल में नहीं आया था। पहले बात हो गयी थी। देखो! थोड़ा सा पहले से इसका थोड़ा सा सार (लेते हैं)।

'सः नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विंदति' यह का यह कलश। **ऐसा है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह,...** अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि अर्थात् क्या? कि जो यह आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द ज्ञायकमूर्ति वस्तु है, उसका अन्तर में ज्ञान, भान करके अन्दर प्रतीति करना। वस्तु आत्मा वीतराग चिदानन्द अखण्ड ज्ञायकस्वरूप आत्मा है। समझ में आया?

यह आत्मा... देह—वाणी, वह कहीं आत्मा नहीं, वह तो जड़ मिट्टी है। कर्म अन्दर है, वे भी जड़ हैं। पुण्य-पाप के भाव दया, दान, काम, क्रोध के वे सब विकार आस्रवतत्त्व हैं। एक समय की अवस्था है वह वर्तमान पर्याय व्यवहार है। वस्तु है, वह एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वस्तु जो है—पदार्थ, वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणरूप एक वस्तु, वस्तु पदार्थ पूरी वस्तु है, उसका अन्तर में अनुभव सम्यग्दर्शन अर्थात् ज्ञान का अनुभव करके यह आत्मा ऐसा है, ऐसा निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान करके उसमें प्रतीति होना कि यह आत्मा ऐसा है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा जो अनुभव होता है, उस अनुभवी को मोक्ष होता है। समझ में आया? कैसा?

नित्य उदयरूप समय के सार का अर्थात् सकल कर्म का विनाशकर प्रगट हुआ है, जो शुद्ध चैतन्यमात्र उसको अति ही थोड़े काल में सर्वथा आस्वादता है। क्या कहा? कि यह आत्मा वस्तु अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर

आत्मा है। अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द के रस से तत्त्व सत्त्व भरपूर आत्मा है। अनन्त बेहद ज्ञान के स्वभाव से भरपूर यह सत्त्व तत्त्व है। ऐसे भगवान आत्मा को पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर, एक समय की वर्तमान पर्याय के लक्ष्य से हटकर और वर्तमान पर्याय द्वारा लक्ष्य से हटकर। समझ में आया? परन्तु वर्तमान अंश द्वारा अन्तर पूरी चीज़ पर अनुभव करना अन्दर निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान प्रगट करना, उसे भगवान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? हें?

भगवान आत्मा वस्तु, वस्तु यह परमानन्द की मूर्ति! अहो! उसका अन्तर में वस्तु का ज्ञान। पर का नहीं, पुण्य-पाप का नहीं, एक समय की पर्याय का भी नहीं। एक समय की प्रगट अवस्था का भी नहीं। अखण्ड पूर्ण द्रव्य जो अनन्त गुण का धाम, उसका अन्तर में सन्मुख होकर निर्विकल्प अर्थात् रागरहित श्रद्धा अन्तर में अनुभव में प्रगट करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे भगवान सम्यग्दर्शन—मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

उस मोक्षमार्ग द्वारा क्या होता है? कि नित्य उदय जिसका रहे। फिर परमात्मदशा हो, वह कभी गिरे नहीं। **सकल कर्म का विनाशकर प्रगट हुआ है, जो शुद्ध चैतन्यमात्र...** ऐसी शुद्ध चैतन्यमात्र पर्याय निर्मलानन्द दशा **अति ही थोड़े काल में सर्वथा आस्वादता है।** वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और यह। यहाँ कोई कहता है कि भाई! निश्चयमोक्षमार्ग है, वह तो कोई आठवें गुणस्थान में और आगे होता है। छोटाभाई! हों! ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं।

इसलिए यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग जो है, स्वभाव का भान पूर्णानन्द प्रभु, अन्तर की प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता, ऐसा स्वआश्रय निश्चयमोक्षमार्ग जो प्रगट हुआ, वह जीव अति अल्प काल में सर्वथा पूर्णानन्ददशा के मोक्ष को आस्वादता है। अब वह थोड़े काल की व्याख्या ऐसी की है कि कोई उस भव में मोक्ष जाये, कोई तीसरे भव में आदि, चौथे भव में आदि, मोक्ष जाये। यदि इस निश्चयमोक्षमार्ग को आठवें से ले, तब तो उसी और उसी भव से मोक्ष जाता है। क्षपकश्रेणी करके। उपशमश्रेणी की बात करे तो यह बात न बैठे। वह अन्तर्मुहूर्त की स्थिति की बात नहीं है। समझ में आया?

वस्तु जो है, वह चौथे गुणस्थान से, पाँचवें या छठवें में, जो वस्तु भगवान आत्मा

है... सूक्ष्म बात है। उसने अनन्त काल से उसे लक्ष्य में लिया नहीं। बात क्या है सत्यार्थ तत्त्वार्थश्रद्धान, यह इसने ख्याल में लिया नहीं। तत्त्वार्थश्रद्धान बिना इसे सम्यग्दर्शन होगा नहीं और उस सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान, साथ में स्वरूप की स्थिरता—ऐसा जो आत्मतत्त्व पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर्मुख निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, वस्तु की वीतरागी पर्यायरूप श्रद्धा, अराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप पर्याय वस्तु का ज्ञान और वस्तु भगवान आत्मा में स्थिरतारूप चारित्र—यह निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट करनेवाले को पूर्ण मोक्ष सर्वथा पूर्णानन्द का अनुभव करे, पूर्ण आनन्द को वेदन करे, वह अल्प काल में वेदन करेगा। वह अल्प काल अर्थात् कोई उसी भव में करेगा, कोई तीसरे भव में स्वर्गादि जाकर, मनुष्यादि (होकर) और कोई चौथे भव आदि (में) पायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे अभी एक, दो भव तो हो सकते हैं। यह यदि आठवें गुणस्थान की श्रेणी हो तो यह नहीं हो सकता। समझ में आया?

चौथे गुणस्थान से ही मोक्षमार्ग शुरु होता है। भले चारित्र की पूर्णता नहीं, इसलिए उपचार... परन्तु वहाँ से ही उसकी दशा शुरु होती है। और पाँचवें, छठवें में चारित्र पूर्ण होता है; इसलिए वहाँ निश्चयमोक्षमार्ग हो गया अथवा सातवें में शुद्धोपयोग लो... समझ में आया न? शुद्धदशा मोक्षमार्ग तो छठवें में भी चारित्रसहित है, परन्तु जरा विकल्प पंच महाव्रत आदि के होते हैं, इसलिए उन्हें आस्रव गिना; फिर शुद्धोपयोग स्थिर होता है, तब उसे मोक्षमार्ग वास्तव में अभेद उसे गिना है। उस जीव को भी एक, दो और तीन आदि भव हो सकते हैं। समझ में आया? इस श्लोक की टीका में है, यह बात पहले हो गयी थी।

इसलिए कोई ऐसा कहे, परम अध्यात्म तरंगिणी। इस '**अचिरात्**' का अर्थ है। ओहोहो! क्या किया है न अभी फेरफार! वह तो आत्मा को मोक्ष ही है, कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए आत्मा तो मुक्तस्वरूप ही है। वस्तु ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड मुक्तस्वरूप ही है। वह अबद्धस्पृष्ट—राग और कर्म बिना का तत्त्व जो है भगवान आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड मुक्तस्वरूप है। उसकी दृष्टि होने पर, अबन्धस्वभावी की दृष्टि होने पर, वह अबन्धस्वभावी मुक्तस्वरूप ही है। पर्याय में भी मुक्त ही भासित हुआ। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में मुक्त भासित हुआ, ऐसा। पर्याय वर्तमान

पर्याय में भले अपूर्ण पर्याय है। वह श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—चारित्र द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग जो अन्दर स्वआश्रय हुआ, द्रव्य अर्थात् वस्तु का स्व आश्रय हुआ, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग, (उसे पाकर) कोई इस भव में केवल (ज्ञान) पावे अर्थात् कि सर्वथा आनन्द को अनुभव करे। सर्वथा पूर्ण आनन्द का अनुभव, इसका नाम मुक्ति।

अकेले अशुद्ध के दुःख का वेदन, इसका नाम संसार। समझ में आया? भगवान आत्मा में अनन्त... अनन्त... आनन्द होने पर भी उससे विरुद्ध भ्रान्ति—भ्रमणा (अर्थात्) पुण्य-पाप मैं, अल्पज्ञ मैं, यह मैं—ऐसी मिथ्यादृष्टि और राग-द्वेष के परिणाम अकेली दुःखरूप दशा, उसे संसार कहा जाता है। और मोक्ष का मार्ग, वह आनन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता हुई, वहाँ थोड़ा अतीन्द्रिय आनन्द आया, थोड़े अभी रागादि बाकी हैं। इसलिए अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन द्वारा अल्प काल में वह पूर्णानन्द को प्राप्त करेगा। ऐसे एक या तीन या चार भव आदि पाता है, ऐसा कहने से निश्चयमोक्षमार्गी जीव दो, तीन भव भी कर सकता है। समझ में आया?

यह यहाँ '**अचिरात्**' का अर्थ है। तुरन्त का तुरन्त ही केवलज्ञान पावे तो उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहा, नहीं तो उसे व्यवहारमोक्षमार्गवाला कहा जाये, ऐसा नहीं है। व्यवहारमोक्षमार्ग—यह विकल्प, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! '**एको मोक्षपथो**' है न पहला (शब्द)? '**अचिरात् नित्योदयं विन्दति**' एक मोक्षपंथ भगवान आत्मा अन्तर में पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा का है। जैसे सिद्ध भगवान वर्तमान पर्याय में—अवस्था में प्रगट परिणमन के अति आनन्दमय है, ऐसा ही यह भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमय उसका वस्तुस्वरूप है। उसके आनन्द के वेदन में सम्यग्दर्शन अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में, अतीन्द्रिय ज्ञान के वेदन में प्रतीति हुई, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन; उसका ज्ञान, वह निश्चय ज्ञान; उस स्वरूप में लीनता, वह निश्चयचारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो इसमें भी निकाला था न? चरमशरीरी, सवेरे। वह कल याद आया था। अचरमशरीरी। प्रवचनसार में आता है न १९९ गाथा। १९९। कोई सामान्य केवली, कोई तीर्थंकर या दूसरे अचरमशरीरी जीव अर्थात् जिन्हें अभी दो, तीन भव करना हो, वे

जीव। वे भी निश्चयमोक्षमार्ग को साधते हैं। शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्तिलक्षण मोक्षमार्ग। वहाँ उसका लक्षण ऐसा बाँधा है। शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्तिलक्षण—वस्तु शुद्ध चिदानन्द प्रभु की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्तिलक्षण मोक्षमार्ग। वह मोक्षमार्गी जीव कोई इस भव में मोक्ष पावे तीर्थंकर आदि, कोई अचरमशरीरी दो, तीन भव में भी मोक्ष पावे। निश्चयमोक्षमार्गी दो, तीन भव में भी मोक्ष जा सकता है। इसलिए निश्चयपना श्रेणी की निचली दशा में भी हो सकता है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! क्या किया है, कौन जाने कैसे? अरे! प्रभु! कुछ आया था, हों! कुछ, एक कुछ आया था कि ऐसा अवसर मिला है, और समयसार में कुछ आया था। समयसार प्राप्ति का अवसर मिला है। ऐसा है कहीं, हों! अध्यात्म तरंगिणी में कहीं है। समझे न? समयसार प्राप्ति का अवसर है, ऐसा कहते हैं। ऐसा है सही। समझ में आया? इसमें ही होगा? इस श्लोक में? यह श्लोक आता है न?

'ये त्वेन परिहृत्य' है न यह ४९ में। इसमें है, देखो! यहाँ है देखो! भाई! **'ते पुरुषा अद्यापि इदमपि' 'साक्षात् स्वरूपप्रकाशअवसरेऽपि'** है देखो! **'समयसारम् न पश्यन्ति'** भाई! ऐसा है देखो! यह भाषा देखो! इसमें है। हों! संस्कृत है। क्या कहा? **'अद्यापि'** शब्द है न, **'न अद्यापि पश्यन्ति'** अन्तिम शब्द है न, **'न अद्यापि पश्यन्ति'** इसका अर्थ किया, वे पुरुष **'अद्यापि, अद्यापि' आज भी... 'इदमपि साक्षात् स्वरूप-प्रकाशन अवसरऽपि'** देखो! है न? भाई! क्या इसका अर्थ? यह अवसर ही साक्षात् समयसार चिदानन्द का अवसर होने पर भी देखते और जानते नहीं। आज ही करो, ऐसा आता है न? प्रवचनसार में अन्तिम बोल में। अन्तिम आता है न? आज ही करो, आज ही करो। यहाँ **'अद्यापि'** का अर्थ ऐसा ही किया, हों! आज भी। **'अद्यापि इदमपि' 'इदम'** अर्थात् अभी। **'इदमपि साक्षात् स्वरूपप्रकाशन अवसरऽपि समयसारम् आत्मनं न पश्यन्ति... सदा प्रकाशमान अखण्ड संपदम्'** यह तो फिर इस गाथा का शब्द है। समझ में आया? है न? क्या कहा? आहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, पूर्ण ज्ञान, शान्ति का सागर आत्मा। ऐसा जो समय अर्थात् आत्मा, यह समय अर्थात् आत्मा, उसका सार—वर्तमान प्रगट अनुभव हो सकने का यह काल है, कहते हैं। आहाहा! सब अवसर आ गया और यह ऊपर और ... आता

है न? भाई! टोडरमलजी में (आता है)। यहाँ यह डाला है। ओहो! कहते हैं कि प्रभु! यह शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति अखण्ड आनन्द, उसको प्रकाशित करने का यह अवसर है। आहाहा! यह राग और द्वेष और पुण्य और पाप को मेरा मानकर मिथ्यादृष्टि हैरान हो गया है। भगवान तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, अरे! तेरा यह अवसर, यह अवसर तू चूक जाता है। आहाहा! किसका अवसर होगा यह? मलूकचन्दभाई! पैसा प्राप्त करने का? आहाहा!

भाई! कहते हैं, यह श्लोक किसका है? पंचम काल के मुनि का है या नहीं? और पंचम काल के लिये कहते हैं न? इस श्लोक में यह आयेगा। इस ४९ वें श्लोक का यह अर्थ है। ४८वें श्लोक में यह अर्थ है, लो! समझ में आया? '**अद्यापि**' है न? '**नाद्यापि पश्यन्ति ते**'। कहते हैं कि भाई! यह वस्तु प्रभु! वस्तु पूर्ण अनन्त गुण का धाम तू स्वयं है, और वह तुझे अन्तर दृष्टि करके वर्तमान समयसार शुद्धात्मा की प्राप्ति का यह काल है, भाई! आहाहा! कहते हैं कि ऐसा उपदेश मिला।

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य को ऐसा कहना है, यह अनुभव प्रमाण करना, ऐसा कहा है न वहाँ? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं...**'। बस, इतना। '**जदि दाएज्ज**' प्रमाण करना, हों! आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, यह सब भूल जा एकबार, घड़ीक तो। यह भगवान शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति प्रभु है न! उसे मैं कहूँ न, तो अनुभव ही करना, हों! दूसरी बात छोड़ देना। आहाहा! तू हाँ, ना नहीं करना, हों! ऐसा नहीं होता और ऐसा (होता है ऐसा)। पहली तो बात की थी कि '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**' मेरे आत्मवैभव से मैं कहूँगा, बस! इतनी बात तो साधारण कह दी। '**जदि दाएज्ज पमाणं...**' भाई! यदि मैं आत्मा अखण्ड ज्ञायकस्वरूप, चिदानन्द ध्रुवस्वरूप को मैं तुझे बताऊँ तो प्रमाण करना, हों! अनुभव से प्रमाण करना, हों! उस अनुभव से प्रमाण (करना)। परन्तु महाराज! अभी इस पंचम काल में इतनी बात प्रमाण करने की कैसे कहते हो आप? आहाहा! समझ में आया?

भाई! यह वस्तुस्वरूप है न, प्रभु! तू पूरा पड़ा है न, बापू! तेरी नजर के आलस्य से चैतन्य दृष्टि में (आना) रह गया है। यह किया और यह किया और पुण्य के भाव

और पाप के भाव, और शरीर की क्रिया और यह महिमा या तो पर से और पर को महिमा बतलानी है और या तो पर से महिमा लेने के झंझट में पड़कर तू भगवान को भूल गया। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! वस्तु, वह भी वस्तु कही है न! परन्तु किस प्रकार? भाई! ऐसा है न, बापू! अब तुझे भूख लगी है न, खा न! आहाहा! यह '**अवश्यं विन्दति**' है। यह पूरे वेदन की बात करते हैं। परन्तु यहाँ पहला प्रभु है न! प्रभु! परन्तु यह तू वस्तु है न, भाई! अनन्त आनन्द का चौसला पड़ा है पूरा। आहाहा! यह आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय अमृत के रस का कूप पूरा आत्मा। आहाहा! क्या कहा? आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय आनन्द का कूप, सागर, उसे आत्मा कहते हैं। बाकी दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम, वे सब आस्रवतत्त्व कहते हैं। शरीर, वाणी, कर्म वे सब अजीवतत्त्व कहते हैं। ऐसा तत्त्व तू है न! कहते हैं कि यहाँ है न! ऐसा कहते हैं। और हम तुझे बतलाने को कहते हैं, बतलाते हैं कि यह ऐसा, यह ऐसा। समझ में आया?

उसका अनुभव कर, तुझे जल्दी में जल्दी कदाचित् इस भव में भी मुक्ति हो। भले इस पंचम काल को भी इस सामान्य बात में ले न! परन्तु नहीं तो तीसरे भव में स्वर्ग में से निकलकर उस मनुष्यभव में तेरी मुक्ति होगी। यह कदाचित् एकाध भव किसी को अधिक हो तो उसे वह भी दो, तीन भव में मुक्ति ही है। आहाहा! यह निश्चयमोक्षमार्ग के फलरूप से यह वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह कल रह गया था। इसमें लिखा हुआ नहीं, फिर कल लिखा। उसमें लिखा हुआ था। वह है न? एकान्त में वाँचन होता है वह। अन्दर वाँचन होता है वह दूसरा और यह बाहर वाँचते हैं (दूसरा)। यह तो तुम्हारे शृंगारित किया होता है न! शृंगारित ऐसा पुठा और ऐसा रखे न! अन्दर में ऐसा रखते हैं। उसमें यह पहले से लिखा था। परन्तु उसमें कल याद नहीं आया, लक्ष्य में नहीं आया। समझ में आया?

कहते हैं, तू कौन है और कहाँ है, इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? तू कहीं शरीर में नहीं, वाणी में नहीं, पुण्य-पाप के राग में नहीं, यह अल्पज्ञ वर्तमान प्रगट अवस्था दिखे, इतने में भी तू पूरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा पूरा तत्त्व वस्तु जिसमें बसे हुए अनन्त गुण परिपूर्ण। अरे! भाई! उसका अन्तर अनुभव की दृष्टि कर,

अनुभव का ज्ञान कर और अनुभव में स्थिर हो। तुझे एक, दो भव में, तीन भव में मुक्ति होगी ही होगी। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द को अवश्य वेदन करेगा अथवा यहाँ सर्वथा वेदन करेगा। आस्वाद सर्वथा अर्थात् आनन्द में कुछ बाकी नहीं रहेगा। आहाहा! थोड़े अनुभव के आनन्द के काल में, इस आत्मा के आनन्द की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में पूर्ण आनन्द को अनुभव करेगा, ऐसा तुझे हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह निश्चय की बात है, यहाँ व्यवहार-फ्यवहार की बात नहीं। क्या हो? जगत को... कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा मोक्षमार्ग एक ही है और वह स्ववस्तु के आश्रय से है। वह आश्रय से मोक्षमार्ग एक ही है, वह अल्प भव में एक-दो भव में पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करेगा अथवा पूर्ण आनन्द के अनुभव की आस्वाद दशा तुझे हो जायेगी। इसका नाम मुक्ति। कहो। समझ में आया? लो! यह ४८ (कलश पूरा हुआ)।

अब ४९, ४९ (कलश)।

कलश - २४१

(शार्दूलविक्रीडित)

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगेद्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युता:।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा–
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते।।४९–२४१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ते समयस्य सारं अद्यापि न पश्यन्ति' [ते] ऐसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि, वह [समयस्य सारं] सकल कर्मों से विमुक्त है जो परमात्मा उसे, (पद; दशा), [अद्यापि] द्रव्यव्रत धारण किया है, बहुत से शास्त्र पढ़े हैं, तो भी [न पश्यन्ति] नहीं प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाणपद को नहीं प्राप्त होती है। कैसा है समयसार? 'नित्योद्योतं' सर्व काल प्रकाशमान है। और कैसा है? 'अखण्डं' जैसा था, वैसा है। और कैसा है? 'एकं' निर्विकल्प सत्तारूप है। और कैसा है? 'अतुलालोकं' जिसकी उपमा का दृष्टान्त, तीन लोक में कोई नहीं है। और कैसा है? 'स्वभावप्रभाप्राग्भारं' [स्वभाव] चेतनास्वरूप उसका [प्रभा] प्रकाश उसका [प्राग्भारं] एक पुंज है। और कैसा है? 'अमलं' कर्ममल से रहित है। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'ये लिङ्गे ममतां वहन्ति' [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीवराशि, [लिङ्गे] द्रव्यक्रियामात्र है जो यतिपना, उसमें [ममतां वहन्ति] मैं यति हूँ; हमारी क्रिया, मोक्षमार्ग है–ऐसी प्रतीति करती है। कैसा है लिंग? 'द्रव्यमये' शरीरसम्बन्धी है— बाह्यक्रियामात्र का, अवलम्बन करता है। कैसे हैं वे जीव? 'तत्त्वावबोधच्युता:' [तत्त्व] जीव का शुद्धस्वरूप, उसका [अवबोध] प्रत्यक्षपने अनुभव, उससे [च्युता:] अनादि काल से भ्रष्ट हैं। (मिथ्यादृष्टि जीव) द्रव्यक्रिया को करते हुए, आपको कैसे मानते हैं? 'संवृतिपथप्रस्थापितेन आत्मना' [संवृतिपथ] मोक्षमार्ग में [प्रस्थापितेन आत्मना] अपने को स्थापित किया है अर्थात् मैं, मोक्षमार्ग में चढ़ा हूँ—ऐसा मानते हैं, ऐसा अभिप्राय रखकर, क्रिया करते हैं। क्या करके? 'एनं परिहृत्य' शुद्धचैतन्यस्वरूप का अनुभव छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप का अनुभव, मोक्षमार्ग है—ऐसी प्रतीति, नहीं करते हैं।।४९–२४१।।

कलश - २४१ पर प्रवचन

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगेद्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युता:।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा–
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते।।४९–२४१।।

समझ में आया? गजब वस्तु है कुछ! लोग नहीं कहते? कितने ही कहते हैं अभी तो पैसे की रेल चलती है। अर्थात् मुझे पैसे कमाने का काल है। कहो, मलूकचन्दभाई! नहीं? तुम्हारे लड़के को है या नहीं वहा? धूल में नहीं अब। वहाँ धूलिया दो, तीन करोड़ धूल मिली तो वहाँ धूल तो रजकण, कंकड़ है। उसमें आत्मा को क्या आया? एक व्यक्ति कहता था। महाराज! अभी रुपयों की रेल चलती है। रेल चलती है अर्थात् कमाने का काल है। मरने का काल है, ऐसा कहे। कमाने का काल है। यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ... यह तो कहते हैं कि कमाने का काल है यह। आत्मा के आनन्द को कमाने का काल भगवान चूक नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं, लो! '**अद्यापि**' आज तक तू नहीं पाया। क्यों नहीं पाया, यह कारण कहेंगे। समझ में आया?

'**ते समयस्य सारं अद्यापि न पश्यन्ति**' लो! यह पहला शब्द आया, हों! समझ में आया? अन्तिम यह पहला ही आया। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब अमृत बहाया है, हों! लड़के खेलते हैं, उसमें ऐसा नहीं बोलते? 'अमृत का कूपा' नहीं? छोटे लड़कों में ऐसा कुछ चलता है। तुमको खबर नहीं। ऐसा स्मरण आता है, मुझे याद आता है। ऐई! खबर है? अमृत का कूंपा, ऐसी कुछ भाषा है। ऐसी भाषा थी, वह खेल में कुछ थी। कूंपो... कूंपो... परन्तु किसका? ऐसी भाषा थी, मुझे याद है। वह खेल में था। खेलते हैं न लड़के गली में? यह मुझे याद है। तब तो यह तो बहुत वर्ष की—६५ वर्ष पहले की बात है। 'अमृत का कूंपो...' यह भाषा बोलते थे, हों! सब भूल गये? हमारे पण्डितजी कहे, वह सब कोई... तुम्हारे से बड़े बहुत हैं उनसे तो। 'अमृत का कूंपा' अमुक ऐसी भाषा करते थे। यह अमृत का कूंपा तो आत्मा है। ऐसी कुछ क्रीड़ा है।

छोटे-छोटे लड़के खेलते, उसमें बोलते थे। गली में खेले न? सब गया न। अब तो सब खेल दूसरे हो गये और सब बातें हो गयी अलग प्रकार की।

यह कहते हैं, यहाँ समयसार के ऊपर से अभी शब्द आता है। समयसार यह अमृत का कूंप भगवान आत्मा आनन्दकन्द है। आहाहा! समझ में आया? समयसार अर्थात् आत्मा, हों! सम अय सार। सम्यक् प्रकार से भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकार बिना की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता करे, यह उसका नाम समयसार कहने में आता है। आहाहा!

ऐसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि वह.... अरे! ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों का ढ़ेर ऐसा है, कहते हैं। अनन्त जीव **समयसार को अर्थात् सकल कर्मों से विमुक्त है जो परमात्मा उसे...** वह सकल कर्म से विमुक्त जो परमात्मा आत्मा। वह **'अद्यापि' द्रव्यव्रत धारण किया है, बहुत से शास्त्र पढ़े हैं तो भी, नहीं प्राप्त होती है।** ओहोहो! वह द्रव्यव्रत धारण किये। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह), पाँच महाव्रत के विकल्प धारण किये। पाँच महाव्रत, वह राग है। वह द्रव्यव्रत की क्रिया राग की है। आहाहा! ऐसे द्रव्यव्रत धारण किये, परन्तु मूढ उसे आत्मा द्रव्यव्रत के राग से भिन्न है, ऐसे आत्मा को उसने जाना और अनुभव नहीं किया। समझ में आया? आहाहा! अब यहाँ तो अज्ञानी को तो जो व्रत-ब्रत का विकल्प है, वह धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य वह धर्म। समझ में आया? वह तो विकल्प की वृत्ति की वासना है। जीव को न मारना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य शरीर से पालना, वह तो विकल्प की वृत्ति का उत्थान है। वृत्ति उठती है, वह शुभराग है। शुभराग धारण किया है, ऐसा शुभराग धारण किया है, परन्तु रागरहित भगवान समयसार को वे देखते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

द्रव्यव्रत धारण किया है,... समझ में आया? कहते हैं, पंच महाव्रत धारण किये हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहरहित नग्नदशा, हों! नग्न मुनि दिगम्बर। **बहुत से शास्त्र पढ़े हैं....** बहुत शास्त्र पढ़ा, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **बहुत से...** ऐसा पाठ है न? **बहुत से शास्त्र पढ़े हैं....** पढ़-पढ़कर हो गया विद्वान परन्तु भगवान आत्मा समय—शुद्ध चिदानन्द मूर्ति क्या है, उसे वह अज्ञानी

देखते नहीं। और देखते हैं कि यह व्रत और शास्त्र पढ़ना, वह हमारा धर्म, वह हमारा मोक्षमार्ग। समझ में आया?

अहो! '**अद्यापि**' अभी तक भी अनन्त बार **द्रव्यव्रत धारण किया है, बहुत से शास्त्र पढ़े हैं तो भी,... 'न पश्यन्ति'**। किसे? जो यह समयसार, जो सकल कर्म से मुक्त भगवान आत्मा अन्दर है, वह आत्मा उस क्रियाकाण्ड के राग से मुक्त आत्मा अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा, वह जड़कर्म से तो रहित है, परन्तु वह पुण्य का विकल्प राग ऐसे कार्य से भी भिन्न आत्मा है। ऐसे आत्मा को अन्दर ऐसे द्रव्यव्रत और द्रव्यशास्त्र पढ़ते-पढ़ते पढ़ने पर भी भगवान आत्मा कौन है, उसे नहीं देखता। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यकर्म का योग है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा था पुण्य का योग है? कहा नहीं यह? उसने धारण किये, यह पढ़ा है परन्तु वहाँ इसकी दृष्टि पड़ी है। मिथ्यादृष्टि कहा न पहले? दृष्टि इसकी व्रत और क्रिया राग, दया, दान, व्रत, परिणाम में, शास्त्र पढ़ने में इसकी दृष्टि है। यह पढ़ा, वह मेरा धर्म है। यह व्रत धारण किये, वह मेरा धर्म है। ऐसी दृष्टि मूढ़ की की है, इसलिए वह आत्मा को देखता नहीं, ऐसा कहते हैं। इसीलिए तो पहला शब्द पड़ा था। 'वह' ऐसा शब्द है या नहीं? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा प्रभु सच्चिदानन्द चिन्तामणि रत्न आत्मा, उसे वह यह व्रत और शास्त्र पढ़ने के अभिमान में पड़ा, वह इसे देखता नहीं कि यह क्या है? समझ में आया? द्रव्यव्रत धारण किये, हों! वापस। ऐसा कि अकेला नहीं ऐसा। महाव्रत लिये, ब्रह्मचर्य पालन किया, आजीवन का ब्रह्मचर्य, स्त्री को (पूरी) जिन्दगी सेवन नहीं किया। वह तो एक शुभराग है, वह कहीं वस्तु धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा इस द्रव्यव्रत के विकल्प की वृत्ति का उत्थान जो जो आस्रव है, उससे मुक्तस्वरूप भगवान है। यह आत्मा अभी, हों! आहाहा! यह द्रव्य के व्रत के द्रव्य क्रियाकाण्ड में रुका हुआ... उसमें भी होगा। क्या है यह? श्लोक है?

'**त्वेनं परिहृत्य**' न? उसमें भी यह कहीं है। '**एको मोक्षपथः**' में। (समयसार

नाटक, पद्य-११७) गुन परजैमें दृष्टि न दीजे, निर्विकल्प अनुभव रस पीजे, 'आप समाई आपमैं लीजै, आप समाई आपमैं लीजै, तनुपौ मेटि अपनुपौ कीजै।' बाहर की क्रिया मिटाकर अन्दर में जा। अब '**ये त्वेनं**' इसलिए (कहते हैं)। देखो! श्लोक है। 'तजि विभाऊ हूजै मगन, सुद्धातम पद मांहि, एक मोखमागर यहै, और दूसरौ नांहि।' (११८)। यह '**एको मोक्षपथः**' का है। दूसरा श्लोक। अब यह तीसरा यह चलता है। 'कोई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै जिनमुद्रा भेष,...' देखो! जिनमुद्रा, हों! नग्न वेश धारण करे, मुनि होकर नग्न वेश धारण करे। नग्न दिगम्बर यह जिनभेष कहलाता है। यह वह वेश, वह जिनवेश नहीं है। समझ में आया?

(११९)। 'कोई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै निजमुद्रा भेष, क्रियामैं मगन रहैं कहैं हम जती हैं।' जति अर्थात् मुनि। क्रिया में मगन—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के विकल्प में मगन है और कहे 'हम जती हैं'। 'अतुल अखण्ड मल रहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भावसौं विमुख मूढमति हैं।' भारी कठिन बात जगत को। समझ में आया? अतुल अखण्ड। उसमें फिर अर्थ आयेगा, हों! मलरहित सदा उद्योत चैतन्य प्रभु! 'ऐसे ज्ञान भावसौं विमुख मूढमति है। आगम संभालै दोस टालैं विवहार भालैं,' यह आगम संभाले। शास्त्र में यह है और इस शास्त्र में यह है और शास्त्र में यह है। दोष टाले। यह हमारे नहीं चलता, यह हमको नहीं चलता, यह हमको नहीं चलता। हमारे लिये बनाया हुआ आहार नहीं चलता, अमुक नहीं चलता। 'विवहार भालै।' व्यवहार भालै का अर्थ किया है। समझ में आया? '**शुभाचार में लगे रहते हैं....** ऐसा अर्थ में लिखा है। 'विवहार भालै' यह इसका अर्थ किया। शुभ परिणाम को भाले अर्थात् आचरण करे। विकल्प... विकल्प... विकल्प... है न? यह दया और यह अहिंसा और यह सत्य और यह उसे भाले अर्थात् उसे आचरण करे।

'पालैं व्रत जदपि तथापि अविरती है।' 'पालैं व्रत जदपि तथापि अविरती है। आपुकौं कहावैं मोख मारगके अधिकारी, मोखसौं सदीव रुष्ट दुष्ट दुरमती हैं।' (११९)। कठिन बात। समझ में आया? खोटी बुद्धिवाला। रुष्ट, व्रतरहित। रुष्ट (अर्थात्) भगवान आत्मा से नाराज है और राग से प्रेमवाला है। यह विकल्प दया, दान, व्रत शुभभाव, वह राग है, आस्रव है, उसमें प्रेमवाला है, वह मूढ़ दुर्मति है, कहते हैं। समझ में आया?

कठिन बात है। 'दुष्टो मोक्षमार्ग से विमुख है।' देखा! 'परन्तु वे दुष्ट मोक्षमार्ग से विमुख हैं और दुर्मति हैं।' **यद्यपि वे सिद्धान्त का अध्ययन करते हैं, निर्दोष आहार-विहार करते हैं और व्रतों का पालन करते हैं, तो भी अव्रती हैं।** समझ में आया?

भगवान आत्मा चिदानन्द की मूर्ति निर्लेप शुद्ध आनन्दकन्द है, और उसे भूल गया है। भूलकर इस क्रियाकाण्ड में भटकता है। यह दया, व्रत, भक्ति और पूजा यह की और यह की, उसमें से मेरा मोक्ष होगा। समझ में आया? कहते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव अभी तक भी अर्थात् कि ऐसा करने पर भी, ऐसा। ऐसा करने पर भी, ऐसा। **प्राप्त नहीं करता।** उससे कुछ आत्मदृष्टि प्रगट नहीं होती। उस आत्मा को उससे कुछ पहिचानते नहीं, उससे आत्मा पहिचाना जाये ऐसा नहीं है। ओहोहो! आत्मा। भाई! आत्मा, भाई! साधारण बेचारे को कुछ कहो न। लोग और ऐसा कहते हैं। परन्तु यह आत्मा यह साधारण है ही नहीं। यह बात करते हैं, उसमें तेरे आत्मा का महा अपमान होता है। भगवान महा परमात्मा स्वयं पूरा अखण्डानन्द पूर्ण प्रभु! उसे तू साधारण कहे कि समझने के योग्य नहीं। यहाँ कहते हैं कि समयसार प्राप्ति के काल के लिये योग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? स्वयं अपने को प्राप्त के लिये नालायक कहना, यह बात सुनने के लिये लायक नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा **प्राप्त नहीं करता।** अपने स्वरूप की दृष्टि अनुभव की किये बिना ऐसी व्रत आदि क्रिया करके मर गया, सूख गया अनन्त बार। समझ में आया? अपवास किये और एक अपवास और दो अपवास और मासखमण... क्या कहलाता है वह? मासखमण। सोलह भथुं और अठारह भथुं। मर गया अब सुन न! यह तो क्रियाकाण्ड सब राग हे। यह सब उसे धर्म माने। नहीं। कहते हैं, वह तो विकल्प उठा है परसन्मुख के आस्रव का, वह आत्मा नहीं, उसे धर्म नहीं। आहाहा! ऐ... भगवानभाई! यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ फरमाते हैं, भाई! यह क्रियाकाण्ड का राग, विकल्प, वह तो आस्रवतत्त्व है, तुझे खबर नहीं। बहिर्मुख में यह छोड़ूँ और यह छोड़ूँ और यह लूँ, यह तो वृत्ति का उत्थान है, राग है। उसमें अज्ञानी धर्म मानकर बैठे। (उससे) रहित, भगवान उससे रहित है, उसे देखते नहीं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाण पद को नहीं प्राप्त होती है। कौन ? वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि। निर्वाण अर्थात् मोक्षपद को प्राप्त नहीं (करते)। कौन ? कि मिथ्यादृष्टि जीवराशि। अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवराशि का लक्षण क्या कहा ? कि क्रियाकाण्ड के द्रव्य व्रत, द्रव्य तप, बाह्य अपवास आदि अपवास, ऊनोदरी आदि सब बाह्य। वे सब और शास्त्र पढ़ना, उसे धर्म माननेवाले मिथ्यादृष्टि निर्वाण को—मोक्ष को प्राप्त नहीं करते। उससे तो बन्ध होता है। पुण्यभाव से बन्ध होता है, और स्वर्ग या यह धूल आदि मिले। यह पैसा अर्थात् धूल। उसमें आत्मा की कहीं प्राप्ति और धर्म है नहीं। समझ में आया ?

कैसा है समयसार ? 'नित्योद्योतं' सर्व काल प्रकाशमान है। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा नित्य समयसार। समय—आत्मा, उसका सार—शुद्ध। सर्व काल प्रकाशमान त्रिकाल, त्रिकाल आनन्दकन्द से प्रकाशमान है, उसे प्राप्त नहीं करते, ऐसा कहते हैं। ऐसे विकल्प में क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले मूढ़ ऐसे आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते। समझ में आया ? .... परन्तु कठिन है, हों ! भीखाभाई ! परन्तु कैफ भरे नहीं। लड़के को बढ़े न जब ? भूल की हो तो कैफ भर तो .... बन्ध करूँ। तो कहे, नहीं। कैफ नहीं भरूँ। अनादि का अज्ञानी यह पुण्य के भले आचरण, शुभ आचरण का क्रियाकाण्ड करते-करते (मानता है कि) हमारा कल्याण होगा, धीरे-धीरे होगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न ! यह तो राग है, पुण्य का आस्रवतत्त्व है। उसे धीरे-धीरे कल्याण फिर धीरे-धीरे होगा। ऐसा माननेवाले नित्योद्योतम् भगवान आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते।

और कैसा है ? 'अखण्डं' जैसा था वैसा है। लो ! जैसा भगवान है, वैसा ही पर्याय में प्रगट होता है तो वस्तु जैसी है, वैसी है। **'अतुलालोकं' जिसकी उपमा का दृष्टान्त लोक में कोई नहीं है।** समझ में आया ? आहाहा ! भगवान समयसार अर्थात् आत्मा शुद्धस्वरूप। जिसे तीन लोक में उसे उपमा किसकी दें ? अनुपम पदार्थ को उपमा किसकी ? ऐसा भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी विराजमान पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण प्रभु है। उसकी (यह) दृष्टि करता नहीं। इस राग की क्रियाकाण्ड को सम्हाले। बराबर ध्यान रखे। इसका पाप नहीं लगा, यह लगा, यह किया, यह किया। यह किया और यह किया। समझ में आया ? यह है न ? उसमें ही है कहीं। उसमें ही आया न ? पहले उसमें

आ गया है न? भेख में और ज्ञान नहीं आया? 'ज्ञान शुद्ध देह' ज्ञान को देह नहीं। कहा है न? (समयसार नाटक-११२)।

भेषमैं न ग्यान नहि ग्यान गुरु वर्तनमैं,
मन्त्र जन्त्र तन्त्रमैं न ग्यानकी कहानी है।
ग्रन्थमैं न ग्यान नहि ग्यान कवि चातुरीमैं,
बातनिमैं ग्यान नहि ग्यान कहा बानी है।
तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्रन्थ मन्त्र बात,
इनतैं अतीत ग्यान चेतना निसानी है।

वाणी में कहाँ ज्ञान आया? भगवान ज्ञानानन्द प्रभु, इन सबसे भिन्न—पृथक् है। समझ में आया?

ग्यानहीमैं ग्यान नहि ग्यान और ठौर कहूं,
जाके घट ध्यान सोई ग्यानका निदानी है।

आत्मा का अन्तरभान हुआ, उसे ज्ञान कहा जाता है। ऐसे सब। कहते हैं कि 'वेश में ज्ञान नहीं, महंतजी बनकर घूमने में ज्ञान नहीं, मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र में ज्ञान की बात नहीं, शास्त्र में ज्ञान नहीं।' नीचे लिखा है, हों! ज्ञान नहीं परन्तु ज्ञान का कारण है, ऐसा करके थोड़ा अर्थ करना पड़ा। भड़क न जाये जरा, 'कविता-कौशल्य में ज्ञान नहीं, व्याख्यान में ज्ञान नहीं...' वचन, शब्द के प्रकार, शब्द व्याख्यान तो भाषा जड़ है। उसमें कहाँ ज्ञान आया? ज्ञान आता होगा या नहीं थोड़ा अन्दर? आहाहा! यह तो वाणी जड़ उठती है। उसमें कहाँ आत्मा आया? और वह ज्ञान कहाँ था? वह तो जड़ की ध्वनि है। समझ में आया?

'व्याख्यान में ज्ञान नहीं, क्योंकि वचन जड़ है, इसलिए वेश, गुरुपना, कविता, शास्त्र, मन्त्र-तन्त्र, व्याख्यान से चैतन्यलक्षण का धारक ज्ञान निराला है। ज्ञान ज्ञान में ही है, अन्यत्र नहीं। जिनके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वही ज्ञान का मूल कारण अर्थात् आत्मा है।' आहाहा! ऐसी कोई कविता, शास्त्र और व्याख्यान से कहीं आत्मा का ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पश्चात् तो (समयसार नाटक, श्लोक-११३ में) कहा न?

'भेष धरी लोकनिकौं बंचे सौ धरम ठग,'

भेष धरी लोकनिकौं बंचे सौ धरम ठग,
गुरु सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये।
मन्त्र तन्त्र साधक कहावै गुनी जादुगर,
पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये।
कवित्त की कलामैं प्रवीन सो कहावै कवि,
बात कहि जानै सो पवारगीर कहिये।
अेतौ सब विषैके भिखारी मायाधारी जीव,
इन्हकौं विलोकिकै दयालरूप रहिये।

हमको कुछ व्याख्यान करना आता है, हमको कुछ महत्ता दो, हमको समझाना आता है, हम चतुर हैं। भिखारी है विषय के। आहाहा! ऐई! 'जो वेश बनाकर लोगों को ठगते हैं, वे धर्म-ठग कहलाते हैं, जिसमें लौकिक महत्ता होती है, वह बड़ा कहलाता है,...' उस गुरु की व्याख्या की, हों! गुरु। 'जिसमें मन्त्र-तन्त्र साधने का गुण हो, वह जादूगर कहलाता है, जो कविता में होशियार है, वह कवि कहलाता है, जो बातचीत में चतुर-चटपटा है, वह व्याख्याता कहलाता है।' व्याख्यानकर्ता। आहाहा! दृष्टान्त देते हैं... धूल, वह तो जड़ की क्रिया, आत्मा की कहाँ आयी इसमें? समझ में आया? 'वे सब कपटी जीव विषय के भिखारी हैं, विषयों की पूर्ति के लिये याचना करते फिरते हैं,...' हमको कोई बड़ा कहो, हमको कुछ आता है, ऐसा कहो। भिखारी है, रंक। बादशाह चक्रवर्ती का अन्दर पड़ा है पूरा, उसे छोड़कर यह दूसरे से याचना करे, (वह) भिखारी है, भिखारी।

मुमुक्षु : यह माँगता है या लोग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लेता है। भिखारी माँगता है कि हमको बड़ा कहो, हमको कोई जानपनेवाला कहो, हमको कोई होशियार कहो, हमको व्याख्यान करना आता है, ऐसा कोई कहो, हमारा नाम कुछ कहो, कहीं तो निकालो। भिखारी है, कहते हैं। भगवान आत्मा अन्दर पड़ा है तुझे किसकी याचना करनी है यह? आहाहा! समझ में आया? ऐसी कठिन भाषा की है। ठग है, कहते हैं। वस्तु तो ज्ञान तो आत्मा स्वरूप चिदानन्द

भगवान का स्वसंवेदनज्ञान, वह ज्ञान है। बाकी ज्ञान-बान कैसा? समझ में आया? आहाहा!

कैसा है भगवान? **जैसा था वैसा है।** वस्तु तो ऐसी की ऐसी अखण्ड है, उसे यह देखता नहीं। और, **'एकं' निर्विकल्प सत्तारूप है।** भगवान आत्मा वीतराग सत्तारूप है। अभेद सत्तारूप वस्तु है, उसकी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान करना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। समझ में आया? बनारसीदास, टोडरमल, राजमल सबने बहुत कहा है। सबको (अज्ञानी लोग) मिथ्या सिद्ध करते हैं। गजब, भाई! अरे... प्रभु! यह होशियारी नहीं, बापू! पानी फिर जायेगा, भाई! ऐसी होशियारी नहीं, भाई! यह पर के उघाड़ के क्षयोपशमभाव वह आत्मा नहीं, उसे यहाँ ज्ञान नहीं कहा। आहाहा! यह ज्ञानानन्द भगवान का वेदन में ज्ञान होना, उसका नाम ज्ञान है। स्वतन्त्र है न! ऐसा भी मानता है न! इसलिए तो यहाँ कहते हैं। उसमें ही मानकर चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द निराला है, उसे यह देखने को निवृत्त नहीं होता। यहाँ फँस गया, यहाँ फँस गया, यहाँ कहाँ देखे? यह सब है, उसे (देखनेवाला) यहाँ सब कुछ दूसरा है, देखने को कहाँ निवृत्त होगा? समझ में आया?

और कैसा है? 'अतुलालोकं' जिसकी उपमा का दृष्टान्त तीन लोक में कोई नहीं है। किसकी उपमा, किसकी दे? ओहोहो! पूर्ण स्वरूप अखण्ड अनन्त चैतन्य रत्नाकर ऐसा भगवान, इस विकल्प की आड़ में खो गया है। कहते हैं कि, उसमें पड़ा तू यह देखने के लिये कुछ प्रतीति करने को निवृत्त नहीं होता। समझ में आया? **और कैसा है? 'स्वभावप्रभाप्राग्भारं' चेतनास्वरूप उसका प्रकाश उसका एक पुंज है।** कैसा है भगवान? समयसार वस्तु अन्तर पदार्थ महा चेतनास्वरूप, उसका स्वभाव। स्वभाव की व्याख्या की। अकेला ज्ञायक चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चमत्कार चेतना स्वभाव। उसका प्रभाव—उसका प्रकाश। **'प्राग्भारं'** पुंज, पुंज। यह चैतन्य का पुंज है। जैसे रुई की गाँठ होती है, जहाँ हो वहाँ रुई ही रुई भरी होती है गाँठ में। (उसी प्रकार) भगवान आत्मा में अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... चैतन्य प्रकाश का पुंज है अकेला। समझ में आया? आहाहा!

और कैसा है? 'अमलं' कर्ममल से रहित है। यह कर्म, राग-द्वेष और जड़ से

रहित है। उसे वह देखता नहीं, उसे प्राप्त करता नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि और ज्ञान में उसे प्राप्त करता नहीं। मात्र इसमें पड़ा है। यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ.... समझ में आया?

कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'लिङ्गे ममतां वहन्ति' जो कोई मिथ्यादृष्टि जीवराशि द्रव्यक्रियामात्र है जो यतिपना उसमें 'मैं यति हूँ...' ऐसा मानता है। हम साधु हैं। यह अहिंसा पालता हो न कोई? नग्नमुनि की व्याख्या है, हों! दूसरे तो मुनि हैं ही नहीं व्यवहार से भी वे। आहाहा! यह बाहर की नग्नदशा हुई है, हजारों रानियाँ छोड़ी हों और अन्दर में दया, दान के, व्रत के परिणाम बराबर करता हो। कहते हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उससे—राग से रहित ऐसे चैतन्य का ऐसा सार, उसे देखता नहीं, मानता नहीं, अनुभव नहीं करता, प्राप्त नहीं करता। समझ में आया?

'लिङ्गे ममतां वहन्ति' ऐसे अन्तर अनुभव न करके उसकी ममता करता है, कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवों का ढ़ेर। वह द्रव्य क्रियामात्र जो यतिपना, साधुपना, द्रव्यक्रिया अट्ठाईस मूलगुण और एक बार आहार करना, खड़े-खड़े आहार करना, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प। **'मैं यति हूँ...'** हम साधु हैं। **हमारी क्रिया मोक्षमार्ग है, ऐसी प्रतीति करती है।** कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि जीवराशि। यह मिथ्यादृष्टि जीवराशि तो भाई यह लिये हैं। नहीं तो मिथ्यादृष्टि उसकी बात यहाँ नहीं है। यह यहाँ तो लिंग की बात है न? नहीं तो वे मिथ्यादृष्टि जीव तो सब हैं, परन्तु यह तो द्रव्यलिंगी क्रियाकाण्डी को लिया है यहाँ तो। वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि। हजारों, लाखों क्रियाकाण्ड करता हो, साधु नाम धराकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, यह पालन किया और यह किया यह छोड़ा और... उसे यतिपना मानकर और उसे मोक्षमार्ग मानता है। यह **हमारी क्रिया मोक्षमार्ग है,....** ऐसी प्रतीति करते हैं। समझ में आया?

कैसा है लिंग? 'द्रव्यमये' शरीरसम्बन्धी है... लो! यहाँ तो कहा, **'द्रव्यमये'** अर्थात् शरीरसम्बन्धी। वह तो **बाह्य क्रियामात्र का अवलम्बन करता है।** देह की क्रिया यह हुई और अहिंसा और अमुक और शरीर की क्रिया और अन्दर राग की क्रिया वह सब अपनी मानता है। अभी तो शरीर की क्रिया से धर्म होता है, (ऐसा कहते हैं), गजब

किया है न! ऐसी खुल्ली आँखें करानेवाली वाणी है तो भी... ओहोहो! वस्तु को भूलकर **'द्रव्यमये' शरीरसम्बन्धी है—बाह्य क्रियामात्र का अवलम्बन करता है।** बाह्य का अवलम्बन करता है। शरीर से यह पालन किया और मैंने दया पालन की, मैंने यह किया और मैंने यह किया, ऐसा भाव और यह। उसका अवलम्बन करे वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। उसे राग और शरीर की क्रिया से रहित समयसार, उसकी श्रद्धा और ज्ञान का अनुभव करता नहीं। समयसार को प्राप्त करता नहीं, वह भटकनेवाले हैं, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ८, बुधवार, दिनांक-०१-१२-१९६५, कलश-२४१ से २४३, प्रवचन-२५६

कलशटीका। यहाँ आया है, देखो! **कैसे हैं वे जीव?** अर्थात् किसकी बात चलती है? कि जो कोई यह आत्मा है न अन्दर आत्मा? उस आत्मा का ज्ञानानन्द-ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव है। समझ में आया? शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्द उसका स्वरूप है। उसे भूलकर अकेले व्रत, नियम, क्रिया, तपस्या आदि करते हैं, उस शुभभाव को धर्म मानते हैं। वे आत्मा के स्वरूप से भ्रष्ट हुए मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा यहाँ बताना है। समझ में आया?

कैसे हैं वे जीव? देखो! ऊपर आया कि **शरीरसम्बन्धी है—बाह्य क्रियामात्र का अवलम्बन करता है।** यह शरीर की क्रिया अथवा अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा ऐसा शुभभाव, उसका जो अवलम्बन लेकर अन्तर्मुख चीज़ तत्त्व चिदानन्द ज्ञानमूर्ति है, उसे भूल गये होते हैं, उसे जो धर्म मानकर बैठे हैं। समझ में आया?

'तत्त्वावबोधच्युताः' 'तत्त्व' अर्थात् **जीव का शुद्धस्वरूप...** भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्द पवित्र स्वरूप है। तत्त्व शुद्ध आनन्दस्वरूप है उसका। **उसका 'अवबोध'** उसका जो ज्ञान, **प्रत्यक्षपने अनुभव...** यहाँ बात जरा सूक्ष्म है। आत्मा अन्तर ज्ञान की ज्योति है, चैतन्य सूर्य। उस आत्मा में अन्दर वस्तु स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। ऐसे स्वभाव में ऐसा जो तत्त्व, उससे उसका ज्ञान, ज्ञान अर्थात् उसका प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिए। यह आनन्द है, यह ज्ञान है, यह शुद्ध है, ऐसा पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् रागरहित चैतन्यस्वरूप का अन्तर श्रद्धा, ज्ञान में ज्ञान का पर के अवलम्बन बिना प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिए। ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव से भ्रष्ट। कहो, समझ में आया इसमें?

'तत्त्व' अर्थात् **जीव का शुद्धस्वरूप...** भगवान आत्मा, यह पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं, वह विकार है। यह शरीर, वाणी तो मिट्टी जड़ धूल है, यह कहीं आत्मा नहीं। अन्दर शुभ-अशुभ की वृत्तियाँ उठती हैं, वह विकार है। विकाररहित जो तत्त्व अकेला ज्ञायक शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसका **'अवबोध, अवबोध'** अवबोध में से निकाला

निश्चय बोध अर्थात् प्रत्यक्ष उसका ज्ञान। समझ में आया? बराबर निकाला है। बहुत सुन्दर। चैतन्य भगवान चिदानन्द ज्योति वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसका अन्तर में प्रत्यक्ष ज्ञान होना; प्रत्यक्ष अर्थात् राग, मन बिना के अवलम्बन बिना अकेला भगवान आत्मा शुद्ध अन्तर ज्ञान में भासित होना, प्रत्यक्ष अनुभव होना, ऐसे भान बिना के जीव **अनादि काल से भ्रष्ट हैं।** देखो! यहाँ एक सिद्धान्त है। क्या कहते हैं? कि ऐसा जो आत्मा, वह अनादि से यह प्रत्यक्ष अनुभव से भ्रष्ट है। भाई! इसमें जरा एक न्याय है। वे कहते हैं कि आठवें गुणस्थान में प्रत्यक्ष होता है। यहाँ चौथे से प्रत्यक्ष है। अनादि से भ्रष्ट लिया है न? क्या कहा?

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्यसूर्य है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठे, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय की वासना, वह पाप है। इन दोनों से तत्त्व भिन्न चीज़ है। इस तत्त्व के सम्यग्ज्ञान के बोध बिना अर्थात् कि वह वस्तु शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अवबोध—अव अर्थात् निश्चय अर्थात् प्रत्यक्ष होना, उसे निश्चय कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन के समय से यह बात है यह सब, हों! चौथे गुणस्थान की। क्योंकि यहाँ अनादि भ्रष्ट कहा है। '**च्युताः**' भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान की ज्योति चैतन्य है, उसका ऐसे प्रत्यक्ष अर्थात् निश्चय, प्रत्यक्ष अर्थात् निश्चय, जैसा स्वरूप है, वैसा अन्तर में अनुभव होना, ज्ञानानन्द आत्मा है, ऐसा अनुभव हो। ऐसे सम्यग्ज्ञान के प्रत्यक्ष ज्ञान से क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले अनादि से स्वरूप के प्रत्यक्ष से भ्रष्ट है। देवशीभाई! ऐसी सूक्ष्म बात! छोटाभाई! है पुस्तक?

वस्तु है वस्तु, तत्त्व अर्थात् आत्मा। देह, वाणी से भिन्न वस्तु ज्ञानानन्द ज्योति है। ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपना उसका अन्दर में प्रत्यक्ष राग, मन, शरीर के आलम्बन बिना उसका अन्तर में प्रत्यक्ष ज्ञान का निश्चय होना—यह आत्मा है, ऐसा अन्दर राग बिना आत्मा का अनुभव होना, उसे सम्यग्दर्शन अथवा आत्मज्ञान कहते हैं। समझ में आया? उससे अनादि के भ्रष्ट होते हुए।

यह **द्रव्यक्रिया को करते हुए आपको कैसे मानते हैं?** यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान आदि के भाव, वह शुभराग है, वह द्रव्यक्रिया है। समझ में आया?

ऐसी द्रव्यक्रिया करते हुए, ऐसे राग के परिणाम को करते हुए... क्या कहते हैं? आहाहा! एक-एक गाथा, एक-एक पद में... भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव होना, वह अनुभव, मोक्ष का मार्ग है।

अनुभव चिन्तामणि रत्न अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्ष स्वरूप।

ऐसा आत्मा अखण्डानन्द प्रत्यक्ष ज्ञान में होना चाहिए। ऐसा प्रत्यक्ष वेदन—भान न करके, द्रव्यक्रिया करते हुए। यह व्रत, नियम, दया, दान, भक्ति, पूजा, कोमलता, सेवा और राग की मन्दता। ऐसा **करते हुए आपको कैसे मानते हैं? 'संवृतिपथप्रस्थापितेन आत्मना' 'संवृतिपथ' मोक्षमार्ग में अपने को स्थापित किया है...** ऐसा मानते हैं। **'संवृतिपथ'** का उसमें कल्पित कहा है। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! इसमें अनन्त काल में कभी आत्मा क्या है, उसका कभी ज्ञान किया नहीं। समझ में आया?

पाप के परिणाम अनन्त बार किये। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ। इसके बिना दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि के भाव भी अनन्त बार किये, परन्तु इन दो भावों से रहित आत्मा क्या चीज़ है, उसके ज्ञान बिना, भान बिना अज्ञानी जीव यह द्रव्यक्रिया करके, व्रत पालन किये और भक्ति की और पूजा की, दान किये और पर की दयायें पालन की, ऐसे शुभभाव, उस क्रिया में मोक्षमार्ग को मानते हुए हम मोक्षमार्ग में हैं, (ऐसा मानता है)। कहो, भीखाभाई! **'प्रस्थापितेन आत्मना'** हम मानो मोक्षमार्ग में हैं। परन्तु यह शुभराग की क्रिया तो बन्धमार्ग है। पुण्यबन्धन का कारण है, पुण्यबन्ध हो। उसमें आत्मा का कल्याण का पन्थ नहीं है। यह चिल्लाहट करते हैं न सब, पुण्यवाले को ऐसी मिठास है न! हाय... हाय...! हमारा पुण्य चला जाता है। कहा था तुझे? सुन न!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के पुण्य की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसके सम्यग्दर्शन का पुण्य। होवे किसका? सुन तो सही! आहाहा! ऐसा पुण्य जगत को ऐसा मीठा लगता है न! पैसा, स्त्री और पुत्र और कीर्ति और दो-पाँच-दस करोड़ हों न, ओहोहो! मीठा... मीठा... मीठा... जहर।

धर्मचन्दजी! और उसमें शुभभाव कुछ हो अन्दर राग की मन्दता का दया, दान... आहाहा! अब हमने तो धर्म किया। अब वह तो शुभभाव है, सुन न! वह तो पुण्य है। उससे तो वापस यह धूल-बूल मिलेगी यह पैसे कहलाते हैं वे। अथवा देव-बेव होगा। उसमें आत्मा-बात्मा को कुछ धर्म लाभ नहीं है। समझ में आया? कैसे होगा यह? यह बड़े पण्डित बातें करते हैं कि, पुण्य से तो धर्म होता है और यह सोनगढ़वाले ऐसा करते हैं। परन्तु यह—यह हमारा है या यह किसके घर का है यह? समझ में आया?

वस्तु चिदानन्द भगवान आत्मा महान पदार्थ के एक समय में विकारमात्र, उसमें पड़ा है, बस! शरीर, कर्म तो भिन्न है, वह तो मिट्टी है। उसकी दशा में—हालत में पुण्य-पाप के विकल्प की अशुद्धता की दशा है, बस इतना। बाकी पूरी चीज़ तो शुद्ध आनन्दकन्द है। समझ में आया? परन्तु कहाँ आत्मा किसे कहना? कभी सुने नहीं, विचारे नहीं।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर को एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान था, हुआ। वे भगवान फरमाते हैं कि भाई! तू तो अन्दर ज्ञानानन्द की सच्चिदानन्द ज्योति है। यह जितना विकल्प उठता है दया, दान, पुण्य-पाप की वृत्ति वह क्षणिक अवस्था उपाधिभाव है। उस उपाधिभाव में रहा हुआ, मैं मोक्षमार्ग में हूँ, ऐसा माननेवाले दीवार भूले हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

मोक्षमार्ग में अपने को स्थापित किया है अर्थात् मैं मोक्षमार्ग में चढ़ा हूँ.... समझ में आया? बहुत कठिन बात, भाई! मूल तत्त्व को समझने के लिये... पाप से बचने के लिये ऐसे शुभभाव हों, परन्तु वह शुभभाव स्वयं धर्म है, मुक्ति का मार्ग है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कि जिसमें चैतन्य का अन्तर स्वरूप का स्पर्श न हो और राग का स्पर्श रहे और मोक्षमार्ग हो, यह तीन काल में नहीं होता है। समझ में आया? परन्तु अनादि के अज्ञानी ऐसा मानते हैं। साधु हो, व्रत पाले, भक्ति करे, दान करे, दया पाले ऐसे भाव करे और उसमें हम मोक्षमार्ग में हैं, ऐसा अज्ञानी तत्त्व के प्रत्यक्ष बोध से च्युत होते (हुए) उस भाव को ही मोक्ष का मार्ग (मानते हैं)। इस वस्तु की खबर नहीं इसलिए इस शुभभाव के आचरण को ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं। समझ में आया?

ऐसा मानते हैं, ऐसा अभिप्राय रखकर क्रिया करते हैं। ऐसा स्पष्टीकरण किया। **ऐसा अभिप्राय रखकर क्रिया करते हैं।** शुभ—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ऐसा शुभभाव करके, अभिप्राय में ऐसा रखते हैं कि यह मुझे उससे मोक्ष होगा। ऐसा अभिप्राय रखकर ऐसी क्रिया करते हैं, वे मूढ़ जीव हैं। उन्हें आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए, वह नहीं है और जिस ज्ञान बिना उसका क्रियाकाण्ड (करे), उसमें जरा भी आत्मा को लाभ नहीं है, धर्म का लाभ नहीं है। समझ में आया?

क्या करके? 'एनं परिहृत्य' शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव छोड़कर। 'एनं परिहृत्य' एक भगवान ऐसा पूर्णानन्द प्रभु! पूरा अनन्त गुण का पिण्ड है, उसे दृष्टि में से छोड़ दिया। मात्र पुण्य के परिणाम में ही प्रवर्तकर मोक्षमार्ग माना। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु ज्ञानानन्द की मूर्ति ध्रुव चिद्घन, चिद्घन, ज्ञानघन, आनन्दघन वह अनादि-अनन्त ध्रुव तत्त्व उसे उसने दृष्टि में से छोड़ दिया और दृष्टि में क्रियाकाण्ड के शुभ परिणाम में यह दृष्टि लगायी, उसी-उसी में मोक्ष के मार्ग में हूँ, ऐसा अभिप्राय करके ऐसा क्रियाकाण्ड करते हैं, वे स्वरूप से भूले हुए हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। चैतन्य द्रव्य महा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का उसे आदर नहीं है, आदर इस वस्तु के विकल्प में है। समझ में आया?

'एनं परिहृत्य' भगवान पूरा चैतन्य नाथ अनन्त गुण का पिण्ड उसने छोड़ दिया, स्वरूप का अनुभव छोड़ दिया। यह अनुभव रह गया अकेला। शुभभाव व्रत के भाव, दया-दान के विकल्प का अनुभव (रह गया) और वह अनुभव, वह मेरा मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! ऐसा ही है न? यह सब ७५-७५ वर्ष के, ऐसा ही किया है अभी तक। आहाहा!

अरे! बापू! जन्म-मरण का नाश करने का मार्ग अलौकिक है। ऐसी साधारण बात से मोक्ष होता हो तो ऐसा तो अनन्त बार किया है, वह कहीं नयी चीज़ नहीं। नौवें ग्रैवेयक जिसे स्वर्ग का देव कहा जाता है, वहाँ अनन्त बार प्रत्येक जीव गया है। अनादि का है या अभी का है? तो कितने भव किये होंगे? आदि बिना का आत्मा है। आत्मा को आदि है? कि पहले नहीं था? पहले नहीं था? कब का? अनादि का है। इसलिए

यहाँ कहा न अनादि से भ्रष्ट है। अनादि से भ्रष्ट है। निगोद से लेकर, एकेन्द्रिय से लेकर प्रवृत्ति के परिणाम में पड़ा और अनादि से स्वरूप से भ्रष्ट हो रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनादि बात .... यह तो उस अस्थिरता की ... यह अस्थिरता की बात ....

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु ही अनादि से चैतन्यमूर्ति में स्वरूप सन्मुख हुआ ही नहीं और यह विमुख (होकर) बहिर्मुख की क्रियाकाण्ड करके हम मोक्षमार्ग में हैं ऐसा अज्ञानी (ने) स्वरूप के शुद्ध भाव को दृष्टि में से छोड़ दिया है। पूरी भगवान वस्तु स्वयं है, उसे दृष्टि में से छोड़ दिया। आत्मपदार्थ वस्तु है अनादि-अनन्त ध्रुव चिद्घन आनन्दघन (उसे) छोड़ दिया है। यह पुण्य की क्रिया, वह मेरा धर्म और मेरा मोक्ष का मार्ग, ऐसा अज्ञानी मानता है।

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, ऐसी प्रतीति नहीं करते हैं। लो! समझ में आया? शुभ क्रिया पुण्य है, शुभभाव है परन्तु भगवान आत्मा इस शुभभाव से रहित वस्तु है। उसका अनुभव श्रद्धा-ज्ञान में उसका वेदन करना, ऐसा स्वरूप का अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग एक है। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग (नहीं)। स्वयं मुक्तस्वरूप का अनुभव, वह मुक्तपर्याय में मुक्त होने का मार्ग है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं, जो पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निर्विकल्प आत्मा का अन्दर दृष्टि और प्रत्यक्ष अनुभव (हो), ऐसी दशा को स्वरूप का अनुभव कहते हैं। समझ में आया? ऐसा स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, ऐसी अज्ञानी प्रतीति करते नहीं, श्रद्धा करते नहीं। नहीं... नहीं... नहीं... यह हम करते हैं, उसमें धीरे-धीरे मोक्षमार्ग होगा। परन्तु मानना चाहिए न इसे। मानना किसे है? अनन्त बार तीर्थंकर के पास गया था। समवसरण में अनन्त बार गया परन्तु इसे बैठे नहीं, तब तक क्या करे? भीखाभाई! अनन्त बार! अरे! कितनी बार तो भगवान थे तीर्थंकर तो भी वहाँ सामने देखा नहीं था। समझ में आया? उसकी बात तो यहाँ कहाँ करनी? वह तो होगा कोई इन्द्रजालिया जैसा, कोई होगा... सब कोई कहाँ सभा में जाये सुनने को? सर्वज्ञ हों, इन्द्र आकर बड़ी सभा हो। सामने भी देखे नहीं। अब चल न, यह कर न, वहाँ होगा कुछ। वह बात भी यहाँ तो नहीं, यहाँ तो वहाँ गया था। सुना। भगवान आत्मा पूर्णानन्द

का नाथ अखण्डानन्द शुद्ध है। एक समय का विकार मात्र तेरी दशा में है। इसके अतिरिक्त पूरा तत्त्व निर्मलानन्द है। ऐसी बात सुनी हुई।

यह परमात्मा एक ससमय की विकृत दशा का नाम संसार। वह क्षण... क्षण... क्षण में... भले पलटती अवस्था हो, परन्तु वस्तु है वह तो पूरी पूर्णानन्द वस्तु है। वह एक अवस्था क्षणिक विकार वह शुभ में आया, कोई अशुभ में था और शुभ में आया परन्तु शुभ में ही दृष्टि तो वहाँ है, दृष्टि तो वहाँ है कि यह है और यह मेरा रास्ता है। इसलिए उसे पूरा मार्ग रागरहित स्वरूप जो वीतराग निर्दोष तत्त्व है, उसके स्वरूप की उसे प्रतीति नहीं। यह मोक्ष का मार्ग, ऐसी उसे प्रतीति नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! अब ५०। उसमें तो आया था न सब या नहीं? उसका कहा था, नहीं? ४९ में कहा था।

कलश - २४२

(वियोगिनी)

व्यवहारविमूढदृष्टय: परमार्थं कलयन्ति नो जना:।
तुषबोधविमुग्धबुद्धय: कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ।।५०–२४२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'जना:' कोई ऐसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव, जो 'परमार्थं' शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है—ऐसी प्रतीति को, 'नो कलयन्ति' नहीं अनुभवते हैं। कैसे हैं? 'व्यवहारविमूढदृष्टय:' [व्यवहार] द्रव्यक्रियामात्र, उसमें [विमूढ] क्रिया, मोक्ष का मार्ग है, इस प्रकार मूर्खपनेरूप झूठी है [दृष्टय:] प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं। दृष्टान्त कहते हैं— जिस प्रकार 'लोके' वर्तमान कर्मभूमि में 'तुषबोधविमुग्धबुद्धय: जना:' [तुष] धान के ऊपर के तुषमात्र के [बोध] ज्ञान से, ऐसे ही मिथ्याज्ञान से [विमुग्ध] विकल हुई है [बुद्धय:] मति जिनकी, ऐसे हैं [जना:] कितने ही मूर्ख लोग। 'इह' वस्तु जैसी है, वैसी ही है, तथापि अज्ञानपने से 'तुषं कलयन्ति' तुष को अंगीकार करते हैं; 'तन्दुलं न कलयन्ति' चावल के मर्म को नहीं प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार जो कोई, क्रियामात्र को मोक्षमार्ग जानते हैं; आत्मा के अनुभव से शून्य हैं, वे भी ऐसे ही जानने।।५०–२४२।।

कलश - २४२ पर प्रवचन

व्यवहारविमूढदृष्टय: परमार्थं कलयन्ति नो जना:।
तुषबोधविमुग्धबुद्धय: कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ।।५०–२४२।।

देखो! **'जना:' कोई ऐसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव जो 'परमार्थं' शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है...** ऐसी प्रतीति को नहीं अनुभवते, क्या कहते हैं? जो कोई अज्ञानी अनादि के मिथ्याबुद्धि हैं, असत्य बुद्धि है, श्रद्धा में विपरीतता है, वे जीव परमार्थ परम-अर्थ, शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है। ज्ञान स्वरूप भगवान आत्मा वही अन्दर में एकाकार होते निर्मलानन्द की धारा बहती है, वह एक ही मोक्षमार्ग है। **ऐसी प्रतीति को 'नो कलयन्ति' नहीं अनुभवते हैं।** नहीं अभ्यासते अर्थात् नहीं अनुभव करते। समझ में आया?

कैसे हैं ? 'व्यवहारविमूढदृष्टयः' द्रव्यक्रियामात्र उसमें क्रिया मोक्ष का मार्ग है, इस प्रकार मूर्खपनेरूप झूठी है प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं। भाषा यह तो ... समझ में आया ? यह इसमें लिया है, देखो ! (समयसार नाटक १२०) श्लोक है न ? '**जैसें मुगध धान पहिचानै, तुष तंदुलको भैद न जानै।**' चावल होते हैं न, चावल ? उनका छिलका होता है न छिलका ? अथवा लालिमा–लालिमा, वह छिलका। छिलका तो ... चावल है न सफेद ? उसके ऊपर लालिमा है न लालिमा ? और छिलका ऐसा छिलका लालिमा, वह चावल और ऊपर की लालिमा या छिलका उनका भेद नहीं जानते।

जैसें मुगध धान पहिचानै, तुष तंदुलको भैद न जानै।
तैसें मूढमती विवहारी, लखै न बंध मोख गति न्यारी।

यह पुण्य के परिणाम की क्रिया, वह बन्धमार्ग है। वह तुष / छिलका है। चावल अन्दर भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु विराजता है। अनन्त गुण का पिण्ड ऐसे चावल को जानता नहीं। वह चावल उस तन्दुल को छिलके को (मानता है)। उसमें दृष्टान्त दिया है न ? समझ में आया ?

यह तो आ गया और अभी अर्थ किया। उसका ही अर्थ है यह, उसका ही अर्थ है। यहाँ तो वह दृष्टान्त देते हैं न उस मोक्षमार्गप्रकाशक में। कोई महिला–सेठानी थी, वह चावल खाँडती थी। चावल खाँडती थी वहाँ उस खाँडन में चावल तो नीचे जाये नीचे ? और छिलके रहे ऊपर और कोई गरीब महिला निकली, आयी। ठीक ! यह कुछ छिलके खाँडती है, यह उसमें कुछ माल होगा। परन्तु उसे खबर नहीं कि, छिलके ऊपर हैं और चावल तो अन्दर घुस गये हैं नीचे कूटते–कूटते। और वह घर में छिलके खाँडने लगी, उसमें से कुछ निकलेगा। गृहस्थ खाँडे तो अपने भी खाँडो। परन्तु देखादेखी करे, उसमें (कुछ नहीं मिलता)। वह तो चावल खाँडती है। अन्दर माल है उसमें से छिलका पृथक् करती है और तू अकेले छिलके खाँडे, उसमें चावल कहाँ से निकलता है ?

इसी प्रकार ज्ञानी आत्मज्ञान के भान सहित कोई दया, दान के, व्रत के शुभ परिणाम के छिलको को प्रवर्तता है, ऐसा देखकर अज्ञानी मैं भी यह क्रिया करूँ तो मुझे इसे जैसे धर्म होता है, वैसे मुझे होगा, परन्तु वह पुण्य परिणाम के अतिरिक्त अन्दर में

आत्मा की दृष्टि और अनुभव है, चावल पूरा अखण्ड है, उसे देखता नहीं। उसमें दृष्टान्त दिया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में, मोक्षमार्गप्रकाशक। समझ में आया?

'तैसैं मूढमती विवहारी।' जैसे वह छिलके को देखे, परन्तु चावल को देखते नहीं। उसी प्रकार पुण्य-पाप के पुण्य परिणाम जो दया, दान, व्रत क्रिया, वह सब छिलका है, कूचा है। उसक कूचा में तो शरीर आदि मिले, उसमें कहीं आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। **'लखै न बंध मोख गति न्यारी'** देखो! क्या कहते हैं? अधिक कहते हैं, हों! **'जे विवहारी मूढ नर, परजै बुद्धी जीव'** शरीर पर लक्ष्य और क्रिया के काण्ड राग पर जिसका लक्ष्य है। **'तिन्हेकौं बाहित क्रियाविषै, है अवलंब सदीव।'** (१२१)। अज्ञानी को क्रियाकाण्ड के, दया-दान के परिणाम पर सदा ही अवलम्ब रहा है। **'कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहित क्रिया करंत, मानै मोख परंपरा, मनमैं हरष धरंत।'** (१२२)। देखो! वापस यह परम्परा ली है। समझ में आया? अपने दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि करें (तो) धीरे-धीरे अपने को मोक्ष परम्परा मिला रहेगा। ऐसा कुमति बाह्य दृष्टिवाला **'बाहिज क्रिया करंत'** है न इसमें? व्यवहार मूढ़, व्यवहार मूढ़ कहा न? **द्रव्यक्रियामात्र उसमें क्रिया मोक्ष का मार्ग है इस प्रकार मूर्खपनेरूप झूठी है प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं।** लो! समझ में आया? बाद में दृष्टान्त देंगे।

दृष्टान्त कहते हैं—जिस प्रकार 'लोके' वर्तमान कर्मभूमि में 'तुषबोधविमुग्ध-बुद्धयः जनाः' धान के ऊपर के तुषमात्र के ज्ञान से—ऐसे ही मिथ्याज्ञान से विकल हुई है मति जिनकी, ऐसे हैं कितने ही मूर्ख लोग। जैसे उस छिलके पर जिसकी दृष्टि है, ऐसे अज्ञानीजन संसार के और चावल को देखते नहीं। उसी प्रकार इस धर्म में दया, दान की, व्रत की क्रिया के शुभभाव के छिलके को देखते हैं। परन्तु अन्दर भगवान चिदानन्द ज्योति है, उसे देखते नहीं। समझ में आया? **'कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहिज क्रिया करंत, मानै मोख परंपरा, मनमैं हरष धरंत।'** लो! मन में हर्ष करते हैं। ओहोहो! हम धीरे-धीरे मोक्ष जायेंगे, मोक्ष जायेंगे।

'सुद्धातम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोई। सो सुनिकैं तासौं कहै, यह सिवपंथ न होई।' (१२३)। नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं होता। यह करते-करते चौथे, पाँचवें, छठवें में तो यही होता है। आहाहा! गजब करते हैं न! समझ में आया? **'सुद्धातम**

अनुभौ कथा' शुद्ध चैतन्यमूर्ति उसका ज्ञान और अनुभव। यह कहते हैं, बापू! अन्तर के स्वरूप का अनुभव अन्तर में करना, यह मोक्ष का मार्ग है।'**कोई समकिती कहे**' देखो! समकिती तो शुद्धात्म-अनुभव को ही मोक्ष कहता है। ऐसा आया न, भाई! उसमें? मिथ्यादृष्टि अशुभ क्रिया, शुभ क्रियाकाण्ड अशुद्ध भाव को मोक्षमार्ग कहता है। '**सो सुनिकैं तासौं कहै, यह सिवपंथ न होई।**' मोक्ष का मार्ग ऐसा नहीं होता, पुण्य से होता है, यह शुभ क्रिया करें, दया पाले, भक्ति करे, व्रत पाले, यह करे, तपस्या करे, अपवास करे, करते-करते यह मूर्ख मूढ मिथ्यादृष्टि ऐसे शुभभाव से धर्म को मोक्ष का मार्ग मानता है। भीखाभाई! ऐसी गाली देते होंगे?

बापू! भाई! तू भूला है, प्रभु! ऐसा अनन्त काल में मनुष्य देह मिला, महामुश्किल से मिला। अनन्त अवतार किये। यह कहीं पहला नहीं है। मनुष्यपना अनन्त बार हुआ। देव अनन्त बार हुआ, बड़ा देव! नरक में अनन्त बार गया, पशु में अनन्त गया। देव मरकर स्त्री होती होगी या नहीं? यह बड़े देव पुरुष हों, मिथ्यादृष्टि मूढ़ आत्मा को पहिचाने बिना वे जीव देव में जाये पुण्य क्रिया करके देव हो, पुरुष हो, वहाँ से मरकर हो स्त्री, तिर्यंचिणी। तिर्यंचिणी स्त्री और मनुष्यनी स्त्री हो। ऐसे अनन्त अवतार हुए। आहाहा! एकेन्द्रिय में जाये फिर प्रश्न कहाँ? देव पुण्य क्रिया करके स्वर्ग में गया। आत्मा का भान नहीं होता, मैं कौन हूँ? ऐसी पुण्य की क्रिया (से) स्वर्ग में जाये, मरकर एकेन्द्रिय पृथ्वी में जाये, फूल में जाये, पानी में अवतरित हो। समझ में आया? बराबर होगा? पुरुष मरकर स्त्री होती होगी? अरे! अनन्त बार तू हुआ है, सुन न अब! खबर कहाँ है एक भी बात की? स्त्री मरकर पुरुष हो, पुरुष मरकर स्त्री हो, पुरुष मरकर नपुंसक हो नरक के नारकी। यह बड़े राजा-महाराजा हैं न? वे वहाँ नीचे जाते हैं नीचे, नरक में नारकी होते हैं। अनन्त-अनन्त ऐसे बारम्बार अवतार किये और शुभभाव भी अनन्त बार किये। उसके फल में यह धूल मनुष्य में हो या वह वहाँ देव में जाये। वहाँ से नीचे पड़ा एकदम।

कहते हैं, यह बात अज्ञानी को सुहाती नहीं। नहीं... नहीं... नहीं... यह मेरा अच्छा, यह मेरा अच्छा, ऐसा कहता है। समझ में आया? **मूर्खपनेरूप झूठी है, प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं।** ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा, भाव

धर्मरूपी हीन, उपदेशक भी वैसे ही क्या करे जीव नवीन।' एक तो मानो उसे दया, दान, व्रत के परिणाम में प्रेम और मोक्षमार्ग माने। उसके उपदेशक भी ऐसे मिल गये उसे झुकानेवाले। 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा, भाव धर्म...' ज्ञानानन्दस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान के वेदन का अभाव। उसके बिना मात्र यह क्रिया से मेरा मोक्ष (होगा, ऐसा मानता है)। 'उपदेशक भी वैसे ही' उसके ऊपर बैठनेवाले ऐसे मिले। 'जहलो जोगी ने माली मकवानी।' दो का हो गया मेल। यह कहावत है या नहीं? तुम्हारे कुछ होगी हिन्दी में कहावत होगी कुछ। यह तो हमारे गुजराती की तरह होगी। 'जहला जोगी' अर्थात् ऐसा एक योगी था नाककट्टा, उसे एक मिल गयी महिला। दोनों इकट्ठे हुए। उसे कोई रखता नहीं था और उसको कोई देता नहीं था। होगा, होगा, परन्तु उसे खबर नहीं होती। हिन्दुस्तान में कोई ऐसी वार्ता, कथा है। वह तो घर-घर में धूल ही हो, चूल्हे में कहीं कस्तूरी होगी? इसी प्रकार गाँव-गाँव में ऐसी बात होती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव के अन्तर वेदन, श्रद्धा के भान बिना अकेली ऐसी क्रियाकाण्ड से जो धर्म मानता है, कहते हैं कि उसकी दृष्टि मूढ़ और झूठी है। है और लिखा है न? **धान के ऊपर के तुषमात्र के ज्ञान से—ऐसे ही मिथ्याज्ञान से विकल हुई है मति जिनकी,...** मूढ़ हो गये हैं, कहते हैं। ओहो! चिल्लाहट मचा जाये अभी। पुकार... पुकार... ऐसा कहो... कहो... कहो... भगवान! सुन न भाई! अरे रे! इस पुण्य परिणाम को तो बन्ध का कारण कहते हैं, शुभभाव मोक्ष का कारण है, उसे ऐसा कहते हैं। शुभभाव में भी थोड़ी शुद्धता है, उससे कर्म का क्षय होता है, दर्शनमोह का।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहनत क्या मजदूरी करता है, क्या करता है? प्रमाणिक अर्थात् क्या? उसने क्या किया है? कोई राग की मन्दता की हो कदाचित्। वह मजदूरी है। समझ में आया? अशुभराग पलटकर वह मिथ्यात्व तो है ही साथ में। वह मूल अशुभ पाप जो मिथ्या अभिप्राय, यहाँ तो अभिप्राय कहा न? अभिप्राय में कषाय तो है, शुभराग करनेयोग्य है, ऐसा अभिप्राय तो तीव्र है।

ज्ञानी को राग मन्द आवे परन्तु करनेयोग्य (है, ऐसा) अभिप्राय नहीं है, इसलिए उसकी मन्द कषाय बहुत अल्प है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा निर्दोष अकषाय

स्वरूप निर्दोष आनन्दघन की जहाँ दृष्टि है, ऐसा भान है, वहाँ जो राग का मन्द भाव, व्रत, दया, दान ऐसे हों परन्तु उससे मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं मानता, इसलिए अभिप्राय में कषाय निकल गयी है और अज्ञानी को यह राग मेरा धर्म है और मुझे इससे कल्याण (होगा), इस मिथ्या अभिप्राय का जोर है वहाँ। उस अभिप्राय का जोर अर्थात् तीव्र कषाय है वहाँ।

मुमुक्षु : शुभभाव में शुद्ध का अंश है न वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह सब कहाँ रहे, उसमें कहाँ पहले से होता है। है न धर्म, व्यवहार धर्म है न, व्यवहार धर्म है न, वह भी धर्म है न, ऐसा। शुभभाव, वह धर्म है और शुद्धभाव, वह ऊँचा धर्म है। बारहवें तक शुभभाव होकर फिर उलटकर उत्तर पर्याय शुद्ध होती है, ऐसा कहा। जितना मोह घटे, उतनी शुद्धता तो वहाँ है, परन्तु अखण्ड पर वर्ता है न? यह तो खबर है न! अखण्ड पर गया है न अभी। उपयोग शुभ ही कहलाता है, अखण्ड अर्थात् उपयोग शुभ ही कहलाता है। अखण्ड कहलाता है। भले शुभ हो तो भी अखण्ड कहलाता है। शुद्ध तो बारहवें-तेरहवें में ही होगा। तुम्हारे भाई को समझाने आनेवाले थे परन्तु आये नहीं। आहा! भगवान! प्रत्येक को ऐसा तो होता है न! मैं कुछ हूँ, ऐसा तो होता है, इसके बिना निभे किस प्रकार? आहाहा! अरे! प्रभु! यह कोई वाद-विवाद की चीज़ नहीं, भाई! यह अनन्त काल में इसने अन्तर्दृष्टि करना, ऐसा इसे जँचा नहीं। यह जहाँ बैठे कि, ऐसे क्रियाकाण्ड से धर्म होगा (नहीं होगा), दृष्टि करनेयोग्य अन्दर है और यह नहीं, ऐसा जँचे किस प्रकार इसे? और अन्तर जो ज्ञानानन्द की खान आत्मा तो महाप्रभु है, चैतन्य प्रभु है आत्मा, उसकी दृष्टि करके उसका वेदन, उसका नाम मोक्ष की क्रिया और मोक्ष के मार्ग की क्रिया है। यह करनेयोग्य है, ऐसा भी जँचता नहीं इसे। समझ में आया?

अनादिकाल के ऐसे अवतार धूल के किये और कुछ पुण्य का उदय हो (तो) दुनिया में बड़ा गिना जाये, बड़ा माने। पुण्य की ऐसी बातें हैं यह। फिर गिरनेवाले हैं नीचे। यह तो बाहर के पुण्य से फिर जानेवाले हैं वापस। क्योंकि जिसे विकार के प्रति प्रेम और रुचि है, वह तो पाप दृष्टि है। पाप दृष्टि है अर्थात् पुण्यपरिणाम भी पलटकर उसे अशुभ हो जानेवाले हैं। आहाहा! क्योंकि वह तो विकार का चक्र है। शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... इस शुभ का जिसे प्रेम है, उसका

चक्र अशुभ हो जायेगा। दृष्टि मिथ्यात्व है न? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी अन्तर में दृष्टि और अनुभव, वह मुक्ति का मार्ग है, ऐसा अज्ञानी को जँचता नहीं। बड़ा वाद-विवाद (करे)।

(यहाँ) कहते हैं, **ऐसे हैं कितने ही मूर्ख लोग।** मति जिनकी खोटी है, ऐसे मिथ्याज्ञान से विकल हुए। **वस्तु जैसी है, वैसी ही है तथापि अज्ञानपने से...** देखो! वस्तु तो भगवान ज्ञानमूर्ति जो है, वह है। उस विकल्प के शुभभाव को धर्म माने, मोक्षमार्ग माने तो भी वस्तु तो जो है, वह है। **अज्ञानपने से... 'तुषं कलयन्ति' तुष को अंगीकार करते हैं,...** उस तुष का अभ्यास करता है, लो! विकल्प और राग का ही अभ्यास करता है। शुभभाव का अभ्यास **'कलयन्ति'** अर्थात् अनुभव करता है। शुभभाव, शुभभाव वही मेरा कर्तव्य है, वह मेरे कार्य और वही मेरी स्थिति और वही मेरा मार्ग। समझ में आया? उसमें तो ऐसा लिखा न परम्परा होगा। ऐसा करते-करते भी हमारे परम्परा होगा। बापू! राग की क्रिया करते हुए कोई आत्मा की क्रिया प्राप्त होगी? चैतन्य ज्योति... समझ में आया? ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह तो चैतन्य ज्योति है, उसमें से चैतन्य की किरणें निकले, ज्ञान की किरणें प्रगट हों। राग प्रगट हो, वह कहीं उसका स्वरूप नहीं है। समझ में आया?

'कितने ही मूर्ख लोग।' 'तुषं कलयन्ति' कहते हैं कि वे छिलके का ही अभ्यास करते हैं, ऐसा कहते हैं। चावल में जैसे ऊपर के छिलके को खाँडते हैं, वैसे अज्ञानी यह क्रियाकाण्ड का छिलका, शुभभाव, पुण्यभाव उसका उसे अभ्यास है। उससे रहित मेरी चीज़ क्या है, उसका अनुभव वह मोक्षमार्ग, इसकी प्रतीति नहीं करता। **'तन्दुलं न कलयन्ति' चावल के मर्म को नहीं प्राप्त होते हैं।** भाषा देखो! वास्तव में तो **'तन्दुलं न कलयन्ति'** अर्थात् चावल का अभ्यास करता नहीं, अनुभव करता नहीं। समझ में आया? वह **'तन्दुलं न कलयन्ति'** चावल के मर्म को जानता नहीं। चावल सफेद अखण्ड भिन्न है, छिलके से चावल भिन्न है, ऐसा उसका अनुभव करता नहीं अर्थात् कि उसके मर्म को जानता नहीं।

उसी प्रकार जो कोई क्रियामात्र को मोक्षमार्ग जानते हैं,... समझ में आया? **जो कोई क्रियामात्र को मोक्षमार्ग जानते हैं,...** शुभराग। समझ में आया? चावल के ऊपर

के छिलके को चावल मानता है। निकाल डालने की चीज़ को ही चावल मानता है, रखने की चीज़ तो छोड़ देता है अन्दर से। इसी प्रकार जो कोई अन्दर पुण्य के परिणाम दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि शुभराग है, पुण्यभाव है। पवित्रता के स्वभाव को रोककर खड़ा हुआ है। वह छोड़नेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं, तथापि उसे ही मोक्षमार्ग जानता है। **क्रियामात्र को मोक्षमार्ग जानते हैं,...**

आत्मा के अनुभव से शून्य हैं,... उसमें ऐसा लिया कि चावल के मर्म को नहीं जानता, ऐसा कहा न? बात तो दृष्टान्त कहा। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप भगवान प्रभु आत्मा के अनुभव को जानते नहीं। अर्थात् अनुभव से शून्य है, उसे धर्म और मोक्षमार्ग होता नहीं। **वे भी ऐसे ही जानने।** वह छिलके जैसा जानना। ऐसे लेख पड़े हैं स्पष्ट है, परन्तु क्या हो? और समाज को सुहावे ऐसा। सुहावे ऐसा कहा जाये? वह पाप करता है? दुकान पर बैठा है? दुकान में बैठा हुआ तराजू तौलता है वहाँ? .... ऐ धर्मचन्दजी! णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करे) ॐ ॐ ॐ भगवान। वहाँ कहाँ पाप करता है? भाई! सुन न बापू! वह शुभराग है, वह विकल्प है, तुझे खबर नहीं, भाई! और उसे धर्म माने, यह मिथ्यात्व का पाप है। मिथ्यात्व अर्थात् असत्य बुद्धि का पाप है, इसकी तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यान करे तब न? कभी निवृत्त कब हुआ है? यह होली एक तो जगत की मानो। यह स्त्री और पुत्र और धन्धा और यह खाना-पीना और सुलग रहा है वहाँ राग में एक तो। उसमें से कदाचित् निवृत्त हो तो यह दया, दान और व्रत के, भक्ति के परिणाम में मान बैठा है। यह चीज़ कौन है, देखने को निवृत्त कब है यह? समझ में आया? नहीं कहते कितने ही? हमको मरने का समय नहीं। तुम सब बातें बढ़ी करते हो। मर जायेगा तब तो खड़े पैरों गिरेगा खाट में ऐसे पड़ेगा। मरने को फुरसत नहीं क्या? समझ में आया? पैसेवाले को ऐसा होता है, हों!

मुमुक्षु : मरने की फुरसत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मरने की फुरसत नहीं। मरेगा तब पड़ा रहेगा ऐसे। इस सेठ को कुछ हुआ। क्या कहलाता है वह? कंपन हुआ। कुछ आंचका मारता है, आंचका मारता है।

डाल न तेरी यह होली यह पैसा है, डाल, दे वहाँ। मगनभाई! क्या होता होगा वहाँ? पैसा–बैसा करोड़, दो करोड़ हो तो? इसे पूछो न इसे। इनके पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं, लो!

मुमुक्षु : यह सुखी या वह सुखी?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों दुःखी। कौन सुखी था? धूल में भी सुखी नहीं। समझ में आया? क्या कहलाता है यह? ब्लडप्रेशर होता है न? पूनमचन्द को होता है। रुपये कहाँ दो करोड़ पड़े हैं? कहाँ जाता है वहाँ? होली उसके पास रही पैसे में।

मुमुक्षु : दवा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं दवा करे तो ऐ... ऐं... करता है। डॉक्टर कहे कि भाई! दवा करते हैं परन्तु लोटता नहीं, हों! लोटता नहीं। वह तो उसकी जड़ की पर्याय लोटनी हो तो लोटे। क्या तेरी दवा से लोटती थी? उपाय तो बहुत करते हैं, कहते हैं। .... पन्द्रह सौ रुपये वेतन लाया, एक दिन के। बड़ा डॉक्टर आया था न मुम्बई से? .... पन्द्रह सौ का वेतन डॉक्टर लाया था और पाँच सौ दूसरे। दो हजार एक, दो तीन घण्टे के। पैसा क्या पैसा तो सब ढ़ेर पड़े हों धूल के। वहाँ क्या करे? अब आठ दिन ट्रीटमेन्ट करो। क्या कहलाता है तुम्हारी भाषा में। ट्रीटमेन्ट। होना होगा वह होगा, फिर लाना हमारे पास। धूल में भी नहीं। पैसा लेना है, ऐसा कह न सीधे। आहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर हो तो सन्तोष होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ मानता है। वहाँ सन्तोष किसका है? वहाँ अन्दर से ऐसा होता हो न! ब्लडप्रेशर ऐसे सिर फटता हो। वे तो रजकण फिरते हों, आत्मा क्या करे उसे? जड़ की दशा बदले, वहाँ आत्मा का अधिकार है? आत्मा का। वह या करे विकार और या करे अविकारी दृष्टि, अनुभव। करे क्या दूसरा वह?

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी को यह दया, दान, व्रत के परिणाम और व्रत, दया, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, बस यह क्रिया उसे भासित होती है। पाप से हटकर पुण्य में आया और वह उसे अज्ञानी को धर्म भासित होता है परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा! **आत्मा के अनुभव से शून्य है, वह भी ऐसे ही जानना।** किसके जैसे? उस छिलके के चावल जैसे। ५० (कलश पूरा हुआ)।

कलश - २४३

(स्वागता)

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ।।५१-२४३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैः समयसारः न दृश्यते एव' [द्रव्यलिङ्ग] क्रियारूप यतिपना-[ममकार] मैं यति; मेरा यतिपना, मोक्ष का मार्ग— ऐसा जो अभिप्राय, उसके कारण [मीलितैः] अन्धे हुए हैं अर्थात् परमार्थदृष्टि से शून्य हुए हैं जो पुरुष, उन्हें [समयसारः] शुद्धजीववस्तु [न दृश्यते] प्राप्तिगोचर नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्ष की प्राप्ति, उनके लिए दुर्लभ है। किस कारण से? 'यत् द्रव्यलिङ्गं इह अन्यतः हि इदं एकं ज्ञानं स्वतः' [यत्] जिस कारण से [द्रव्यलिङ्गं] क्रियारूप यतिपना, [इह] शुद्धज्ञान का विचार करनेपर, [अन्यतः] जीव से भिन्न है; पुद्गलकर्मसम्बन्धी है। इस कारण द्रव्यलिंग हेय है और [हि] जिस कारण, [इदं] अनुभवगोचर [एकं ज्ञानं] शुद्धज्ञानमात्र वस्तु, [स्वतः] अकेला जीव का सर्वस्व है; इसलिए उपादेय है, मोक्ष का मार्ग है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धजीव के स्वरूप का अनुभव, अवश्य करना योग्य है।।५१-२४३।।

कलश - २४३ पर प्रवचन

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ।।५१-२४३।।

आहा! अरे! इसे रुचा नहीं, सुहाया नहीं। झटका लगे अन्दर। हम मुश्किल से पुण्य करते हैं, उसमें धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। तब हमारे नहीं करना? अब करना, न

करने का कौन प्रश्न है? नहीं करना, करने का कौन प्रश्न है? वह तो भाव आवे। राग मन्दता का भाव हो, हो परन्तु उसे तू अपना अब मोक्ष होगा और जन्म-मरणरहित हो जाऊँगा, इस बात में एक भी प्रतिशत सत्य नहीं है। समझ में आया? अभी तो निवृत्त नहीं। और कितने ही कहे, अभी तो निवृत्त होता नहीं, उसे यह बात सुनाना? ऐई! बहुत-बहुत प्रकार के लोग हैं, बापू! भाई! यह मरने का अवसर आयेगा तब ... फट जायेगा। भाई! करने का काल है, भाई! इसे इस अवसर में नहीं करे तो कब करेगा? भाई! मुश्किल से पाँच-पचास वर्ष का आयुष्य। अनन्त काल निगोद... निगोद... निगोद... आहाहा! कहाँ मरा, कहाँ जन्मा, कहाँ रहा? समझ में आया? 'कहाँ जन्मे, कहाँ बिछडे, कहाँ लडे जो लाड, नहीं जानूँ के रुख तले जई पडेंगे हाड' कहाँ अनन्त काल से... अनादि का आत्मा उसके परिभ्रमण में कोई कहीं सहायक हुआ नहीं। अकेला जन्मा और अकेला मरा, अकेला जन्मा और अकेला मरा। हाय! हाय! समझ में आया?

इसे मनुष्यपने का अवसर मिला। कल आया था न '**अद्यापि**' भाई! तू ऐसा न कहे, बापू! ऐसा न कहे। '**अद्यापि**' आत्मा प्रकाश की चैतन्यमूर्ति उसे प्राप्ति का प्रभु! ऐसा मनुष्यभव यह काल है। आहाहा! भाई! ऐसा अवसर मिलना मुश्किल है। समझ में आया? ऐसा न मान कि, ऐसा यह सब ऊँचा...! बापू! यह तो तेरे घर की बात है और उसे तू बैठावे नहीं, तब कब बैठायेगा? आहाहा! यह गरीब दुःखी, सधन दुःखी, पुत्रवाले दुःखी, सन्तानहीन दुःखी... सब दुःखी होंगे? क्यों होंगे? जेचन्दभाई! सब दुःखी?

आत्मा के स्वरूप के आनन्दमय प्रभु है। आत्मा में तो आनन्द भरा है। वह तो सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द। अरे! उसके आनन्द के सामने तुझे देखना नहीं और तुझे सुख मिले। जहाँ सुख है, उसे सुख मानना नहीं। धूल में पैसे में और पुण्य-पाप के भाव में सुख। उसमें सुख है? यह शुभभाव हुआ न, दया-दान आदि और उसमें सुख है? वह तो राग है, वह तो आकुलता है। आनन्द का पिण्ड चिदानन्द आत्मा है।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ प्रगट पर्याय में किया। वह आया कहाँ से प्रगट किया हुआ? बाहर में से आती है कहीं से चीज? केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त

शुद्ध उपयोग प्रगट कहाँ से किया? अन्दर में वस्तु पड़ी है न! है। प्राप्त की प्राप्ति है या न हो उसमें से आयेगा? होवे उसमें से आवे या न हो उसमें से आवे? कुँए में हो वह हौज में आता है (न) कुँए में हो पेशाब और हौज में आवे पानी, ऐसा होगा? इसी प्रकार कुँआ भरा है पानी का, उसमें से हौज में आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, ओहो! अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर कूप, महा सागर है। वह दृष्टि और एकाग्रता से खींच, उतना प्रवाह निकले ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! भाई! ऐसे काल के समय ऐसी प्रतीति करने का भी तुझे समय नहीं। तू कहाँ जायेगा? भाई! जायेगा कहाँ तू? समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान सुखी हैं, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहते हैं भगवान सुखी है। आत्मा सुखी है। अन्दर वस्तु है सुखी, ऐसा कहते हैं। परन्तु मानता है। पर्याय में सुख कब धूल में था? जैन साधु हुआ पंच महाव्रत पालनेवाला, जगत में जंगल में रहता था, हजारों रानियों का त्याग करके। दूसरे देवलोक की इन्द्राणियाँ तो चलित न हो, ऐसा तो ब्रह्मचर्य (पालन किया)। परन्तु वह सब परद्रव्य के लक्ष्य से शुभ क्रिया का काण्ड, शुभभाव है। ऐसे अन्दर चिदानन्दमूर्ति परमात्मा सर्वज्ञ प्रभु को कहा, वैसा आत्मा हूँ, ऐसा इसमें कभी एक सेकेण्ड भी नजर डाली नहीं। नजर डालने जैसा इसने स्वीकार भी नहीं किया। आहाहा! समझ में आया?

पाँच-पचास हजार पैदा करना लाख, दो लाख तो सिरपच्ची रिश्तेदार, परिवार छोड़कर बाहर भटके .... भीखाभाई! भटकते हैं नहीं गाँव छोड़कर कहीं? भटका भटक अब पाँच-पचास हजार, दो, पाँच, दस लाख धूल। मर गया कर-करके परन्तु यह आत्मा क्या है (इसे) समझने की, श्रद्धा की पहिचान की दरकार (की) नहीं। त्यागी हुआ तो वहाँ फँस गया, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! 'टांगो कहे सलावाणा कई चड्या ने कई पाळा' यह फँसा अब वहाँ। हम दया पालते हैं, हम व्रत पालते हैं, हम त्याग करते हैं, हम ब्रह्मचर्य पालते हैं, हमारे कहाँ स्त्री सेवन है? सुन न अब! इस शुभ परिणति को अपनी मानना, इसका नाम परस्त्री का सेवन है। आता है न? नहीं सातवें

में ? क्या कहलाता है ? जुआ, व्यसन-व्यसन, सात व्यसन में आता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा महान चैतन्य का पूरा जैसे गुड़ का पूरा रवा भरा होता है न ? गुड़ का। कोल्हापुर का गुड़ था या नहीं ? इन भाई ने देखा था या नहीं ? कैसा वह आधे नम्बर का ? बहुत ऊँचा होता है, आधे नम्बर का ऊँचा होता है। सफेद। कोल्हापुर में अपने हैं न वहाँ लक्ष्मीचन्दभाई दडवावाले। लक्ष्मीचन्दभाई अस्पतालवाले। धीरे-धीरे सभी अस्पताल खाली करेंगे न! कितना काल रहना ? इस देह में रहना कितना ? यह एक अस्पताल है। थोड़ा काल रहकर दूसरे, वहाँ रहकर तीसरे।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! प्रभु! तेरा काल आया है न! स्वरूप को जानने का। आहाहा! यह निगोद में कहीं पता नहीं खाये, भाई! उस शरीर में अनन्त जीव हैं, हों! आलू, शकरकन्द में गया, कहीं पता नहीं होगा। त्रसपना पाना मुश्किल पड़ेगा। तू ऐसा न मान कि यहाँ मुझे हूंफ चढ़ गयी है इसलिए ऐसा हुआ। साधु होकर भी, त्यागी होकर—नाम धराकर और यह व्रत, नियम और क्रियाकाण्ड के परिणाम में धर्म माने, (वह) मूढ़ मिथ्यादृष्टि मरकर धीरे-धीरे निगोद जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह वहाँ से छूटना मुश्किल पड़ेगा, त्रस होना (मुश्किल पड़ेगा)। वह तू अभी ऐसी बहुत लाल फिरता है, हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं। बापू! यह कुदरत के नियम के विरुद्ध भाव तू करता है और उसमें तू धर्म और मुक्ति का मार्ग मानता और मनवाता है। मुश्किल से करते हों उसे कहे, बराबर है। तुम्हारा धर्म है, तुम्हारे धर्म है। आहाहा!

कहते हैं, वे सब अज्ञानी **'द्रव्यलिंगममकारमीलितैः समयसारः न दृश्यते एव'** **क्रियारूप यतिपना....** देखा ? है न ? वहाँ लिया ठेठ। **मैं यति,....** मैं साधू हूँ, हम साधू हैं, हम नग्न है, देखो हम अहिंसा पालते हैं। दया का भाव, वह तो शुभ है। हम यति हैं। **मेरा यतिपना मोक्ष का मार्ग....** हमारे यह मुनिपने के पंच महाव्रत आदि क्रिया मोक्ष का मार्ग। आहाहा! यह परद्रव्य के भाव, उपाधिवाला भाव, उसे तू मोक्ष का मार्ग मानता है **ऐसा जो अभिप्राय, उसके कारण अन्धे हुए हैं,...** अन्ध है, यहाँ तो कहते हैं, अन्ध। आहाहा! समझ में आया ? अरे! चैतन्य दीपक अन्दर विराजता है महा भगवान, उसे अन्तर में देखने को, जानने को निवृत्त नहीं होता और यह क्रिया यह करूँ और यह

करूँ, यह करूँ और यह करूँ। चौबीस घण्टे में यह छोड़ा और यह प्रायश्चित और यह किया... जिसे क्रियाकाण्ड से मेरा मोक्ष का मार्ग है, ऐसा अभिप्राय रखता है, भाई! तेरी रुचि में बड़ा अन्तर है।

'**मीलितैः**' आँखें बन्द हो जायेंगी। आँखें मीचते नहीं? आत्मा शुद्धस्वरूप उससे तेरी आँखें मींच गयी हैं, भाई! यह राग के, पुण्य के, विकल्प में तेरी आँखें अन्ध हो गयी हैं। तू वस्तु को देखने के लिये निवृत्त नहीं होता। **अन्ध हुए हैं अर्थात् परमार्थ दृष्टि से शून्य हुए हैं जो पुरुष, उन्हें शुद्ध जीववस्तु प्राप्तिगोचर नहीं है।** लो! उसे भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु की श्रद्धा और ज्ञान का भान नहीं। उसे आत्मा की प्राप्ति नहीं परन्तु पुण्य की प्राप्ति से चार गति में भटकेगा। अन्ध होता हुए भगवान आत्मा को देखे बिना, अनुभव किये बिना यह पुण्य की क्रिया से धर्म माननेवाले चार गति में भटकेंगे, ऐसा कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक-०२-१२-१९६५, कलश-२४३, २४४, प्रवचन-२५७

५१ चलता है। क्या कहते हैं? देखो! भावार्थ है न? तीसरी लाईन, **भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्ष की प्राप्ति उनके लिये दुर्लभ है।** किसे? जो कोई व्रत, नियम, क्रियाकाण्ड के शुभराग ऐसे द्रव्यलिंग से जो मोक्ष मानता है, उसके लिये दुर्लभ है। समझ में आया? **किस कारण से? 'यत् द्रव्यलिंगं इह अन्यतः हि इदं एकं ज्ञानं स्वतः' कारण कि द्रव्यलिंग जो है क्रियारूप यतिपना...** यहाँ मुनि की मुख्यता से बात है न? श्रावक भी अन्दर समाहित हैं, हों! अन्दर आता है, मूल पाठ में तो दोनों आते हैं। गृहस्थ और पाषण्डी अर्थात् मुनि दोनों की क्रियायें हैं। जितने बारह व्रत के परिणाम गृहस्थ के, मुनि के पंच महाव्रत आदि के शुभभाव इत्यादि क्रिया जो शुभभाव की या द्रव्यलिंग नग्नपना आदि, अथवा श्रावक को कोपिन आदि क्षुल्लक को होती है न?

यह **क्रियारूप यतिपना शुद्ध ज्ञान का विचार करने पर...** अर्थात् कि आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यसूर्य ब्रह्म, उसका विचार करने से यह यतिपना **जीव से भिन्न है,...** इस शुभ क्रियाकाण्ड का भाव जीव स्वभाव से भिन्न है। समझ में आया? **पुद्गलकर्मसम्बन्धी है,...** लो! यह शरीर का नग्नपना और शुभभाव, यह सब उपाधिभाव अन्य द्रव्य स्वभाववाला है। होता है सही, मुनि को विभावभाव मुनि को भी पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (का) भाव होता अवश्य है। श्रावक को बारह व्रत, षट् कर्म इत्यादि भाव होता अवश्य है। समझ में आया? परन्तु वह भाव परद्रव्य आश्रय है उपाधि, पुद्गल कर्म के आश्रय से हुआ उपाधिभाव है। उसमें से कोई मुक्ति माने तो उसकी आँखें बन्द हो गयी हैं। उसे चैतनय नेत्र की खबर नहीं है। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञान का विचार करने से अत्यन्त '**अन्यतः**' जीव का ज्ञानस्वभाव, शुद्धस्वभाव, आनन्दस्वभाव, ऐसा जीव द्रव्य की स्वभाव से देखें तो वह विकल्प जितना दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम है, वह सब अन्य पुद्गल कर्म के सम्बन्ध से संयोगी उपाधिभाव हुए, है इसलिए वह मोक्ष का कारण नहीं है। समझ में आया? जिसे व्यवहारनय उसे मोक्ष का कारण कहते हैं। अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत आदि के भाव, देव-गुरु-

शास्त्र की श्रद्धा का भाव, शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहाररत्नत्रय व्यवहारनय कहता है कि व्यवहार से मोक्षमार्ग है; व्यवहार से मोक्षमार्ग है, उससे मोक्ष होता है, ऐसा कहा जाता है। व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण है, ऐसा कहे, परन्तु वह निमित्तकारणरूप से व्यवहारनय कहता है, वस्तुरूप से वह नहीं है। क्योंकि वह परद्रव्य के स्वभाव से उत्पन्न हुआ भाव है। भगवान चैतन्यज्योति वीतरागी स्वभाव की मूर्ति आत्मद्रव्य, उस द्रव्य के स्वभाव से उत्पन्न हुआ वह व्यवहाररत्नत्रय या पंच महाव्रत के भाव हैं। वे स्वद्रव्य के स्वभाव से उत्पन्न हुए नहीं हैं। समझ में आया?

कोई कहे परन्तु यह तो सब व्यवहार का लोप होता है। भाई! वहाँ व्यवहार है अवश्य। समझ में आया? जिसकी भूमिका होती है, जितनी स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जितने प्रमाण में चौथे में होते हैं, उतने प्रमाण में वहाँ उसे व्यवहार शुभराग होता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा (होती है), परन्तु वह मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं है। वे कहें, व्यवहार सर्वथा असत्य है। नहीं, वह तो आश्रय करने के लिये सर्वथा असत्य है। वस्तु नहीं है? समझ में आया? तो फिर यह किसलिए मन्दिर सब जो मलूकचन्दभाई को करने हैं, कितने करने हैं? यह सब इनकार करे तो भी करने हैं। वह तो शुभभाव आता है, शुभभाव होता है परन्तु दृष्टि में आत्मस्वभाव का भान हो तो उस शुभभाव को व्यवहार धर्म कहने में आता है, व्यवहार साधक कहने में आता है। परन्तु उस बन्धस्वभावी भाव को व्यवहार साधक कहना, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़ता है। ऐसा कि यहाँ जैन गजट, जैन दर्शन (पत्रिका) तो सब भर-भरकर भरते हैं वापस। पेट भरकर भरते हैं।

कहते हैं, भाई! '**द्रव्यलिंगं अन्यतः**' अभी देखा न? यह तो पुण्य-पाप अधिकार में दो गाथायें आती हैं न? व्रत की दो गाथायें नहीं आतीं? व्रतम चारित्र अन्य द्रव्य आश्रय है और एक स्वद्रव्य आश्रय है। यह शैली यहाँ रखी है। यहाँ रखी है, दो गाथा, दो छोटे श्लोक हैं। पुण्य-पाप अधिकार। अभी निकाली थी न, पृष्ठ यह निकला मौके से। पुण्य-पाप, देखो! यह १०६ कलश है, ८७ पृष्ठ है न? १०६ कलश है, यहाँ नीचे ८७ पृष्ठ।

(अनुष्टुप)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्॥७-१०६॥

आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य है। उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो एक द्रव्यस्वभावी वस्तु है। समझ में आया? निश्चय आत्मा शुद्ध ज्ञानमूर्ति का निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह तो एक स्वद्रव्य स्वभावी वस्तु है, इसलिए वह तो मोक्ष का कारण है। परन्तु बाद में कहा जो।

(अनुष्टुप)

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वानमोक्षहेतुर्न कर्म तत्॥७-१०६॥

समझ में आया? यह तो वह यह उसका ख्याल आ गया, भाई! यहाँ '**अन्यतः**' शब्द है न? '**अन्यतः**' शब्द में वहाँ अन्य द्रव्य कहा है। यहाँ **पुद्गलकर्मसम्बन्धी** कहा है न? वहाँ अन्य द्रव्य कहा पूरा। समझ में आया? यह तो भाई! ऐसा मार्ग है वीतराग का कि धीरज से, मध्यस्थ से समझे तो समझ में आये ऐसा है। ऐसे झगड़े और वाद-विवाद करे तो कहीं पार नहीं आता। व्यवहार नहीं है, ऐसा किसने कहा? समझ में आया? आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी, निश्चय वस्तु का अनुभव उसकी भूमिका के प्रमाण में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा, स्वरूपाचरण तो स्थिरता उसके साथ पूजा, दान आदि का भाव भी होता है, होता नहीं—ऐसा नहीं है। इसे व्यवहार कहते हैं। वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है और वह स्वयं धर्म नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो निश्चय स्वभाव ज्ञानस्वरूप वस्तु, वस्तु का आश्रय करके प्रगट हुई जो निर्मल पर्याय, उस पर्याय का भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है, वरना है तो वह धर्म। समझ में आया? यह तो आत्मा अपना स्वरूप... भाई! यह तो जिसे जन्म-मरण में अन्त लाना हो, उसकी बात है। यह तो अकेली बातें करे और कुछ बाहर की पण्डिताई समझे, बाहर के वाद-विवाद करने से यह कहीं पार आवे, ऐसा नहीं है। समझे न? और यह कहीं किसी को स्वयं समझे तो दूसरे का तिरस्कार करना (कि) तुमको यह भान नहीं

है, अमुक नहीं है—इसके लिये यह बात नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह आता है। आता है न? यह बात आती है। कहीं आती है। स्वयं यह करने का है, किसी के लिये यह नहीं है। समझ में आया?

यह कहीं आता है, देखो! क्या खबर पड़े? कितने बोले हैं। यह आया इसमें, हों! अन्त में। उसका प्रयोजन इतना (है कि) उन प्रकारों को पहिचानकर अपने में कोई ऐसा दोष हो तो उसे दूर करके सम्यक्श्रद्धानयुक्त होना, परन्तु अन्य के ऐसे दोष देखकर कषायी नहीं होना। सातवें अध्याय। अन्तिम-अन्तिम। समझ में आया? सातवाँ अध्याय है न? उसमें अन्तिम बात है। अपने आत्मा में परद्रव्य से भिन्न, विकल्प से भिन्न ऐसा चैतन्य स्वरूप का यथार्थ भान, श्रद्धा-ज्ञान करना और वृद्धि को करना, अन्तर अनुभव स्थिरता करना। समझ में आया? अपने लिये यह बात है, पर के लिये तो कोई योग हो तो आवे। बात निकले, समझे। बाकी कोई दूसरे के (लिये बात नहीं है)।

अन्य के ऐसे दोष देखकर कषायी नहीं होना। क्योंकि अपना भला-बुरा तो अपने परिणामों से होता है। अन्य को रुचिवान देखे तो कुछ उपदेश देकर उसका भी भला करे, परन्तु अपने शुद्ध परिणाम का उपाय करना। समझ में आया? समझ में आता है? भाई! धर्मचन्दजी! यह ऐसी बात है यहाँ। कोई सच्ची बात अपने को बैठे और किसी की किसी को न बैठी हो तो कि तुमको भान नहीं। ऐसा करने के लिये यह बात नहीं है। यह तो समता रखकर अपने स्वरूप का श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव करना, उसमें कल्याण है। बाकी कोई बाहर में वाद-विवाद और दूसरे का (तिरस्कार) करना, वह कहीं मार्ग नहीं है। पूरी दुनिया पड़ी है। अपने विचार देखने को सब हो जाये, ऐसा कभी नहीं होता। सुन लेना। कोई निन्दा करे तो सुनना, परन्तु किसी की निन्दा करना या अपमान करना, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अहो! ऐसा समझे उसे ऐसा लगता है कि भाई! यह आत्मा ज्ञानानन्द की ज्योति है, उसमें एक समय का विकार है। एक समय का विकृतभाव है। उसमें अविकृत चैतन्य द्रव्य का भान सम्यग्दर्शन-ज्ञान होना और द्रव्य के आश्रय से स्थिरता होना, स्वभाव स्वयं ही परिणमकर शुद्धरूप हो, वही एक मोक्ष का मार्ग है।

अब बीच में एक राग पर के लक्ष्य से विकृतभाव है, वह पूर्ण छूटा न हो, इसलिए ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। क्योंकि पर्याय की अशुद्धता यदि टल गयी हो तो केवली हो जाये। समझ में आया? और पर्याय से अशुद्धता से मोक्ष हो, ऐसा माना हो तब तो मिथ्यादृष्टि है। अब यह पर्याय में अशुद्धता तो है। वस्तु की दृष्टि—चैतन्य ज्ञायमूर्ति हूँ, ऐसा भान होने पर भी पर्याय में अशुद्धता है। उस अशुद्धता में भाव ऐसा शुभभाव देव-गुरु-शास्त्र भक्ति, पूजा, ऐसा भाव आवे, आने पर भी आश्रय करने योग्य नहीं और आवे तो भी वह धर्म है, ऐसा नहीं।

और दूसरे प्रकार से, कि आत्मा स्वद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति करे तो ऐसी पर्याय निर्मल प्रगट हुई, उस पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय प्रगट नहीं होती, इसलिए हेय है। और वह पर्याय है धर्म भले, है धर्म, परन्तु धर्म की पर्याय के आश्रय से धर्म प्रगट नहीं होता। इस अपेक्षा से आत्मा की द्रव्य के आश्रय से उस व्यवहार को अभूतार्थ कहा गया है। समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! भगवान आत्मा! ओहो! अनन्त काल में मुश्किल से समय मिला। यह मनुष्य की देह मिलना, उसमें भी वापस शरीर का कुछ लम्बा आयुष्य, उसमें आर्यक्षेत्र, उसमें उत्तम कुल, उसमें पर्याप्त आदि और यह सब सामग्री, उसमें सच्चा सुनने का योग। समझ में आया? आहाहा! अरे! भाई! दुनिया में थोड़ी कीमती चीज़ हो तो उसे सम्हालकर रखते हैं। यह फूटे नहीं, हों! ध्यान रखना। बड़ा झूमर नहीं लाते? आता है न झूमर? पच्चीस-पचास हजार का। इसका अंक पक्का रखना, उससे हटे नहीं, यह ऊपर रेण बराबर लिया है या नहीं? नीचे ऐसे करके (रखो)। नहीं तो फूं हो जायेगा। नीचे हो वापस पत्थर, धूल-बूल हो अलग। ऐसे में झूमर हो किसका धूल में? क्यों धूल के मकान में झूमर हो कुछ? सेठिया के मकान। नीचे पत्थर ऐसे, उसमें ऊपर झूमर और ऐसे वृक्ष-पत्ते, बीच में एक ऐसा हरा, लाल, और अब उसमें से उसका ध्यान रखना, कोई गिरे नहीं, अंक तोड़े नहीं, कोई खींचे नहीं। ऐसी सम्हाल (रखे)। दस हजार का, पाँच हजार का लाया (हो)। ऊँचा हो पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार के होते हैं, उनकी सम्हाल रखे।

लड़के को कहे तो महिलाओं को सम्हाले, ध्यान रखना, हों! यह गहना लाया है लड़के के लिये। सम्हाल कर रखना, हों! अच्छे पर्व में तुम्हारी देखरेख के नीचे हो तो लड़के को देना। अकेले लड़के को जोखिम हो जायेगी। मार डाले। पेड़ा देकर लेना। पाँच सौ का गहना ले लेवे। यहाँ ले गया था न? भरत में मश्करी करके लिया था या नहीं? मश्करी की थी। कलाई की घड़ी थी और मश्करी... परन्तु वह तो कोई ऐसा एक पेड़ा खिलावे वहाँ उसका ध्यान रहे, वहाँ उठा ले। कोई मनुष्य कि भाई ध्यान दे, लड़के को नहीं पहनाये। ऐसी चीज़ के लिये इतनी सम्हाल! आहाहा!

अरे! भाई! यह मनुष्यदेह, उसमें सम्हाल की योग्यता। उसमें उसे किस प्रकार से यत्न से आत्मा का यत्न करना... समझ में आया? और आत्मा का धर्म साधना, उसमें तो बहुत सावधानी चाहिए। समझ में आया? ऐसे काल में मुश्किल से थोड़ा समय आँख बन्द हो। वे सब हा और हो और वाद-विवाद करे, वे सब पड़े रहेंगे, अमुक जगह। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि तू समझ। यह आत्मा अपना चिदानन्दस्वभाव, उसे अवलम्बकर जितने निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति हो, उतना एक ही मार्ग स्वद्रव्य आश्रित मोक्षमार्ग है। जितनी साधुपने की क्रियायें व्रत आदि की हों, श्रावक की क्रिया हो, पूजा, दान, भक्ति हो। हो तो सही, शुभभाव तो होता है, परन्तु वह परद्रव्य (आश्रित है)। क्या कहा यहाँ? **'अन्यतः' जीव से भिन्न है,...**

जीव अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप और उसके निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी यहाँ जीव कहलाते हैं। समझ में आया? उससे भिन्न है। **पुद्गलकर्मसम्बन्धी है। इस कारण द्रव्यलिंग हेय है....** है, उसकी बात करते हैं या न हो, उसकी बात करते हैं? है तो सही। मुनि नग्न ही होते हैं, नग्न दिगम्बर ही होते हैं, उन्हें व्यवहाररूप से अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प ही होते हैं परन्तु वे परद्रव्य के लक्ष्य से कर्मजन्य वह सब उपाधिभाव है। वह व्यवहार स्वयं धर्म नहीं और उसके आश्रय से धर्म होता नहीं। आहाहा! कठिन बात! यह लेख भी लिखा है। तेरापंथ का है न? उसने बहुत पढ़ा है। कुन्दकुन्दाचार्य का षट् पाहुड़ में वह रचे न? बोधपाहुड़ में आता है न? प्रतिमा और ऐसा। अनेकान्त, अनेकान्त। देखो! वाँचन करे परन्तु फिर कहे कि देखो! व्यवहार ऐसा चाहिए, व्यवहार

ऐसा चाहिए, व्यवहार का लोप नहीं करना। लोप की व्याख्या जरा चुभती है, यहाँ की बात गयी है न! व्यवहार नहीं है, ऐसा किसने कहा? समझ में आया?

व्यवहार, यह सब बारह व्रत, बारह प्रकार के तप, यह सब बारह, ऐसा विकल्प शुभराग व्यवहार नहीं है? चौथे में है, पाँचवें में है, छठवें में है, सर्वत्र है। यह है, वह स्वयं परद्रव्य सम्बन्धी उपाधिभाव है, ऐसा यहाँ तो कहना है। है, उसका कहना है या नहीं उसका कहना है? आहाहा! वह **पुद्गलकर्मसम्बन्धी है....** आत्मद्रव्यसम्बन्धी नहीं, ऐसी बात है। वापस पुद्गलकर्मसम्बन्धी का अर्थ—यह ऐसे परकर्म के सम्बन्ध से उपाधिभाव है, ऐसा। शुभराग इतना उपाधिभाव है। किया हुआ तो जीव का है, कहीं कर्म ने कराया है, ऐसा नहीं है। वस्तु में नहीं है, इसलिए वह कर्म के निमित्त की प्रधानता से उससे हुआ, ऐसा कहने में आया है।

इसलिए कहा कि, अन्यभाव। जितना भगवान आत्मा ज्ञानज्योति और इसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-निश्चय चारित्रदशा, उतना तो जीव। समझ में आया? और जितना यह नग्नदशा, बारह व्रत के श्रावक के परिणाम कोपिन और मुनि के अट्ठाईस मूलगुण के (परिणाम) वह सब अन्यद्रव्य आश्रित पुद्गलकर्मसम्बन्धी भेद है। **इस कारण द्रव्यलिंग हेय है...** कहो, समझ में आया इसमें? अब आधा समझे और आधा न समझे तो ऐई! व्यवहार को ऐसा कहते हैं, व्यवहार तो कितना नहीं लिखा? कुन्दकुन्दाचार्य ने यह चरणानुयोग में क्या लिखा सब? अट्ठाईस मूलगुण के प्रयत्न से चलना और यह चलना और यह सब नहीं? नहीं कहा?

मुमुक्षु : नियमसार में है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सर्वत्र है न। नियमसार में तो पूरा अधिकार लिया है। व्यवहारचारित्र अधिकार, पूरा अध्याय। मोक्षमार्ग। वरना नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग। होती है ऐसे विकल्प की मर्यादा, परन्तु भगवान निर्विकल्पस्वरूप के अवलम्बन से जितनी पर्याय प्रगट हो, उतना सच्चा भाव, उतना सत्य। वह है सही, परन्तु वह स्वभाव के लिये, मोक्ष के लिये असत्य, वस्तु रीति से सत्य, भाव है।

और जिस कारण अनुभवगोचर शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु... देखो! जिस कारण से

'इदं एकं ज्ञानं स्वतः' बस। भगवान आत्मा अहो! चैतन्यसूर्य अकेला, जिसमें विकल्प और राग का स्पर्श और गन्ध नहीं, ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्य, वह एक ही **शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु 'स्वतः' अकेला जीव का सर्वस्व है,...** समझ में आया? अर्थात? अकेले जीव का सर्वस्व अर्थात्? उस निर्मलपर्यायसहित। **इसलिए उपादेय है, मोक्ष का मार्ग है।** ऐसा। क्या कहा? यह द्रव्य की—अकेले द्रव्य की बात नहीं। **'एकं ज्ञानं'** ज्ञान अर्थात् कि चैतन्यस्वरूप ज्ञानमूर्ति के स्वद्रव्य की अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हुई, वह तो ज्ञानमय ही वस्तु है। वह आत्मामय है, द्रव्यमय है, जीवमय है; वह पुद्‌गलमय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'इदं अनुभवगम्य' देखा? विकल्पगम्य नहीं, ऐसा। यह पंच महाव्रत के विकल्प, दान, दया के चीज़ गम्य नहीं है। अपने ज्ञानस्वभाव चैतन्य के ज्ञान को गम्य, चैतन्य की श्रद्धा के गम्य, उस चैतन्य की स्थिरता के गम्य वह वस्तु है। वह तो सब ज्ञानमय तीनों दशा हुई, वह रागमय नहीं। **'एकं ज्ञानं अनुभवगम्य' शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु अकेला जीव का सर्वस्व है,...** भगवान आत्मा! ओहोहो! शुद्धस्वरूप और शुद्ध की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमन, वह जीव का सर्वस्व है, वह रागादि जीव का नहीं है। समझ में आया? पंच महाव्रत आदि के विकल्प के परिणाम, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। वह जीवतत्त्व है? समझ में आया? यहाँ तो संवर-निर्जरा की पर्यायवाला अनुभव लेना है यहाँ। अकेला जीव नहीं। जीव तो जीव ही है, परन्तु यह जीव है, ऐसी जो श्रद्धा, ज्ञान और भान में आया वह सर्वस्व जीव ही है। समझ में आया इसमें कुछ? आहाहा! निर्धार-निर्णय करने का समय ले नहीं। कोई शरण नहीं होगा, इस दुनिया में मान मिलेगा कि ओहोहो! भारी विद्वान! भारी पण्डित! बहुत लोगों को रखा, हों! है?

मुमुक्षु : बहुत छपाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छापे और कौन ले? भाई! यह अशरणभूत है, उसके सामने न देख। लाख बातें कर भाई! सब यह कर्म की उपाधि के, संयोग के सब खींचड़े हैं। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप उसमें से झरती निर्मल पर्याय।

उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, उससे परिणमन होता शुद्धपना, वह जीव का सर्वस्व है। आहाहा! **इसलिए उपादेय है....** लो! इसलिए वही आदरणीय है। समझ में आया? निरालम्बन मार्ग आलम्बनवाले को ऐसा लगे कि यह वह यह क्या सब उत्थापते हैं? परन्तु कहते हैं न, भाई! वह चीज़ तो है, कही नहीं? समझ में आया? परन्तु वह चीज़ तो पर के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ विकृत भाव है। वह पुद्गलद्रव्यजन्य, शरीरजन्य कहो, कर्मजन्य कहो, वह सब परसन्मुख के द्रव्यस्वभाववाले हैं। स्वद्रव्य का स्वभाव तो अन्तर्मुख चैतन्य के आश्रय से ज्ञान, दर्शन, स्थिरता हुई, वह एक ही उपादेय है। **मोक्ष का मार्ग है।** लो! वही मोक्ष का एक ही मार्ग है। दो मार्ग है, एक मार्ग नीचे और एक मार्ग ऊपर, एक मार्ग नीचे और एक मार्ग आगे। यहाँ तो कहते हैं दोनों मार्ग एक साथ, एक मार्ग सच्चा और एक मार्ग खोटा। गजब बात! समझ में आया?

मुमुक्षु : मार्ग कहना और खोटा कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसा कहना? उपचार आरोप नहीं दिया जाता? बोरी के साथ तौले तब क्या कहा जाता है? चावल तोले चार मण और ढाई सेर। बोरी आ गयी या नहीं साथ में? यह चार मण चावल खाये जाते हैं और ढाई सेर बोरी पकायी जाती होगी? समझ में आया?

मुमुक्षु : उसे बोरी के पैसे इकट्ठे देने पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, सब देना पड़ते हैं। वहाँ मूँग में कंकड़, कितनी धूल होती है? वहाँ बाजरा में देखी है? उसे तौलकर दे तो उसके सब पैसे देना पड़े। खाने में काम आवे? कहो, समझ में आया? उस बाजरा के हिसाब से दे कितने रुपये का मण है अभी? तेरह, सत्रह? कौन कहता था कल कोई? सत्रह। कोई कहता था। हम तो शाम को आहार करके घूमते हैं न! यह चन्दुभाई मैनेजर मिले। वे (कहे) सत्रह का बाजरा है। अपने को कहाँ सत्रह या तेरह की खबर हो। वे कहें, सत्रह का बाजरा मण का। (कहा) होगा। उसके प्रमाण में सबको ऐसा कि महँगाई होती है न इन मजदूरों को। अब यह सत्रह के बाजरा में कंकड़ मिले दो सेर हो तो सत्रह में जाये या नहीं? ढ़ेपा धूल का ढ़ेपा थोड़ा हो। धूल का ढ़ेपा कहीं खाया नहीं जाता।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला दाना चैतन्य रत्न... आहाहा! उस रत्न की कीमत की अन्दर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह सब मोक्ष का मार्ग उस रत्न में जाता है आत्मा में। बाकी जितने विकल्प वे सब कंकड़ में जाते हैं। कहो, समझ में आया? अरे! सच्चा मार्ग सुनकर समझण करने की जहाँ दरकार नहीं, उसे अन्तर्मुख दृष्टि करके अनुभव करना, उसके बिना तो तीन काल में कहीं छुटकारा नहीं है। वही मोक्ष का मार्ग एक ही है।

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव अवश्य करना योग्य है। लो! रागादि होते हैं परन्तु वे अनुभव करनेयोग्य नहीं। समझ में आया इसमें? अन्तिम श्लोक इसका, इसका, हों! दूसरे दो आयेंगे।

कलश - २४४

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै–
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेक:।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा–
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ।।५२–२४४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'इह अयं एक: परमार्थ: नित्यं चेत्यतां' [इह] सर्व तात्पर्य ऐसा है कि [अयं एक: परमार्थ:] बहुत प्रकार से कहा है, तथापि कहेंगे शुद्धजीव के अनुभवरूप अकेला मोक्ष का कारण, उसको [नित्यं चेत्यतां] अन्य जो नाना प्रकार के अभिप्राय, उन समस्त को मेटकर, इसी एक को नित्य अनुभवो। वह कौन परमार्थ? 'खलु समयसारात् उत्तरं किञ्चित् न अस्ति' [खलु] निश्चय से [समयसारात्] शुद्धजीव के स्वरूप के अनुभव के समान [उत्तरं] द्रव्यक्रिया अथवा सिद्धान्त का पढ़ना–लिखना इत्यादि, [किञ्चित् न अस्ति] कुछ नहीं है अर्थात् शुद्धजीवस्वरूप का अनुभव, मोक्षमार्ग सर्वथा है; अन्य समस्त, मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। कैसा है समयसार? 'स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रात्' [स्वरस] चेतना के [विसर] प्रवाह से [पूर्ण] सम्पूर्ण—ऐसा [ज्ञानविस्फूर्ति] केवलज्ञान का प्रगटपना, [मात्रात्] इतना है स्वरूप जिसका, ऐसा है। आगे, ऐसा मोक्षमार्ग है; इससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहता है, वह बहिरात्मा है, उसे वर्जित करते हैं—'अतिजल्पै: अलं अलं' [अतिजल्पै:] बहुत बोलने से [अलं अलं] 'बस करो, बस करो'। यहाँ दो बार के कहने से अत्यन्त वर्जित करते हैं कि 'चुप रहो–चुप रहो'! कैसे हैं अतिजल्प? 'दुर्विकल्पै:' झूठ से भी झूठ उठती है चित्तकल्लोलमाला जिनमें, ऐसे हैं। और कैसे हैं? 'अनल्पै:' शक्तिभेद से अनन्त हैं।।५२–२४४।।

कलश - २४४ पर प्रवचन

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै–
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेक:।

स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ।।५२-२४४।।

देखो! यह इसके अन्तिम शब्द। '**न किञ्चित् अस्ति**' है न? आहाहा! क्या कहते हैं? भाई! '**इह अयं एकः परमार्थः नित्यं चेत्यतां' सर्व तात्पर्य ऐसा है कि....** पूरा समयसार महा सातिशय शास्त्र। समझ में आया? आत्मा को बतलानेवाला अलौकिक अद्वितीय चक्षु। यह कहेंगे न? अब आयेगा न वह? अद्वितीय चक्षु, अब आयेगा। अजोड़ समयसार है। इस हिन्दुस्तान में अभी भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ की वाणी का सार... सार... सार... दोहन होकर अकेला परमार्थ मक्खन इसमें रखा है। समझ में आया? चौदह पूर्व, बारह अंग। अरे! केवलज्ञान का कन्द, उसका सार। ऐसा यह समयसार है। वस्तु स्वयं तो समयसार आत्मा, इस वाणी का वाचक रूप से समयसार कहा जाता है। शक्कर को शब्द कहें शक्कर। शक्कर की डली, उसमें शब्द नहीं और शब्द में डली नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा समयसार शुद्ध आनन्दकन्द, शुद्ध चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, इस समयसार के अतिरिक्त इस जगत में कोई सार नहीं है। आहाहा! उसमें यह टीका की है। था मर्म और खोला है इन्होंने। जो भाव कहने के हैं, उस भाव का ही अर्थ किया है। समझ में आया? देखो!

'**इह' सर्व तात्पर्य ऐसा है कि 'अयं एकः परमार्थः'** देखो! वहाँ परमार्थ की व्याख्या वापस की। भाई ने कहा था न? कैलाशचन्दजी। कि भाई! परमार्थधर्म वास्तविक तो यह है। उसकी आलोचना की है। ऐसा कि परमार्थ तो सब परमार्थ.... परमार्थ करते हैं, ऐसा कहकर कहा था। परमार्थ मार्ग है। धर्म तो परमार्थ मार्ग है। यह सब है, वह व्यवहार भी धर्म परमार्थ तो इसे समझना चाहिए। यह परमार्थ शब्द आया न?

सर्व तात्पर्य ऐसा है कि बहुत प्रकार से कहा है, तथापि कहेंगे यह एक परमार्थ अर्थात् शुद्ध जीव के अनुभवरूप अकेला मोक्ष का कारण उसको... 'अयं एकः परमार्थः' शुद्ध भगवान आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप, उसके अनुभवरूप। उसका अनुभव। ऐसे शुद्धस्वरूप की अन्तर की दृष्टि, ज्ञान और लीनता अकेला मोक्ष का कारण, अकेला मोक्ष का कारण, अकेला ही मोक्ष का कारण है। शुद्ध जीव है, वह द्रव्य है।

अनुभवरूप, वह पर्याय है। समझ में आया? भगवान आत्मा की अवस्था है। ज्ञान चैतन्यज्योति ऐसा शुद्ध प्रभु, उसका अनुभव, उसे अनुसरकर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का भवना—होना। स्वभाव को अनुसरकर होना, ऐसा जो आत्म अनुभव, अकेला मोक्ष का कारण, अकेला मोक्ष का कारण है। अब उसमें कहाँ दूसरी बात है?

मुमुक्षु : एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। ऐको... ऐको क्या कहलाता है? खेलने में एक्का, दुक्का। एक्को चढ़े नहीं सबकी अपेक्षा? बादशाह और सब वह एक ही चढ़े?

मुमुक्षु : नारणभाई बहुत कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नारणभाई कहते। सच्ची बात है। रानी, रानी। बादशाह से रानी ऊँची और रानी से बादशाह ऊँचा। गोला और फिर रानी और फिर बादशाह और फिर इक्का, वह इक्का है यह। तुम्हारे है या नहीं उसमें? वहाँ थे न तुम? यहाँ हमारे उमराला में मेरे मामा थे न? ... चोकठा बाजी खेलते, सब रखते थे वहाँ घर में, हों! नानचन्द, नानचन्द। वे पैसे साधनेवाले थे न! रखते थे। हमारे जन्मने के बाद.... घर में सब था। (यह) तो छोटी-छोटी उम्र की बातें हैं। यह तो दस-दस, बारह-बारह (वर्ष की)। उस समय सब किया हुआ, देखा हुआ। कहते हैं कि यहाँ तो आत्मा। आहाहा! अकेला... अकेला इक्का है। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, और शान्ति। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प ज्ञान और निर्विकल्प स्थिरता, वह आत्मा का अनुभव एक, वह अकेला ही मोक्ष का मार्ग है।

अकेला मोक्ष का कारण उसको... 'नित्यं चेत्यतां' देखो! **अन्य जो नाना प्रकार के अभिप्राय...** अन्य जितने अभिप्राय हों, यह राग से व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है। निमित्त-उपादान के विशेषांक लिखनेवाले हैं। दो सौ पृष्ठ के। जैनदर्शन आया था न उसमें? दो सौ पृष्ठ का। दर्शन का विषय। जैनदर्शन का एक सुन्दर सचित्र निमित्त उपादान विशेषांक प्रकाशन होगा। लगभग २०० पृष्ठों का। २०० पृष्ठों का विशेषांक, इसलिए यहाँ याद आ गया न यह। २०० पृष्ठ का अंक। अरे! भगवान! तुझे निमित्त वस्तु नहीं? निमित्त कहाँ नहीं? समझ में आया? परन्तु आत्मा अपने शुद्धस्वभाव

की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति करे, तब पंच महाव्रत के विकल्प और संहनन आदि निमित्त हो। निमित्त नहीं (–ऐसा) किसने कहा ? परन्तु वह निमित्त है, इसलिए यहाँ कार्य है, इस बात में कुछ दाम नहीं। समझ में आया ? लिखेंगे। उन्हें वे ४७ दोहे खोटे किये, अब उसमें क्या करेंगे। चर्चा होगी उसमें कुछ चलेगा। ... समझ में आया ?

अहो ! अकेला '**नित्यम्**' अर्थात् जगत के **अन्य जो नाना प्रकार के अभिप्राय...** जगत के कि यह शरीर अच्छा हो तो धर्म होता है, यह राग की मन्दता हो तो वहाँ कल्याण होता है। ऐसे अनेक प्रकार के अभिप्राय हों, सबको मिटा दे। **उन समस्त को मेटकर इसी एक को नित्य अनुभवो।** '**नित्यं**' है न, इसका अर्थ तो इतना ही है। **इसी एक को नित्य अनुभवो।** भगवान आत्मा जिसमें कमी कहाँ है ? खजाने में कमी कहाँ है अन्दर ? पूर्णानन्द का नाथ अनन्त–अनन्त शक्ति का सम्पन्न बड़ा दल चैतन्य महा ! वह बड़े आरिया काटे तो उसमें से रस दले ऐसे बड़े। देखो न ! यह तरबूज इतने बड़ा आधे मण के तरबूज हों। छुरी मारे और ऐसे चारों ओर काटे, लड़के ताजा पीवे, आधेमण आधेमण के तरबूज के होते है बड़े। हमारे उमराला में तो बहुत बड़े होते हैं। पानी बहुत रहे न ! इतने–इतने बड़े–बड़े, तब तो सस्ते (थे)। दो आने का तरबूज बड़ा इतना कहलाये।

यहाँ भगवान आत्मा अकेले आनन्दरस से भरपूर बड़ा तजबूज है। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें कहाँ रस की कमी और न्यूनता है। कहते हैं, उसके अन्दर में अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति से मोक्षमार्ग है, बाकी हराम दूसरी बात हो तो। कहो, सोगनचन्दजी ! क्या करना अब ? यह सब व्यवहार क्रियाकाण्ड का करना क्या ? जानना। फिर यह चिल्लाहट मचाये, अरे ! सोनगढ़वालों ने ऐसा किया, सोनगढ़वालों ने ऐसा किया। सोनगढ़ का नाम सच्चा कहते हैं।

नाना प्रकार के अभिप्राय.... शब्द लिखा है न ? कोई कहे कि, यह निमित्त अच्छा मिले तो आत्मा को सम्यग्दर्शन हो। अरे ! शुभ मन्द राग हो तो सम्यग्दर्शन हो इत्यादि अनेक अभिप्राय जगत में हैं। छोड़ अभिप्राय, कहते हैं। **इसी एक को नित्य अनुभवो।** '**नित्यं चेत्यतां**' है न ? भगवान आनन्दकन्द प्रभु की सेवा कर, उसे अनुभव (कर)। बाकी सब सार कुछ है नहीं। आहाहा ! यह कौन परमार्थ ? '**खलु समयसारात् उत्तरं किञ्चित् न अस्ति**' '**खलु**' **निश्चय से समयसार समान अर्थात् शुद्ध जीव के**

स्वरूप के अनुभव के समान... देखा? समयसार अर्थात् वह द्रव्य नहीं, यहाँ तो अनुभव की पर्यायसहित। यहाँ उसका लेना है न?

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप का अनुभव। उस शुद्ध को अनुसरकर शुद्धरूप होना, अशुद्ध का अनुसरण छोड़ना। वह यहाँ तो छोड़ने की बात नहीं। यहाँ तो शुद्ध स्वरूप को अनुसरे। **समान... 'उत्तरं'** अन्य। **द्रव्यक्रिया अथवा सिद्धान्त का पढ़ना-लिखना इत्यादि...** इसके अतिरिक्त दूसरा, ऐसा। **'समयसारात्'** शुद्ध भगवान आत्मा का ज्ञान का अनुभव, ज्ञान की अन्तर प्रतीति, उसका अनुभव, ज्ञान की स्थिरता, वह भी ज्ञान का अनुभव। ऐसे शुद्ध जीव के स्वरूप के अनुभव के समान, अनुभव **'समयसारात्' 'उत्तरं' द्रव्यक्रिया अथवा सिद्धान्त का पढ़ना-लिखना इत्यादि कुछ नहीं है...** कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो, लो! क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप के अनुभव के अतिरिक्त यह रागादि सिद्धान्त सीखना, पढ़ना, पढ़ना, पढ़ाना, कहना-कहलवाना और द्रव्य की सब रागादि क्रिया कुछ नहीं, कुछ नहीं। भाई है तो सही न! ऐ..ई..! अनुभव के अतिरिक्त मोक्षमार्ग कुछ नहीं, ऐसा। वस्तु है, वह वस्तु नहीं कहाँ? समझ में आया? **'किञ्चित् न अस्ति'** अर्थात् शुद्धस्वरूप का अनुभव के अतिरिक्त मोक्षमार्ग किंचित् जरा भी नहीं है। जरा भी नहीं है, इसका अर्थ कि जरा भी राग नहीं या विकल्प नहीं, ऐसा नहीं। वह है, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया?

कुछ नहीं है... किंचित् अर्थात् कुछ नहीं। द्रव्यक्रिया, सिद्धान्त का पढ़ना, शास्त्र की आगे श्रद्धा इत्यादि बाहर का राग। इत्यादि में सब आता है। पंच महाव्रत के परिणाम, समिति, गुप्ति, व्यवहार के विकल्प, व्यवहार विकल्प, हों! समझ में आया? सब विकल्प की जाति पढ़ने की ओर राग की, वह कुछ नहीं। कुछ नहीं। कुछ नहीं अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं। उत्तर अर्थात् इसके समान दूसरा कुछ नहीं, ऐसा। उत्तर अर्थात् अन्य। पहला अर्थ किया था वह। उत्तर अर्थात् अन्य कोई नहीं। भगवान आत्मा... 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' नहीं आता? छहढाला में आता है। 'निश्चय उर लाओ' यह बात है। छहढाला में ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : व्यवहार है ही नहीं ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है न। व्यवहार किसने नहीं कहा? व्यवहार नहीं? उसे निमित्तरूप से कहा जाता है। हेतु निमित्तरूप से, कारणरूप से कहा जाता है।

मुमुक्षु : कारण कहाँ? नहीं कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहा न, व्यवहार कारण कहा न, अभी आया नहीं था, सवेरे नहीं आया था? बहिरंग सहकारी कारण निमित्तरूप से, हेतुरूप से कहा जाता है परन्तु मोक्षमार्ग किंचित् नहीं है। समझ में आया? मोक्षमार्ग दो हैं, ऐसा नहीं है। आरोप से कहा था, वह किंचित् मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

भाई! वस्तु सत्य होगी तो शरण मिलेगी, गड़बड़ करेगा तो शरण नहीं मिलेगी। आहाहा! वस्तु जिस प्रकार से है, उस प्रकार से श्रद्धा, ज्ञान में नहीं ले तो अन्दर नहीं जाये, जा सके। समझ में आया? यहाँ कहीं पोपाबाई का राज नहीं है। यहाँ तो प्रयत्न जहाँ अन्तर में झुकाना, यह वह कुछ बात है! समझ में आया? ऐसे सीख लेना, पढ़ लेना, कह देना, दया, व्रत यह अमुक, वह तो ऐसे फट... फट... फट... फट... इसे झट सरल पड़ जाता है। परन्तु भगवान आत्मा जिसमें अपनी दृष्टि को अन्तर में स्थापना है कि जो स्वरूप का अनुभव (हो), इसके अतिरिक्त कोई विकल्पमात्र किंचित् मोक्ष का मार्ग नहीं है। वस्तु है, वस्तु है। व्यवहार विकल्प लिंग है। उसे भोग सकता है? उसकी ओर का लक्ष्य करता है और राग होता है, उसे भोगता है। राग तो विकार है, जहर है। समझ में आया?

विषतरु नहीं आया? १४८ प्रकृति विष का वृक्ष है। उसमें भी कहीं ऐसा नहीं कहा कि, एक और अमृत का वृक्ष है। अमृत का वृक्ष तो आत्मा है। अरे! उसका माहात्म्य न आवे और दूसरे माहात्म्य हटे नहीं, उसे कठिन, बहुत कठिन लगे। आहाहा! पुण्य को विष्टा (कहते हैं), जहाँ हो वहाँ यही रखते हैं सब। उसमें भी रखा है। लोगों को ऐसा होता है कि आहाहा! प्रेम है न जगत को! पैसे का, पुण्य का, यह मोटरों में घूमे। ऊपर क्या कहलाता है? बलून। वह रुपयेवाले घूमें, ऐसे ऊपर घूमें एक घण्टे में तीन सौ मील, चार सौ मील, छह सौ मील और ऐसे डोक्या करते जाये और देखते जाये और मजा तो कितना पुण्य में! मर जायेगा, वहाँ से नीचे पड़े और हाय... हाय...! पानी में गिरे कितने ही। वह मोटा मर गया अभी कोई नहीं? वह मोटा वहाँ मुम्बई में। पन्द्रह

दिन तक ऐसे रहा। मोटर में भटकाया और यह तुंबड़ी... पन्द्रह दिन अबोल रहा, मर गया, अभी दो दिन पहले। क्या करे लाख बार करे नहीं ? आयुष्य बिना क्या करे ? वह वहाँ मोटरों में घूमे। धूल में भी नहीं वहाँ अब।

जीवदया। धूल जिलावे। आयुष्य था वह रहा है। आहाहा! अबोला होकर मर गया। जवाहरलाल स्वयं भी अबोला होकर मर गये न अन्त में! बड़े-बड़े डॉक्टर क्या करे ? भगवान आत्मा की रहने की स्थिति वहाँ देह में पूरी हुई, चल निकला, भाई! रहने में एक समय भी रह नहीं सकता, धूल में भी चैन नहीं वहाँ। आहाहा! नहीं कहा। हाथ में लकड़ियाँ रत्न की हो छोटी, ऐसे टोपी पहने। ओहोहो! क्या है परन्तु यह सब। समझ में आया ? और यह बँगले साढ़े तीन करोड़ करोड़ के। जॉर्ज था न ? जॉर्ज नहीं ? उसमें मर गया न साढ़े तीन, रात्रि में मर गया, रात्रि में सोता था और सवेरे मर गया। उसे कितने डॉक्टर होंगे! और वापस जाना है नीचे, हों! उसमें कोई दूसरी गति नहीं मिलती उसकी तो। आहाहा! इस क्षण में पलंग और उस क्षण में नरक। ऐ... कुकर्म, पुद्गल की चीज़ तो देखो! भाई! यह वह सफेद, सफेद, लाल, पीले और ऐसे मलाणा वे विकार के हैं। भगवान! वह जहर है, भाई! परन्तु उसकी इसे मिठास, मिठास (आती है)।

यहाँ तो कहते हैं कि राग का विकल्प व्रत के विकल्प की मिठास छोड़ दे। आहाहा! जो शुभभाव है, वह किंचित् मुक्ति के मार्ग के लिये बिल्कुल काम करनेवाला नहीं है। बाधक है, वही बन्ध का साधक है, ऐसा शब्द है न ? उसमें। मोक्षमार्गप्रकाशक में से निकाला है। जो मोक्ष का बाधक है, वही बन्ध का साधक है। आहाहा! टोडरमलजी ने बहुत-बहुत विचार किया है परन्तु कद्र करनेवाले ऐसे निकले। अभी तक तो चलता था, अब और निकली यह बात। अहो! जयपुर में स्मृति हो, यह खटकता है कितनों को। अरे! भगवान! ऐसा कि ऐसे-ऐसे आचार्य हो गये, अमुक हो गये। उन्हें यह भाव आया। ऐसा शास्त्र साधारण जन के पास संस्कृत, व्याकरण में बुद्धि न हो। चार कक्षा पढ़ा हो तो भी उसमें पढ़कर आत्मा का तत्त्व पड़ा हो, निकाल कर सके, ऐसा सरल है। उसका एक सातवाँ अध्याय। ओहोहो! मक्खन! चौदह पूर्व का सार निकाल रखा है। समझ में आया ? अरे! बहुत पढ़ने का समय न हो परन्तु प्रतिदिन तो पढ़ने का समय हो या नहीं इतना ? आठ दिन, पन्द्रह दिन वांचन करे धीरे... धीरे... धीरे... धीरे... सब शास्त्र

कितने! बापू! समय थोड़ा, प्रयोजनभूत काम करना है जिसे... समझ में आया? तो उसे उपकारभूत जानकर उसे भी माने। उसमें क्या है? बाधा क्या है? भूल-फिरे। क्या ऐसा शब्द है, था नहीं कुछ? भूले-विसरे। भूल गये और विसर गये और पाँच-पाँच लाख के हॉल बनाते हैं। ऐसा किसी को खटकता है। अब वह तो गोदिका को बेचारे को भाव था और खबर पड़ी। पहला तो भाव यहीं हुआ था। वह तो वहाँ टोडरमलजी हो गये, इसलिए अपने जयपुर में उनकी प्रसिद्धि हो, ऐसा ठीक और एक स्वाध्याय हो तो लोग .... बाद में तो खबर पड़ी की यह टोडरमलजी तो हमारे परिवार का व्यक्ति है। यह तो गृहस्थ मनुष्य, उसे कहाँ वहाँ पाँच लाख ... उसे कहीं पैसे की कुछ, ऐसा नहीं कि पाँच, दस करोड़ हो तो लाख खर्च कर डालो। ऐसा उदार है। वह तो जहाँ डालने का विचार किया, वहाँ लाख, दो लाख, तीन लाख खर्च कर डाले। ऐसा स्पष्टीकरण,... समझ में आया? कहते हैं, उसने एक ही मोक्षमार्ग कहा है। इस पर अभी यह चलता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक-०३-१२-१९६५, कलश-२४४ से २४६, प्रवचन-२५८

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। समयसार कलश, नीचे ५२ वाँ कलश है। आगे **ऐसा मोक्षमार्ग है, इससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहता है, वह बहिरात्मा है,...** यहाँ तक आया था। है नीचे? अर्थात् क्या? कि आत्मा का शुद्धस्वरूप का अनुभव। पुण्य परिणाम दया, दान, व्रत परिणाम, वह परिणाम हो, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। अब उसमें उसे मोक्षमार्ग और इसे मोक्षमार्ग ऐसे दो नय इस प्रकार से कैसे? तो नय विरुद्ध किस प्रकार हुए? तो इसका, इसका विरोध किस प्रकार हुआ? **ऐसा मोक्षमार्ग है, इससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहता है,...** आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द, उसे अनुसरकर आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। बीच में व्यवहार, विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम आदि होते हैं, परन्तु वे मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

उसे वर्जित करते हैं.... देखो! **बहिरात्मा है, उसे वर्जित करते हैं....** कहते हैं, तेरी यह श्रद्धा छोड़। समझ में आया? शरीर के रजकण-रजकण जहाँ पृथक् पड़ेगे, बापू! यह कहीं तेरे हैं नहीं। सब हड्डियाँ हैं।

मुमुक्षु : जीवित हो वहाँ तक....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीने तक कब इसके धूल में भी नहीं। बड़ा फोड़ा पड़े, वह पड़े, अन्दर से कुछ निकले, हड्डियाँ टूटे। आहाहा! देखो न! क्या कहा जाता है उसे? ब्लडप्रेशर का २५० हो, वहाँ यह... यह... कल अधिक हुआ था। .... पैसे कितने हुए? कि दो हजार खर्च किये। क्या धूल करे? पैसे क्या करेंगे वहाँ? आहाहा! यह हड्डी हड्डी के रजकण भिन्न तत्त्व है। यह रजकण द्रव्य अभी भिन्न है, उसकी पर्याय भी अभी तेरे अधिकार की बात ही नहीं।

अब रही तेरी दशा में तेरे अधिकार से अनादि से अज्ञान में शुभ और अशुभभाव करने का अधिकार सही। शुभ और अशुभभाव, वह तो आस्रवतत्त्व है। वह तो आत्मा को बन्ध का कारण है। अब यहाँ तो मोक्ष का मार्ग सिद्ध करना है। भाई! देह की

क्रियायें, वे शुभपरिणाम, वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। क्योंकि तत्त्व भिन्न है। समझ में आया? परन्तु निरोगता हो, शरीर में कुछ (ठीक हो), इसलिए मानो कि मुझे यह है, ऐसा मुझे है, मैं बोलता हूँ, बोल सकता हूँ, दूसरे को विमुख कर सकता हूँ, दूसरे को भाषा द्वारा समझाकर ऐसा कर सकता हूँ। भाई! यह सब क्रियायें जड़ की हैं, कहीं तेरी है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

विकल्प उठावे। शुभ-अशुभभाव, उनमें अशुभभाव तो पाप है। वह कहीं आत्मा को हितकर नहीं है और उसमें शुभभाव हो, वह पुण्य है। दया, दान, विकल्प आदि जो है, व्यवहार जो कहलाता है, वह तो शुभभाव है, पुण्य है। वह पुण्यतत्त्व कहीं आत्मतत्त्व है? और उस पुण्यतत्त्व से कहीं संवर-निर्जरा अर्थात् मोक्ष का मार्ग उससे प्रगटे? (प्रगटे) तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं। है न? नौ तत्त्व हैं या नहीं? अजीवतत्त्व से कहीं पुण्य-पाप पैदा होंगे? और पुण्य परिणाम से कहीं संवर-निर्जरा होगी?

इसलिए कहते हैं कि भाई! वस्तु जो है आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द स्वरूप, उसकी अन्तर में एकाग्र होकर शुद्धता जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, वह शुद्धता ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्षमार्ग दूसरा इससे अधिक कहे तो वह दूसरे तो परिणाम पुण्य के हैं। जो अधिक कहे तो पुण्य के हैं, उसे मोक्षमार्ग कहे (तो) ऐसा नहीं है, भाई! समझ में आया?

इस शरीर में ऐसे सांध-सांध टूटती हो और अन्दर से निकलना-छूटना हो, एकाकार हो गया हो। उसे वह भगवान स्मरण करे णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, वह भी शरण नहीं पड़ती। वह तो राग है। समझ में आया? णमो अरिहंताणं.... णमो सिद्धाणं... णमो अरिहंताणं यह तो विकल्प है, राग है, इसलिए कुछ शान्ति नहीं होती। शान्ति तो चैतन्य स्वभाव की शरण में जा तो शान्ति मिलेगी। उसके शरण में तो शुद्ध पर्याय प्रगट हो तब हो, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मुक्ति का मार्ग नहीं है। समझ में आया? अरे! इसी इसी भव में यह आयेगा या नहीं देह छूटने का? या दूसरे भव में आयेगा? आहाहा! भिन्न चीज़ है, उसे भिन्न पड़ने का काल तो आयेगा न? हें! कि ऐसे का ऐसा रहेगा? आहाहा!

कहते हैं, भाई! तुझे शरीर के सामने देखना नहीं। शरीर के सन्मुख क्या होता है, यह देखना नहीं। वह तो जड़ का है। परसन्मुख के लक्ष्य से शुभभाव होता है, उसमें भी तुझे देखना नहीं। क्योंकि उसमें तो बन्ध का कारण है, छूटने का वह उपाय नहीं। छूटने का उपाय तो भगवान आत्मा ज्ञान और अनाकुल शान्ति की, आनन्द की मूर्ति प्रभु है न, भाई! उसका अन्तर लक्ष्य और रुचि—दृष्टि करना, उसका ज्ञान करके स्थिर होना, यह एक ही छूटने का पंथ और रास्ता है। इससे कोई अधिक कहे तो बहिरात्मा बाह्य बुद्धि में मोक्षमार्ग मानता है, वह वर्जनीय है। समझ में आया?

अन्तर्मुख के स्वभाव के अवलम्बन से जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हो, वह छूटने का रास्ता है। मोक्ष का कहो, छूटने का रास्ता है (कहो)। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई अधिक कहे, उसके स्वभाव के आश्रय बिना की दशा कोई दूसरी कहे, भाई! वह (उपाय) नहीं है, हों! वस्तु है परन्तु वह धर्म—मोक्ष का मार्ग सत्य नहीं है। व्यवहार भी सत्य और निश्चय भी सत्य तो दो नय क्यों रहे? तो विरोध क्यों हो? दो नय का तो विरोध है। यह कहते हैं—राग, वह धर्म यह कहता है कि अराग, वह धर्म। विरुद्ध है। (वे) कहते हैं कि व्यवहार शुभभाव वह धर्म। यह कहता है कि नहीं, नहीं। शुभभाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं। व्यवहार से धर्म कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव में धर्म प्रगट हुआ है, उसका आरोप उसे दिया जाता है परन्तु यह भी सत्य और यह भी सत्य, दोनों मोक्ष के मार्ग छूटने के रास्ते हैं, ऐसा (नहीं)। जरा देख अन्दर तो तुझे खबर पड़े कि यह तो तत्त्व पूरा रजकण का जिसे स्पर्श नहीं। पूरा देह में पड़ा पिण्ड भगवान आत्मा अकेला भिन्न। अब उसका जिसे कुछ शरण से ऐसा हो या ऐसा हो या ऐसा हो। उसमें कुछ विकल्प उठे, उससे तू छुटकारा चाहता हो तो वह कहीं सत्य नहीं।

एक ही निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति एक ही मोक्ष का मार्ग है। परन्तु अब उसमें विवाद उठावे। क्या हो? भाई! स्थल में खबर पड़ेगी, अभी तुझे खबर नहीं पड़ती। जरा पुण्य का उदय हो, शरीर ठीक हो और कुछ बोले चले करके दूसरे को मजबूती से शक्ति समझावे कि ऐसा होता है और ऐसा होता है, उसका ऐसा होता है, उसमें ऐसा लिखा है, उसमें ऐसा लिखा है। भाई! यह वास्तविक अवसर में शरण नहीं होगा, हों! हें!

उसे वर्जित करते हैं.... अरे ! **'अतिजल्पैः अलं अलं' अति जल्प से अर्थात् बहुत बोलने से...** आहाहा ! आचार्य कहते हैं, देखो ! बहुत बोलने से क्या ? बहुत बोलने से **'बस करो, बस करो...'** अरे ! भाई ! विशेष बोलकर क्या काम है ? बोली का अर्थ विकल्प करके क्या काम है ? समझ में आया ? अहो ! शुद्ध चैतन्य वस्तु है न, भाई ! परमानन्द की मूर्ति तू। आत्मा तो उसे कहते हैं। शुभाशुभराग उठे, उसे आत्मा कहा जाता है ? तो वह तत्त्व पृथक् कैसे पड़ा ? तब तो आत्मा में डालते हैं साथ में। समझ में आया ? शुभ परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति के, वह तो आस्रवतत्त्व है। यदि आत्मतत्त्व हो तो यह आस्रव और यह आत्मा दो भिन्न कैसे पड़ें ? इसलिए आत्मतत्त्व के अवलम्बन से ही आत्मा को शान्ति, श्रद्धा और मोक्ष का मार्ग है। उसकी मुक्ति करना है न ? तो उसके अवलम्बन से परिणाम हों, उनसे मुक्ति होगी। बाकी विशेष क्या कहें ? आचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अरे ! बहुत बोलना, बोलना छोड़ दे, चुप रह, भाई ! बस, बस हो जा अब।

यहाँ दो बार के कहने से अत्यन्त वर्जित करते हैं.... अत्यन्त वर्जित करते हैं, रहने दे, भाई ! दूसरा मोक्षमार्ग है शुभभाव—ऐसा कहना रहने दे, रहने दे। अब बस होओ। कहो, समझ में आया ? **चुप रहो, चुप रहो। कैसे हैं अतिजल्प ? 'दुर्विकल्पैः' झूठ से भी झूठ उठती हैं चित्तकल्लोलमाला....** अहो ! यह ऐसा होगा और व्यवहार से ऐसा होगा, फिर निश्चय से ऐसा होगा, यह होगा—ऐसे विकल्प की वृत्तियों की कल्लोल, कल्लोलमाला। झूठ से भी झूठी चित्त की कल्लोलमाला। देखा ? चित्त के संग से उठती है न वह ? वह अब बस हुई, अब बस रख, बस रख। अवसर आया, बापू ! आहाहा ! यह अन्तर आत्मा में ढलने का काल (आया)। बापू ! अब बस कर। कहो, जमुभाई ! क्या कहते हैं ?

और कैसे हैं ? 'अनल्पैः' शक्तिभेद से अनन्त हैं। विकल्प के भेद तो अनन्त पड़ते हैं। यह दया और यह भक्ति और व्रत, पूजा और यह... और यह... यह और यह गुणगुणी का भेद और इतने विकल्प की शक्तिरूप अनन्त उठते हैं; परन्तु उससे क्या है ? भाई ! पूरा भगवान शुद्ध चैतन्य है न, प्रभु ! अरे ! तू प्रभु है न, तुझे प्रभु की शरण लेना आता नहीं ? और यह पामर रागादि की शरण में तू छुटकारा चाहता है ? बस हुआ। अब। रहने दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कहो, भीखाभाई ! आहाहा ! यह पूरे रोम-रोम

में ऐसे रोग हो। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव शास्त्र में कहते हैं न? एक अंगुल में छियानवें रोग, शरीर के एक अंगुल में छियानवें रोग। चिमनभाई! छियानवें। यह पिण्ड जैसा दिखाई दे, उसमें कहाँ रोग दिखते हैं? एक अंगुल में इतने में छियानवें रोग। ऐसा पूरे शरीर प्रमाण। वे प्रस्फुटित हो तब, उसे खबर पड़े। नहीं तो मानो यह... उसमें यह है, सोने के पिण्ड जैसी यह धूल....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ आगे? पके तब इसे भान नहीं होता, असाध्य हो जाये। चैतन्य का तो भान नहीं होता। आहाहा! कण्ठमाल, भगन्दर, क्या कहलाते हैं समझे न? यह वह तुम्हारा केंसर और, उसमें छाती में केंसर, वह सड़े। आहाहा! हवा लगे नहीं। कैसे रहा होगा गर्भ में? कभी विचार किया है इसने? सवा नौ महीने उल्टे सिर, ऐसा तो अनन्त बार किया है। एक यहाँ व्यवस्थित खिड़की खिड़की बन्द हो और मनुष्य आड़े खड़ा हो तो (कहे), ऐई! आगे चला जा, हरखो हा आयेगा। वहाँ उल्टे सिर सवा नौ महीने। चैतन्य तो चैतन्य ही है सत् , आत्मा उसकी खबर नहीं होती और भगवान का आत्मा तो पेट में हो तो तीन ज्ञान और क्षायिक समकित होता है। आहाहा!

यह वस्तु है, उसे दृष्टि में पृथक् किया, चाहे जहाँ हो वह पृथक् है। वह पृथक् दृष्टि (में) करना, वही मुक्ति का मार्ग है, बाकी कोई मुक्ति का मार्ग नहीं। पृथक् कहो या मुक्ति का मार्ग कहो। दूसरी शोध रहने दे, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। '**अनल्पैः**' शक्तिभेद से अनन्त प्रकार के विकल्प उठें, वृत्तियाँ उठें, वहाँ खोजना रहने दे, भाई! उसमें कुछ भी रुचि करना छोड़ दे। भगवान आत्मा है, उसकी दृष्टि कर, उसकी रुचि कर, उसकी एकाग्रता कर, वही तुझे दुःख से मुक्त होने का एक ही पंथ और रास्ता है; दूसरा कोई रास्ता नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? अब इस समयसार की व्याख्या की महिमा करते हैं।

कलश - २४५

(अनुष्टुप्)

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ।।५३-२४५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'इदं पूर्णतां याति' शुद्धज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो सर्व-विशुद्ध ज्ञान-अधिकार का आरम्भ किया था, वह पूर्ण हुआ। कैसा है शुद्धज्ञान? 'एकं' निर्विकल्प है। और कैसा है? 'जगच्चक्षुः' जितनी ज्ञेयवस्तु, उन सबका ज्ञान है। और कैसा है? 'अक्षयं' शाश्वत है। और कैसा है? 'विज्ञानघनं अध्यक्षतां नयत्' [विज्ञान] ज्ञानमात्र के [घनं] समूहरूप आत्मद्रव्य को, [अध्यक्षतां नयत्] प्रत्यक्षरूप से अनुभवता हुआ।।५३-२४५।।

कलश - २४५ पर प्रवचन

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ।।५३-२४५।।

'इदं पूर्णतां याति' शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है। समयसार पूर्ण होता है अर्थात् शुद्धज्ञानप्रकाश पूर्ण हो गया। भगवान चैतन्य सूर्य का प्रकाश आत्मा है, उसे पूर्ण कहने की व्याख्या पूरी हुई और स्वयं पूर्ण हो गया। समझ में आया? **शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है। 'इदं पूर्णतां याति' 'इदं'** अर्थात् शुद्ध ज्ञानप्रकाश। **'पूर्णतां'** अर्थात् पूर्ण, **'याति'** अर्थात् होता है। भगवान **'इदं'** कहा न? यह प्रत्यक्ष। समझ में आया? वह श्लोक है, हों! पुराने में है। **'इदं पूर्णतां याति'** चैतन्यसूर्य प्रकाशमूर्ति प्रभु! उसके कथनों की पद्धति अब पूरी हो गयी और इस प्रकार से समझे उसे भी शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण पा जाये। आहाहा! **शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है।**

भावार्थ इस प्रकार है कि जो सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार का आरम्भ किया था... सर्वविशुद्ध का किया था न? **वह पूर्ण हुआ।** पूर्ण अकेला ज्ञान सूर्य चैतन्यस्वरूप में

आनन्द, शान्ति पूर्ण स्वरूप है। ऐसा जो आत्मा, उसका कथन बहुत किया, पूरा किया। समझानेवाले को यह ज्ञानस्वरूप का भान होकर पूर्ण हो गया, सर्वविशुद्धज्ञान प्रगट हो गया। **कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'एकं' निर्विकल्प है। 'एकं'** अर्थात् निर्विकल्प, ऐसा। एक स्वरूप है, उसमें भेद नहीं। ज्ञान सर्वज्ञस्वभावी वस्तु चैतन्य अर्थात् सर्व को जानने स्वभाव की सत्तावाली वस्तु, वह एक, एक है, निर्विकल्प है; भेद-बेद नहीं।

और कैसा है? 'जगच्चक्षुः' कैसी है चीज़ भगवान आत्मा? **जितनी ज्ञेय वस्तु उन सबका ज्ञाता है।** चैतन्यस्वभाव (उसका) पहले से भान हुआ, तब से वह ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया? पूर्ण ज्ञान होने पर तो पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञाता-दृष्टा हो गया। अकेला भगवान आत्मा तो सर्व का जानने-देखनेवाला ही है। अभी भी वही है। शुभ विकल्प, राग, देह आदि की क्रिया का करना, वह स्वरूप में नहीं है। वह चैतन्यसूर्य भगवान सच्चिदानन्द की मूर्ति है। समझ में आया? देह प्रमाण अगढ़ित मूर्ति है। भगवान देह के परमाणु से भिन्न अगढ़ित मूर्ति अकृत्रिम अनादि-अनन्त है। वह सर्व को जाननेवाला ही है। शरीर हो, वाणी हो, सब हो। हो, उसे जानता है, यह वह भी उसके कारण से नहीं। जानने के स्वभाव के कारण से जानता है। समझ में आया?

उन सबका ज्ञाता है। दृष्टान्त देंगे न? सवेरे नहीं उस तारा का। पानी में पानी को देखते हुए ऊपर के तारा पानी में दिख जाते हैं। पानी को देखने पर, जल को देखने पर ताराओं के प्रतिबिम्ब पड़े हैं न अन्दर? जल देखने पर तारे ज्ञात हो जाते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से ज्ञाता-दृष्टा है, उसे देखने पर उसमें सब चीज़ें उसमें ज्ञात हो जाती हैं, ऐसा वह आत्मा है। समझ में आया? उसने आत्मा जाना है, ऐसा अनन्त बार अभिमान किया था। समझ में आया? परन्तु है क्या, उसे जानने का इसने प्रयत्न भी किया नहीं। यह भगवान चैतन्य ज्योति कहते हैं कि यहाँ जगा और जगकर देखा तो यह सर्व ज्ञाता, सर्व को जाननेवाला है। समझ में आया? ऐसा सबका ज्ञाता प्रगट हो गया। ऐसे चैतन्य के भान द्वारा अन्तर में स्थिर होने से भगवान जैसा ज्ञान से पूर्ण-पूर्ण है, वैसा पर्याय में परिपूर्ण प्रगट हो गया। बस! यह समयसार का पूर्ण हो गया।

और कैसा है? 'अक्षयं' शाश्वत् है। वह चैतन्यस्वरूप शाश्वत् है और ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय भी प्रगट हो गयी, वह शाश्वत् रहेगी ऐसी की ऐसी। समझ में आया?

जानने-देखनेवाला सत् है न, सत्। सत् है, वह शाश्वत् है। अकृत्रिम है, अण—नाश पावे, ऐसा ज्ञान का मूर्त स्वरूप अकेला चैतन्यघन मूर्ति। शाश्वत् प्रगट हो गया। जैसा शक्ति में शाश्वत्पना है, वह पर्याय में भी शाश्वत् हो गया। वह पर्याय अब वापिस मुड़े, ऐसी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! मकान पूरा हो तो नहीं कहते, अब मकान पूरा हुआ भाई। सब पूरा किया। यह सब चिनकर पूरा हो गया, कहते हैं। आहाहा! भगवान ज्ञान स्वरूप से है, ऐसा अन्तर में एकाग्र होकर पर्याय की पूर्णता हो गयी, पूर्ण हो गया।

अक्षय भगवान ऐसा का ऐसा। वस्तु जैसे शाश्वत् है, उसकी पर्याय ऐसी की ऐसी शाश्वत् हो गयी। ऐसा इसका नाम समयसार की पूर्णता है। **और कैसा है? 'विज्ञानघनं अध्यक्षतां नयत्' ज्ञानमात्र के....** यह भगवान चैतन्यस्वरूप। यहाँ तो आत्मा को ज्ञान... ज्ञान ही वर्णन किया है। चैतन्य की प्रधानता से वह आत्मा है। उसमें दूसरे भले अनन्त गुण हैं। वह जानन-जानन जो सत्ता, जानने की अस्ति का भाव, वह आत्मा। ऐसी **'विज्ञानघन, घन'** अर्थात् समूहरूप आत्मद्रव्य, ऐसा। **ज्ञानमात्र के समूहरूप आत्मद्रव्य को....** भगवान चैतन्य द्रव्य है, चैतन्य का समूह, वह आत्मद्रव्य है। उसमें कोई पुण्य-पाप का समूह या शरीर उसमें है नहीं। अकेला ज्ञानानन्दस्वरूप शक्ति से ज्ञान का समूह, ऐसी पर्याय भी प्रगट हुई, कहेंगे देखो!

'अध्यक्षतां नयत्' यह **'अध्यक्षतां नयत्'** भाषा देखो! यह **प्रत्यक्षरूप से अनुभवता हुआ। 'अध्यक्षतां'** प्रत्यक्ष से **'नयत्'** प्राप्त हुआ। अनुभव हुआ। यह पर्याय कही है। भगवानस्वरूप आत्मा... समझ में आया? अज्ञान में भी कितनी शक्ति! अज्ञान में भी जहाँ एक समय की अमुक पर्याय में—इस लड़की की बात में कि जहाँ अज्ञान है, ग्रहित मिथ्यात्व है वहाँ। उसमें भी ज्ञान की एक समय की पर्याय है, धारणा का, हों! धारणा का। गुण-द्रव्य की बात यहाँ है नहीं। यह धारणा के संस्कार में भी यह... यह... यह... दूसरे को ऐसा लगे, अनजाना लगे। कल एक व्यक्ति कहता था, ऐसा कैसे बने? बने क्या, प्रत्यक्ष है और बने कैसे प्रश्न (कहा) है। एक व्यक्ति और वह नहीं था कल सवेरे दर्शन करने आया? बड़ी है न और कोई मीरा आश्रित। वह तो कहे, ओहो! भगवान की मूर्ति थी। देखो! यह तुम्हारे भतीजे की पुत्री भगवान की मूर्ति कहे। आहाहा! मुझे तो क्या विचार आया? कि अरे! एक अज्ञान ग्रहीत मिथ्यात्व में भी उसे

वहाँ तो यह सब आलू, शकरकन्द खिलाते होंगे, वहाँ तो सब है या नहीं? वहाँ तो ग्रहीत मिथ्यात्व, यहाँ तो देवल में जाकर मूर्ति, पूजा और सब करते होंगे, आरती-बारती सब और रात्रि में खाते (होंगे), रात्रि के समय अन्धकार में खाये।

यहाँ तो दूसरी बात है कि, इसके इस ज्ञान के एक समय के मिथ्यात्व की भूमिका में भी उसकी पर्याय की धारणा के संस्कार में ऐसा आवे कि यह ही मैं, बस ऐसा। मैं गीता थी, ऐसा कहती है न? गीता थी। गीता, गीता कहाँ है? मैं तो राजुल हूँ अभी। वहाँ गीता थी। उसमें क्या है? वह कहीं आत्मा को मोक्ष का कारण या धर्म-बर्म उसमें जरा भी नहीं, हों! समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्वभाव में एक पर्याय के अंश के धारणा के संस्कार में ऐसा आवे, वहाँ प्रत्यक्षपना नहीं, वह कुछ। प्रत्यक्ष ऐसा दिखता है वहाँ? उसकी स्मृति में आवे ऐसे एकदम, यह... यह... स्वयं भले दो वर्ष और नौ महीने यह जिसे कुछ आड़ अवरोधक नहीं। अज्ञानभाव में भी एक समय की पर्याय में पूर्व के संस्कार ऐसे पड़े हैं कि जिसे स्मृति के लिये आड़ अवरोधक नहीं। समझ में आया? उसके सम्यग्ज्ञान के पर्याय का क्या कहना! आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा जो उस धारणा का विषय और मात्र अज्ञान में धारा हुआ, उसके अंश में लोगों को चमत्कार हो जाता है। आहाहा! ऐसा हो जाता है। क्या है? यह कहीं जन्म-मरण के चक्र को अन्तर करे, यह अन्तर करे, ऐसा चक्र इस बात में माल एक भी नहीं है। आहाहा! यह आत्मा एक समय में जो वस्तु सत् चिदानन्द, उसका प्रगट हुआ एक मतिज्ञान का एक अंश जिसने पकड़ा कि यह आत्मा। आहाहा! उस मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के अंश में कितनी ताकत है कि जिसने पूरे आत्मा को स्वीकार लिया! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु भगवान, उसकी जाति पूरी जो वह कभी देखी नहीं, जानी नहीं, अनुभव नहीं की... समझ में आया? वह यह ज्ञान द्वारा यह आत्मा है। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय की क्या कीमत करना! समझ में आया? धर्मचन्दजी! क्या हुआ? यह तुम्हारे डॉक्टर के ज्ञान के शून्य लगते हैं इसमें, शून्य लगते हैं? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा भगवान समयसार जहाँ पूर्ण अध्यक्ष '**अध्यक्षतां नयत्**' यह पूर्णपने को प्राप्त हो गया, परिणम गया। समझ में आया? भगवान ज्ञान की ज्योति जिसमें, जिसके अज्ञान में ऐसी चमत्कारी जगत को लगे, उसके सम्यग्ज्ञान के चमत्कार

की क्या बातें! और उस सम्यग्ज्ञान में से प्रगट हुआ केवलज्ञान (उसकी तो क्या बात करें)। '**अध्यक्षतां नयत्**' भगवान पूर्णस्वरूप चैतन्य। यह आगे कहीं आयेगा। समझे न? भ्रान्ति न करो, भ्रान्ति न करो। परमात्मप्रकाश में। आत्मा ही परमात्मा हो सकता है। आत्मा में भ्रान्ति न करो, सन्देह न करो। ऐसा आयेगा। यह श्लोक आयेगा न? कहीं है। श्लोक .... किसी एक में ही है। पहला ही बोल है। '**अप्पु पयासइ अप्पु परु जिम अंवरि रविराउ।**' रवि का राग अर्थात् सूर्य का प्रकाश, ऐसा कहते हैं। '**जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ॥**' १०१ (गाथा) कल आयेगी।

हे योगी! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप है, प्रभु! वह स्वयं ही प्रकाश होकर पूर्ण परमात्मा होता है। न भ्रान्ति कर, भ्रान्ति न कर, भाई! न कर, सन्देह छोड़ दे। यह वस्तु ही ऐसी है, कहते हैं। '**एहउ वत्थु-सहाउ**' ऐसा कहते हैं। यह १०१ में ही आयेगा। यह वस्तु का ऐसा स्वभाव है, भाई! कहो, समझ में आया? भ्रम न कर, भ्रम न कर, भ्रमणा न कर। ऐसी व्याख्या ऐसे आत्मा की? ओहोहो! ऐसा आत्मा? यह आत्मा ऐसा है। भ्रम छोड़ दे, सन्देह छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि समूह ज्ञान का घन भगवान आत्मा द्रव्य, वह प्रत्यक्षरूप से अनुभव करने पर प्रगट है। समझ में आया? यह सन्देह न कर, यह हो सकता है, हो सकता है। वस्तु का ही ऐसा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं, प्रभु! इसमें अन्तिम शब्द ऐसा है। समझ में आया? समझ में नहीं आया? जेचन्दभाई! ऐसा आत्मा? लो! परन्तु कब खोजा है, वह खो जाये? कब खोजा है, वह खो जाए? खोजा है उस धूल को। इस शरीर, वाणी, धूल और पैसा, स्त्री, पुत्र, मकान और बँगले और राग-द्वेष को खोजा है। वहाँ खोजने में आत्मा वहाँ है? जहाँ है, वहाँ खोजा नहीं और नहीं है, वहाँ खोजा है। क्यों हाथ नहीं आता? फिर कैसे हाथ आता नहीं? खो गया कहीं गहना। यहाँ गहना मैं वहाँ ही था, उतने में ही खोया है, अन्यत्र कहीं नहीं। यहाँ से था, वहाँ गये रास्ते में खो गया। खोजने गया नदी में। (फिर पूछते हैं कि) क्यों हाथ नहीं आता? क्यों किनारे नहीं आता? अब वह चिल्लाहट मचाये इसका अर्थ क्या करो? क्यों भीखाभाई! वहाँ खोया नहीं था? जोरावर (नगर) न, जोरावर आहाहा! .... खोजने लगे वहाँ परन्तु वस्त्र बिछाया हुआ, उसमें घुस गया। पैर में चुभा, बाहर निकला। यह क्या है? यह कुछ है। क्या कहलाता

है ? लो ! पैर ने खोज दिया। आँख नहीं थी वहाँ। परन्तु जहाँ हो वहाँ से हाथ आवे या न हो वहाँ से हाथ आवे ? समझ में आया ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा तो अन्दर में ज्ञानानन्दस्वभाव से भरपूर आत्मा तो वहाँ है। उसे शोधे, ऐसे खोजा, ऐसे मिलेगा, यहाँ मिलेगा, यहाँ मिलेगा, धूल में मिलेगा, पुण्य-पाप के राग में मिलेगा। स्त्री-पुत्र में कुछ मिलेगा, धूल मर गया भटककर। वहाँ कहाँ आत्मा था ? समझ में आया ? है, वहाँ देखता नहीं; नहीं वहाँ देखना है। अब कहे, हाथ आता नहीं, कहते हैं। मलूकचन्दभाई ! अमुलखभाई ! तुम्हारे गाँव में हुआ था न ? उस जोरावर में (हुआ था न) ? डॉक्टर के घर जाते थे, डॉक्टर के घर, नहीं ? बाहर पैर में लगा। परन्तु जहाँ हो, वहाँ से आवे, या न हो वहाँ से आवे ? आहाहा !

कहते हैं, प्रभु ! विज्ञान का घन प्रभु ! तुझे जँचता नहीं परन्तु अब उसका करना क्या ? ऐसा कहते हैं। इतना मैं होऊँगा ? इतना मैं होऊँगा ? पामर बीड़ी में जहाँ बिक गया, दाल में बिक गया, स्त्री के एक शब्द में ऐसे बढ़ाई में बिक गया, थोड़ा मान मिले, वहाँ बिक गया, पूरा बिक गया उसमें मिले कहाँ से परन्तु वह ? आहाहा ! जरा सा एक रूप सहज ठीक दिखाई दे, वहाँ या होम... ! सब अर्पणता। कुछ दो शब्द बुलावे, कुछ ठीक, या होम... मर गया वहाँ, या होम। परन्तु कौन है तू ? कहाँ खोजना और कहाँ या होम हो जाता है ? इसे खबर नहीं। दो शब्द यदि अच्छे से बुलावे इसे, उसने मेरी कदर की। तेरी कदर तू करे या वह करता होगा ? मलूकचन्दभाई ! आहाहा ! धूल में कहाँ था वहाँ ? आहाहा !

यहाँ तो आचार्य क्या कहते हैं ? देखो तो सही। '**विज्ञानघनं अध्यक्षतां नयत्**' बस ! यह अन्तिम शब्द, अन्तिम पूर्ण करते हैं वहाँ। भगवान विज्ञान का घन है न, प्रभु ! वहाँ शोधने से वह प्राप्त पर्याय में पूर्ण हो गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अवस्था में पूर्णता हो गयी। सर्वज्ञ सूर्य उदित हो गया पूरा। जैसा सर्वज्ञस्वभाव था, वस्तु से सर्वज्ञस्वभाव था (वैसा प्रगट हो गया)। विज्ञानघन कहा न ? सर्वज्ञस्वभाव था, सर्वज्ञ कहो या विज्ञानघन कहो, पूर्ण को—सबको जाननेवाला कहो, ऐसा भगवान आत्मा महिमावन्त स्वभाव था, वहाँ उसकी नजर लगाकर एकाग्र होने से परिणमित हो गया पूरा सर्वज्ञरूप से। समझ में आया ? भगवान पूरा परिपूर्णता को प्राप्त हो गया। यह इसका नाम समयसार का पूर्णपना। समझ में आया ? यह ५३वाँ हुआ। ५४वाँ है न, इसमें है, हों ! अर्थ इसमें है।

कलश - २४६

(अनुष्टुप्)

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ।।५४-२४६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'इदम् आत्मनः तत्त्वं ज्ञानमात्रम् अवस्थितम् इति' [इदम्] प्रत्यक्ष है जो [आत्मनः तत्त्वं] शुद्धजीव का स्वरूप, वह [ज्ञानमात्रम्] शुद्धज्ञानमात्र है— ऐसा [अवस्थितम् इति] पूर्ण नाटक-समयसारशास्त्र कहनेपर, इतना सिद्धान्त सिद्ध हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि 'शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य', ऐसा कहनेपर, ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। कैसा है आत्मतत्त्व? 'अखण्डम्'-अबाधित है। और कैसा है? 'एकम्'-निर्विकल्प है। और कैसा है? 'अचलं'-अपने स्वरूप से अमिट है। और कैसा है? 'स्वसंवेद्यम्'- ज्ञानगुण से स्वानुभवगोचर होता है; अन्यथा कोटि यत्न करनेपर, ग्राह्य नहीं है। और कैसा है? 'अबाधितम्'-सकल कर्म से भिन्न होनेपर, कोई बाधा करने को समर्थ नहीं है, इस कारण।

कलश - २४६ पर प्रवचन

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ।।५४-२४६।।

ओहोहो! ... शब्दार्थ। इसमें मूल में शब्दार्थ किया है। **'इदम् आत्मनः तत्त्वं ज्ञानमात्रम् अवस्थितम् इति'** ऐसा शब्द है। समझ में आया? **'इति'** अर्थात् **'इदम्'** कहने से पहले **'इदम्'** पहला शब्द है न? **'इदम्'** कहने से प्रत्यक्ष है भगवान आत्मा। वस्तु **'इदम्'** यह, ऐसा कहा न? यह, यह रही। राग और शरीर और जैसे यह सब ऐसे-ऐसे दिखता है न? मानो प्रत्यक्ष। वह प्रत्यक्ष कहाँ है? वह तो तूने ऐसा जानकर निर्णय किया, इसलिए तुझे प्रत्यक्ष लगता है, वह प्रत्यक्ष कहाँ है? ऐसे प्रत्यक्ष है यह। **'इदम्'** कहने से **प्रत्यक्ष है....** भगवान आत्मा **'आत्मनः तत्त्व'** कहने से **आत्मा का तत्त्व अर्थात् शुद्ध जीव का स्वरूप वह...** शुद्ध जीव का स्वरूप **'आत्मनः तत्त्व' 'आत्मनः तत्त्व'**

भगवान शुद्ध जीव का स्वरूप। तत्त्व अर्थात् स्वरूप। ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र।

यहाँ तो चैतन्यमात्र को ज्ञान को ही आत्मा कहा। ज्ञान के साथ सब अनन्त गुण हैं, आनन्द, शान्ति सब है। शुद्ध जीव का स्वरूप ज्ञानमात्र। '**अवस्थितम्**' कहने से **शुद्ध चेतनामात्र है...** शुद्ध चेतनामात्र। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... दर्शन-ज्ञान स्वरूपमात्र, चेतनामात्र स्वरूप है। वह तो '**अवस्थितम्**' चेतना **पूर्ण नाटक समयसार शास्त्र कहने पर इतना सिद्धान्त सिद्ध हुआ।** लो! यह कहने से पूर्ण नाटक समयसार, ऐसा लिया है। यह नाटक समयसार इसे कहा गया है। देखो! इसलिए कहा न! इसमें अर्थ किया है। इसलिए बनारसीदासजी ने इसमें से निकाला है न? 'समयसार नाटक' समझ में आया? **पूर्ण नाटक समयसार शास्त्र कहने पर इतना सिद्धान्त सिद्ध हुआ।** यह पूरा सिद्धान्त परमात्मस्वरूप का कथन का पूरा हुआ, पूरा हुआ, पूरा।

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहने पर ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। यह तो इतना कहा। यह शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य। वस्तु अर्थात्, आत्मा अर्थात् शुद्ध ज्ञानमात्र जीव, बस! यह पूर्ण। शुद्ध... समझ में आया? ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य। यहाँ क्या कहना है? कि शुद्ध चैतन्य ज्ञायकमात्र जीवद्रव्य, बस **ऐसा कहने पर ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।** इसमें ही ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया, कहते हैं। यही बताना था पूरा। आहाहा! बहुत थोड़े शब्द में भी महान वर्णन किया है। 'जगत' शब्द आवे परन्तु 'जगत' शब्द में पूरा जगत समाहित हो जाता है या नहीं?

यहाँ कहते हैं, शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, बस! यह लो! रागादि, शरीर आदि नहीं, शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य। जाननहार... जाननहार... जाननहार... ऐसा शुद्ध ज्ञानमात्र। शुद्ध ज्ञान कहा है न? शुद्ध ज्ञानमात्र अर्थात् रागादि नहीं, ऐसा। ज्ञानमात्र कहने से दूसरे गुण नहीं हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? दूसरे सब गुण साथ में है। शुद्ध ज्ञानमात्र, शुद्ध ज्ञानमात्र वह जीवद्रव्य, ऐसा कहने से ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। लो! इस एक शब्द में कहते हैं, ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। यह सब कह-कहकर आत्मा मिल जायेगा क्या? बात तो बहुत की।

मुमुक्षु : मुद्दा तो खड़ा रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दा तो यह है। भगवान अन्दर शुद्ध ज्ञानमात्र प्रभु आत्मा अकेला आनन्दकन्द शुद्ध ज्ञानमात्र जीव, बस! वह पूर्ण हो गया। तेरी बात पूरी हो गयी इतने में। समझ में आया? कारण कि तू ऐसा है, ऐसा कहा, तेरी बात पूरी हो गयी। रागवाला और पुण्यवाला, शरीरवाला और कर्मवाला, पर्याप्तिवाला और यह वाला और धूल, वह कुछ नहीं, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों की कथन की पद्धति गागर में सागर समाहित कर दिया है।

कहते हैं, भाई! तू पूरा पड़ गया अब, हों! किस प्रकार? शास्त्र से पूरा पड़ गया और तेरे भाव से शुद्ध ज्ञानमात्र जीव पदार्थ, बस वह, जा। उसमें दूसरा कुछ उसमें नहीं है? अकेला शुद्ध ज्ञानमात्र भगवान। समझ में आया? उसमें कहते हैं कि पूरा समयसार पूर्ण हो गया। एक ही शब्द में बस है। कुन्दकुन्दाचार्य कहा न? हमारे गुरु ने हमें सर्वज्ञ ने, भाई! ऐसा आया न? परम गुरु और अपर गुरु सर्वज्ञ से लेकर नीचे हमारे गुरु ने हमको शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया। यह शुद्ध ज्ञानमात्र तू आत्मा, (उसका उपदेश दिया)। आहाहा! 'कर विचार तो पाम' दूसरा कुछ करने का दूसरा नहीं होता। यह राग करो और अमुक। विचार अर्थात् उसकी ओर का ज्ञान कर तो प्राप्त कर, बाकी कुछ है नहीं, दूसरा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! संक्षिप्त... लम्बी कर डाली। आहाहा! कितने श्लोक और कितनी टीका और कितने कलश! एक-एक के पाँच-पाँच अर्थ, मूल श्लोक और फिर उसका संस्कृत और वापस उसका अर्थ, उसकी टीका और फिर उसका भावार्थ तथा उसका स्पष्टीकरण व्याख्यान, लो! ओहोहो! अब क्या बाकी है, यह स्पष्टीकरण करते हो? कितने ही और ऐसा कहते हैं। भाई! इतना-इतना कहते हैं परन्तु तू उसे समझता नहीं तो अब... आहाहा! इतने में समझ जाये नहीं, ऐसा कहते हैं। राग नहीं, अमुक नहीं, राग से प्राप्त नहीं होता, निमित्त से प्राप्त नहीं होता परन्तु यह इसमें कुछ नहीं आया?

मुमुक्षु : पहले कहा परन्तु? पहले तो आना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले-फहले में इसमें कुछ आया नहीं। परन्तु पहला किसे कहे? शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, ले! यदि इसमें सब तू कहता है, वैसा समा गया। राग नहीं, ऐसा समाहित हो गया। राग से प्राप्त नहीं होता, ऐसा समाहित हो गया, निमित्त

से प्राप्त नहीं होता, ऐसा समाहित हो गया। निमित्त में वह नहीं, राग में वह नहीं, उसमें यह समाहित हो गया। समझ में आया?

भावार्थ भी अर्थ किया है न! यह अपने इसमें रह गया है, हों! आहाहा! कहते हैं, ...! एक बार तुझे तत्त्व समझायें, प्रसन्न तो हो। मैं ऐसा का ऐसा रहा। प्रसन्न तो हो! ऐसा। तेरी कमी कहीं आयी नहीं, हों! तू सातवें नरक में गया या नरक में रहा, अनन्त बार निगोद में (गया), वह ऐसा का ऐसा शुद्ध ज्ञानमात्र भगवान स्थित है, ऐसा का ऐसा। तू उलझ नहीं, उलझ नहीं। कहाँ गया?

मुमुक्षु : क्यों दिखता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु खोजा है कब? खोजे तो आँखें उघाड़कर खोजे तो जड़े—दिखाई दे। आँखें बन्द करके खोजे और (पूछे) क्यों हाथ नहीं आता? कैसे हाथ नहीं आता?

मुमुक्षु : खोज देने के बाद रहता नहीं हाथ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोज लिया परन्तु इसे ख्याल में आता नहीं। आहाहा!

टीका करनेवाले ने भी गजब की है न! कि आचार्य ऐसा कहते हैं। क्या (कहते हैं)? **'ज्ञानमात्रम् अवस्थितम्'** क्या? आत्मतत्त्व। उसमें से सब निकाला है। **'इदम् ज्ञानमात्रम् अवस्थितम्'** बस, जाओ! यह आचार्य की टीका पाठ में है, हों! भगवान आत्मतत्त्वम् ज्ञानमात्रम्। यह जीवद्रव्य **'ज्ञानमात्रम् अवस्थितम्'** यह है, बस। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है आत्मतत्त्व? 'अखण्डम्' अबाधित है।** अखण्ड कहने से अबाधित—खण्ड नहीं जरा भी। भगवान पूर्णानन्द का अखण्ड ऐसा तत्त्व पूरा दल है। समझ में आया? एक ओर घिसावट नहीं, खण्ड पड़ा नहीं। ज्ञायक चैतन्य अरूपी ज्ञानघन स्वरूप अखण्ड है, अबाधित है। कोई उसे बाधा-बाधा आयी नहीं। ऐसा है और ऐसा पर्याय में, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसने उसके गीत सुने नहीं। चाहे जैसा लड़का विवाह करे तो उसके गीत गावे तो उसे राजा जैसा गिने। उसे राजा क्या, कुछ कहते हैं न? वरराजा! धूल में भी कोई उसे मानता न हो। वह बोले, उस समय दो तीन दिन रखना हो न! क्या करे? नूरहीन हो

तो भी जिस-तिस के साथ लाकड़ा के साथ विवाह कर दे। नहीं तो फिर छोटे लड़के का विवाह करना हो और विचला रह जाये किसलिए? इसलिए तेजहीन हो तो भी व्यवस्थित कर दे। यह सब है न, सब देखा है न, कहाँ खबर नहीं? समझ में आया? यह तीसरा रहा गया और तीसरे का विवाह किये बिना चौथे के बाद करूँगा तो वह रह जायेगा। किसी भी प्रकार से उसका वरराजा ठहरावे। वह ऐसा नहीं कहते हैं। यह तो ऐसा है ऐसा वरराजा ठहराते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बढ़ाई के लिये नहीं। तीन दिन राजा करने के लिये नहीं, यह ऐसा कहते हैं। यह तो है। राज्यते इति शोभते इति राजा। विराजमान भगगवान शुद्ध चैतन्यघन है न! बस! उसकी पर्याय में उसका आश्रय तो पूर्ण हो गया। समझ में आया?

और कैसा है? 'एकम्' लो! उसमें **'एकम्'** आया। **निर्विकल्प है।** अभेद है, भेद जरा भी नहीं। गुण-गुणी का भेद वस्तु में क्या? वस्तु, वह वस्तु ही है। देखो! अन्त में बहुत समाहित कर दिया पूरा। अखण्ड एक है। एक कहने से उस अखण्ड में जब खण्ड लिया न? आत्मतत्त्व अखण्ड में, अर्थात् यहाँ फिर निर्विकल्प लिया। नहीं तो एकरूप अखण्ड है। अभेदरूप अखण्ड है, जिसमें गुण-गुणी का भेद भी वस्तु नहीं। एक अखण्डानन्द अरूपी चैतन्यदल वस्तु विज्ञानघन आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'अचलं' अपने स्वरूप से अमिट (-अटल) है। अपने स्वरूप से कभी मिटता नहीं। ऐसा का ऐसा भगवान ज्ञानघन अरूपी वज्र की मूर्ति भी घिसे, यह घिसे ऐसा नहीं। क्योंकि वज्र की मूर्ति तो बहुत रजकणों की बनी हुई (होती है)। घिसावट आवे घिसावट। यह सोने की नहीं बनाते? चूड़ी बनावे परन्तु थोड़े समय में घिसती है या नहीं? धीरे... धीरे... धीरे... धीरे... धीरे... धीरे... हीरे की चूड़ी होती है न? हीरे की चूड़ी। हीरे की चूड़ी होती है ऐसी ऊँची। वह थोड़े... थोड़े... थोड़े... पाँच-दस वर्ष में जरा-जरा घिसती है। यह भगवान अरूपी ज्ञानघन, कहते हैं, कभी घिसता नहीं, ऐसा है। क्योंकि वह तो बहुत रजकणों का पिण्ड है। यह (आत्मा) तो एक ही अखण्ड वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

वह यह वस्तु देखो न! कैसे शब्द प्रयोग किये हैं! अचल है, चलित नहीं। ऐसा का ऐसा अमिट है प्रभु! द्रव्य-गुण-पर्याय से भरपूर पूरी वस्तु है। **और कैसा है?** अब

जरा आ गया। **'स्वसंवेद्यम्'** कहने से **ज्ञानगुण से स्वानुभवगोचर होता है,...** भगवान, वह तो अन्तर ज्ञान को गम्य ही स्वानुभव होता है। समझ में आया? सब बात डाल दी। ज्ञानस्वभाव की पर्याय द्वारा ज्ञानगुण अर्थात् पर्याय द्वारा स्वानुभवगोचर होता है, वह ज्ञान द्वारा ही ज्ञान अनुभव होता है। दूसरी कोई वस्तु की उसमें आवश्यकता नहीं पड़ती। विकल्प और व्यवहार और निमित्त, संहनन और मनुष्य की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह बाद की बात होगी? पहले व्यवहार से होता होगा और फिर इससे होता (होगा), ऐसा होगा? पहले श्लोक में कहा था न? **'स्वानुभूत्याचकासते'** यह यहाँ डाला। यहाँ स्याद्वाद लिया न! भगवान आत्मा, वह तो ज्ञान की प्रत्यक्ष पर्याय से ही वह ज्ञात हो ऐसा, वेदन में आये ऐसा है। बाकी लाख उपाय कर तो दूसरे से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

यह कहते हैं, देखो! **अन्यथा कोटि यत्न करने पर ग्राह्य नहीं है।** यह ज्ञान से ज्ञान ज्ञात हो, इसके अतिरिक्त करोड़ दूसरे उपाय कर, करोड़ों रुपये के दान दे, अरबों के दान दे, अरबों के करोड़ों मन्दिर स्वर्ण के बना, हीरा के बना, यात्रायें निकाल। समझ में आया? आहाहा! पूजा, भक्ति, व्रत और तप ऐसे लाख करोड़, अनन्त-अनन्त, असंख्य विकल्प उठा, ऐसे करोड़ यत्न करने पर भी ग्राह्य नहीं है। ऐसे विकल्प के पुरुषार्थ से किसी प्रकार भगवान ग्राह्य नहीं है। समझ में आया? कहो! इसमें कितना स्पष्टीकरण है, देखो! अस्ति, नास्ति सब आ जाता है, हों!

मुमुक्षु : इतना स्पष्टीकरण, तथापि क्यों नहीं जँचता?

पूज्य गुरुदेवश्री : .... जहाँ जँचे वहाँ जाये। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसमें रुचि हो, वहाँ वीर्य स्फुरणा किया करता है। जिसकी आवश्यकता लगे, वहाँ बांथ भरे बिना रहता नहीं। भगवान आत्मा आनन्द शुद्ध ओहो! वहाँ ही वीर्य की स्फुरणा जोड़ने की है। बाकी लाख-करोड़ उपाय कर। देखो! भाषा कितनी की है।

अन्यथा कोटि यत्न करने पर ग्राह्य नहीं है। यह तो इसके साथ मिलाया। दसवाँ पृष्ठ है न? भाई! सहज साध्य है। उसका अर्थ यहाँ मिलाया है। पृष्ठ लिखा है, १०, ३३। **कोटि यत्न करने पर भी ग्राह्य नहीं।** समझ में आया? इस प्रकार ग्राह्य है ऐसा। दूसरे प्रकार से नहीं। दसवें पृष्ठ पर है। (कलश-४) **यदि करोड़ उपाय किये जाये तो भी**

जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन के योग्य नहीं है.... वहाँ काललब्धि पकेगी, कहा है। यहाँ यह कहा है। है न? चौथे श्लोक में है। **ऐसा नियम है, इससे जानना कि सम्यक्त्व वस्तु यत्न साध्य नहीं....** अर्थात् कि ऐसे करोड़ यत्न कर तो उससे साध्य नहीं (होगी), स्वसंवेदन साध्य है, ऐसा लेना। समझ में आया? आहाहा!

किसी प्रकार से ऐसा जाने बाहर से कोई विकल्प और पुण्य और यह और यह और यह, ऐसे करे, बहुत यात्रा करें और बहुत सम्मेदशिखर की करें... उसमें सम्मेदशिखर के मन्दिर को पहले देखो तो आहाहा! पहले देखा, हों! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। परन्तु क्या है? पहला या बाद में वह तो सब विकल्प है अब, उसमें क्या हुआ परन्तु तुझे? पहले दर्शन हुए थे, लो! स्वामीनारायण में कहते हैं, पहला पानी, पहला पानी मैंने जगाया था। नहाया, ऐसा। पानी को पहले जगावे वह अधिक... यहाँ कहते हैं कि पहले और पहले पहुँचा था, हों! परन्तु क्या पहला और बाद में अनन्त बार किया है, अब सुन न! सम्मेदशिखर के दर्शन और मूर्ति और ऐसा अनन्त बार किया है। पहला किसे कहना तुझे? समझ में आया? कठिन बात, भाई! करोड़ यत्न कर और विकल्प के और पर में यह और यह, उस द्वारा आत्मा किसी प्रकार से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। वह तो स्वसंवेद्य है। बस! जब जाने तब ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसी ही वह चीज़ है। पहले-पश्चात् उसमें दूसरा कुछ है नहीं, ऐसा सब स्पष्टीकरण बहुत करते हैं, अस्ति-नास्ति आदि। समझ में आया?

और कैसा है? 'अबाधितम्' 'अबाधितम्' सकल कर्म से भिन्न होने पर... राग से और कर्म से भिन्न होने पर भगवान आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, (अब) **कोई बाधा करने को समर्थ नहीं है।** अब उसे नीचे गिरना, अवतार लेना या विकल्प होना कोई करने को समर्थ नहीं है। पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसी दशा शक्तिरूप से थी, पर्याय प्रगट हुई, उसे अब वापस गिरना नहीं होता। अर्थात् फिर से भव करना नहीं रहता। दुनिया के लिये उसे अवतरित होना पड़े या कोई बाधा हो, विघ्न हो, ऐसा उसे है नहीं। ऐसा आत्मा... समझ में आया? अनुभव हो जाये, भले प्रकार से कार्य किया। यह पूर्ण हो गया। आत्मा की शक्ति पूर्ण ज्ञानघन का ज्ञान करने से, वेदन करने से पूर्ण हो गया, वह समयसार पूर्ण कहने में आता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)